



# अथर्ववेद- गृहस्थाश्रम

[ भाग ३ ]

Sa 2 Y 11  
Sati  
२२४८१

लेखक

म. स. ब्रह्मर्षि पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर  
विद्या-मार्तण्ड, साहित्य-शास्त्र-पति, गीतालंकार  
अध्यक्ष-स्वाध्याय-मण्डल



पा र डी [ वि. बलसाय ]

प्रकाशक :

वसन्त श्रीपाद सातयलेकर, बी. ए.,  
स्वाध्याय मंडल,  
पोस्ट- 'स्वाध्याय मंडल (पारडी)'  
पारडी [ वि. बडसाह ]



\*

संवत् २०२१, शक १८८१, सन् १९६४

\*

मूल्य रु. {०.००

\*

प्रथम बार

\*

मुद्रक :

वसन्त श्रीपाद सातयलेकर, बी. ए.,  
भारत-शुद्धालय, स्वाध्याय मंडल,  
पोस्ट- 'स्वाध्याय मंडल (पारडी)'  
पारडी [ वि. बडसाह ]

# अथर्ववेद-- [ भाग तीसरा ]

' गृह स्था श्रम '

## विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ	-विषय	पृष्ठ
भूमिका	१	विवाह-प्रकरण	५१
पवित्र गृहस्थाश्रम ( कां ६, सू १२२ )	११	वैदिक विवाहका स्वरूप	५१
पवित्र गृहस्थाश्रम	१२	ग्रहण सूक्त	५१
कुलवधू-सूक्त ( का १ सू १४ )	१३	दो और भूमि	५१
कुलवधू-सूक्त	१४	सोन	५१
पहला प्रस्ताव	१४	बरातिका रथ	५२
प्रस्तावका अनुमोदन	१४	देहन	५३
बरकी परीक्षा	१५	पुराना और नया संबंध	५३
पक्षिके गुणधर्म	१५	गृहस्थाश्रमका आदर्श	५५
बधू-परीक्षा	१५	मादाणोंको धन और वस्त्रदान	५६
कन्याके गुणधर्म	१६	पुरर घीका पक्ष न पहने	५६
भगनीका समव	१६	कन्याका गुरु	५६
सिरकी सतावट	१६	सदन्धवद्दारेसे धन कमाना	५७
मानोंके पश्चात् विवाह	१६	गौरक्षा	५७
कन्याके लिये घर ( कां ६, सू ८२ )	१७	सरल भाषं	५७
कन्याके लिये घर	१७	तेगली बनो	५७
विवाहका मंगल कार्य ( का २, सू ३६ )	१८	घीकी हृच्छा	५७
विवाहका मंगल कार्य	२०	घी कैसी हो ।	६०
बरकी योग्यता	२०	गृहस्थीका साक्षात्प	६०
बधूकी योग्यता	२०	द्विर्वाका सूत कालना	६०
विवाहके पश्चात्	२१	वाणिप्रवृत्त	६१
ऐश्वर्यकी चौका	२१	नेत्रोंकी सुंदरता	६२
पुररका स्थान	२२	चोरीका नष्ट न लाना	६३
पक्षिके लिये धन	२२	घरातपर रथ	६४
विवाह ( कां ६, सू ६० )	२३	द्वितीय सूक्तका विषय	६४
विवाह-प्रकरण ( कां १४, सू १ )	२४	विवाहका धर्म	६५
विवाह-प्रकरण ( कां, १४, सू २ )	२७	बन्धसे पद्मनाभ	६६
		अनु दूर हो	६६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
विवाहमें ईश्वरका हाथ	६७	एकताका बल	१०
गभाधान	६७	सौभाग्य वर्धन-सूक्त ( का १, सू १८ )	८१
पतिके घरमें पत्नीका स्वरहास	६७	सौभाग्य-वर्धन-सूक्त	९०
दरिद्रताको दूर करो	६८	सुलक्षण और सुलक्षण	९०
बड़ोंका समस्कार	६८	वाणीसे कुलक्षणीको हटाना	९१
शुभ वात	७०	वाणीसे प्रेरणा	९१
वपुका वस्त्र	७०	हाथों और पावोंका दर्द	९१
गृहस्थियोंका घर	७०	सौभाग्यके लिये	९१
छिन्निका बनाया वस्त्र	७१	रत्नदानका कल्पना	९१
गण्डिका वस्त्र	७२	सौभाग्य-वर्धन ( का ६, सू १३९ )	९२
घासेकी परिव्रता	७३	सहस्रवणी औपधि	९३
शुशिका साधन	७३	नेत्रोंका साँपको कल्पना और चोटना	९३
आग्नीर्वाह	७४	सौभाग्यको बढाओ ( कां ७, सू १६ )	९३
पति और पत्नीका मेल ( का २, सू ३० )	७५	दातोंकी पीडा ( का ६, सू १४० )	९३
पति और पत्नीका मेल	७६	केशवर्धक औपधि ( का ६, सू १३६ )	९४
अग्निनी देन	७६	केशवर्धक औपधि ( कां ६, सू १३७ )	९४
विवाहका समय	७६	केशवर्धक औपधि ( का ६, सू २१ )	९५
विष्कण्ट बर्तान	७६	अरुघति औपधि ( का ६, सू ५९ )	९६
कादों पवि-पत्नी	७७	अरुघति	९६
धम्मणका स्थान	७७	वाजीकरण ( का ६, सू ७२ )	९७
आम साव बर्तान	७७	स्त्री-पुरषकी वृद्धि ( का ६, सू ७८ )	९७
दम्पतिका परस्पर प्रेम ( का ६, सू ८१ )	७८	गृहस्थीकी पुष्टि	९८
स्त्री और पुरषका प्रेम	७९	स्त्री-चिकित्सा ( का ७, सू ३५ )	९९
पतिपत्नीका परस्पर प्रेम ( का ७ सू ३६ )	७९	स्त्री-चिकित्सा	९९
पतिपत्नीका एकमत ( का ७, सू ३८ )	८०	उत्तम गृहिणी स्त्री ( का ४, सू ३८ )	९९
एक विचारसे रहना ( कां ६, सू ७३ )	८१	उत्तम गृहिणी स्त्री	१०१
सघटना	८२	दूध स्त्रीका समाहर	१०१
परस्पर प्रेम ( कां ६, सू ८० )	८२	घ कैसी हो ?	१०१
एकताका मंत्र	८२	अप्सरा	१०२
परस्पर प्रेम ( का ६, सू १०२ )	८३	रक्षिताना	१०३
प्रेमका आकर्षण	८३	स्त्री-रक्षा	१०३
सपत्नानाका वरणमणि ( कां १०, सू ३ )	८३	स्त्रीके पातिव्रत्यकी रक्षा ( का ५, सू १७ )	१०४
पत्नी पतिसे लिये वस्त्र बनाये ( का ७, सू ३७ )	८७	स्त्रीके पातिव्रत्यकी रक्षा	१०७
उन्नतिकी दिशा ( का ३, सू २६ )	८७	स्त्री-वाशियकी रक्षा	१०७
सामनस्य ( कां ६ सू ७४ )	८८	दूस्वप्ति और वारा	१०७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
काम (का ९ सू २)	१००	पुलकन और छैपूष	१४३
काम	१०१	मुख-प्रसूति-सूक्त (का १, सू ११)	१४३
सकलशाक्ति	१०१	मुख-प्रसूति-सूक्त	१४५
कामका कवच	११६	प्रसूति प्रकरण	१४५
कामाशिका शमन (का ३, सू २१)	११७	ईशभक्ति	१४५
कामाशिका शमन	११७	देवोका गर्भसे विकास	१४५
कामाशिका स्वरूप	११९	गर्भवती स्त्री	१४५
काम और दृष्टि	१२०	गर्भ	१४६
कामको दाहकला	१२१	मुख-प्रसूतिक लिये सादेश	१४६
न द्रव्यैवाणः	१२१	भार्ङ्गी सहायता	१४६
इद्रका रथ	१२१	सूचना	१४६
कामशाक्तिका उपाय	१२२	रक्तस्राव बन्द करना (का १, सू १७)	१४७
कामका बाण (का ३, सू २५)	१२८	रक्तस्राव बन्द करना	१४७
कामका बाण	१२५	घाव और रक्तघाव	१४७
विरुद्धपरिणामी भलकार	१२५	दुर्मांगबाली स्त्री	१४८
कामका बाण	१२६	निधवाके बक्ष	१४८
पतिव्रतीका एकमत	१२६	रक्तस्राव बन्द करनेकी औषधि (का ६, सू ४७)	१४८
भ्रमपत्नीका पुत्र	१२७	रक्तस्राव और वातरोग	१४९
गृहस्थ धर्म	१२८	गृध्रोकी निद्रा	१४९
वीर पुत्रकी उत्पत्ति (का ३, सू २३)	१२८	नवजात बालक (का ६, सू ११०)	१४९
वीर पुत्रकी उत्पत्ति	१२९	सतानका मुख (कां ७, सू १११)	१५०
वीर पुत्रका प्रसव	१२९	घरके बालक (का ७, सू ८१)	१५०
गर्भधारणा (का ५ सू ५५)	१३०	घरके दो बालक	१५०
गर्भकी सुरक्षितता	१३१	जन्म रूपी धर	१५०
गर्भधारणा (का ६, सू १७)	१३२	अपनी शक्तिसे खेलनेवाले बालक	१५०
गर्भदोष-निवारण (का ८, सू ६)	१३३	स्वशक्तिसे चलना	१५०
गर्भदोष-निवारण	१३८	दिविजय	१५१
प्रसूतिके दोष	१३८	जपको प्रकाश देना	१५१
अच्छरोंका शायन	१४०	कठोरका भाग	१५१
अच्छरोंके शस्त्र	१४०	एकी हो	१५३
अच्छरोंके स्थान	१४१	दुष्टका नाश	१५३
रोगशिमिषोके नाम	१४१	दिव्य मोहन	१५३
सिंग वन	१४१	मुहन (कां ६, सू ६८)	१५३
विषघटके गुण	१४१	मेखला बधन (कां ६, सू १३३)	१५४
पुसयन (का ६ सू ११)	१४२	मेखला बधन	१५५
पुसयन	१४२	कटिबद्धता	१५५
निश्चयसे पुत्रकी उत्पत्ति	१४२	कामको वापस भेजो (कां ६, सू १३०)	१५६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
कामको वापस भेजो ( कां. ६, सू. १३१ )	१५७	वशावर्ती गाय	१९३
कामको वापस भेजो ( कां. ६, सू. १३२ )	१५८	गाय	१९३
कंकणका धारण ( कां. ६, सू. ८१ )	१५९	गीका उत्सव	१९३
कंकण धारण	१५९	ब्राह्मणकी गी ( कां. १२, सू. ५ )	१९४
मातापिताकी सेवा करो ( कां. ६, सू. १२० )	१६०	ब्राह्मणकी गी	२००
धन और सद्व्युद्धिकी प्रार्थना ( कां. ७, सू. १७ )	१६१	गीका महत्त्व	२००
गृह-निर्माण ( कां. ३, सू. १२ )	१६२	ब्राह्मण क्यों जानना करते हैं ?	२००
गृह-निर्माण	१६४	दानका अधिकारी ब्राह्मण	२००
घरकी बनावट	१६४	गीकी रक्षा	२०१
घर बनाने योग्य स्थान	१६४	गोबर और मूत्र	२०१
घर कैसे बनाया जाने ?	१६४	शत्रिकी माता	२०१
संमानका स्थान	१६४	ब्राह्मणकी गी ( कां. ५, सू. १८ )	२०२
प्रसन्नताका स्थान	१६५	शतौदना गी ( कां. १०, सू. ९ )	२०१
धीरतासे युक्त धन	१६५	शतौदना गी	२०८
अतिथि उत्कार	१६५	गी	२०८
देवों द्वारा निर्मित घर	१६६	गौत्र विभ्वरूप ( कां. ९, सू. ७ )	२०९
देवोंकी सहायता	१६६	गीका माहात्म्य	२११
गृह-निर्माण ( कां. ९, सू. ३ )	१६६	वैल ( कां. ९, सू. ४ )	२११
गृह-निर्माण	१७१	वैल	२१६
घरकी प्रसन्नता	१७१	वैलकी महिमा	२१६
घरकी शौभा ( कां. ६, सू. १०६ )	१७३	गौशाला ( कां. ३, सू. १४ )	२१९
रमणीय घर ( कां. ७, सू. ६० )	१७४	गो-सर्वजन	२२०
गाय ( कां. ७, सू. ८२ )	१७५	गायकी पालना ( कां. ७, सू. ७५ )	२२१
गाय ( कां. ४, सू. २१ )	१७७	गौको समर्थ बनाना ( कां. ७, सू. १०४ )	२२१
गी	१७८	गी पर विन्दु ( कां. ६, सू. १४१ )	२२२
गीका सुन्दर काव्य	१७८	गी सुधार ( कां. ६, सू. ७० )	२२२
गी घरकी शोभा है	१७८	गो-रस ( कां. २, सू. २६ )	२२३
इष्टि देनेवाली गी	१७९	गो-रस	२२४
गी ही धन, बल और मज्ज है	१७९	पशुपावन	२२४
यज्ञके लिये गी	१७९	भक्षण और वापस भक्षण	२२४
ब्रह्मण्य गी	१८०	दूध और पोषक रस	२२५
उत्तम पास और दक्षिण उत्तमान	१८०	गाय और यज्ञ ( कां. ७, सू. ७३ )	२२६
गीको पालना	१८०	गाय और यज्ञ	२२८
घरका गाय ( कां. १२, सू. ४ )	१८१	गी-रक्षा	२२८
वशावर्ती गाय ( कां. १०, सू. १० )	१८९	पंचौदन धज ( कां. ९, सू. ५ )	२३०
		पंचौदन भज	२३८

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
प्रजाकी पुष्टि ( का ७, सू १९ )	२४५	अपनी रक्षा ( का ७, सू ३१ )	२५७
खेतीसे अन्न ( का ७, सू १९ )	२४५	दुष्ट स्वप्न ( का ६, सू ४५ )	२५८
अन्नकी वृद्धि ( का ६, सू १४२ )	२४६	दुष्ट स्वप्न	२५८
अन्न ( का ६, सू ७१ )	२४६	पानी विचार	२५८
अन्न	२४७	दुष्ट स्वप्न ( का ६, सू ४६ )	२५९
अनेक प्रकारका अन्न	२४७	दुष्ट स्वप्न	२५९
घनके चार भाग	२४७	दुष्ट स्वप्न यमका दुष्ट	२५९
अन्नभाग ( का ६, सू ११६ )	२४८	दुष्ट स्वप्न न आनेके उपाय	२६१
प्रजाकी संमति	२४८	( का ७, सू १०० )	
घान्त्यकी सुरक्षा ( का ६, सू ५० )	२४९	दुष्ट स्वप्न न आनेके उपाय	२६१
घान्त्य न नाशक जीव	२४९	( का ७, सू १०१ )	
खानपान ( का ७, सू ७२ )	२५०	अज्ञान ( का ७, सू ३० )	२६२
खानपान	२५०	मधुविद्या और गोमहिमा ( का ९, सू १ )	२६२
भोजनका समय	२५०	मधुविद्या और गोमहिमा	२६७
ओषधिरसका पान ( का ६, सू १६ )	२५१	सप्त मधु	२६७
रसपान	२५२	मद्यका कथन	२६७
ऋणरहित होना ( का ६, सू ११७ )	२५२	वानिधि सत्कार ( का. ९, सू ६ )	२६७
ऋणरहित होना ( का ६, सू ११८ )	२५३	अतिथिका आर्य	२७३
ऋणरहित होना ( का ६, सू ११९ )	२५४	ग्राहणको कष्ट ( का ५, सू १९ )	२७४
निष्पाप होनेकी प्रार्थना ( का ७, सू ३४ )	२५५	ग्राहणको कष्ट	२७६
फलदाण ( का ७, सू २८ )	२५६	शानीको कष्ट	२७६
विषयको हटाना ( का ७, सू २३ )	२५६	अर्थवैदिकी कष्ट बात	२७६
भाग्यकी प्राप्ति ( का ६, सू १२९ )	२५७	इजामत	२७६
		पशुको प्रीत्य बनाना ( का ६, सू १३८ )	२७७







अथ केकेदु -

भाग तीसरा

# गृहस्थाश्रम

## भूमिका

इस पुण्यमें अथर्ववेदके गृहस्थाश्रम विषयक १५ सूक्तोंका समावेश है, इन सूक्तोंमें करीब करीब ११००से अधिक मंत्र हैं।

'गृहस्थाश्रम' शब्द आश्रमोंका भाषा है। महापर्य-आश्रममें विद्या प्राप्त की जाती है, इस कारण इस महापर्य-आश्रममें धर्मानेन नहीं हो सकता। कमसे कम २५ वर्ष तककी आयु इस आश्रममें चली जाती है।

वानप्रस्थ और संन्यास ये दो आश्रम भी धर्मानेनके लिए नहीं हैं। इस तरह आयुके तीन आश्रम-महापर्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन तीन आश्रमोंमें घनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इस कारण ये तीनों आश्रम गृहस्थाश्रमपर ही आश्रित रहते हैं इस विषयमें मनुस्मृतिमें कहा है—

यथा धातुं समाधित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।  
तथा गृहस्थाध्यायित्य वर्तन्ते सर्वे आश्रमाः ॥ १४ ॥  
यस्माद् अयोऽप्याश्रमिणो दानेनाश्रमेन चान्यहम् ।  
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्मान्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥ १५ ॥  
स संघार्यः प्रपत्नेन स्वर्गं अक्षय्यं हृच्छता ।  
सुखं धेदृच्छता नित्यं योऽघार्यो दुर्वलेन्द्रियैः ॥ १६ ॥

१ ( अथर्व. शिर्षा गृ भा ३ )

सर्वेषामपि श्रैतेषां वेदस्मृतिविधानतः ।  
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स प्रीनेतान् विभक्तिं हि ॥ १७ ॥  
यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ।  
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ १८ ॥  
सेनापत्यं च राज्यं च दृण्डनेहृत्यमेव च ।  
सर्वलोकधिपत्यं च पेदशास्त्रविद्वृति ॥ ३८ ॥

( मनुस्मृति )

" त्रिय तरह वायुका आश्रम करके सब प्राणी जीवित रहते हैं, उसी तरह गृहस्थाश्रमका आश्रय करते सब मनुष्य आश्रम जीवित रहते हैं। पूर्ण महापर्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन तीनों आश्रमोंको दान तथा अन्न देकर प्रतिदिन गृहस्थी आश्रय देकर सुरक्षित रहना है, इस कारण गृहस्थाश्रमी श्रेष्ठ है। इसलिये जिनको अश्रय सर्व प्राप्त करनेको इच्छा है, तथा जो इस जगत्में सुख प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, उसे गृहस्थाश्रमका पदचैतुर्यक वाचन करना चाहिये। निर्वर्तित इम गृहस्थाश्रमका वाचन नहीं हो सकता। वेद और स्मृतिके बलानुसार इन सब आश्रमोंमें गृहस्थ ही श्रेष्ठ है, क्योंकि यह गृहस्थी मनुष्य तीनोंका आश्रय-वाचन

करता है। जिस तरह नदी और मग्न समुद्रमें जाकर सुरक्षित होते हैं, उसी तरह सब अन्व्य आश्रम गृहस्थाश्रमके आधारसे सुरक्षित होते हैं। सेनापतिका कार्य, राज्यव्यवहारका कार्य, म्यायदानका कार्य, सब लोकोंके आधिपत्यके सब कार्य वेद-रूपी शास्त्र जाननेवाला गृहस्थी ही कर सकता है।"

इस तरह गृहस्थ आश्रमका महत्त्व स्मृतिग्रंथोंमें वर्णित किया है। सत्समुच्च गृहस्थाश्रम ही सब राष्ट्रीयजीवनका आधार है। ऐसे सर्वश्रेष्ठ गृहस्थाश्रमके विपत्तियों बंदमगलोंमें क्या कहा है, यह अवश्य देखना चाहिये। यह देखनेके लिये ही इत सीसरे श्लेषकी रचना की है, इसमें अथर्ववेदके इस विषयके मंत्र संग्रहीत हैं और इसमें मंत्रोंका गुणार्थ भी स्पष्टीकरणके द्वारा बताया है। वेद स्त्रीको किलभी उच्च अवस्थामें रखना चाहता है, यह वेदके निम्न मंत्रोंसे स्पष्ट होता है—

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रुत्यां भव ।

नानान्द्रि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥

( ऋ. १०१८५।४६ )

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राश्रुत देवृषु

नानान्द्रुः सम्राज्ञ्येधि सम्राश्रुत श्वश्रुत्याः ॥

( अथर्व. १४।१।४४ )

' हे स्त्री ! तू अशुर, साय, मरुद, देव आदिदुर्गके साथ सुसाराधमें जाकर सम्राज्ञी जैसी रह । ' रानी जैसे राजमहलमें आनेदसे रहती है, उसतरह तू रानी बनकर अधिकारके साथ बर्दा रह । कोई स्त्री दासीभावसे हीन अवस्थामें न रहे, अपितु उत्तम अधिकारसे सुसाराधमें रहे, यह इन मंत्रोंका आशय है । और देखिये—

अघोरचक्षुरपतिष्म्येधि

शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।

वीरसुद्वृकामा स्योना

शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ( ऋ. १०१८५।४४ )

अघोरचक्षुरपतिष्मि स्योना

शग्मा सुशोवा सुयमा गृहेभ्यः ।

वीरसुद्वृकामा सं त्वर्य-

धिर्वाग्मदि सुमनस्माना ॥ १७ ॥

अदेवृष्ण्यपतिष्मिहैधि

शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः । ।

प्रजापती वीरसुद्वृकामा

स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सापयं ॥१८॥ ( अथर्व. १४।२ )

' हे स्त्री ! तू ( अ-घोर-चक्षुः ) अपनी दृष्टि मूल न रख, ( अ-पतिष्मि ) पतिको कष्ट न दे, ( पशुभ्यः शिवा ) घरके पशुओंका कल्याण करनेवाली बन, तथा ( सुमनाः सुवर्चाः ) उत्तम मनवाली तथा उत्तम वैज-स्विनी हो कर रह, ( वीर-सूः ) वीर पुरुषोंको उत्पन्न करनेवाली हो, ( देवृकामा ) घरमें पतिके भाई हों, ऐसी इच्छा करनेवाली हो, ( स्योना ) सुख देनेवाली हो, ( नः द्विपदे चतुष्पदे शं भव ) हमारे दो पाववालों और चार पाँव वालोंके लिये आनन्द देनेवाली हो । ( शग्मा सुशोवा ) सुलवापी तथा पतिकी उत्तम सेवा करनेवाली हो, ( गृहेभ्यः सुयमा ) घरवालोंके लिये उत्तम नियमोंसे चलनेवाली बन कर रह, ( प्रजापती ) प्रजा उत्पन्न करनेवाली होकर इस गार्हपत्य अग्निको उपासना कर । '

इसतरह स्त्रीको घरकी सम्राज्ञीवेद बनाता है और देखिये—

इह प्रियं प्रजया ते सम्भृथतां

अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।

एना पत्या तन्वं सं सृजस्वा-

घाजित्री विदधमा यदासि ॥ ( ऋ. १०१८५।२० )

एना पत्या तन्वं सं सृजस्वा-

थ जिर्विर्विदधमा यदासि । ( अथर्व १४।३।२१ )

' अपनी प्रजासे यज्ञों तैरा प्यार हो, इस पतिके घरमें गृहस्थ-धर्मका पालन करनेके लिये जाग्रत रह, इस पतिके साथ सुलपूर्वक रह और यज्ञमें अपने पतिके साथ भाग ले । ' तथा—

मा विद्वन् परिपन्थिनौ य आसीदन्ति दम्पती ।

सुगेभिः दुर्गमतीनां अप द्रान्त्वरातयः ॥

( ऋ. १४।२।११ ऋ. १०१८५।३२ )

जो शत्रु इनके पास रहते हों, वे इन पति पत्नीको न जानें, वे दम्पती सुगम भावसे कतिन कार्यको करते रहें और शत्रु इनको दूर भाग जायें । तथा—

आ नः प्रजां जनयतु प्रजापति-

राज्रसाय सम्ममन्त्र्यर्यमा ।

अदुर्मणलीः पतिषोक्त्वा पिश

शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

इमां त्यमिन्द्र मीद्व्यः सुपुत्रां सुभगां वृणु ।

दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं वृणु ॥

( ऋ. १०१८५।४३, ४५ )

' प्रजाका पालक ईश्वर इस स्त्रीमें प्रजा उत्पन्न करे ।

अर्धमा वृद्धावस्था एक इसको ले जाय सर्पात् यह वीर्षापु हो । पतिके घर आकर यह अगल करनेवाली बने । द्विपद् और वस्तुप्राप्तके लिये यह की कल्पना करनेवाली बने । हे इन्द्र ! इस स्त्रीके उचम पुत्र हों, ऐसा कर । यह की सीमापसे युक्त हो । हे स्त्री ! मेरे इस पुत्र उत्पन्न हों और पश्चात् पतिके ग्यारहवां मान । '

वेदमें इस पुत्र या इस संतान उत्पन्न करनेकी मर्यादा कही है । पर ब्राह्मण-ग्रंथोंमें ' अष्टपुत्रा ' पदसे आठ पुत्र उत्पन्न करनेकी मर्यादा बताई है । वेदके समयमें और ब्राह्मण के समयमें इतका परिवर्तन संततिविनियमनके विषयमें हुआ है । भाग को सनकार सततिविनियमन करनेवालोंको सहायता कर रही है । इतका समयमें परिवर्तन हो गया है । वैदिक कालमें दस पुत्रोंको इच्छा पति और पत्नी करते थे, ब्राह्मण कालमें यह इच्छा आठ पुत्रोंकी रह गई और भाग संतति-नियमन एक आवश्यकता बन गया । अस्तु । और देखिये—

इहिय स्त्री मा वि यौष्टं विभ्वमायुर्वर्षानुत्तम् ।

कीकृन्ती पुर्वैर्नृभिः मोदमानी स्ये गृष्टे ॥

( अ. ११८५५२ )

मोदमानी स्वस्तयी । ( अ. ११११२२ )

' यहीं रहो, ( मा वि यौष्ट ) कभी विभक्त न होओ । संपूर्ण आयुका भोग करो । अपने घरमें धान्दके साथ पुत्रों और वीरोंके साथ सेठते हुए धान्दले रहो ।

यहां ( मा वि यौष्ट ) विभक्त न होओ, ऐसा कहा है । विवाह-विच्छेदका इसतरह वेद निषेध करता है । जो सदा सौ वर्षोंतक अपने पुत्र वीरोंसे सेठते और मान्य करते हुए अपने घरमें रहो । कभी विभक्त न होओ ।

विवाहका विच्छेद नहीं करना चाहिये । अपने घरमें बाल्यसे पुत्रों और वीरोंके साथ रहो । यह वेदकी आज्ञा है ।

स्त्रियां कैसी हों ?

स्त्रियां कैसी हों इस विषयमें वेद कहता है कि—

गुह्याः पूताः योषितो यशिया इमाः

प्रहाणां हस्तेषु प्रपृषात् सादयामि ॥

( अ. १११२२५५ )

' गुह्य रहिय और दूतनीय ऐसी ये स्त्रियां हैं । इनको लाजियोंक हाथमें धुयक् धुयक् देता हूं । ' शिनकी कन्या-दान करना हो, वे जानी हों, अज्ञानी न हों, तथा वे स्त्रियां

विचारसे गुह्य हों, पवित्र भाषण करनेवाली हों, और सन्त-चारी होनेके कारण पूजनीय हों । विचार, उच्चार और भाषण में वे निर्दोष हों ।

महावर्षण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।

( अ. ११५५१८ )

कन्या, कन्या—गृहगुह्यमें रहकर विदुषी होती थी । इधर लक्ष्य भी गृहगुह्यमें रहकर विदुषा होना था । ऐसे शैलोंका ( युवानं पतिं विन्दते ) तालम्पमें विवाह होता था । स्त्री भी उत्तरी होती थी और घर भी सुखा होता था । दोनों घरण और विद्यायुक्त होते थे । इसलिये विवाहके मंत्र वे ज्ञानपूर्वक समग्रते थे ।

' धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष ' ये चार पुरपर्ये हैं । धर्मका भाषण महावर्षाश्रममें शुरू होता है । तदनन्तर ' अर्थ ' को धनको प्राप्त करना होता है । धन प्राप्त करके ' काम ' अर्थात् विवाह करके गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होना होता है । इसलिये सतुर्विध पुरुषार्थोंमें ' अर्थ ' को पहिले रखा और ' काम ' को उत्तरे पश्चात् रखा है । मनहीनसे गृहस्थ-धर्मका पालन ठीकतरह नहीं हो सकता है, इसलिये कहा है कि—

अग्रेण सह कुमारीं आगमेद् । ( अथर्व २११५१ )

' धनके साथ कुमारीके पास जावे और उसको पत्नीके रूपमें प्राप्त करे । ' स्त्रीका और बाल्यवर्षोंके पोषण करनेका भार उत्तरपर आता है । इसलिये विद्या प्राप्त करनेके पश्चात् पुरुष धन प्राप्त करे और पश्चात् विवाहका विचार करे । विवाहके पश्चात्—

अगस्य जुष्टा इयं नारी

पत्या अधिवाचयन्ती सं प्रिया अस्तु ॥

( अथर्व २१११४ )

' देवर्षको प्राप्त हुई यह स्त्री, पतिते मित्रोप न करती हुई पतिको प्रिय हो । ' विवाहके पूर्व यह स्त्रीकी शिष्या मिलनी चाहिये, कि यह पतिके घर किस तरह रहे । आश्रम-वर्तन विचार बड़ाये जाते हैं । सर्वत्र विचार अवश्य चाहिये, विचारोंकी तुलना नहीं चाहिये, परंतु यह स्वतंत्रता ऐसी नहीं चाहिये, कि जो पतिरत्नीमें विरोध पैदा करे । इसलिये कहा है कि—

पतिं गत्या सुभगा वि राजतु

पुत्रान् सुपाना मदिथी भयाति । ( अथर्व २१११४ )

'यद्भी पतिके घर जाकर उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त बने, पुत्रोंको उत्पन्न करके रानी जैसी निरानती रहे।' यहाँ 'महिषी भवति' यह पत्र मुख्य है। सपत्नी या रानी जैसी यह भी पतिके घर विशाली रहे। यही यह योग्यता है। राष्ट्रका सर्वधन करनेका कार्य क्रियाका है। क्रिया संतान उत्पन्न करती है, जिससे राष्ट्र बचता रहता है। जिस राष्ट्रमें केवल पुरुष ही पुरुष हों, यह राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता। प्रजाकी वृद्धि करना क्रियाका ही कार्य है। इसलिये क्रियाको रानीक समान धरमें रखना चाहिये, ऐसा वेद कहता है। पतिके घर शांती हुई भी क्या क्या इच्छा करे, इस विषयमें कहा है—

भाशासना खीमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ।

(अपर्व १४११७२)

यही पतिके घर (सौ-मनसं) उत्तम मन और उत्तम विचारोंके साथ रहे, (प्रजां) उत्तम संतान होनेकी इच्छा करे, मेरे द्वारा उत्तम संतान उत्पन्न हों ऐसा विचार मनमें धारण करे, उत्तम भाग्य और ऐश्वर्य प्राप्त हो ऐसी इच्छा भी करे। घरमें व्यवहार ऐसे करे कि जिससे वह धरकी रानी ही ऐसा देखने वालोंको पता लगे।

परयुः अजुप्रता भूत्वा सं महस्व्य अमृताय कम् ।  
(अपर्व १४११७२)

'धरमें यही पतिके अनुकूल बर्ताव करती रहे। और अमरत्व और अमृत्यु प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करे।' अमृत्यु और अमृत्यु प्राप्त करना चाहिये। अनुकूलता सर्व दीर्घ-जीवन और अमृत्युका सर्व मलका शान्तिपूर्ण सुख है, यह तो उस समय प्राप्त हो सकता है कि जिस समय धरमें पतिके अनुकूल आचरण करनेवाली पत्नी हो और पत्नीके अनुकूल आचरण करनेवाला पति हो। धरमें पारस्पर अनुकूल बर्ताव हो, तो अमृत्यु और शान्ति स्थापित हो सकती है। मान-धर्ममें प्रतियोग तो होते ही रहेंगे, पर उनके बचना नहीं चाहिये, मर्यादोंमें रचना चाहिये, उससे धरमें शान्तिपूर्ण बच सकता है।

### स्त्रियां सूत काठे

धरमें पुरुषको समय स्त्रियां सूत काठे और बनवा बनाने-देवीः अहृन्तन् तस्मिन् अमितः

अन्तान् अद्दन्त अपयन् ।

सं व्ययन्तु आयुध्याती

इदं धारः पति धन्व्यः ॥ (अपर्व १४११७५)

'देवियां धरमें पुरुषको समय सूत काठे। ताना बना-

युनें, कपड़ेके धातोंको ठीक करे। बुनें, गिरकर बुनेकर कार्य उत्तम रीतिसे करें। दीर्घ आयु प्राप्त करनी हुई भी इस कपड़ेको पहने।'

पत्नीका बना हुआ कपड़ा पुरुष पहने। इस तरहके कपड़े पहनेलेसे बुनेवाली पत्नीका चरण हर समय होगा और इस कारण उस पतिके मतमें अपनी पत्नीके सचधर्म भित्तिवा प्रेम रहेगा, इसका विचार पाठक कर सकते हैं। "अपनी पत्नीका बनाया हुआ कपड़ा मैं पहन रहा हूँ," यह कथना ही कितना आनन्द देनेवाली है, इसका विचार करतेसे क्या लग सकता है कि, यही तो गृहस्थाधममें प्राप्त होनेवाला आनन्द है। हरएक गृहस्थीको यह आनन्द प्राप्त हो और इससे गृहस्थी लोग सुख प्राप्त करें, यही वेदका आदेश है।

### निष्कपट व्यवहार

स्त्रीपुरुषका परस्पर व्यवहार निष्कपट होना चाहिये। इस विषयमें वेदका कहना है—

यत् जन्तरं तत् धाहाम् । यत् वाह्यं तत् जन्तरम् ।  
(अपर्व. १३०१४)

'जैसा मनमें हो वैसा ही बाह्यका व्यवहार हो और जैसा बाह्यका व्यवहार हो वैसा ही मनमें हो।' किसी तरहका छल या कपट उन दोनोंके व्यवहारमें न हो। कितना क्या भावसे वेदों गृहस्थियोंके सामने रखा है। इससे ही जीवन अमृत-स्व और आनन्दमय हो सकता है।

### परस्पर प्रेम

पुत्रपौत्रा-पति-पत्नीका-पारस्पर प्रेम हो। वे एक दूसरेको चाहें, कभी उभरमें पारस्पर विरोध न हो, इस विषयमें वेदों कहते हैं—

यथा पृथक् लिपुजा समन्तं परिपश्यते ।  
यथा पति ध्यजस्य मां यथा मां  
कामिनी जसः यथा मन्त्रापगा जसः ॥

(अपर्व १४११)

'जिस तरह पृथक् वेद चाहें एक छिप जायें हैं, उसी तरह हे यही ! तू मुझसे छिप जा, मेरी इच्छा करनेवाली हो और मुझसे दूर जानेवाली न बन।'

यह दोनोंका आन्तरिक प्रेम है। इसी प्रेमके कारण यह गृहस्थाधम ही पृथ्वीका सर्वोत्तम धर्म माना है। इस प्रेम-मुक्तके माह होनेपर दोनोंकी आयु भी बढ़ती है। शोग मी मनके सामर्थ्य बढ जातेसे दूर होते हैं, जीवनमें रस बाधा

हे और सब प्रकारसे बालेंद्र अनुभवमें आता है। तथा और देखिये—

अन्तः कृशुष्य मां हृदि मन इधो सहासति ।

( अथर्व. ७३६११ )

‘ हे श्री ! अपने हृदयमें मुझे रख, हम दोनोंके मन तथा ही परस्पर मिले रहे । ’ दोनोंके मनमें परस्पर प्रेम-भाव रहे, कभी भी विरोध उत्पन्न न हो । पत्नीके हृदयमें पति बालव्य बने और पतिके हृदयमें पत्नी रहे । इस तरह दोनों भक्त करणसे एक जैसे होकर रहें ।

### केश खिपोंका सौंदर्य है

खिपोंका सौंदर्य केशोंसे बढ़ता है। हस्तलिखे खिपोंको उचित है कि वे अपने केशोंका संरक्षण करें—

वेद्या नडा इय धर्षन्तां गर्ष्प्याः ते अस्तितः पतिः ।

( अथर्व. ६११११२ )

‘ तेरे सिरपर केश ऐसे बड़े जैसे पाय बढ़ती हैं और वे मान श्रेय न हों, काले ही रहें । ’ केशोंके अपने बालोंका संरक्षण करना चाहिये । इस कार्यके लिए बनसतिपां भी हैं । केशवर्षक-औषधिका वर्णन इस प्रकार है—

देवी देव्यामपि जाता पृथिव्यामस्योपधे ।

तां त्या नितलि केद्योभ्यो रंहणाय खनामसि ॥

( अथर्व. ६११३९११ )

‘ हे औषधि ! तू दिव्य गुणोंसे पुण पृथिवी पर उगती है, हे श्रीके प्रेम्णेशास्त्री औषधि ! केशोंको बलवान और सुख बनानेके लिये हम तुझे सोचते हैं । ’

इस औषधिके सबसे बाल बढ़ते हैं, दृढ़ते नहीं, लपटे और काले रहते हैं और सुगन्ध संचित हैं ।

इस औषधिका नाम पक्ष ‘ नितलि ’ दिया है। यह कानिती बनसति है, इसका शोध करना चाहिये । इससे बाल लाभ होते हैं, वे इस तृणमें स्पष्ट रीतिसे विकसे हैं । यदि हम बनसतिकी खोजकी जाए, तो बहुत जगहोंका लाभ हो सकता है ।

सूक्त ६१५९ में बन्धुवती, जीवका ये नाम भी आये हैं।

### रश्मिस्नान

केशोंको रश्मिस्नान करनेकी भी सलाह देर देया है। रश्मिस्नानका अर्थ सूर्य-किरणोंका स्नान है। सूर्यके किरणोंके स्नानसे अर्ध्व आरोग्य प्राप्त होता है, देखिये—

सूर्यस्य रश्मीन् अनु याः सञ्चरन्ति

मरीचीर्वा या अनुसञ्चरन्ति ॥ ( अ. ७३२८१५ )

‘ सूर्यकी किरणोंमें अनुकूलतासे संचार करनेवाली अथवा सूर्य-प्रकाशमें अनुकूलतासे घूमनेवाली शिवां हो । ’

‘ सूर्य आत्मा जगतः तस्सुधः च ’

( अ. १११५११; वा. प. ७१२२ )

‘ सूर्य स्यावर जंगमकी आत्मा है । ’ इतना सामर्थ्य सूर्यमें है, सूर्य-प्रकाशसे यह सामर्थ्य अनुभवंको प्राप्त होता है। जो श्री या पूण सूर्य-प्रकाशमें भ्रमण करते हैं, वे हम सामर्थ्यको प्राप्त करते हैं। शीघ्रानु श्रांतिमें यह रश्मिस्नान उपयोगी होता है। इसलिये शिवा अथवा रश्मिस्नान कर, शिपोंका कार्य संगत उत्पन्न करना है, यह राष्ट्राधार लिये सर्वत महत्वका कार्य है, इसलिये शिपोंकी सुरक्षा आवश्यक करनी चाहिये। हम विषयमें वेदका यह आदेश है—

कर्मिं पत्सनां इह रश्मि याजिन । ( अ. ७३२८१६ )

‘ कर्मत्व-शक्तिसे युक्त पुरीषी यहाँ हम जगत्में सुरक्षा कर । ’ पुरीषमें कर्मत्व-शक्ति बढे, ऐसी उसको मुनिष्ठा देनी चाहिये और उसकी सुरक्षा भी होनी चाहिये ।

### श्रीके पातिप्रत्यकी सुरक्षा

श्रीके पातिप्रत्यकी हर तरहसे सुरक्षा होनी चाहिये। राष्ट्रीय कार्योंमें यह कर्मण्य गुणवत्ता उत्कृष्टनीय है। इस मरकत्तमें वेदका कहना देना है—

देवा या पत्न्यां अयदन्त पूर्वं

भक्त अययस्तापना ये निपेदुः ।

भीमा जाया आग्रयस्यापनीता

दुर्धो दधाति वामे ज्योमन् ॥ ६ ॥

ये गर्मां अययन्ते जगद् यथापलुप्यन्ते ।

शिरा ये हृदयन्ते मिथो अग्रजगता हिनन्ति तान ॥ ७ ॥

( अ. ५१० )

‘ इस सन्ध्यामें श्रेष्ठो वहिके घोषणा करके बड़ा है, जो मत्त कृति तर करनेके लिये बैठने दे, वे भी वैप्राई कहने हैं कि, जानी की भगार्द गर्व श्री अस्नान होनी है, उगे पान वेहृत्पानमें भी रचना कटित है। जो गर्भे गिराये जने हैं, उहाँ कान्देराने प्राणी बागको प्राप्त होने हैं, उहाँ वीर भक्तमें ही लपडे धिरन हैं, भगार्द गर्व प्रकृतकी की उन सबका नाम करनी है । ’

दिली की श्री भगार्द जाय कर्मात् इस कीट वशि-

प्रत्यक्ष नाम किंवा जप, तो वह पातिव्रतका नाम सब राहूका पाठ करता है, ऐसा उर्वेति तथा ऋषियोंने कहा है। जिस राहूमें ऐसी स्त्रियोंको देना होती है, वहा गर्भपात होते हैं, प्राणियोंको हत्या होती है, आपसमें घोर लड़ते और भयना नाम करते हैं, इसलिये स्त्रियोंके कष्ट उक्त सबका नाम करते हैं। इसलिये स्त्रियोंके पातिव्रतकी सुरक्षाकी जानी चाहिये।

राहू अन्धर जो प्रजातन रहते हैं वे राहूमें सुरक्षित रहें, उनका नाम न हो, ऐसी यदि इच्छा हो, तो राहूमें स्त्रियोंके पारिव्रतका रक्षण अवश्य होना चाहिये। क्योंकि स्त्रियोंका पारिव्रत बहा सुरक्षित नहीं रहता, बहा अन्य बातें सुरक्षित रहेंगी ऐसा समझना भूल है।

### कामविकारसे अपना बचाव

इस अंगमें 'काम' देखा है कि जो अनेक पाप करता है। इस विकारसे ही जपमें स्त्रियोंका अपहरण होता रहा है। इस कामके विषयमें कहा है—

सपत्नहन् कामं कामं हविषा शिश्रामि ।

( अथर्व ११२११ )

' सपत्नेषां ज्ञान करेवाले बलवान कामको मैं बलसे शिक्षित करता हूँ ।' अर्थात् पत्नके त्यागनामसे ही कामको संयममें रखा जा सकता है। यह काम बड़ा मारक है। इससे बचनेवाला कवच ज्ञान है, इस विषयमें कहा है—

यत् ते काम शर्म श्रियस्तु

उद्भु प्रहस धर्म विततं

अनतिव्याभ्यं हृतम् । ( अथर्व ११२११६ )

' कामका एक उत्तम कवच है, जो लोगोंके चेहरेमें उत्तम रक्षा करता है। यह कवच पढ़नेपर मनुष्य ( अन्-मति-व्याप्यं ) नाशुर् प्रहासे बचा रहता है। यह कवच ( ब्रह्म धर्म ) ज्ञानकारी कवच है ।' इस कवच को पाकर ज्ञानों अपने ज्ञानसे अपना सुरक्षा करता हुआ कामके हमलोंसे अपना बचाव करता है और सुरक्षित रहता है।

अर्थात् ज्ञानसे सुरक्षित हुआ मनुष्य कामको अपने बलमें रमता है, भिन्नसे उसका बचाव होता है। इस कारण स्त्री-दुष्टोंको प्रथम भाषुमें उत्तम ज्ञान देना चाहिये, ताकि ज्ञानके कवचसे उनका काम भाँटें शत्रुओंसे उत्तम बचाव हो सके। ऐसे ज्ञान कवचको पढ़नेवाले पुत्र यदि राहूमें हों, तो स्त्रियोंके पारिव्रतका बचाव उत्तम रीतसे हो सकता है और जहाँ स्त्रियोंके पारिव्रतका बचाव होता है, वह राहू एक उत्तम व अज्ञ राहू बन सकता है।

### पत्नीके गुण

जिन शुभगुणोंके कारण पत्नी श्रेष्ठ समझी जाती है, वे शुभ गुण वे हैं—

मृदुः निमन्युः केवली प्रियवादिनी अनुमता ।

( अथर्व ११२५१४ )

१. मृदुः— स्त्री शांत स्वभाववाली हो।

२. निमन्युः— स्त्री क्रोध करनेवाली न हो।

३. प्रियवादिनी— स्त्री प्रिय बोधनेवाली हो।

४. अनुमता— स्त्री पतिके अनुकूल कार्य करनेवाली हो।

५. केवली— स्त्री केवल अपने पतिकी ही व्यवहार करनेवाली हो।

६. वरा— पतिके वशमें रहनेवाली स्त्री हो।

( अथर्व ११२५१६ )

७. चित्तं उपायसि— पतिके चित्तके साथ अपना चित्त लगावेवाली स्त्री हो। ( अथर्व ११२५१७ )

८. कर्तौ अस्तः— पति जो कर्म करे, उसमें सहायता देनेवाली स्त्री हो। ( अथर्व ११२५१८ )

९. अकतुः— पतिके विरुद्ध कोई कर्म करनेवाली स्त्री न हो। ( अथर्व ११२५१९ )

इन शुभगुणोंसे युक्त धर्मपत्नी हो। गृहस्थाध्यायको उत्तम रीतसे पढ़ावनी बननेके लिये स्त्रीके अन्धर ऐसे शुभ गुण होने चाहिये। स्त्री और पुरुष एक विषयवाले हों तभी यह गृह-स्थाध्याय सुखदायक हो सकता है। वेदने इस गृहस्थाध्यायको सुसूत्र करने लिये कितना उत्तम उपदेश दिया है।

### घोर पुत्रकी उत्पत्ति

पुत्रका नाम वेदमें 'घोर' तथा कन्याका नाम 'धीरा' मयवा 'सुपीरा' है। पुत्र बैता हो, इस विषयमें पृथ्वीदे-वा यह कथन व्याजमें आने योग्य है—

जिष्णु रथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य  
घीरो जायताम् ( वा ३ १११९ )

' जितपतीष्ठ, रथमें बैठनेवाला, सभामें सम्मान पाने योग्य, तपन बैता कार्यकर्ता पुत्र इस यजमानके हो। इस संक्रमें गीरोपुत्र चाहिये, यह आकांक्षा स्पष्ट है। इनी इच्छाको इस रीतसे गीर स्पष्ट रीतसे प्रकट किया है—

या ते योनिं गर्भं यतु पुमान् वाप इवेपुचिम् ।  
आ घीरोऽञ्ज जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ॥ २ ॥

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम् ।  
भयासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यात् ॥ ३ ॥  
विन्दस्य त्वं पुत्रं नारि यः तुभ्यं शं अस्तु  
शं उ तस्मै त्वं भव ॥ ५ ॥ ( अथर्व ३/२२ )

' हे स्त्री ! जैसे तरकशमें माता रहता है, वैसे ही पुत्र तेरे गर्भमें रहे । तैसा पुत्र वीर बने और वह दुर्गमें मातमें उत्पन्न हो, अर्थात् उसकी पाठ उत्तम रीतिसे हो और पदचाल उसका जन्म हो । हे स्त्री ! पुत्रको उत्पन्न कर और उस पुत्रके पदचाल भी तुझे पुत्र ही हो । इस तरह तू अनेक पुत्रोंकी माता बन । तुझसे जन्मे हुए पुत्र हों और भविष्यमें होनेवाले भी पुत्र ही हों । हे स्त्री ! इस तरह तू पुत्रको प्राप्त हो, यह पुत्र तुझे सुख देवे और तू उस पुत्रको सुख देनेवाली बन । '

इस तरह पुत्र होनेकी इच्छा वेदमें बतलाई है । घरमें पुत्र होना चाहिये, जिससे कुल चलता रहे और कुलकी वृद्धि होती रहे ।

यहाँ 'याण इय ह्युधि' के पद भवनीय हैं । तरकशमें बाण रहता है, वह बाण शत्रुको मारनेके लिये ही होता है । उसी प्रकार यह पुत्र दुष्टोंको बर्बादनेवाला बने, शूरवीर बने यह इसका तात्पर्य है । 'वीर' का अर्थ भी ऐसा ही धरता-दर्शक है । 'वीरयति अग्निभान्' दुष्टोंको जो दूर करता है उसको वीर कहते हैं । पुत्र ऐसा वीर दूर प्रभावी बली हो, यह वेदका कथना है ।

### गर्भक्षोपका निवारण

स्त्रीमें गर्भ रहता है, तब नागप्रकारके दोष उस गर्भा-घाघमें होते हैं, उन सब दोषोंको दूर करना चाहिये और निर्दोष पुत्र उत्पन्न करना चाहिये, इस विषयमें कहा है—

यः क्षियं मृतवत्सां  
ष्वतोषां घृणोति अस्याः तं नाशय ॥ १९ ॥  
दे अन्नः जातान् मारयन्ति स्वातिका अनुचरोते ॥ १९ ॥  
अप्रजास्यं मार्तवत्सं रोदं अर्घं आययं प्रतिमुञ्च ॥ २६ ॥  
( अथर्व ८/६ )

' जो स्त्रीको मारनेवाले बालकोंकी माता बनाता है, अर्थात् जिस कृमिके कारण स्त्रीके पुत्र जन्मते ही मर जाते हैं, उन रोग कृमियोंको दूर करो । संज्ञान न होगा, गर्भमें ही संज्ञानका मार आना अथवा उत्पन्न होते ही मार जाना आदि दोष विनशे होते हैं, वे रोग या वे रोगके कृमि स्त्रीके प्रभृति-पूरसे दूर हो जाय । अर्थात् वे रोग कृमि स्त्रीके गर्भाशयमें न जाय तथा प्रभृतिपूरमें भी न रहे । '

भयात् स्त्रीको इन रोगकृमिसे कोई हानि न पहुँचे और हर स्त्री सुसन्तानवाली हो और वह स्वस्थान भी उत्तम बलवाली धीर वीर और दूर बने । इय विषयमें और भी अधिक विघात देवने कहा है—

शर्मो अश्वत्थं आरूढः तत्र पुंसयम दृत्वम् ।  
तद् धे पुत्रस्य घेदनं तद् स्त्रीषु आमरामसि ॥ १ ॥  
पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियां अनु पिच्यते ।  
तद् धे पुत्रस्य घेदनं तत् प्रजापतिः अत्रवीत् ॥ २ ॥  
स्त्रीपुयमन्यत्र दधत् पुमांस उ दधत् इह ॥ ३ ॥  
( अ. २/११ )

' शर्मा (सैवर)के वृक्षपर उगे हुए अश्वत्थ (पीपल) को औषधिरूपमें लेन करनेसे पुत्र उत्पन्न होता है, पुत्र प्राप्तिका यह उत्तम साधन है, यह औषध स्त्रीको देनी चाहिये । दुरणका बीज स्त्रीमें सींचा जाता है, उससे पुत्रकी प्राप्ति होती है, ऐसा प्रजापतिने कहा है । यद्वा हमारे घरमें पुत्र ही उत्पन्न हो, लड़कियाँ उत्पन्न होनेका कार्य दूसरेके घरमें हो । '

शर्मा वृक्षपर उगे हुए अश्वत्थ ( पीपल ) वृक्षका पत्र भग भर्षात् जट, झिलका, पत्ते, गल, पूट आदिका चूर्ण स्त्रीको दिया जाय, तो पुत्र न होनेवाली स्त्रीके भी पुत्र उत्पन्न होते हैं । यह पुत्र उत्पन्न करनेवाली औषध कहा कही है । अथवा स्त्री पर इस औषधका प्रयोग करने देवना योग्य है ।

इस मंत्रका दूसरा भी एक अर्थ है । ( शर्मा ) शान्त और संयमशील स्त्रीका सम्बन्ध ( अश्व-रथ ) घोड़े जैसी शीघ्रवात् पुष्पके साथ हो तो उस स्त्रीके पुरण सफल होती है । यहाँ स्त्री ( शर्मा ) भर्षात् संयमशील हो और पुरण ( अश्व-रथ ) घोड़ेके समान शीघ्रवात् हो ऐसा कहा है । स्त्री-पुरणको यह बात ध्यानमें रखने योग्य है । म्यायानादि करके पुरण घोड़ेके समान शीघ्रवात् बने, तथा स्त्री संयमशील बने । इस-तर पुत्र ही उन स्त्रीके सम्बन्धमें होते हैं ।

### सूर्य-चन्द्र जैसे बालक

घरमें बालक सूर्य अथवा चन्द्र जैसे हो । यदिनि माताका यह विषयकी धर है । स्वमें सूर्य और चन्द्र जैसे पुत्र हों और वे घरमें खेलते रहें, ऐसी इच्छा देवने प्रकटकी है, देखिये—

सूर्यां परतो मायर्षतां  
शिशुः शीघ्रतो परि यातोऽर्षयम् ।

## विश्वान्यो भुयना पिचये

ऋतोरन्यो विद्मधर्जापसे नय. ॥ ( अ. ७।८१-१ )

' ये दो मालक सूर्य और चन्द्र खेलेते हैं और शक्तिसे भागे पीछे चलते रहते हैं और वे अग्रण करते हुए समुद्र-तक पहुँचते हैं । इनमेंसे एक सब भुवनोंको प्रकाशित करता है और दूसरा ऋतुओंको बनाता हुआ स्वयं भी नया नया बनना जाता है ।

अर्थात् इन दो बालकोंमें एक संपूर्ण जगत्को प्रकाशित करता है और दूसरा ऋतुओंका निर्माण करता है । ऐसे सूर्य चन्द्र जैसे पुत्र घरपरामे उतरना होने चाहिये । ऐसी इच्छा पति और पत्नी अपने मनमें धारण करे, यह बोध यहाँ मिलता है ।

## मेखला-बंधन

कमरको बलनेके लिये कमरबध बाधा जाता है । कमरको बलनेसे शक्ति बढ़ती है और टीली कमर रखनेसे वीर्यापन उत्पन्न होता है । इसलिये वैदिक-वेदिकोंमें ' मेखला-बंधन ' का विधान है । कोई पुत्र बीलीकमरवाला न हो, सब कटिबद्ध हो कर तैयार हो और वीरता दिखानेके लिये तैयार रहे, इसलिये कहा है—

वीरघ्नी भव मेखले । ( अ. ६।१३१२ )

मेखला कमर पर बांधनेसे शत्रुसे वीरोंको मारनेकी शक्ति शरीरमें आ जाती है । तथा और देखिये—

यां त्वा पूर्वं भूतवृत्तः श्रपय, परिषेधिते ।

सा त्व परिष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ॥

( अथर्व. ६।१३१५ )

' हे मेखले ! तिस तुझको भूतकालके पराजय करनेवाले ऋषियोंने बाधा था, वह तू मेरी दीर्घायुके लिये मेरे शरीर पर लिपटी रह । '

समुप्य मेखलाबधनेसे दीर्घायु प्राप्त करके प्राचीन विद्वान् ऋषियोंकी तरह उच्चम प्रभावी आचरणको अपना सकता है ।

मेखलाबधन कटिबद्धता बघाता है । हरएक कार्य करनेके लिये कटिबद्धता रहनी चाहिये, मिससे उसाहपूर्वक कार्य हो सके । वीरता बढानेके लिये मेखलाबंधन अत्यंत आवश्यक है । इसलिये कहा है—

श्रयणा तपसा धमेण मेखलया सिन्धुभि

( अ. ६।१३१६ )

' ज्ञान, योग-उपना सहज करनेकी शक्ति, परिश्रम कर-

नेका सामर्थ्य और कटिबद्धता इन सबसे मैं युक्त हूँ । ' इतने युक्त तरुणोंमें होने चाहिये । ज्ञान और विज्ञान मनुष्यके लिए अत्यंत आवश्यक है, ज्ञान भर शान्तिके लिये और विज्ञान वैदिक सुन्योपभोगोंके लिये । शक्ति-उप्य, शानि-लाग, जप-पराजय इन इहोका सहज करके भी अपना कर्तव्य करना चाहिये, श्रम करनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये और कमर कसनी चाहिये । यह सब तरुणोंको तैयार रहनेकी सूचना है । कुछ भी हो सदा कर्तव्य करनेके लिये सिद्ध रहना चाहिये । यह इसका तात्पर्य है ।

गृहस्थीकी मपना-भपना घर बना कर उसमें रहना चाहिये । घर कैसा हो इस विषयका विचार अथर्ववेद काण्ड ३ सूक्त १२ में किया है । इस सूक्तमें घरका वर्णन करनेवाले ये पद हैं, जो घरका स्यायोग्य वर्णन कर रहे हैं, इसलिये इन पदोंका ही यहाँ विचार करते हैं—

१ अश्वत्थती— ( शाला )— अपने घरमें घोड़े हो । बाहर जाने आनेके लिये घोड़े ही उपयोगी है । ( मंत्र २ )

२ गोमती— घरमें गाँवें हो । गौका दूध पुरिका उत्तम साधन है । गौ और बैल ये दोनों उपयोगी पशु हैं । गाव दूध देती है और बैल खेती करके धान्य देता है । ( मंत्र २ )

३ पयस्वती— घरमें भरपूर दूध हो ।

४ पृतपती— घरमें भरपूर पी हो ।

५ पृत उक्षमाणा— घर भी देनेवाला हो । ( मंत्र १ )

६ ऊर्जस्यती— घरमें विपुल अन्न हो । ( मंत्र १ )

७ धरणी, ८ पूतिचान्द्या— घरमें पर्याप्त धान्य हो ।

९ परिश्रुतः कुम्भ — घरमें गोधे सहजसे मरा मरा हो । ( मंत्र ० )

१० दृष्ण कलदाः— दहीसे भी कलश घरमें हो । ( मंत्र ७ )

११ पृतस्य, कुम्भ— पीते मरा हुआ पशु घरमें हो । ( मंत्र ८ )

१२ अयहमरा यक्ष्मनाशिली. आर. — नितेय और रोगोंको दूर करनेवाला जल घरमें हो । ( मंत्र ९ )

घरमें ये पदार्थ रहने चाहिये । जिससे घरके लोग इष्ट-पुष्ट तथा मीरोग रह सकें । आजकल मापका पी और दूध मिलना मुश्किल हो गया है । इससे पोषक स्वाद बहुत नहीं मिल पा रही । गावका दूध, बही, छाछ, मक्खन, तथा पीते घरमें नहीं दधे भरे होतेये, वहाँ बाह्र पाव भर भी नहीं



मिल पा रहा है। इस समस्याका केवल एक ही हल है कि लोग अपना प्लान गोरक्ष करनेके कार्यमें लगावे।

### अविधि-संस्कार

वेदोंमें विधान है कि अविधि संस्कार भी की जाते हैं करना चाहिये—

पूर्णं नारि प्र भर कुम्भं पतं  
पृतस्य धारां अमृतेन संभृताम् ।  
इमां पातन् अमृतेना समद्भि  
इष्टापूर्तं अभि रक्षस्येनाम् ॥ ( म. ३।१।२।८ )

‘ हे गृहपती ! अविधियोंको परोसनेके लिये बीजा पटा ले बालो, और अविधियोंको जितना चाहिये उतना दो, कंगूही न करो । ’ इस प्रकारका दान घरकी सोमा बढाता है । घरका मद्दह सुरक्षित रहता है ।

घरमें अविधि जाये तो उस विद्वान् अविधिका संस्कार करना चाहिये । गृहस्थीका यह कर्त्तव्य ही है, विद्वान् पुरुष संस्कार्य करनेके लिये, संदुपदेश करनेके लिये, देशोद्धार करनेके लिये भ्रमण करते हैं । उनका आदर संस्कार, खान-पान मदिक्षा प्रमथ गृहस्थी पुरुषोंको ही करना चाहिये ।

गृहस्थियोंके भाग्यसे ही वे उपदेशक जीवित रह सकते हैं और राष्ट्रे उद्धारका कार्य कर सकते हैं । यदि गृहस्थी लोगोंने उनको खान पान तथा अन्य प्रकारकी सहायता न दी, तो उनका गुजारा किस तरह हो सकता है, और यदि उनका गुजारा ठीक तरह नहीं हुआ, तो वे अपना कार्य भी किस तरह कर सकते हैं ? अतः इसका भार गृहस्थियोंको ही सदन करना चाहिये ।

गृहस्थीको ही इन राष्ट्र संघर्षोंका पालन करना चाहिये । नहीं तो वे उपदेशक कहा जायें । इस कारण गृहस्थ्यवर पद भार है ।

### गौत्रोंका संरक्षण

घरमें गौत्रोंका संरक्षण होता चाहिये । ‘ तीर्थ ’ घरकी सोमा बढाती हैं और उनका उपयोग भी घरवालोंको है—

गावः ! सूर्यं कुरुं चित् मेवयथ ।  
अधीरं चित् सुप्रतीकं कुरुथ । ( म. ३।२।३।९ )

‘ हे गौत्रे ! तुम कुरु मनुष्योंको हृष्टपुष्ट बना देती हो और निस्तेजको सतेज बनाती हो । ’ यह गौत्रोंका गुण है जो घरके मजदूरोंके लिये बड़ा सहायक है ।

२ ( अथर्व. भा. ३ गृ. द्विती )

( गावः ) सूर्यवते कशन्तीः ।  
सुप्रपाणे शुद्धा अथः पिपन्ति । ( म. ३।२।३।७ )

‘ तीर्थें उरुम वास्य तावें और उरुम अहस्वयानमें शुद्ध जल पीयें । ’ इस प्रकार गौत्रोंका पालन घर-घरमें होना चाहिये । आज तीर्थें मारी जाती हैं । वेदमें गौ, बैल और पर्वतको ‘ वास्य ’ अर्थात् वास्य कहा है । जिसका वध नहीं होना चाहिये उसका ही वध हो रहा है, इससे हमारे आरोग्यकी हानि इतनी हो रही है कि जो कितने प्रकार भी दूर नहीं हो सकती ।

अतः, गोरालन, गृहरक्षण आदि बहुत उपदेश इसके पश्चात् हैं । वे सब मननीय हैं । अथ यात भारती है अज्ञ-रहित होनेकी, वह सब देखिये—

### अज्ञरहित होना

अज्ञरहित होनेके विषयमें वेदमें बड़ा उच्यत उपदेश है । यह देखिये—

अनुष्णा अस्मिन् अनृणाः परस्मिन्  
मृतीये लोके अनुष्णाः स्पाम ।  
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः  
सर्वां पयो अनुष्णाः जा क्षियेम ॥

( म. ३।१।१।३ )

‘ इस लोकमें हम अज्ञरहित हो, परलोकमें अज्ञरहित होकर रहें, मृतीय लोकमें भी हम अज्ञरहित होकर रहें, जो देवयान और पितृयान मार्ग हैं उनसे हम अज्ञरहित होकर जायें । ’

इस तरह उरुण होनेके संकथमें कहा है । यह विषय प्रत्येक गृहस्थीको ध्यानमें धारण करने योग्य है । अज्ञरहित होना यह प्रत्येक गृहस्थीके लिये आवश्यक है । क्योंकि क्षणमें रहनेसे अनेक आपत्तियोंका सामना करना पड़ता है । इसलिये अज्ञरहित होना हरएकके लिये उचित है ।

### विपत्तिको दटना

अतः एक विपत्ति है इस तरहकी अनेक विपत्तियां इस विश्वमें हैं । हरएक विपत्तिको दूर करना अत्यावश्यक है । इन विपत्तियोंको हटानेके विषयमें यह मंत्र अर्थात् विचार करने योग्य है—

द्वौष्वान्यं दौर्जावित्यं रक्षो अथ्यं अरुष्यः ।  
दुर्षाम्नीः सर्वा दुर्घाणः ता अस्मप्राशयामसि ॥

( म. ७।२।३।१ )

‘दुष्ट स्वप्न, दुःखमय जीवन, हिंसकोंका उपद्रव, विकासमें होनेवाली बाधाएँ, विघ्नदशा, बुरे सम्बन्धोंके स्वभाव, सब प्रकारके दुष्ट भाग्य करनेका अभ्यास ये सब विपत्तियाँ हमसे दूर हों।’

ये सब विपत्तियाँ हैं। इनसे बचते हैं, इसलिये इन विपत्तियोंको दूर करना चाहिये और भाग्य प्राप्त करना चाहिये।

तेन मा भगिनं वृषु

अथ द्रान्स्वरातयः । ( अ ६।१२१।३ )

‘मुझे भाग्य प्राप्त कर, सब विपत्तियाँ मुझसे दूर हों।’ यह इच्छा हर एक गृहस्थीमें रहनी चाहिये। और इसको लिये उसका प्रयत्न होने चाहिये। अपनी सुरक्षा करनी चाहिये। गृहस्थीके विचार हों, कि—

यो नो द्वेष्टि अधरः सस्पदीष्ट  
यं उ द्विष्यः तं उ प्राणो जहातु ॥ ( अ ७।१।१ )

‘जो भङ्गला हम सबसे द्वेष करता है वह नीचे गिर जाय, तथा जिस मङ्गलेसे हम सब द्वेष करते हैं उसके भाग उसको छोड़कर चले जाय।’ अर्थात् वह मर जाय।

अपनी सुरक्षा करनेके लिये जो यत्न होना चाहिये उसमें बहुत मतवालोंकी सुरक्षा हो और दुष्टोंकी वास्तुमति रहे, ऐसा यत्न करना चाहिये।

इसप्रकार गृहस्थाश्रमके उपदेश-परक मंत्र इस खण्डमें आये हैं। इनका संक्षिप्त सा परिषय इस सूक्तिकांमें देनेका हमने प्रयत्न किया। इस खण्डके सभी सूक्त मतदीप व आचरणीय हैं।

श्रीवाद् दामोदर सातवलेकर  
सम्पादक- स्वाध्याय मण्डल



अथ षष्ठेऽङ्के

भाग तीसरा

# गृहस्थाश्रम

पश्चिन्न गृहस्थाश्रम

कांड ६, सूक्त १२२

(मंत्रिः- मयुः । देवता- विश्वकर्मा ।)

ॐ एवं मागं परि ददामि विद्वान्विष्वकर्मन्प्रथमजाः क्षुण्णस्य ।

असाभिर्दुत्तं जुरसः परस्तादक्लिष्टं तन्तुमनु सं तरंम

॥ १ ॥

ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति येषां दुत्तं पित्र्यभार्यनेन ।

अपन्वेके ददंतः प्रयच्छन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग एव

॥ २ ॥

अर्थ— हे ( विश्वकर्मान् ) हे समस्त गणोंके रक्षकिया ! तू ( मृतस्य प्रथमजाः ) स्वयं नियमका पहिला प्रयत्नक है, इस भावको ( विद्वान् ) जगता हुआ मैं ( एवं मागं परि ददामि ) इस मन्त्रे भागको मेरे लिये पूरी तरहसे देता हूँ । जुरसः परस्तात् अस्माभिः दुत्तं अक्लिष्टं तन्तुं ) कुदविधे पश्चात् भी अपने हास दिये हुए पिण्डेदरहित पशुके धूलसे इन ( अनु संतरंम ) विश्ववर्षक अनुकूलताके साथ दुःखसे पार हो जायें ॥ १ ॥

( येषां आर्यनेन पित्र्यं दुत्तं ) तिनके मानते पितृवर्षको देव अणमाय चुक आज है, ( एके ततं तन्तुं अनु तरन्ति ) देखे कई लोग इस फेले हुए बज्रवृक्षके अनुकूल रहकर दुःखसे पार हो जाते हैं । ( एके अपन्तु ) कई वर्षोंके संग्रहणसे रहित होकर भी ( दुत्तं ) दान देते हैं, वे ( प्रयच्छन्तः च इत् दातुं शिक्षान् ) दान देते हुए यदि देतेके लिये समर्थ हुए, तो ( सः स्वर्गं एव ) वह स्वर्ग ही है ॥ २ ॥

भावार्थ— हे जगत्के रक्षकिया प्रभो ! तू ही सत्यधर्मका पहिला प्रयत्नक है, यह मैं जानता हूँ, इसलिये मैं अपने भागको मेरे लिये समर्पित करता हूँ । इस समर्पणसे तो भविष्यक पशु बनेगा, उसकी सहायतासे मैं दुःखके पार हो जाऊँ ॥ १ ॥

इस पशुके भावयसे ही कई लोग दुःखसे पार हुए हैं । तिनका कुछ पैसक क्षण सुकाना होता है, वे संघर्षसे हीन होनेपर भी और कठिन समय आनेपर भी उस अणको वापस कर देते हैं । ऐसे लोग जहाँ होते हैं वहाँ स्वर्गधाम हो जाता है ॥ २ ॥

अन्वारभेथामनुसंरभेथामेतं लोकं श्रद्धधानाः सचन्ते ।

यद्वां पृक्तं परिविष्टमघौ तस्य गुप्तये दंपती सं श्रयेथाम् ॥ ३ ॥

यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तंमुन्वारोहामि तपसा सप्योनिः ।

उर्बहुता अग्रे जरसः परस्वार्त्तुतीपि नाकं सघमादं मदेम ॥ ४ ॥

शुद्धाः पूता योपितो यज्ञिषा इमा ब्रह्मणा हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि ।

यत्काम इदमभिपिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुतान्तस ददातु तन्मै ॥ ५ ॥

अर्थ— हे (दम्पती) श्रीपुरुषो ! तुम दोनों (अनु आरभेथां) परस्पर अनुकूल रहकर शुभ कार्यका प्रारंभ करो तथा (अनुसंरभेथां) परस्पर अनुकूलताके साथ प्रयत्न करो । (एतं लोकं श्रद्धधानाः सचन्ते) इस गृहस्थाश्रमरूपी लोकको श्रद्धा धारण करनेवाले ही प्राप्त होते हैं । (यत् अग्नी परिविष्टं यां पृक्तं) जो अग्निद्वारा सिद्ध हुआ हुआ तुम दोनोंका परिपक्व फल हो (तस्य गुप्तये सश्रयेथां) उसकी रक्षाके लिये तुम परस्पर एक दूसरेकी सहायता करो ॥ ३ ॥

(तपसा यन्तं बृहन्तं यज्ञं) तपसे चलनेवाले बड़े यज्ञकी वेदिपर (सप्योनिः मनसा अनु आरोहामि) समान स्थानमें उषस्य हुआ मैं अनुकूलताके साथ मनसे चढता हूँ । हे अग्ने ! (जरसः परस्तात् उपहृताः) इनापिके पहिले क्लृपिये हुए हम (तृतीपि नाके सघमादं मदेम) पृथीय स्थान बर्षाद स्वर्ग भूमिमें साथ साथ रहकर सुखको प्राप्त करें ॥ ४ ॥

(इमाः यज्ञिषा शुद्धाः पूताः योपिताः) इन पत्न्य, शुद्ध और पवित्र जिनको मैं (ब्राह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि) ज्ञानियोकें हाथोंमें पृथक् पृथक् प्रदान करता हूँ । (यद् यत्कामः इदं वः अभिपिञ्चामि) मैं जिस काम-वाले इस रीतिसे तुमको अभिपिक्त करता हूँ, (सः महत्यान् इन्द्राः) यह बड़ा प्रभु (मे तत् ददातु) मुझे वह देवे ॥ ५ ॥

भाषार्थ— हे श्रीपुरुषो ! तुम दोनों इस गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होकर शुभ कार्य करते रहो और उचितके लिये प्रयत्न करो । इस गृहस्थाश्रममें धर्माचार रीति ही मुख्यपूर्वक रहते हैं । जो इसमें परिपक्व हुआ हो और जो पूर्ण हुआ हो, उसकी रक्षा करनेके लिये तुम दोनों प्रयत्न करो ॥ ३ ॥

जो यज्ञ तपसे होता है, उसमें मन रखकर उसको पूर्ण करना योग्य है । इस प्रकार शुभापेक्षक कर्म करनेसे उच्च स्वर्गाश्रम प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

वे पवित्र और शुद्ध धन्याय हैं, इनको ज्ञानियोकें हाथमें पृथक् पृथक् बर्षण करता हूँ । जिस कामवाले मैं यह यज्ञ करता हूँ वह मेरी कामना प्रचल हो ॥ ५ ॥

## पवित्र गृहस्थाश्रम ।

गृहस्थाश्रमको अत्यन्त पवित्र बनाकर उससे बर्षण मास करनेके विषयमें इस सूक्तमें बहुतसे अनमोल उपदेश हैं—

(१) सपूर्ण अर्घका निर्माता प्रभु ही सत्कर्मिणोंका पहिला अवतंक है, ऐसा मानकर उसके लिये शुभ कर्म करना, उससे लिये यज्ञ करना और जो कुछ करना हो वह उसकी भाविके लिये ही करना चाहिये । इस प्रकारके तुम कर्मोंके करनेके प्रयत्न न करना होता है ।

(२) इस प्रकारके पत्रसे ही मनुष्यका बेधवार हो सकता है, दूसरों कोई भार नहीं है ।

(३) जैसे अपना किया हुआ कर्त्तव्य अदा करना चाहिये, उसी प्रकार पित्रपितामहोंका किया हुआ कर्त्तव्य भी उदारता चाहिये । जहाँ लोग कठिनाईकी अवस्थामें भी इस प्रकार जग याचक कर देते हैं और उगते नहीं, वही देव स्वर्ग प्राप्त है ।

( ४ ) गृहस्थाश्रममें कीचुरर मिलकर रहें और सदा शुभ कर्म करें, क्योंकि शुभ कर्मोंसे ही श्रेष्ठ लोक प्राप्त होते हैं ।

( ५ ) जो परिपूर्ण हुआ है, उसको रक्षा करनी चाहिये और उसको देखकर अन्यकी परिपक्वताको प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये ।

( ६ ) सब यज्ञ तपसे ही होते हैं । इस प्रकारके यज्ञ करनेका विचार मनमें सदा करना चाहिये ।

( ७ ) यदि कोई वृद्धावस्थातक इस प्रकारके शुभ कर्म नकरा रहे, तो उस उच्चम स्वर्गपामका भाग्य प्राप्त हो

सकता है ।

( ८ ) गृहस्थाश्रम करता हो तो पवित्र और शुद्ध चीजें धार्य करना चाहिये ।

( ९ ) स्त्रीको भी शानी मनुष्यके हाथमें समर्पित करना चाहिये । इस प्रकार पवित्र स्त्री और शानी पुरुषसे जो गृहस्थाश्रम बनता है, वह विशेष सुख देनेवाला होता है ।

( १० ) ऐसे उच्चम गृहस्थाश्रममें रहनेवाला मनुष्य ही अपनी कामनाओंको पूराकर मार्गद प्राप्त कर सकता है । प्रभु उसीको सिद्धि देता है ।

## कुलधू-सूक्त

### कां. १, सूक्त १४,

( ऋषि - श्वयङ्कित । देवता - वरुणे यमो वा । )

भर्गमस्या वर्च आद्रिष्यधि ब्रुधादिष स्रजम् । महावृंभ इव पर्वतो ज्योक् पितृभ्यास्ताम् ॥ १ ॥  
 एषा तं राजन्कन्या ब्रुधूर्नि धूयतां यम । सा मातुर्विष्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः ॥ २ ॥  
 एषा तं कुलपरा राजन्तामुं ते परि ददासि । ज्योक् पितृभ्यासाता आ शीर्ष्णाः समोप्यात् ॥ ३ ॥

अर्थ— ( ब्रुधात् अधि स्रजं इव ) बृहत्के पूर्वसे जिस प्रकार माला बनाकर धारण करते हैं, उसी प्रकार ( अस्यः भर्गो वर्चः आद्रिषि ) इस कन्याके ऐश्वर्य और तेजको मैं धारण करता हू । ( महावृंभः पर्वतः इव ) बड़े पयोवाले पर्वतके समान यह कन्या ( पितृषु ज्योक् आस्तां ) मातापिताके घर बहुत समयतक स्थित रहे ॥ १ ॥

हे ( यम राजन् ) नियमपालन करनेवाले स्वामिन् ! ( एषा कन्या ) यह कन्या ( ते बधूः ) तेरी वधू होकर ( निधूयतां ) स्पन्दन करे । ( अथो ) अथवा ( सा मातुः भ्रातुः ) यह माताके, भाईके ( अथो पितुः ) किंवा पिताके ( गृहे दप्यताम् ) घरमें रहे ॥ २ ॥

हे ( राजन् ) हे स्वामिन् ! ( एषा ) यह कन्या ( ते कुल-परा ) तेरे कुलका पालन करनेवाली है । ( तां ) उसको हम ( उ ते परिददासि ) तेरे लिये देते हैं । ( आ शीर्ष्णाः समोप्यात् ) यह अथवा परसे सिरतक न सजानी जावे ( ज्योक् ) तबतक यह कन्या ( पितृषु आस्तां ) मातापिताके घरमें निवास करे ॥ ३ ॥

भावार्थ— बृहत्से मूल और पत्ते निकाल कर जैसे माला बनाकर लोग पहनते हैं, उसी प्रकार इस कन्याका सौंदर्य और तेज में स्वीकार करता हू और उससे अपने भागको सजाता हू । जिस प्रकार बड़ी जड़वाला पर्वत अपने ही आधारपर स्थिर रहता है, उस प्रकार कन्या भी अपने मातापिताओंके घरमें निडर होकर बहुत समयतक सुरक्षित रहे ॥ १ ॥

हे नियमपालक पति ! यह हमारी कन्या तेरी वधू होकर नियमपूर्वक स्पन्दन करे । जिस समय वह तेरे घर न रहे उस समय वह सिखा, माता अथवा भाईके घर रहे, परंतु किसी मनुष्यके घर जाकर न रहे ॥ २ ॥

हे पति ! यह हमारी कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है, इसको तेरे लिये हम समर्पित करते हैं । जबतक इसका सिर सजानेका समय न भाये तबतक यह मातापिताके घरमें निवास करे ॥ ३ ॥

असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गर्गस्य च । अन्तुःकोशमिव जामयोऽपि नक्षामि ते भगव ॥ ४ ॥

अर्थ— ( असितस्य ) यधन रहित, ( कश्यपस्य ) द्रष्टा ( च ) और ( गर्गस्य ) प्राण साधन करनेवाले ( ते ) तुम ( ब्रह्मणा ) ज्ञानीके साथ में [ जामयः अंतः कोश इव ] शिष्या भवती पिताको जैसे गोपनी है उसी प्रकार [ ते भगं अपि नक्षामि ] तेरे ऐश्वर्यको वापसता हू ॥ ४ ॥

भावार्थ— यधनरहित, द्रष्टा और माण्डोको स्वाधीन करनेवाले तेरे ज्ञानके साथ इस कन्याके भाग्यका सम्बन्ध में करता हू । जिस प्रकार शिष्य अपने जेवर सङ्कलमें सुरक्षित रखती हैं, उसी प्रकार इसका भाग्य सुरक्षित रहे ॥ ४ ॥

## कुलवधू-सूक्त

### पहला प्रस्ताव ।

इस सूक्तमें चार मंत्र हैं । पहले मंत्रमें भावी पतिको प्रस्तावरूप भाषण है । पति कन्याके रूपको और तेजको पसंद करता है और उस तेजको स्वीकार करना चाहता है । इस विषयमें मन्त्रका रूपक अतिस्पष्ट है—

‘ वृक्षवनस्पतियोसे पते पूरु और मंत्रिषा लेकर लोग माला बनाते हैं, और उस मालाके गलेमें धारण करते हैं । उसी प्रकार यह कन्या सुगन्धित फूलोंकी वैकुण्ठ है, इसके फूल और पत्ते ( सुसङ्कमल और हलपत्रम् ) अथवा इसका सौंदर्य और तेज लेकर उससे मैं सुशोभित होना चाहता हू । अर्थात् मैं इस कन्याके साथ गृहस्थाधम करनेकी इच्छा करता हू । जैसे पर्वत अपने विद्याल छायादार रहता है, उसी प्रकार यह कन्या अपने मातापिताओंके सुख आश्रय पर रहे । अर्थात् मातापिताओंके सुशिक्षा पाकर यह कन्या सुयोग्य बने और पश्चात् मेरे ( पतिके ) पर आगि । ’

यह भाव प्रथम मंत्रका है । इसमें भावी पतिको प्रथम मन्त्राव है । भावी पति कन्याका सौंदर्य और तेज पसंद करता है और उसके साथ विवाह करनेकी इच्छा प्रकट करता करता है । अर्थात् भावी पति कन्याके माता पिताके पास जाकर कन्याकी याचना करता है । और साथ यह भी कहता है कि, कन्या कुछ सम्पत्तिक मातापिताके पर ही रहे अर्थात् योग्य समय आनेतक कन्या मातापिताके पर रहे, तबपश्चात् मेरे घर आये । योग्य समयको मर्यादा आगे द्वितीय मंत्रमें कही जायगी ।

इस मंत्रके विचारसे पता चलता है कि पुण्य भवती सह-धर्मचारिणीके पसंद करता है । पुरुर अपनी रुचिके अनुसार कन्याको चुनता है और अपनी इच्छा कन्याके मातापिताके

सामने प्रकट करता है । कन्याके मातापिता इस प्रस्तावका विचार करते हैं और भावी पतिको योग्य उत्तर देते हैं ।

इस सूक्तसे यह स्पष्ट नहीं होता कि कन्याको भी अपने पतिके विषयमें पसंदगी नापसंदगीका विचार प्रदर्शित करने का अधिकार है वा नहीं । प्रस्ताव होनेपर भी कन्याका मातापिताके घरमें देरतक निवास करना यह [ पितृषु कन्या ज्योक् आस्तां ] बतला रहा है कि, यह प्रस्ताव कन्याके रवोद्देशके पूर्व ही कन्याके मातापिताके सामने रखा जाता है । भाग्यक जिसको ‘मंगनी’ कहते हैं, उसके समान ही यह बात दी जाती है । इस सूक्तमें कन्याका एक भी कथन नहीं है, अर्थात् भावी पति और पश्चात्के मातापिता या पासकोंका ही कथन है । इससे अनुमान होता है कि, कन्याको उतना अधिकार नहीं है, कि जितना पतिके है ।

तीसरे मंत्रमें कन्याके पालक कहते हैं कि, हम ( ते तां परि दक्षसि ) तेरे लिये इस कन्याका समर्पण करते हैं । यह मंत्रभाग स्पष्ट बतला रहा है कि, कन्या इस विषयमें परतंत्र है । मंत्रमें दो बार आश है कि ‘कन्या पिता माता जघवा भार्गुके घरमें रहे’ अथवा आगे जाकर हम कह सकते हैं कि, विवाह होनेपर वह पतिके घर रहे । परन्तु यह कभी स्वतन्त्रवर्गसे न रहे ।

जिस प्रकार वृक्षा का आश्रय उसकी जड़ें हैं, अथवा पर्वतका आश्रय उसकी अति विलुक्त बुनियाद है, उसी प्रकार कन्याका पदरा आश्रय मातापिता अथवा भार्गु है, और पश्चात्का आश्रय पति ही है । इससे सिद्ध किसी कन्याका आश्रय पतिको लेना उचित नहीं है ।

### प्रस्तावका अनुमोदन ।

प्रथम मंत्रमें कथित भावी पतिके प्रस्तावको सुननेके

पश्चात् कन्याके माता पिता विचार करके अपनी पतिले कहते हैं; कि—

‘ हे नियमसे चलनेवाले स्वामिन् ! यह कन्या तेरे साथ नियमपूर्वक व्यवहार करे। इससे पूर्व यह माता पिताअथवा भाईके घरमें रहे। हे स्वामिन् ! यह कन्या तेरे कुरका पालन करनेवाली है, इसलिये हम तेरे लिये इसकी प्रदान करते हैं। यह तबतक मातापिताके घर रहे, जबतक इसके सिर सजानेका समय न आनाय ॥ तू चमनरहित, द्रव्य और प्राणदायिसे युक्त है, इसलिये तेरे ज्ञानके साथ इस कन्याके भाग्यका सम्बन्ध हम जोड़ देते हैं। जैसे बिद्या अपने जेवर संदूकमें सुरक्षित रखती हैं, उसी प्रकार इसके साथ तेरा भाग्य सुरक्षित रहे।’

यह तीनों मंत्रोंका तापर्य है, यह बहुत ही विचार करने-योग्य है। इन मंत्रोंमें वरके गुण भी बताए हैं। जो इस प्रकार हैं—

### घरकी परीक्षा।

इस सूक्तमें पतिके गुण धर्म बताये हैं, वे क्या प्रथम देखने योग्य हैं—

१ यमः— धर्मनियमोंका पालन करनेवाला, धर्मनियमोंके अनुकूल अपना आचरण रखनेवाला।

२ राजन्— राजा (श्रेष्ठपति)। अपनी धर्मपत्नीका रंजन करनेवाला। राजा शब्दका अर्थ ‘प्रकृतिका रंजन करने-वाला’ है। शूद्रस्वधर्ममें धर्मपत्नी ही पुरुषकी प्रकृति है। उदा धर्मपत्नीका सत्कार बढ़ानेवाला पति ही राजा है।

३ असितः— (अ-सितः अशुद्धः) बंधनरहित। अपौरुष जिसका मन स्वतंत्रताका चाहनेवाला है। गुलामीके भाव जिसके मनमें नहीं हैं।

४ कद्रवपः— (पद्रवः) देखनेवाला। अपनी परिस्थितिके उत्तम हीतसे जाननेवाला और अपने कर्तव्यको ठीक प्रकार समझनेवाला।

५ गयः— (प्राणवल्युक्तः) प्राणायामादि योगसाधनद्वारा जिसने अपने मनको मज्ज बसाया है।

६ ब्रह्मज्ञा युक्तः— ज्ञानसे युक्त। शान्ति।

वे छ. शब्द इस सूक्तमें पतिके गुणधर्म बता रहे हैं।

### पतिके गुणधर्म।

धर्मनियमोंके अनुकूल आचरण करना, धर्मपत्नीको संतुष्ट रखना, स्वाधीनताके लिये पत्न करना, अपनी परिस्थितिकी ठीक प्रकार जानना, योगादि साधनद्वारा अपनी दीर्घ-आयु कीतोपगत तथा सुखदृढताका संपादन करना, तथा ज्ञान बढ़ाना, ये गुण पतिकी योग्यता प्रदर्शित कर रहे हैं।

अपनी कन्याके लिये वर दूटना हो, जो उसे उक्त छ गुणोंकी कछाड़ी पर कस करके ही उसे पसंद करना चाहिये। जिसका शाचाण धर्मानुकूल हो, जो धर्मपत्नीके साथ प्रेमपूर्ण परोपकार करनेवाला हो, जो स्वाधीनताके लिये प्रयत्नशील हो, जो अपनी अवस्थाको जाननेवाला और तदनुकूल कार्य व्यवहार करनेवाला हो, जो बलवान् तथा नीरोग हो और स्वास्थ्य रक्षा कर सकता हो, तथा जो ज्ञानवान् और प्रबुद्ध हो, उस वरको ही अपनी कन्या प्रदान करनी चाहिए।

जो धर्मानुकूल आचरण नहीं करता, जो किसीके साथ प्रेममय आचरण नहीं करता, जो परोपकारमें रहता है, जो अपनी अवस्थाके प्रतिशुद्ध आचरण करता है, जो निर्धर और रोगी हो, तथा जो शान्ति न हो, उसको किसी भी अवस्थामें अपनी कन्याके लिये वर रूपसे पसंद नहीं करना चाहिये। अथ वधूके गुणोंका विचार करते हैं।

### वधू-परीक्षा।

इस सूक्तमें वधूपरीक्षाके निम्नलिखित मंत्र मान्य हैं—

१ कन्या— (कमनीया) कन्या देखी हो, कि जिसको देखनेसे मनमें प्रेम उत्पन्न हो। रूप, देव, भवपत्नीकी सुंदरता, स्वच्छता, ज्ञान आदि सब धर्मों ‘कन्या’ इस शब्दमें निहित हैं।

२ वधू— (उद्यते पतिगृहं)— जो पतिरे घर जाकर रहना पसंद करती है। जो पतिके घरको ही अपना सारा घर मानती है।

३ कुलपा— कुरका पालन करनेवाली। पित्तके तथा पतिके कुलोंकी मर्यादाओंका पालन करनेवाली। जो अपने सदाचारसे दोनों कुलोंका धरा बढाती है।

४ ते (पत्युः) भगम्— धर्मपत्नी ठेकी होनी चाहिये, कि जो पतिका भाग्य बढ़ावे। जिससे पतिके धन्यता अनुभव हो।

५ पितृपु आस्ताम्— कन्या विवाहके पूर्व अपना आराधनाके मातापिता अथवा भाई इनके घरमें रहनेवाली और विवाहके पश्चात् पतिके घर रहनेवाली हो। किसी अन्यके घर जाकर रहनेकी इच्छा न करनेवाली कन्या होनी चाहिये।

६ वृहात् रक्— वृषकी पुण्यमात्रके समान कन्या हो, पित्तके कुररूपी वृषको पुण्यमात्ररूप कन्या सुगणित करे।

वे छ मंत्रनामा कन्याकी परीक्षा करनेके नियम बता रहे हैं।

### कन्याके गुणधर्म ।

कन्या सुस्थ तथा तेजस्विनी हो, पतिके घर प्रेमपूर्वक रह-  
नेवाली हो, दोनो कुलोंका दम अपने सदाचरमले बढानेवाली  
हो, पतिका भाग्य बढानेवाली, यौवनके पूर्व पितारके घरमें  
तथा यौवन प्राप्त होनेके पश्चात् पतिके घर रहनेवाली, तथा  
गुणमालाके समान अपने कुलकी शोभा बढानेवाली हो ।  
इस प्रकारकी जो सुलक्षणी कन्या हो उसको ही पसन्द करना  
चाहिये ।

जो शीकी, निस्तेज, दुर्मुसी, पतिके घर जानेकी इच्छा  
न करनेवाली, दुराचारिणी, पतिके भाग्यको घटानेवाली, तथा  
नेपथुच हो, यह कन्या विवाहके लिये योग्य नहीं है ।

### मंगनीका समय ।

इस युगमें विवाहके समयका ठीक ज्ञान नहीं होता,  
बशर्तकि उसका शापक कोई प्रमाण बढा नहीं है । 'कन्या  
सिर सजानेके समयतक भाताके घर रहे' इस तृतीय मंत्रके  
कथनसे ऐसा प्रतीत होता है, कि मंगनीका समय श्रुतपातिके  
कुण ही वर्ष पूर्व अधिकसे अधिक एक दो वर्ष पूर्व ही है ।  
उ भाति बभ्रुपरीशारके जो छ लक्षण ब्याप्य बताये हैं, उन लक्षणोंके  
स्पष्टतया स्पष्ट होनेके लिये यौवन दशाकी प्रासिकी मरत्य  
आवश्यकता है । 'पतिके घर जानेकी कल्पना' जिस अव-  
स्थामें कन्याके मनमें भाती है यह अवस्था मंगनीकी प्रतीत  
होती है । ये छ शब्द अश्वी, सुवती, प्रबुध, कन्याकी  
अवस्था बता रहे हैं । इन शब्दोंसे कन्याकी मंगनीकी आयुका  
निश्चय हो सकता है ।

भावी पति मंगनी करे और कन्याके माता पिता पूर्वोंके  
लक्षणोंका खूब विचार करके भावी पतिके मरत्यको स्वीकार  
या अस्वीकार करें । इस सूक्तमें बरके मातापिताको तथा  
कन्याको अपना मत देनेके अधिकारका कोई भी उल्लेख  
नहीं है ।

### सिरकी सजावट ।

तृतीय मंत्रमें कहा है 'ज्योक् पितृभ्यासाता वा  
दीर्घ्यं समोप्यात् ।' (बरक मातापिताके घरमें कन्या  
रहे, जबतक सिर सजानेका समय न आजावे ।) यहाँ एक  
बात कहना आवश्यक है, कि जिस समय श्री ऋतुमती होती  
है, उस समय उसको 'पुण्यवती' भी कहते हैं । पुण्य  
वतीका अर्थ फूलोंसे अपने भाग्यके सजाने योग्य । प्रथम  
रजोदर्शन, प्रथम श्रुतपाति आकर प्रथम पुण्यवती होते ही  
उसको फूलोंद्वारा सजानेकी प्रथा विरोधत उरका सिर

फूलोंसे सजानेकी प्रथा भारतवर्षमें इस समयमें भी है ।  
मिसूर और मद्रासकी ओर तो प्रथम प्रसंगके लिये सैकड़ों  
रुपयोंके फूल इस पुण्यवती कीकी सजावटके लिये लाये जाते  
हैं । वर्षाईमें भी कई जातियोंमें यह प्रथा है । अल्प जाति-  
योंमें कम है, परंतु सिरमें फूल पहननेका रिवाज इस ऋतु-  
प्राप्तिके समयके लिये विशेष है । यह रिवाज प्रतिदिन कम  
हो रहा है । एक तो धनाभावके कारण और दूसरा उसाहके  
कमालके कारण यह रिवाज कम होला जा रहा है । धनी  
लोग इस प्रसंगके लिये सोने और रत्नोंके भी फूल बनते  
हैं और पुण्यवती कीके चतुर्थ दिनमें उसका सिर सजाते हैं ।  
जिन प्रांतोंमें पूषट निकालनेका रिवाज है, उन प्रांतोंमें यह  
रिवाज कम है ऐसा हमारा कथाल है, परंतु सच्ची बात बहा  
के लोग ही जान सकते हैं । इससे हम अनुमान कर सकते  
हैं कि पूषटकी प्रथा अवैदिक है, पर आज यह समाजमें घुस  
गई है ।

### मंगनीके पश्चात् विवाह ।

इस सूक्तके देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि, मंगनीके  
पश्चात् विवाहका समय बहुत दूरका नहीं है । प्रथम मंत्रमें  
बरसे पहला प्रसंग अर्थात् मंगनीका प्रसंग हुआ है । और  
द्वितीय तथा तृतीय मंत्रमें ही कन्याके अर्पणका विषय आ  
गया है । देखिये—

१ एषा कन्या ते यधू. निधूयताम्— यह हमारी  
कन्या तेरी पत्नी बनाकर व्यवहार करे । तथा—

२ एषा [ कन्या ] ते कुलपा, ता उ ते परि-  
दधासि— यह हमारी कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली  
है, इसलिये उसको तेरे लिये हम प्रदान करते हैं ।

३ ते भग जपि महामि— तेरा भाग्य [ इस कन्याके  
साथ ] बढता है, मर्थात् इससे तू अलग न हो ।

ये मंत्रभाग स्पष्ट बता रहे हैं कि मंगनीके स्वीकार कर  
लेनेके पश्चात् ही ही विवाहका समय मानातहै । यद्यपि इसमें  
समयका साक्षात् उल्लेख नहीं है, तथापि [ १ ] मंगनी, [ २ ]  
कन्या दानकी संमति, [ ३ ] सिर सजानेके समयतक अर्थात्  
पुण्यवती होनेतक कन्याके विधुपरमें निवासका विधान  
स्पष्ट बता रहा है, कि मंगनीके पश्चात् विवाह होनेके बाद  
ऋतुमती और पुण्यवती होनेके अन्तर कन्याका पतिके घर  
निवास होनेका क्रम दिखाई देता है । यह विषय अग्यान्य  
सूक्तोंके साथ समर्थित है, इसलिये इस विवाहमकरणके सूक्त  
जहाँ जहाँ आयेगे, वहाँ वहाँ इसके साथ समर्थ देसकर ही  
सब बातोंका निर्णय होगा ।



## कन्याके लिये वर

कां. ६, सूक्त ८२

( कवि - मग । देवता - इन्द्र । )

आगच्छत आगतस्य नामं गृह्णाम्यायतः । इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्मे वासवस्यं सुवक्रतोः ॥ १ ॥

येन सूर्या सावित्रीमश्विनोऽहतुः पथा । तेन मायंमन्वीन्द्रमो जायामा वंहतादिति ॥ २ ॥

यस्तैऽद्भुशो त्सुदामो वृहन्निन्द्र हिरण्यवः । तेनां जनीयते जायां मद्य धेहि शचीपते ॥ ३ ॥

अर्थ— ( आगच्छत ) जानेवाले, ( आगतस्य ) आये हुए और ( आयत ) अति समीप जानेवाले ( वृत्रघ्न वासवस्य शतक्रतो इन्द्रस्य ) शत्रुका नाश करनेवाले, धनवाले और सैकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्रका ( नाम गृह्णामि ) नाम में लेना हूँ और ( वन्मे ) पसन्द करता हूँ ॥ १ ॥

( येन पथा ) जिस मार्गसे ( अश्विना ) अश्विदेवोंने ( सूर्या सावित्रीं ऊहतु ) स्वर्गमा सावित्रीका विवाह किया, ( तेन ) उसी मार्गसे ( जाया आवहताद् इति ) भार्याको प्राप्त कर देना ( भग मा अग्रणीद् ) भगते सुसूते कहा है ॥ २ ॥

हे ( इन्द्र ) इन्द्र ! ( य ते हिरण्यव यसुदान वृहन् अक्रुश ) जो तेरा सुवर्णका धन देनेवाला यज्ञ अक्रुश है हे ( शचीपते ) शकिले स्वामी इन्द्र ! ( तेन जनीयते मद्य ) उस अक्रुशसे शची इच्छा करनेवाले मुझे ( जाया धेहि ) भार्या दे ॥ ३ ॥

भाषार्थ— पहिलेसे ही इच्छा करके मरे पास आया हुआ, शत्रुघ्न विजय करनेवाला धनवादा, सैकड़ों उत्तम कर्म करनेवाला जो शूरवीर है उसीको मैं अपनी पुत्रीके लिये वरके रूपमें पसन्द करता हूँ ॥ १ ॥

जिस प्रकार अश्विदेवोंने सूर्यमहाका विवाह किया उसी प्रकार धनवादा वधूका पिता 'इस कन्याको स्वीकार कीजिये' ऐसा कहकर मुझे विवाह करनेके लिए कहता है ॥ २ ॥

हे प्रभो ! तेरे पास जो धनकी प्राप्ति करानेवाला जो उत्तम दाफ है, उसके बलसे पत्नीकी इच्छा करनेवाले मुझ वरको भार्या प्राप्त हो ॥ ३ ॥

## कन्याके लिये वर

कन्याके लिये वर निम्नलिखित गुणोंका विचार करके पसन्द किया जायि—

( १ ) जनीयते— वर देना हो कि जिसके मनमें धर्मपत्नीको प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई हो ।

( म० ३ )

( २ ) आगच्छत — कन्याक पिताके पास जानेकी इच्छा करनेवाला । ( म० १ )

( ३ ) आगतस्य— कन्याक पिताक पास पहुँचनेवाला । ( म० १ )

३ ( अथर्व भा १ पृ हिन्दी )

( ४ ) जायत — कन्याके पिताके पास पहुँचा हुआ । ( म० १ )

ये तीनों शब्द वरको उत्कट इच्छा भगाने हैं । आशक्त कन्याका पिता वरको ढूँढनेके लिए एक स्वामिने दूसरे स्थानको जाता है । यह प्रथा अर्वाचिक मवीत होती है । वधूका पिता अथवा वधू वरको योग्यता लिये प्रयोग व कर सपितु वर ही अपनी योग्यता सिद्ध करे और वधूको मांगने क लिये वधूक पिताके पास जावे । यह बात इन पाठ वाक्या त स्पष्ट होती है । वरमें कौनस गुण होने चाहिये, इसका विचार इस तरह किया है—

- (५) वासिष्ठ— वसु भर्षात् धन प्राप्त रखनेवाला । साथ होगा है, भर्षात् कन्याका मोल लेना या पतिके लिये धन देना आदि शर्तें न हों, वरके गुणोंका विचार सुख्य हो । ( म० १ )
- (६) शतक्रतु— सैकड़ों उत्तम पुण्यार्थ करनेवाला । पर भी मनमें बड़ी समझे कि मैं अपने शीर्ष और पीपैते धन कमाऊंगा और जब मैं धन कमाऊंगा और मेरा शीर्ष प्रकट होगा तब मेरा विवाह हो ही जायगा । ( म० २ )
- (७) धृमन्न— शत्रुका नाश करके विजय प्राप्त करनेसे सम्पूर्ण । ( म० ३ )
- (८) इन्द्र — शत्रुका नाश करनेवाला शूरीर । इस सूक्तमें जो वरकी पसंदगीति और प्रियाई विषयके अन्वय विचार कहे हैं वे बड़े उत्तम हैं । ( म० १ )
- ये चार शब्द वरके गुणोंका वर्णन करते हैं । विवाहके पूर्व करने धन कमाया हो और शीर्ष भी प्रकट किया हो । अपरीक्षित पर न हो ।
- यथुका पिता ऐसे वरका आश्रय करे और उसे कहे कि, ( जाया अथहेतात् ) इस मेरी कन्याको स्वीकार कीजिये । आप स्वीकार करेंगे तो मैं यहा अशुशुद्धी होऊंगा इत्यादि पचन वरके साथ बोले और कन्या देनेकी इच्छा प्रकट करे । कन्याका दान भी ऐसा ही हो कि जिस प्रकार प्रभाका रूपके

## विवाहका मंगल कार्य

कां. २, सूक्त ३६

( अथि - पतिवेदन. । देवता-भारीपोमी । )

आ नो जपे सुमति संमलो गमेद्विमां कुमारीं सुह नो भगेन ।

जुष्टा वरेषु समनेषु वृहद्गुरोषं पत्या सौभगमस्त्वस्यै

॥ १ ॥

सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्टमर्ष्यम्ना संभृतं भगम् । धातुर्देवस्य सत्येनं कृणोमि पतिवेदनम्

॥ २ ॥

अर्थ— हे भगे ! ( भगेन सह ) धनकेसाथ ( स-भल, ) उत्तम ब्रह्म वर ( इमां न. नः सुमति कुमारीं ) इस हमारी उत्तम बुद्धियाली कुमारी कन्याको ( आ गमेत् ) प्राप्त करे । और ( अस्यै पत्या सौभगमस्तु ) इस कन्याको भी पतिके साथ सौभाग्य प्राप्त होने । क्योंकि यह कन्या ( वरेषु जुष्टा, समनेषु यन्तु ) अष्टोमों में प्रिय और उत्तम मनवालोंमें मनोरम है ॥ १ ॥

( सोमजुष्टं ) सोम द्वारा और ( ब्रह्मजुष्टं ) ब्राह्मणों द्वारा सेवित, तथा ( अर्ष्यम्ना सम्भृत भग ) श्रेष्ठ मनवालोंसे हृषडा किये हुए इस धनको ( धातु- देवस्य सत्येन ) धातक देवके साथ नियमसे ( पति-वेदनं कृणोमि ) केवल पतिके द्वारा प्राप्त होनेके योग्य ब्रह्मण ह ॥ २ ॥

भाष्यार्थ— जिसने धन प्राप्त किया है, ऐसा उत्तम विद्वान् ब्रह्म पति इस हमारी बुद्धिमती कुमारीको प्राप्त होवे । यह हमारी कन्या केष्टोंको प्रिय और उत्तम मनवालोंमें सुंदर है, इसलिये इस कन्याको इस पतिके साथ उत्तम सुख प्राप्त होवे ॥ १ ॥

सौम्यता, शान और श्रेष्ठ मन द्वारा संगृहीत और सत्यमार्गसे प्राप्त किया हुआ यह धन देवदत्त पतिके लिये है ॥ २ ॥

द्वयमंथे नारी पतिं विदेष्टु सोमो हि राजा सुमगां कृणोति ।	
सुवाना पुत्रान्महिषी भवति गत्वा पतिं सुमगा वि राजतु	॥ ३ ॥
यथाखुरो मघबंधारेप प्रियो मृगाणां सुपदां सुभूर्व ।	
एवा भगस्य जुष्टेयमस्तु नारी संप्रिया परवाविंराघयन्ती	॥ ४ ॥
मगस्य नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम् । तयोपप्रतारपु यो वरः प्रतिकाम्प्यः	॥ ५ ॥
आ क्रन्दय धनपते वरमामनसं कृणु । सर्वे प्रदक्षिणं कंणु यो वरः प्रतिकाम्प्यः	॥ ६ ॥
इदं हिरण्यं गुल्युंलुयसौक्ष्णो अथो मगः । एते पतिभ्यस्तवामंदुः प्रतिकामाय वेत्तवे	॥ ७ ॥
आ ते नयतु सविता नयतु पतिर्यः प्रतिकाम्प्यः । त्वमस्यै घेक्षोपघे	॥ ८ ॥

अर्थ— हे भो ! ( इयं नारी पतिं विदेष्टु ) यह भी पतिको प्राप्त करे । ( हि सोमः राजा सुमगां कृणोति ) क्योंकि सोमराज हस्को सोमपयवती करता है । यह ( पुत्रान् सुवाना महिषी भवति ) पुत्रोंको उत्पन्न करती हुई परकी रानी होवे । यह ( सुमगा पतिं गत्वा विराजतु ) सीमापयवती पतिको प्राप्त करने सोमिष्ठ हो ॥ ३ ॥

हे ( मघयन् ) इन्द्र ! ( यथा एव आतरः ) जैसे यह दुहा ( मृगाणां प्रियोः सुपदाः यभूर्व ) पशुओंके लिये प्रिय और यज्ञ योग्य है ( एवा ) ऐसे ही ( परवा विंराघयन्ती ) पतिके विरोध न करती हुई और ( भगस्य जुष्टा इयं नारी ) ऐश्वर्यसे सेवित हुई यह भी पतिके लिये ( सं प्रिया ) उत्तम प्रिय ( अस्तु ) होवे ॥ ४ ॥

हे श्री ! ( पूर्णो अनुप+दस्वती ) पूरे और न दूटनेवाली ( भगस्य नार्य आरोह ) ऐश्वर्यकी दृष्ट नौकाय यह और ( तया उपप्रतारय ) उसके उसके साथ पैर कर जा कि ( यः यदः प्रतिकाम्यः ) जो हर तेरी कामनाके योग्य है ॥ ५ ॥

हे धनपते ! ( धरं आप्रन्दय ) अपने बरको बुझा और ( आ-मनसं कृणु ) अपने मनके अनुकूल वातावरण कर ( यः यदः प्रतिकाम्यः ) जो हर तेरी कामनाके योग्य है ( सर्वे प्रदक्षिणं कृणु ) उसे सब धन दे ॥ ६ ॥

( इदं गुल्युंलु हिरण्यं ) यह उत्तम सुवर्ण है, ( अथो मगः ) यह पैर है और ( अथो मगः ) यह धन है । ( एते त्वां पतिभ्यमाय वेत्तवे ) ये सब तुझे पतिकी कामनाके लिये और तेरे लाभके लिये ( पतिभ्यः यदुः ) पतिको देते हैं ॥ ७ ॥

( सविता ते आ नयतु ) सविता तुझे भेजना दे ( यः पतिपाम्यः पतिः ) जो कामना करने योग्य पति है यह ( नयतु ) तुझे ले जावे । हे भौषधे ! ( त्वं अस्यै घेहि ) तू इसे पामु कर ॥ ८ ॥

भावार्थ— यह भी पतिको प्राप्त करे, परमेश्वर इसे सुखी बनावे; यह भी परमेश्वर रानीके सामान बनकर पुत्रोंको उत्पन्न करती हुई सुखी होकर सोमिष्ठ होवे ॥ ३ ॥

यह भी पतिके कभी विरोध न करे और ऐश्वर्यसे सोमिष्ठ होगी हुई सबको प्रिय होवे ॥ ४ ॥

श्री इन्द्र गृहस्थाधम स्त्री पूर्ण और सुदृढ़ नौका पर चढ़े और अपने निय पतिके साथ सीमारका समुद्र पार करे ॥ ५ ॥ जो हर अपने मनके अनुकूल हो उस बरको बुझाकर समस्त साथ अपने मनके अनुकूल वातावरण करके उत्तम साथ सामान पूर्णक रूपदा करे ॥ ६ ॥

यह उत्तम सुवर्ण है, यह साथ और पैर है, और यह धन है । यह सब पतिको देते हैं स्वर्गिये कि तुझे पति प्राप्त होवे ॥ ७ ॥

सविता तुझे भर्षा बनावे, तेरा पति तेरी कामनाके अनुकूल बलवा हुआ तुझे उत्तम मार्गसे ले चके । भौषधियोंके सुखको दुष्टि प्राप्त हो ॥ ८ ॥

## विवाहका मंगल कार्य

### वरकी योग्यता

विवाहका कार्य अत्यन्त मंगलमय है, इसलिये उसके सम्बन्धके जो जो कर्तव्य हैं, वे भी मंगल भावनासे काले उचित हैं। विवाहके मंगल कार्यमें वर और वधूया सबसे प्रधान स्थान होता है। इसलिये इनके विषयमें इस सूत्रके आदेश प्रथम देखेंगे। वरके विषयमें इस सूत्रमें निम्न लिखित बातें बड़ी हैं—

१ सभल,— (सं + भलः) उत्तम प्रकार ब्याहयान देनेवाला। (मं १) जो किसी भी विषयका उत्तम प्रतिपादन कर सकता है। विशेष विद्वान्।

यह शब्द वरकी विद्वत्ता बता रहा है। वर विद्वान् हो, शास्त्रज्ञ ज्ञाना हो, चतुर और सम्मान्य विद्वान् हो। केवल विद्वत्ता ही पर्याप्त नहीं है, अपितु कुटुम्ब योगणके लिये काव्य शक्य धन कमानेवाला भी उसे होना चाहिये, इस विषयमें कहा है—

२ भगोन् सह कुमार्यं जागमेत्— धनके साथ भाकर कन्याको प्राप्त करो। धन प्राप्त न होनेकी अवस्थामें विवाह न करे, क्योंकि विवाह होनेके पश्चात् परिवार बढेगा, इसलिये उसके पोषण करनेकी योग्यता इसमें अवश्य होगी चाहिये।

३ पति, नयतु— पति अपनी धर्मपत्नीकी सम्मार्गसे चलाये। धर्म नीतिज्ञ मार्गसे चलाने, परंतु साथ साथ वह (प्रति-काश्य.) पत्नीकी मनोकांक्षाके अनुबन्ध भी चले। इसका तात्पर्य यह है कि पति अपनी धर्मपत्नीके साथ अल्प कारणसे कभी झगडा न करे, धर्मशरीर पर प्रेम करे, परंतु उसको सधे धर्म मार्गपर चलानेका यत्न करे। (मं ८)

इस सूत्रमें इतने आदेश पतिके लिये दिये हैं। इससे पूर्व विवाह विषयक कई सूत्र आ चुके हैं, उनमें पतिरे गुण धर्म और कर्म बताये हैं, उनके साथ इस सूत्रके आदेशोंका विचार करना चाहिये।

### वधूकी योग्यता

वधूके विषयमें बहुतसे उपदेश इस सूत्रमें कहे हैं, जो पारिवारिक जगत्में रहनेवालोंके द्वारा अध्ययन मान्य करने योग्य हैं।

१ कुमारी— कुमार और कुमारी ये शब्द बड़े महत्व पूर्ण हैं। पूर्ण मङ्गलचर्यको स्थिर रखनेका भाव सूचित करने वाले ये शब्द हैं। तर्जनी की उद्योगमें होनेवाले विकारी भाव

बिनाके मनमें उत्पन्न नहीं हुए, उनको 'कुमार' कहते हैं। यह शब्द अत्यन्त स्थिर मङ्गलचर्य धारण करनेवालेका चोतक है। जयतक मनमें कुमार भाव रहता है, तबतक धर्मवोध उत्पन्न होता ही नहीं। इस प्रथम मन्त्रमें 'कुमारी' शब्द धाया है, जो कन्याका बोध कराता है। कन्या ऐसी हो कि जो कुमारी हो अर्थात् पुरुष विषयका काम विचार संशयी चञ्चल भाव तिसके मनमें किंचित् भी उत्पन्न न हुए हो। यहाँ विवाहके लिये योग्य कुमारीका वर्णन किया है। छोटी आयुमें विवाह करनेकी पद्धतिको मानना अनुचित है, क्योंकि इससे पूर्व बताया ही है कि 'पतिकी इच्छा करने वाली र्क्षिता विवाह है।' [ देखो का २ सू ३० ] इसलिये इस सूत्रमें छोटी आयुमें विवाहके विधान करनेकी संभावना नहीं है। इस कारण यहाँका 'कुमारी' शब्द ऐसी कन्याका बोध कराता है कि जो युवती तो हो, पतिकी इच्छा तो करती हो, परंतु मनके चञ्चल विकारोंसे पूर्णतया अशुद्ध हो। इससे यह स्पष्ट होता है कि वेदकी दृष्टिसे कन्याओंकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये और विवाह पूर्व उनमें अतः कैसे पवित्र रहने चाहिये। (मं १)

२ सुमति— कन्या उत्तम मतिवाली हो, उत्तम बुद्धि वाली हो, जिसके मनपर सुसंस्कार पड़े हुए हों। (मं १)

३ समनेषु परेषु क्षुद्रा यन्तु— उत्तम मनवाले श्रेष्ठ पुरुषोंमें सेवा करने योग्य और सुन्दर कन्या हो। समताके विचार मनमें रखनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंमें सेवा करने योग्य और सुन्दर कन्या हो। समताके विचार मनमें रखनेवाले, विषम मानना मनमें न रखनेवाले श्रेष्ठ लोगोंमें अन्तर शिष्टाका मनन करनेवाली और अपने क्षीरवके कारण मनोहर और परिशुद्ध विचारवाली कन्या हो। 'क्षेत्रेणैः जाने योग्य' (यरेषु क्षुद्रा) शब्दोंसे कन्याका धार्मिक दृष्टिसे पारिवारिक बोधित होता है। कन्या ऐसी हो कि जिसका आचरण वाचा वाचा मनसे कभी भुग नहीं हुआ हो। सुद आचरणसे संपन्न हो और साथ साथ मनोरम तथा दर्शनीय भी हो। कन्याएं, ऐसी बनें, इस प्रकारकी शिक्षा उनको मिलनी चाहिये। (मं १)

इस रीतिसे कन्याके शुद्धाचारके विषयमें वेदका आदेश है। कुमार और कुमारीका बोध पवित्र रखकर उनको विवाह सम्बन्धमें जोड़ना वेदकी भागीष्ट है। इसलिये विवाहके पूर्व

कुमार और पुमारिकाओंका इस प्रकारका मेल, कि जो भनी-  
तिरे मारिमें उनको ले जानेवाला हो, वेदको भलीए नहीं है ।

### विवाहके पश्चात्

विवाह होनेके पश्चात्, स्त्रीपुरपेठि परस्पर बर्तावके विषय-  
में भी इस सूत्रमें अर्थात् उक्त उपदेश है—

भगस्य जुष्टा इयं नारी,  
पत्या अधिराधयन्ती,  
संप्रिया अस्तु ॥ ( मं० ४ )

‘ ऐश्वर्यको प्राप्त हुई हुई यह स्त्री, पतिसे विरोध न करती  
हुई, पतिको अलंत प्रिय हो । ’ विवाह होनेके पश्चात् स्त्री  
अधिक ऐश्वर्यमें जाती है, इसलिये यह मंत्र सूचित करता है,  
कि विशेष भाग्य और ऐश्वर्यमें पहुंचनेके कारण यह स्त्री  
उन्नत न हो, अपितु पतिके साथ प्रेमसे रहे और पतिसे  
कभी विरोध न करे । धर्मद्वयं आचर पतिरः अपमान कभी  
न करे, अपितु ऐसा आचरण करे कि जिसमें दोनोंका प्रेम  
दिन प्रतिदिन बढ़ता जाय । तथा—

सर्वं प्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिश्राम्यः । ( मं० ६ )

‘ जो कुछ करता है वह अपने कामना रूप या—पतिकी  
प्रदक्षिणा करने ही करे । ’ प्रदक्षिणा करनेका आशय है सम्मान  
करना, आदर प्रदर्शित करना, सत्कार करना । जो कुछ करना  
हो, उसे पतिका सत्कार करते हुए ही करना चाहिये । पत्नी-  
का ‘ प्रति-काम ’ पति ही होता है । अपने मनके अंदर जो  
( काम ) दृष्टा होती है, उसका जो वास्तव रूप होता है  
उसको ‘ प्रति काम ’ कहते हैं । अपना रूप होता है और  
वर्तनेमें जो दिखाने देता है उसको ‘ प्रतिकल्प ’ कहते हैं,  
ऐसकी दूसरी प्रति करनेका नाम ‘ प्रति लेख ’ है । इसी  
प्रकार स्त्रीने मनके अंदरके कामका ‘ प्रतिकाम ’ पति है ।  
पत्नी अपने पतिको अपना ‘ प्रतिश्राम ’ समझे और उसका  
सत्कार करते हर कार्य करे । तथा—

पत्या अस्ये लीभार्यं अस्तु । ( मं० ३ )

‘ पतिसे इसको शोभा प्राप्त हो ’ स्त्री को शोभा पतिही  
है । पतिविरहित स्त्री शोभाहीन होती है । मत धर्म-  
पत्नी मनमें समझे कि उसकी संपूर्ण शोभा पतिके कारण ही  
है और उस कारण मन्त्रे पतिका सदा सत्कार करे । तथा—

पतिं गत्या सुभगा विराजतु

पुत्रान् सुवाना महिषी भवति । ( मं० ३ )

‘ यह स्त्री पतिको प्राप्त करके ऐश्वर्यमें विराजती रहे और  
उत्तम पुत्रोंको उत्पन्न करती हुई बरकी राती बने । ’ यहाँ

पतिको प्राप्त करके पतिसे साथ रहना, पतिसे ऐश्वर्यमें अपने  
भागको ऐश्वर्यमें समझना, पुत्रोंको उत्पन्न करना और  
बरकी स्वामिनी बनना स्त्रीका कर्तव्य बताया है । कई शिक्षण  
विद्या संज्ञान उत्पन्न करनेके कर्तव्यसे परावृत्त होती हैं । यह  
योग्य नहीं है । स्त्रीको पतिसे बचानी इस कर्तव्यकी सूचना  
देती है कि वह सन्तानही नहीं बने, सुसंतति, सुवत् संतान  
उत्पन्न करना विवाहित स्त्रीका कर्तव्य ही है । अति उत्तम  
संतति निर्माण करने योग्य अपना शरीरस्वास्थ्य रखनेमें  
विद्या प्रयत्नसे ही उत्तचित हो । जो विद्या पक्षसे अपने  
स्वास्थ्यका विचार नहीं करती, वे योग्य सत्त्वानोपति बर-  
नेमें असमर्थ हो जाती है । इसलिये विवेकित स्वास्थ्यका  
विचार प्रारंभसे ही करना चाहिये ।

### ऐश्वर्यकी नौका

वचन मन्त्रसे गृहस्थाश्रमको ऐश्वर्यकी नौकाकी उपमा  
ही है । यह उपमा बड़ी बोधप्रद है—

पूर्णा अतुप-दस्यती भगस्य नावं आगेह ।

यः प्रतिश्राम्यः वरः, तया उप प्रनारय ॥

( मं० ५ )

‘ यह सब प्रकारसे परिपूर्ण और कभी न टूटनेवाली  
ऐश्वर्यकी नौका है, उसपर घट और जो तैरा पति है उसको  
इस नौकाके भाधयते द्वारा किनारे पर ले जा । ’ यह गृह-  
स्थाश्रम रूपी नौका है, जिसपर पति-पत्नी बसुत, हड़के  
ही सवार होने हैं, परंतु यत्कि सहायता होनेके कारण इस  
स्त्रीको ही नौका चलावेवाली इस मंत्रमें कहा है । यह स्त्रीका  
बड़ा भारी सम्मान देनेके विषय है और साथ साथ स्त्री  
हाथमें पदा भारी अधिकार भी दिया है । वास्तविक पर  
गृहिणी ही है, ईश्वरीका घर घर नहीं है । इसी प्रकार स्त्री  
होनेसे ही गृहस्थाश्रम होता है और स्त्री न होनेसे गृहस्था-  
श्रम नहीं रहता । इसलिये गृहस्थाश्रममें स्त्रीका महत्त्व  
विशेष ही है । इन हेतुसे इस मंत्रमें स्त्रीको उदरपर करने  
कहा है कि इस गृहस्थाश्रम रूपी नौकापर स्त्री चढ़े और  
इस नौकाको देने हेतुसे कहे कि यह नौका अपने पहुँच-  
नेके स्थानपर सीधे पहुँचे और मार्गमें कोई कष्ट न हो ।  
इसी प्रकार स्त्रीके अधिकारके विषयमें निम्नलिखित मंत्र-  
भाग देखने योग्य है—

धनपते ! वरं आमन्द्य । आमनसं कृणु । ( मं० ६ )

‘ हे गृहस्थाश्रमके संपूर्ण पतकी स्वामिनि ! अपने पतिसे  
पुत्राकर उमको अपने मनके अनुष्ठान कर । ’ यह अधिकार

हैं गृहस्थाधममें प्रविष्ट स्त्रीका । यह स्त्री गृहस्थाधमके सपूर्ण ऐश्वर्यकी स्वामिनी है और यदि पति हीनमार्गीपर चलने लगे, तो उसको सम्मार्गीपर लानेका उसको अधिकार है ।

### पुरुषका स्थान

जब स्त्रीको गृहस्थाधममें इतना अधिकार प्राप्त है, तब, पुरुषका स्थान गृहस्थाधममें कहां है, इसका भी विचार करना यथा आवश्यक है—

यः प्रतिकाम्यः पतिः नयतु । ( म. ८ )

'कामनाके अनुकूल पति (गृहस्थाधम) चलावे' अर्थात् गृहस्थाधमका सब चलावे । स्त्रीको सम्मार्गीपर चलाने, गृहस्थाधममें यदि कुछ नुस्त्रिया हो, तो उनको ठीक करे, गृहस्थाधमके दोषसुक्त रहने न दे । यह पुरुष—

सविता ते आ नयतु । ( म. ८ )

'सूर्यके समान स्त्रीको लावे।' यह पति धरमें सूर्यके समान है । जिस प्रकार सूर्य अपनी प्रदमाहाका संचालक है, उसी प्रकार यह गृहस्थाधमका सूर्य-मति-संपूर्ण गृहस्थाधमका संचालक है । यह पत्नीको साथ लेकर सपूर्ण गृहस्थाधमको चलावे । यहां यह स्मरणीय है कि गृहस्थाधम न केवल पतिते ही हो सकता और न ही केवल स्त्रिते ही, यह तो दोनोंके द्वारा चलाया जाता है । इसीलिये इस सूक्तमें स्त्रीको भी कहा है कि वह गृहस्थाधम चलावे और पुरुषको भी वैसा ही कहा है । इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि, दोनों मिलकर गृहस्थाधम चलावें । दोनोंका समान अधिकार होनेसे दोनोंको समान भांजा दी है । अतः गृहस्थाधमके स्त्री पुरुष अपने अपने अधिकारोंको समझ कर मिल जुलकर समानतया अपने कार्यका योग्य ठहरावें और मानेदसे इस संसारपायाको पूर्ण करें । तथा—

सोमो हि राजा सुभगां कृणोति । ( म. ३ )

'सोम राजा इस स्त्रीको ऐश्वर्य पुष्ट करता है ।' यह पति धरमें राजाके समान है । पत्नीको महारानी इससे पूरे कहा ही है । जब पत्नी रानी है, तब पतिके राजा होनेमें कोई शक ही नहीं है । ये राजा-रानी एक मन्त्रसे इस गृहस्थाधमका राज्य चलावें । परस्पर विरोध न होने दे । एक दूसरेके महापथक बनकर उन्नति करते जायें ।

इस ढंगसे वेदने पतिका स्थान गृहस्थाधममें निश्चित किया है । दोनोंको उचित स्थान दिया गया है ।

### पतिके लिये धन ।

परनीकी मोरसे मयवा बंधके परते कुछ धन वरको दिया जाता है । देहजके रूपमें यह धन बंधके परते बरने प्राप्त जाता है, इस विषयमें सहज मंत्र भडा स्पष्ट है—

इदं गुलुगुलु हिरण्य, अयं औसः, अथो भगः,  
पते त्वा पतिभ्यः भुवु ॥ ( म. ७ )

'यह सुंदर सुवर्ण है, ये गौवं और बैल हैं, यह सब पतिको दिया जाता है ।' यथा सम्मानके लिये पति शब्द बहुवचनमें प्रयुक्त हुआ है । दिवाहके मंगल कार्यमें पतिका ही विशेष सम्मान होता उचित है । यथा स्मरण रहे कि यद्यपि यह देहज स्त्रीके परते पतिके घर जाना है, तथापि यह धन पुर्णमार्गसे कमाया नहीं होना चाहिये । इस विषयमें द्वितीय मंत्र देखिये—

सोमजुष्टं, ब्रह्मजुष्टं, अयंम्या सभृतं भगम् ।  
धातुर्देवस्य सत्येन पतिवैदं कृणोमि ॥ ( म. २ )

'सौम्यवृत्तिते, ब्रह्मते और श्रेष्ठ मनोवृत्तिते प्राप्त और इकट्ठा किया हुआ धन विधाता ईश्वरकी सत्यनिष्ठासे पतिको प्राप्त होने योग्य करता है ।'

'सोम, ब्रह्म और अयंमा' ये तीन शब्द क्रमशः 'सौम्य वृत्ति, विद्या-ज्ञान और श्रेष्ठ मन' के योग्य हैं । 'अयं + मन' का अयंमद् बना है, जो श्रेष्ठ मनवालेका श्लोक है । पतिको मन उस है यह अयंमा कहा जाता है । ब्रह्म शब्द ज्ञान और विद्याका वाचक प्रसिद्ध है, सोम शब्द सौम्यताका श्लोक है । ये तीन शब्द शान्त और श्रेष्ठ विधाते सुवद्वृत मनोवृत्तिके वाचक हैं । इस मनोवृत्तिते कमाया हुआ, समहीत किया हुआ और पढाया हुआ धन परमेश्वर विषयक सत्यनिष्ठाके साथ पतिको समर्पित किया जाना चाहिये । अथवा इस प्रकार प्राप्त किया हुआ धन पतिको समर्पित करना चाहिये । हीनवृत्तिते इकट्ठा किया हुआ धन पतिको नहीं देना चाहिये । यथा कृष्ण विजय को कि जो धन पतिको देहजके रूपमें दिया जाता है, वह किस रीतिते कमाया हुआ है । हीनवृत्तिते कमाया यह पतिके धरमें हीनता उत्पन्न करेगा । इसलिये सावधानीसे और विचारसे देहजका धन पतिको देना चाहिये । जो दिया जाय वह पवित्र विचारसे कमाया हुआ हो और पवित्र विचारके साथ दिया जाय ।

इस प्रकार इस दिवाहके मंगल कार्यका विचार इन सूक्त में दर्शाया है ।

## श्रुति

कां. ६, सूक्त ६०

( अग्नि - अथर्वी । देवता - अथर्वमा । )

अथमा यात्पर्यमा पुरस्ताद्विपितस्तुपः । अस्या इच्छन्नुग्रुने पतिमुत्त जायामजानये ॥ १ ॥

अथमद्वियर्थममन्न्यासां समनं युवी । अहो न्वर्षिमन्नस्या अन्याः समन्तमार्थति ॥ २ ॥

धाता दाधार पृथिवीं धाता धामुत् सूर्यम् । धातास्या अग्रुवे पतिं दधातु प्रतिक्राम्यम् ॥ ३ ॥

अर्थ— ( अर्थ विपितस्तुपः अथमा ) यह प्रकृतगीय सूर्य ( अस्मै अग्रुवे ) इस कन्याके लिये ( पति इच्छन् ) पतिकी इच्छा करता हुआ ( उत अजानये जायां ) और अहो न्वर्षिमन्न्यासां लिये लीकी इच्छा करता हुआ ( पुरस्तात् आयाति ) सामने आता है ॥ १ ॥

हे ( अथमन् ) सूर्य ! ( अन्यासां समनं युवी ) अन्य कन्याओंके सम्मानको अर्पण विवाहरूपसे होनेवाले सम्मानित उत्सवमें जानेवाली ( सूर्यं अथमन् ) यह भी बहुत धक गई है । हे ( अहो अथमन् ) सूर्य ! इसलिये ( अस्याः समनं अन्याः तु आयाति ) इसके विवाह सम्मानमें दूसरी कन्याएं भी आएं ॥ २ ॥

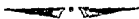
( धाता पृथिवीं दाधार ) परमेभरने पृथ्वीको धारण किया है ( उत धाता सूर्यं छां ) और उसी ईश्वरने सूर्यको और पृथ्वीको धारण किया है । इसलिये यही ( धाता ) देव ( अस्मै अग्रुवे ) इस कन्याके लिये ( प्रतिक्राम्य पतिं दधातु ) उसकी इच्छाके अनुसार पतिको देवे ॥ ३ ॥

मायार्थ— सूर्य उदयको प्राप्त होकर मलको जाता है । इस कारण कन्या और पुत्रकी भायु बचती है । और जैसे जैसे भायु बचती है उसीसे अनुसार अतुरधमें पतिपत्नीकी प्राप्ति करनेकी इच्छा भी प्रदीप्त होती जाती है ॥ १ ॥

कन्याएं जिस समय दूसरी कन्याके विवाहसेलक्षरमें जाती हैं, उस समय उनके मनमें अपने विवाहका विचार उत्पन्न होता है और उनके एक प्रकारका क्रम होता है । इसलिये कन्याके मनमें इस विचारके उत्पन्न होने पर उस कन्याका विवाह कर देना चाहिये ॥ २ ॥

ईश्वरने पृथ्वी सूर्य और पृथ्वीको यथास्थान धारण किया है, इसलिये वह नि मदेह इस कन्याके लिये अनुकूल पति भी दे सकता है ॥ ३ ॥

इस सूक्तमें निम्नलिखित बातें कही हैं— ( १ ) विशिष्ट आधुनै पुत्रधमें श्रीको, और श्रीमें पुत्रको इच्छा होती है । इसके पश्चात् विवाहका समय होता है । ( २ ) विवाहादि संस्कारोंमें संमिलित होनेसे कन्यामेंनि विवाहविरहक आतुरता उत्पन्न होती है । यह समय कन्याके विवाहका है । ( ३ ) पत्नी पतिकी इच्छा करनेवाली और पति ( अनुकूल ) पत्नीको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला होनेपर दोनोंका विवाह हो । विपरीत अवस्थामें कदापि न हो ।



## शिक्षाह-प्रकरण

कां. १४, सूक्त ?

( भवि- सूर्यासावित्री । देवता- भारता । )

सस्येनोत्तमिता भूमिः सूर्येणोत्तमिता द्यौः । श्रुतेनादित्यास्तित्ठन्ति दिवि सोमो अधि ध्रितः ॥१॥

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन वृधिवी मही । अथो नक्षत्राणामेवामुपस्ये सोम आहितः ॥ २ ॥

सोमं मन्यते पपिधान्यसंपिपन्त्सोपधिम् । सोमं यं ब्रह्मणो विदुः तस्याश्नाति पार्थिवः ॥ ३ ॥

यथा सोम प्रपिबन्ति तत् जा प्वायते पुनः । वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास शकृतिः ॥४॥

अर्थ— ( सत्येन भूमेः उत्तमिता ) सत्येन भूमिको ऊंचा उग्रया और ( सूर्येण द्यौः उत्तमिता ) सूर्येण दुलोकको उग्रया, ( श्रुतेन आदित्याः तिष्ठन्ति ) श्रुतके कारण आदित्य स्थिर है, और ( सोमः दिवि अधि ध्रितः ) सोम दुलोकमें आधिर है ॥ १ ॥

( सोमेन आदित्याः बलिनः ) सोमके कारण आदित्य बलवान् हुए । तथा ( सोमेन वृधिवी मही ) सोमके कारण ही पृथ्वी बढी हुई । ( अथो एषां नक्षत्राणां उपस्ये ) और इन नक्षत्रोंके पास ( सोमः आहितः ) सोमको रखा गया ॥ २ ॥

( यत् ओपधि संपिपन्ति ) जब सोम नामक औपधिको पीसते हैं, तब ( पपिधान् सोमं मन्यते ) सोमनाम करनेवाला सोमरसका सम्मान करता है । ( ब्रह्मणः यं सोमं विदुः ) ज्ञानी लोग जिसको सोम समझते हैं । ( तस्य पार्थिवः न अश्नाति ) उसका भक्षण कोई पृथ्वीपर रहनेवाला मनुष्य नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

हे ( सोम ) सोम ! ( यत् त्वा प्रपिबन्ति ) जब तुझे पीते हैं, ( ततः पुनः आप्यायसे ) उसके पश्चात् पुनः तु वृद्धिको प्राप्त करता है । ( वायुः सोमस्य रक्षिता ) वायु सोमका रक्षक है, और ( समानां आश्रति मासः ) वर्षोंकी आश्रति माहिना ही है ॥ ४ ॥

४ भावार्थ— सत्यसे मातृभूमिका उग्रता दिया जाता है, सूर्यके प्रकाशसे आकाश तेजस्वी होता है, सरलताके कारण आदित्य अपने स्थानमें स्थिर रहते हैं और सोम दुलोकके प्रकाशसे आश्रय लेकर रहा है । ( इसी प्रकार वे वर्षपर सत्य, सूर्यप्रकाश, सरलता और दुलोक अर्थात् स्वर्गके आधारसे अपना जीवननम चलायें ) ॥ १ ॥

सोमके कारण आदित्यमें बल आया और पृथ्वीका विस्तार हुआ है, और नक्षत्रोंमें भी सोम ही तेज बघा रहा है । इसी तरह वे वर्षपर सोम आदि वनस्पति भक्षण कर अपने बल, महत्त्व और तेजकी वृद्धि करें ॥ २ ॥

जब यज्ञमें सोमका रस निकालने लगते हैं, तब सोमरस पीनेना निश्चय सचको होता है । परंतु जिसको ज्ञानोत्तम सोम समझते हैं, वह जिस ही है, कोई साधारण मनुष्य उसका रस नहीं पी सकता । ( वे वर्षपर उसी सोमरसको पीनेसे शिष्ट पुरपांथ करें ) ॥ ३ ॥

यह सोम पिबे जानेके बाद भी वृद्धिको प्राप्त होता है । यह नष्ट नहीं होता । क्योंकि प्राण ही इसका रक्षक है । जैसे प्रगसे आनेवाले माहिनासे वर्ष बनता है, ( उसी तरह नये वर्षे आनेसे सोम यही सूर्यवद् ह्रींभती हो जाती है, वेसे ही वर्षपर औसाधिक आश्रति भावेनर इवाश न हों, अविदुः त्रिगुणित उरसाहसे अपना जीवन व्यतीत करें ) ॥ ४ ॥



अच्छद्भिर्धानैर्गुपितो पाईतैः सोम रक्षितः । ग्राह्यामिच्छुष्वन्तिष्ठसि न वै अक्षाति पार्थिवः ॥५॥  
 चिर्चिरा उपवर्हेणं चक्षुरा अम्पर्जनम् । घौर्भूमिः कोश आसीधदर्यत्सूर्या पतिम् ॥ ६ ॥  
 रैभ्यासीदनुदेर्या नाराशंसी न्योचनी । सूर्यायां भद्रमिद्रासो गार्थयेति परिंक्रुता ॥ ७ ॥  
 स्तोमां आसन्प्रतिघयः कुरीरं छन्द ओपद्मः । सूर्यायां अभिनां वराधिरासीत्पुरोगवः ॥ ८ ॥  
 सोमो वधूयुरभवदुश्विनांस्वामुमा वरा । सूर्यां वत्स्पये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ॥ ९ ॥

अर्थ— हे सोम ! ( आच्छद्भिर्धानैः गुपितः ) भाष्पादनेसे सुरक्षित और ( पाईतैः रक्षितः ) बर्षोंसे रक्षित हुआ हुआ तू ( ग्राह्यां इत् शूष्वन्ति तिष्ठसि ) इन रस निकालनेवाले पापोंका शब्द सुनवा हुआ विषा रक्षता है । ( पार्थिवः ते न अक्षाति ) कोई मर्त्यलोकका निवासी वेदा भक्षण नहीं कर सकता ॥ ५ ॥

( यत् सूर्यां पति अयात् ) जब सूर्या अपने पतिके पास गयी, तब ( चिर्चिः उपवर्हेणं धाः ) संकल्प गकिया हुआ, ( घक्षुः अभि अम्पर्जनं आः ) बाँध अज्ञान बना तथा ( घौः भूमिः कोशः आसीत् ) घौं और पृथिवी काजाना बने ॥ ६ ॥

( रैभ्योः अनुदेर्या आसीत् ) रैभी प्राया विदाई-गान बनी, ( नाराशंसी न्योचनी ) नाराशसी मंत्र शक्यताका गान बना । ( सूर्यायाः यासः भद्रं इत् ) सूर्याका वक्ष बहुत कल्याणकारी है । वह सूर्यां ( गार्थया परिंक्रुता पति ) गार्थामेति सुसोभित होकर चलती है ॥ ७ ॥

( स्तोमाः प्रतिघयः आसन् ) स्तुतिके मंत्र भ्रम बने, ( कुरीरं छन्दः ओपद्मः ) कुरीर नामक छन्द उसके सिके भूषण बने । ( अभिनां सूर्यायाः वरा ) दोनों अभिदेव सूर्याके साथी थे और ( अग्निः पुरोगवः आसीत् ) अग्निदेव अग्रणी था ॥ ८ ॥

( यत् सविता मनसा शंसन्तीं सूर्यां पत्ये अदात् ) जब सविताने मनसे ( अपने पतिकी ) स्तुति करनेवाली सूर्याकी पतिके हाथमें दिया, उस समय ( सोमः वधूयुः अवयत् ) सोम वधूकी इच्छा करनेवाला था, ( उभौ अभिनी वरी आस्तां ) दोनों अभिदेव साथी थे ॥ ९ ॥

भाषार्थ— सोम सब प्रकारसे सदा सुरक्षित है, मांठरिक्त और बाध रहन सायनेसे वह सुरक्षित हुआ है । इन सुरक्षित हुए दिव्य सोमका भक्षण कोई साधारण मनुष्य नहीं कर सकता । ( ये वधूयुः इतो तदा अपने भागको सुरक्षित रखें और अपने भागको किसीका भक्ष्य होने न दें ) ॥ ५ ॥

जब वधू वरके पर जाती है, तब उसका भद्री उसका ठकिया और बाँध ही अज्ञान होता है, ( यथात् बाध सायन उसके मुखके बाध नहीं होते, उसके मनके भाग ही उसको सुख देते हैं ) मानो उसके लिये वह सब आकाशका भवकाय सज्जनेके सामान प्रतीत होता है, क्योंकि पतिका घर ही उसको सब सुख देनेवाला होता है ॥ ६ ॥

वेदमंत्रोंसे उस वधूकी निरुत्सृष्टसे विदाई होती है और उसी प्रकार मंत्रोंसे ही उसका पतिगृहमें शक्यता होता है । मंत्रोंद्वारा पुनोत्त हुआ पतिके घरका वक्ष उस वधूका कल्याण करनेवाला होता है ॥ ७ ॥

पतिके घरके पक्ष ही वधूके लिये भोग और वेदमंत्र ही उसके भूषण होने हैं । जो वधूकी संगतीके लिये जाने हैं, वे मानो अभिदेव होने हैं । और जो पतिके बाधकोके लिये जाय है, वह सबका प्रकाश अभिदेव ही है ॥ ८ ॥

जो वर है वह मानो सोम है, संगती करनेवाले अभिदेव हैं और वधूका रिता सूर्य है, जो भद्री पुनीको वरके हाथमें देता है । वधू भी पतिके विपयमें मनमें प्रसंसाके भाव रखती है । ( वधूवरकी परिचरिपति ऐसी होनी चाहिये । ) ॥ ९ ॥

मनो अस्या अन आसीत् औरासीदुत् च्छदिः । शुक्रावन्तुष्वाहावास्तां यदयान्सूर्या पतिम् ॥ १० ॥  
 श्रुत्सामाभ्यांमभिहितौ गार्वां वे सामनावैताम् । श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्याक्षराचरः ॥ ११ ॥  
 शुचीं ते चक्रे यात्या व्यानो अस्तु आहतः । अनो मनसायं सूर्यासिंहप्रयती पतिम् ॥ १२ ॥  
 सूर्यायां बहतुः प्रागां त्सविता यस्वास्तुजत् । मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु क्युं ह्वते ॥ १३ ॥  
 यदक्षिणा पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण बहतुं सूर्यायाः । ववैकं चक्रं वांमासीत्क्वद्विष्टाय तस्यतु ॥ १४ ॥

अर्थ— ( यत् सूर्या पतिं अयात् ) जब सूर्य पतिके पास गयी, तब (अस्याः मनः अनः आसीत्) इसका मन रथ बना (उत् योः छदिः आसीत्) और तुलोक उस रथका छत सपोर्ट ऊपरका भाग बना । और (शुक्रौ अनङ्घाहौ आस्तां) इस रथमें दो बलवात् बैल जोड़े गये ॥ १० ॥

(श्रुत्—सामाभ्यां अभिहितौ ते गार्वा) ऋग्वेद और सामवेदके मन्त्रोद्गारा प्रेरित हुए हुए तथा सूर्यके होने के लिये (सामनो येतां) शान्तिले चले । (श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां) दोनों कान ठेरे रथके दो चक्र बने । (दिवि पन्याः चराचरः) तुलोकमें ठेरा मार्ग चर और अचर रूप समास्त संसार था ॥ ११ ॥

(ते यात्याः चक्रे शुचीं) ठेरे जानेके रथके दोनों चक्र शुद्ध थे । (अक्षे व्यानः आहतः) उसने अक्षके स्थानपर व्यान नामक प्राण था । (पतिं प्रयती सूर्या) पतिके पास जानेवाली सूर्या इस तरहके (मनः-मयं आ रोहत्) मनोमय रथ पर चली ॥ १२ ॥

(दे सविता व्यासृजत्) जिसको सविताने भेजा था, वह (सूर्यायाः बहतुः प्रागाम्) सूर्याका दहेज आगे भेज दिया गया है । (मघासु गावः हन्यन्ते) मघा नक्षत्रमें गौयें भेजी जाती हैं । और (फल्गुनीषु द्युहाते) फल्गुनी नक्षत्रमें विवाह होता है ॥ १३ ॥

हे (अभिती) गार्वादेवो ! (यत् सूर्यायाः बहतुं) जब सूर्याका दहेज लेकर (पृच्छमानौ त्रिचक्रेण अयातं) तुम दोनों पहले हुए तीन चक्रोंवाले रथके चले, तब (वां एकं चक्रं) तुम्हारा एक चक्र (क आसीत्) कहाँ था, और तुम दोनों (द्विष्टाय क तस्यतु) दशानिके लिये कहाँ दहरे थे ? ॥ १४ ॥

भाषार्थ— जब वधू अपने पतिके घर जाये तब वह रथमें बैठकर गये । उसमें दो उत्तम बैल (या पोडे) जोड़े गए हों । यथासंभव वे उत्तम और श्रेष्ठवर्गके हों । (वस्तुतः वधूका मन ही यह रथ है, याद रथकी अपेक्षा वधूका मन ही ऐसा चाडिये कि जिसमें वे रथ आदि याद आदमर कल्पनासे ही पूर्ण हों ।) ॥ १० ॥

इस वधूके रथके यादके वेदमंत्रों द्वारा चलाये जाय, साथ साथ सगर्वेद मंत्रोंका गायन होता रहे । वह वधू इसलिये गृहस्थाध्याय स्वीकार करनेके लिये पतिके घर जाती है, कि इसका स्वर्गका मार्ग सुगम हो अर्थात् पतिपत्नी मिलकर ऐसा आचरण करें कि जिससे उनको सहज स्वर्ग प्राप्त हो जाय ॥ ११ ॥

वह वधू पतिके घर जाये समय जिस मनोमय रथपर बैठनी है, उसके चक्र शुद्ध हों । (यहा चालचलनकी शुद्धता और मनोरथको दक्षिणता वधू धारण करे यह बात सूचित होती है ।) ॥ १२ ॥

वधूका पिता वरको श्रांति करनेके लिये गौली दहेज दक्षिणे वरके स्थानपर पहुँचावे । यह पक्षि वहा पहुँचे और पश्चात् विवाह हो । मघा नक्षत्रमें गौयें भेजी जायें, और फल्गुनी नक्षत्रमें विवाह हो ॥ १३ ॥

वधूकी ओरसे जो दहेज वरके पास लेगना हो, वह कोई दो सज्जन (यहा दो अथिनी देव) अपने रथमें बैठकर ले जायें । पूछ पूछ कर दिक वरके स्थानपर पहुँच जायें । ये ही वधूके रथको वरके स्थानका मार्ग दर्शावेवाले होनेके कारण किसी योग्य स्थानपर उहें ॥ १४ ॥

यदयाति शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप । विष्वे देवा अनु तद्धामजानपुत्रः पितरंमवृणीत पूषा ॥ १५ ॥  
 द्वे तं चक्रे ष्षे गङ्गाणं ऋतूया विदुः । अथैकं चक्रं यद्गृहा तदद्वातय इद्विदुः ॥ १६ ॥  
 अर्थमणं यजामहे सुवन्धुं पतिवेदनम् । ऊर्गारुकाभिष्व बन्धनारप्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥ १७ ॥  
 प्रेतो मुञ्चामि नामुतः । सुवद्दाममुतस्करम् । यथेयमिन्द्र मोद्वः सुपुत्रा सुमगासति ॥ १८ ॥  
 प्र त्वां मुञ्चामि वरुणस्य पाशायेन त्वाऽवशास्सविता सुशेवाः ।  
 ऋतस्य योनीं सुकृतस्य लोके स्योनं तं अस्तु सहस्रंमलाथ ॥ १९ ॥

अर्थ— हे (शुभस्पती) शुभ करनेवाले भगिनी ! तुम दोनों (यत् वरेयं सूर्या उप अयातं) जब पतिके द्वारा वरण करने योग्य सूर्यके समीप गये, तब (यां तत् विश्वे देवा अन्यजानन्) तुम्हारा यह कर्म सब देवोंने पसन्द किया था, तथा (पुत्रः पितरं पूषा अवृणीत) जिस प्रकार पुत्र पिताको स्वीकार करता है, वही प्रकार पूषाने तुम्हें स्वीकार किया ॥ १५ ॥

हे (सूर्ये) सूर्य ! (ते द्वे चक्रे गङ्गाणाः क्रतूया विदुः) हेरे दोनों चक्रोंकी ज्ञानी लोग ऋतुके अनुसार जानते हैं । (अथ यत् एकं चक्रं गृहा) और जो एक चक्र गृह है, (तत् अद्वातयः इत् विदुः) उसको निजैव ज्ञानी ही जान सकते हैं ॥ १६ ॥

(सुवन्धुं पतिवेदनं) उत्तम बन्धुबंधनोंसे युक्त, पतिका ज्ञान देनेवाले तथा (अर्थमणं यजामहे) श्रेष्ठ मनवाने मनुष्यका हम सत्कार करते हैं । (उर्गारुकाभिष्व इय) वास्तुकेको जैसे देवके बन्धनसे अलग किया जाता है, उस प्रकार (इतः प्र मुञ्चामि) इस विद्वत्पते तुम मुक्त हो, (न अमुतः) परंतु पतिकुलसे नहीं, मर्यात् पतिकुलसे जोड़ता हूँ ॥ १७ ॥

(इतः प्रमुञ्चामि न अमुतः) यहाँ [पतिकुल]से तुम मुक्त करता हूँ, परंतु यहाँ (पतिकुल)से नहीं । (अमुतः सुपदां करं) यहाँ तो मैं उत्तम प्रकार वाधता हूँ । हे (मिद्वः इन्द्र) राजा इन्द्र ! (यथा इये) जिससे यह वपू (सुपुत्रा सुमगा असति) उत्तम पुत्रवाली और उत्तम भाग्यसे युक्त होये ॥ १८ ॥

(येन त्वा सुशेवाः सविता अयध्यात्) जिससे तुम सेवा करने योग्य सविताने थाया था । (त्वा वरणस्य पाशात् प्र मुञ्चामि) उस वरणके पाशसे तुमसे मैं मुक्त करता हूँ (ऋतस्य योनीं सुकृतस्य लोके) सदाकारीके धाम और सत्कर्म वर्णने लोकमें (सह-संभलायै ते) पतिके सहबर्तमान तुम (स्योनं अस्तु) मुक्त होये ॥ १९ ॥

भावार्थ— वरुणी औरसे मंगनी करनेवाले (योनीं अग्निनीकुमार) दो वैध वपूके विवाहेवाय कम्पाकी मंगनी करनेके लिये आये, अन्य सब लोग उनको समति देंगे । जैसे पुत्र पिताका आदरके साथ स्तगत करता है, वैसे ही उन मंगनी करनेके लिये आये दुर्भोका राजत वपूका पिता रहे ॥ १५ ॥

सूर्या नामक सविताकी पुत्री तीन चक्रोंवाले रूपर वैदिकर अपने पतिके घर गई थी । इसी तरह वपू अपने वैदिकर पतिके घर आये । वपूके स्वयं और गुल चक्रोंको जानी लीज जानें ॥ १६ ॥

श्रेष्ठ मनवाने बन्धुबंधनोंसे युक्त सज्जनही वरुका पता दें । वरुका पता किसी हीन मनुष्यको कभी न दिया जाय । जैसे वरु अपने वैधनसे मुक्त होता है, उर्गारुका वपू अपने विद्वत्पते अपना संवत्प छोड़ देंगे, परंतु पतिकुलसे वपूका संबंध कभी न छूटे ॥ १७ ॥

वपूका संबंध विद्वत्पते छूटे, परंतु पतिके कुलसे न छूटे । पतिकुलसे संबंध भंग न होये । परमेश्वर हम वपूके पतिकुलमें उत्तम पुत्रोंसे युक्त और उत्तम भाग्यसे युक्त करे ॥ १८ ॥

विवाह होते ही कम्पा बरुको बन्धनोंसे मुक्त होना है । सविता ईशने ही कम्पाको बरुके धर्मप्राप्तिये बंधन होता है । वपूका विवाह होते ही वह पतिके घर सदाकारी और सत्कर्म करनेवालोंके लिये पदुचरी है । पतिका या वपूको धर्म-निष्ठा देनेवाला बने ॥ १९ ॥

ममस्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विनो त्वा प्र वंहतां रथेन ।  
 गृहान्मच्छ गृहपन्ती यथासीं वशिन्ती त्वं विदधमा वंदासि ॥ २० ॥  
 इह प्रियं प्रजायै ते समृच्यतामसिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।  
 एना पत्यां तन्वै सं स्पृशस्वायु जिर्वीविदधमा वंदासि ॥ २१ ॥  
 इद्वेक स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्रुतम् । क्रीडन्ती पुत्रैर्नष्टभिर्भोदमानी स्वस्तकौ ॥ २२ ॥  
 पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्ती परिं पातोर्णवम् ।  
 विश्वान्यो सुर्वना विचष्टं क्रतूरन्यो विदधञ्जायते नवंः ॥ २३ ॥

अर्थ— (भगः त्वा हस्तगृह्य इतः नयतु) भग तुझे हाथ एकदकर पहासे ले जाये, आगे (अश्विनो त्वा रथेन प्र वंहतां) अश्विन तुझे रथमें बिछलाकर पहुँचावे। अपने पतिके (गृह्यान् गच्छ) घरको जा। (यथा त्वं गृहपन्ती वशिन्ती असः) यहाँ वृषको स्वामिनी और सबको बरामें रखनेवाली हो। वहाँ (त्वं विदधं आयदासि) तू उचम शानकी बातें कर ॥ २० ॥

(इह ते प्रजायै मियं समृच्यतां) यहाँ तेरे संतानके लिये विषकी सुधि हो, (असिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि) इस घरमें गृहस्थाधमके लिये दू आगती रह। (एना पत्या तन्वै सं स्पृशस्व) इस पतिके साथ अपने घरीलका सपने कर (अथ जिर्वी) और बूढ़ होनेपर तू (विद्युयं आ वंदासि) उचम उपदेश कर ॥ २१ ॥

(इह पय स्तं) यहाँ रहो। (मा वि यौष्टं) कभी विचलत न हो। (पुत्रैः नष्टभिः क्रीडन्ती) पुत्रों और नाति-बोंसे खेलते हुए (भोदमानी स्वस्तकौ) भानंदित होकर अपने घरवारसे पुत्र होते हुए (विभ्यं आयुः उपचतुते) पूर्ण आयुका भोग करो ॥ २२ ॥

(पतीं शिशू क्रीडन्ती) के दोनों पाऊक खेलते हुए (माययर् पूर्वापरं चरतः) गलितसे आगे पीछे चले हैं और (अयं परि यातः) समुद्रतक भ्रमण करते हुए पहुँचते हैं। (अन्यः विश्वा भुवना विचष्टे) वनमेंसे एक सब भुवनोंकी प्रकाशित कराता है और (अन्यः क्रतूर् विदधत् नवः आयते) दूसरा क्रतुओंकी बनावट हुआ स्वयं भी नया बना करता है ॥ २३ ॥

भावार्थ— वधुका हाथ एकदकर आयुका देव उसको पहिले पशाने, यहाँ अश्विनीदेव रथमें बिछलाकर बिबाहके पञ्चाङ्ग इसको पतिके घर पहुँचावे, इस तरह वधु पतिके घर पहुँचे। वहाँ पतिके घरकी स्वामिनी और सबको अपने घरमें रखनेवाली होकर रहे। ऐसी ही ही योग्य प्रसंगमें उचम संमति दे सकनी है ॥ २० ॥

इस धर्मपत्नीके संवात उचम सुखमें रहे। यह धर्मपत्नी अपना गृहस्थाधम उचम रीतिते बढावे और अपने पतिके साथ सुखसे रहे। जब इस तरह धर्ममार्गसे गृहस्थाधम चलती हुई यह वी पृथ हो, तब यह योग्य संमति देने योग्य हो ॥ २१ ॥

वो पुरुष अपने ही घरमें रहे, कभी विचलत न हो। अपने मातृघरके साथ खेले, अपने घरमें भानंद मनार्ने और धर्मोत्साह गृहस्थाधम चलाने हुए संपूर्ण आयुका उपभोग छे ॥ २२ ॥

इस गृहस्थिके मातृक छोटी बड़ी आयुवाले अपनी शक्तिते खेलते करते हुए बडे होकर समुद्रतक पुरुषार्थ करते हुए चले। एकसे सब जगत्को प्रकाशित किया, वो दूसरा प्रतुके अदुसात गयीन लयीत होकर उदपको प्राप्त हो। कर्णात् गृहस्थिके पुत्र अपने पुरुषार्थसे जगत्की प्रकाशित करें ॥ २३ ॥

नर्षेनवो भवसि जापमानोऽह्नां केतुरूपसामेष्पग्रम् ।

सागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः

॥ २४ ॥

परां देहि शामुर्ष्यं ब्रह्मभ्यो वि मञ्जा वसु । कृत्वीपा पद्वतीं भूत्वा जाया विंशते पतिम्

॥ २५ ॥

नीललोहितं भवति कृत्वास्तुक्तिर्व्यज्यते । एषन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्विन्धेषुं बध्यते

॥ २६ ॥

अश्रीला तनुर्भवति रुद्रती पापयाभुया । पतिर्विद्वधोऽत्र वाससः स्वमहमभ्युणुते

॥ २७ ॥

जाग्रसनं विग्रसनमथो अधिविकर्तनम् । सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति

॥ २८ ॥

अर्थ— (जायमानः भवः नयः भवसि) अन्त होता हुआ गया गया होता है। (अह्नां केतुः उपरसां अर्षं पयि) दिनोंको बतानेवाला गौर उपाजोंके अग्र भागमें होता है। (आयन् देवेभ्यः भार्गं विदधासि) आता हुआ देवोंके लिये विनाश समर्पण करता है। तथा हे चन्द्रमा ! (दीर्घं आयुः प्र तिस्ते) ए दीर्घ आयु देता है ॥ २४ ॥

(शामुर्ष्यं परा देहि) यह उक्तम बध दान कर। (ब्रह्मभ्यः यसु विभज) ब्राह्मणोंको धन दे। जब (पया पद्वती कृत्वा जाया भूत्वा) यह पापवाली कृत्वा अर्थात् विनाशक स्वभाववाली श्री (पतिं विदधते) पतिमें पाप भागी है ॥ २५ ॥

(नीललोहितं भवति) नीला गौर रंग होता है, औपयुक्त होता है तब (कृत्वास्तुक्तिः व्यज्यते) विनाशकी कृत्वा बरती है, (अस्या ज्ञातयः पश्यन्ते) इसके जालिये अनुप्य बरते हैं पर (पतिः यन्धेषु बध्यते) पति बन्धनमें बांध दिया जाता है ॥ २६ ॥

(यत् पश्यः वाससः) जब छोटे बछले (पतिं स्वयं अंगं अभि ऊणुते) पति बधने शरीरको अपह्लाहित करता है, तब (अभुया पापया) इस पापों शीतिले (रुद्रती तनुः) सुन्दर शरीरके होनेपर भी वह (अश्रीला भवति) शोभाहित होता है ॥ २७ ॥

(जाग्रसनं विग्रसनं) शरीरको, शिरसे तथा (अथो अधिविकर्तनं) सजीवर रहनेका बधमें (सूर्यायाः रूपाणि पश्य) सूर्यके रूपको देख। (उत तानि ब्रह्मा शुम्भति) इन बधोंको ब्राह्मण तेजस्वी करता है ॥ २८ ॥

भाषार्थ— गृहस्थी लोग नये नये उपासने पुष्टपाप करते हुए उपाजोंको प्रकथित करनेवाले सूर्यसे समान समर्थ मार्गदर्शक बनें। यज्ञमें देवोंका भाग उनको समर्पण करें और यज्ञमय जीवन व्यतीत करते हुए सूर्यसे भादुका उपगोम लें ॥ २४ ॥

विवाहके समय उत्तम उत्तम बध विद्वान् ब्राह्मणोंको दान दिये जायें, और उनको धन भी बांटा जायें। (ये ब्राह्मण बधको सुशिक्षा दें) यदि बधको उचित शिक्षा न मिली तो यह बध पतिमें बर प्रवेष्ट करके मय कुलका विनाश कर सकती है। (बधके अधमोचरणसे कुलका नाश होता है) ॥ २५ ॥

[पतिकलमें बध यदि अधमोचरण करने लगे, तो] तब सरासा होता है, उस दुराचारी बधकी विनाशक ब्रुहि बड भागी है, उसके पिताके संक्षयी लोग जमा हो जाते हैं, और इस प्रकार विधवा पति बन्धनमें पसरता है। [इमन्पि कन्याको सुशिक्षा देनी चाहिये।] ॥ २६ ॥

श्रीका बध दुराज कभी न पड़ने। यदि किसीने पहना तो उससे पतिका तेजस्वी शरीर भी शोभा रहितमा हो जाता है ॥ २७ ॥

एक बध पापवाला होता है, दूसरा दुराजके जैसा पापवदार होता है, तीसरा ओपनेका पध होता है। इन बधोंमें बधके रूपको सुंदरता बडाई जाये। इन बधोंके सम्बन्धका योग्य ज्ञान ब्राह्मण गृहस्थियोंको देवे, किन्तु बधोंके दोर दूर हो जायें ॥ २८ ॥

तृष्टमेतत्कटुकमपाष्ठवेद्विष्वैतदचवे । सूर्या यो ब्रह्मा वेदु स इद्वाधुंयमर्हति ॥ २९ ॥

स इचत्स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम् । प्रायश्चित्ति यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ॥ ३० ॥

युवं भगं सं भरतं समृद्धपूतं वदन्तावृताद्येषु ।

ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारुं संभलो वंदतु वाचमेताम् ॥ ३१ ॥

इहेदसाय न परो गमायेमं गांवः प्रजया वर्षयाथ ।

शुभं यतीहस्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवाः क्रुद्भिद् वो मनसि ॥ ३२ ॥

इमं गांवः प्रजया सं विशाद्यायं देवानां न मिनाति भागम् ।

अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वा धाता सविता सुवाति ॥ ३३ ॥

अर्थ— ( एतत् सृष्टं ) यह एसा उत्पन्न करनेवाला है, ( कटुकं ) यह कड़वा है, ( अपाष्ठयत् विषयत् ) यह पृथित और यह विषयुक्त अन्न है, मत्त ( एतत् अस्त्ये न ) यह खानेके योग्य नहीं है। ( यः ब्रह्मा सूर्या वेदु ) जो मातृण सूर्याको इस तरह सिखाता है, ( सः इत् वापूर्यं अर्हति ) वह नि सदेह बपुको ओरसे वक्ष देने योग्य है ॥ २९ ॥

( यः प्रायश्चित्ति अध्येति ) जो प्रायश्चित्त प्रकरण अर्थात् चित्त सुद्ध करनेका अभ्ययन कराता है, ( येन जाया न रिष्यति ) जिससे पत्नी नष्ट नहीं होती ( नः इत् ) वही निश्चयसे ( तत् सुमंगलं स्योनं वासः हरति ) उस मंगल और सुखकर वक्षको ले सकता है ॥ ३० ॥

( युवं व्रत-उद्येषु प्रतं वदन्ती ) तुम दोनों सत्य व्यवहारमें रह कर सत्य बोलते हुए ( समृद्धं भगं संयतं ) मरुद्वियुक्त भाग्य प्राप्त करो । दे ब्रह्मणस्पते ! ( पतिं अस्यै रोचय ) पतिसे विषयमें इस स्त्रीके मनमें रचि उत्पन्न कर । ( संभलोः पतां वाचं घात धदतु ) पति इस वाणीको सुन्दरतासे बोलें ॥ ३१ ॥

हे ( गावः ) गौवो ! ( इह इत् असाथ ) तुम यहीं रहो । ( परः न गमाथ ) दूर मत जाओ । ( इमं प्रजया वर्षयाथ ) इस वर्षको उत्तम संततिसे साथ बढाओ । हे ( उरियाः ) गौवो ! ( शुभं यतीः सोमवर्चसः ) शुभको प्राप्त करानेवाणी और अग्निसे समान तेजस्वितासे युक्त होओ । ( विश्वे देवाः यः मनसि इह वत् ) सब देव तुम्हारे मनमेंको यहाँ स्थिर कर ॥ ३२ ॥

हे ( गावः ) गौवो ! ( इमं प्रजया सं विशाद्या ) इसके घरमें अपनी संतानके साथ प्रवेश करो । ( अयं येद्यानां भागं न मिनाति ) यह परमान देवोंने भागका लोच नहीं करता है । ( पूषा सर्वे मरुतः ) पूषा और सब मरुत ( धाता सविता ) विधाता और सविता ( अस्मै अस्मै वः यः सुवाति ) इसी अनुष्येके स्थिे तुमको उत्पन्न करते हैं ॥ ३३ ॥

भाष्यार्थ— एक अन्न पृष्ठाको ब्रह्मनेराना, दूसरा कड़वा, तीसरा सदा कड़वा और चौथा विषयुक्त होता है । इस प्रकारके अन्न पृष्टविषयके स्थानेयोग्य नहीं है । इस तरह की शिक्षा देनेवाले ब्राह्मणको बपुको ओरसे वक्ष देने जावे ॥ २९ ॥ जो ब्राह्मण चित्त सुद्ध करनेका ज्ञान जानता है, जिय ज्ञानके प्रसन्न होनेसे स्त्री विशादवी नहीं, इस प्रकारकी शिक्षा देनेवाले अभ्यासक ब्राह्मणको ही मंगल और सुंदर वक्ष देना योग्य है और ऐसा ब्राह्मण ही ब्रह्मका ज्ञान लिये ॥ ३० ॥

गृहस्थी स्त्रीपुरुष संधि व्यवहार करें, सदा सत्य बोलें, और धनार्जपति बनवायें । पत्नीके मनमें पतिसे विषयमें वद्या भाररभाव रहे और पति भी सुंदर और मयुर भावण करे ॥ ३१ ॥

गृहस्थीके घरमें गौरे रहें, यहाँसे गौरे भाग न जाये । गौरे बछड़े देती रहे । उनकी संख्या बढ़े । गौरे शुभभाषणमें और तेजयुक्त हों और गौवें भी घरवालोंपर प्रीति करें ॥ ३२ ॥

गौवें अपने बछड़ोंके साथ घरमें प्रवेश करें । गृहस्थ देवपत्न प्रतिदिन करें, कमी पक्का होय न हो । सब देव हम गृहस्थीके घरमें गौवोंकी संख्या बढ़ावें ॥ ३३ ॥

अनुक्षरा अजयः सन्तु पन्थानो येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।

सं भगेनै समर्थ्यम्णा सं धाता संजतु वर्चसा

॥ ३४ ॥

युञ्च वर्चो अक्षेपु सुरापां च यदाहितम् । यद्गोपुश्चिन्ता वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम्

॥ ३५ ॥

येन महान्पण्या जघनमर्धिना येन वा सुरा । येनाक्षा अभ्यर्षिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३६ ॥

यो अनिध्मो दीदयदुस्वन्तयं विप्रास ईदते अचुरेषु ।

अर्पा नपान्मर्धुमवीरयो द्वा यामिरिन्द्रो वाबुधे वीर्पावान्

॥ ३७ ॥

इदमहं रुद्रान्तं ग्रामं तंनदूषिमपोहामि । यो भद्रो रोचनस्तमुदं वामि

॥ ३८ ॥

आस्यै ब्राह्मणाः स्रपनीहिरन्तववीरघ्नीरुद्वन्त्वापः

अर्पुम्णो अर्धि पर्येतु पूषन्प्रतीक्षन्ते शशुरो देवरश्च

॥ ३९ ॥

अर्थ— ( येभि नः सखायः वरेयं यन्ति ) जितसे हमारे सब मित्र कन्याएं धर पट्टेच्छे हैं ( पन्थानः अनुक्षराः अजयः सन्तु ) वे सब मार्ग कष्टकरहित और सरल हो, ( धाता भगेन अर्थ्यम्णा वर्चसा सं सं सं संजतु ) विधाता, भग और अर्थमा तेजसे इसे संयुक्त करें ॥ ३४ ॥

हे ( अभिध्मी ) अधिदेवो ! ( यत् वर्चो अक्षेपु ) तो तेज आलोमें हे और ( यत् सु-रायां आहितं ) जो तेज संपन्नमें होता है, ( यत् च वर्चो गोपु ) जो तेज गीर्वामें है, ( तेन वर्चसा इमां आवर्तं ) उस तेजसे इस वर्चुकी रक्षा करो ॥ ३५ ॥

हे ( अभिध्मी ) अधिदेवो ! ( येन महान्पण्याः जघनं ) जिससे बड़ी गौका जघन मर्धार, निचला दुग्धाशयका भाग, ( येन वा सुरा ) जिससे संपत्ति, ( येन अक्षा अभ्यर्षिच्यन्त ) जिससे आंखें भरपूर रहती हैं ( तेन वर्चसा इमां आवर्तं ) उस तेजसे इस वर्चुकी रक्षा करो ॥ ३६ ॥

( यः अन्तु अन्तः अनिध्मः दीदयत् ) जो जलोंमें इन्धनके बिना चमकता है, ( यं विप्रास-अच्यरेषु ईदते ) जिसकी शानी लोग यज्ञमें स्तुति करते हैं और ( यामिः वीर्पावान् इन्द्रः वाबुधे ) जिससे वीर्यवान् इन्द्र पड़ता है, हे ( अर्पां तपात् ! मधुमतीः अपः दाः ) जलोंको न गिरानेवाले देव ! देसा मधुर तेज हमें दे ॥ ३७ ॥

( इदं वहं तंनदूषिं त्वाप्तं ग्रामं अगोहामि ) यह मैं शरीरमें दोष उत्पन्न करनेवाले विवाहक रोगको दूर करता हूँ और ( यः भद्रः रोचनः तं उदचामि ) जो कल्याणमय तेज है, उसको धारण करना हूँ ॥ ३८ ॥

( ब्राह्मणाः अस्यै स्रपतीः आपः आहरन्तु ) ब्राह्मण लोग इस वर्चुके लिये स्नानका जल ले आवें । ( शर्वी-र्याः आपः उदजन्तु ) वीरका नास न करनेवाला जल वे लायें । ( अर्थ्यम्णाः अर्धि पर्येतु ) यह अर्थमाकी भागिणी प्रदक्षिणा करे । हे ( पूषन् ) पूषा ! ( शशुरः देवरः च प्रतीक्षन्ते ) समुर और देवर इस वर्चुकी प्रतीक्षा करें ॥ ३९ ॥

भावार्थ— दारक तथा वर्चुके धर जानेके मार्ग कष्टकरहित और सरल हो । परमेश्वर इत पृथक्स्थितियोंको तेजस्वी करके समृद्ध करें ॥ ३४ ॥

जो तेज आलोमें, ऐश्वर्यमें और गीर्वामें होता है, उस तेजसे यह वर्चु युक्त हो । यह ही तेजस्विनी हो ॥ ३५ ॥

जिस तेजसे गौका दुग्धाशय तेजस्वी हुआ है, जो तेज ऐश्वर्यमें और भाग्यमें होगा है, उन तेजसे यह ही युक्त होने और यह ही धर्मोपरणमें सुरक्षित रहे ॥ ३६ ॥

जलोमें इन्धनके बिना चमकनेवाला तेज है, यज्ञमें द्विजोंका ज्ञानरूप तेज है, और जलोंमें मधुरता है और वीर्य भी है । इन तेज, ज्ञान, माधुर्य और वीर्यसे ये गृहस्थी युक्त हों । इन्द्र इन्द्रिके आधिपत्यसे क्षत्रमे महान् हुआ है ॥ ३७ ॥

शरीरमें दोष उत्पन्न करनेवाले रोगबीजोंको दूर करके जिससे शरीर मीरोगी और भाग्यमय होना हो उन वर्चुको धारण करना चाहिये ॥ ३८ ॥

ब्राह्मण लोग यज्ञमें कि यह जल स्नान करनेयोग्य है, यह जल भीरलाका नास करके बल करनेवाला है । यशुवर श्रेष्ठ भग धारण करने अगिनी प्रदक्षिणा करें । श्रेष्ठ गुणमाली वर्चुकी प्रतीक्षा पतिगृहमे समुर और देवर करें ॥ ३९ ॥

शं ते हिरण्यं शुभं सन्त्वापः शं मेधिर्भवतु शं युगस्य तर्भे ।

शं तु आपः शतपवित्रा भवन्तु शुभु पत्या तन्वैः सं सृशस्व

॥ ४० ॥

खे रथस्य खेऽनंतः खे युगस्यं शतक्रतो । अपालामिन्द्र त्रिपुत्राकृणोः सूर्यत्वचम्

॥ ४१ ॥

आशासना सौमनसं प्रजा सौभाग्यं रथिम् । पत्युर्नुव्रता भूत्वा सं नृदस्वामृताय कम्

॥ ४२ ॥

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुपुत्रे वृषां । एवा त्वं सम्राज्येधि पत्युरस्ते परेत्य

॥ ४३ ॥

सम्राज्येधि श्वशुरेषु सम्राज्युत देवेषु । नतान्तुः सम्राज्येधि सम्राज्युत स्वधाः

॥ ४४ ॥

या अहन्तुश्वयन्याश्वं तस्मिन्ने या देवीरन्तां अमितोऽर्देदन्त ।

तास्त्वां जुरसे सं वर्षपन्त्वायुं पतौदे परि धरस्व वासः

॥ ४५ ॥

अर्थ— ( ते हिरण्यं शं ) तेरे लिये सुवर्ण कल्याणकारी हो, ( उ आपः शं सन्तु ) और जल सुखकर हो, ( मेधिः शं भवतु ) गौ बांधनेका स्तंभ सुखदायी हो । तथा ( युगस्य तर्भे शं ) तुझेका द्विद सुखकर हो, ( ते शतपवित्राः भापः शं भवन्तु ) तेरे लिये सौ प्रकारसे पवित्रता करनेवाला जल सुखदायी हो । ( पत्या तन्वै सं सृशस्व ) पतिके साथ अपने शरीरका स्वयं उत्तम रीतिले कर ॥ ४० ॥

हे ( शतक्रतो इन्द्र ) सैकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ( रथस्य खे ) रथके द्विदमें, ( अनंतः खे ) गार्गीके द्विदमें और ( युगस्य खे ) तुझेके द्विदमें ( अपालां त्रिः पुत्रा ) अयोग्य रीतिले पाती हुई सुखीको तीन शत पवित्र करके उसे ( सूर्यत्वचं अकृणोः ) सूर्यके समान तेजस्वी त्वचासे युक्त होने किया ॥ ४१ ॥

( सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रथि आशासना ) उत्तम मन, संतान, सौभाग्य और धनकी आशा करनेवाली द ( पत्युः अनुव्रता भूत्वा ) पतिके अनुकूल भावना करनेवाली होकर ( अमृताय कं सं नृदस्व ) अमरत्वके लिये अपने तरह सिद्ध हो ॥ ४२ ॥

( यथा वृषा सिन्धुः ) जिस प्रकार बछरावकी समुद्र ( नदीनां साम्राज्यं सुपुत्रे ) नदियोंका साम्राज्य पलाश है, ( यथा त्वं पत्युः अस्ते परेत्य ) उसी प्रकार द पतिके घर पहुंचकर ( साम्राज्येधि ) साम्राज्य होकर यहां रह ॥ ४३ ॥

( श्वशुरेषु सम्राज्येधि ) समुद्रमें स्वामिनी होकर रह । ( उत देवेषु सम्राज्ये ) देवोंमें भी महारानीके समान आदरसे रह । ( नतान्तुः सम्राज्येधि ) जनपदके साथ भी रानीके समान रह और ( उत श्वयन्याः सम्राज्ये ) सामके साथ भी सम्राटकी छीके समान होकर रह ॥ ४४ ॥

( याः देवीः अहन्तुः ) जिन देवियोंने स्वयं मृत काटा है, ( याः च अयन्तुः ) जिन्होंने बुना है, ( याः च तस्मिन्ने ) जो ताना तागतो हैं, ( याः च अमितः शान्तान् ददन्त ) और जो शान्तिके अन्तिम भागोंको दीक्ष रखती हैं, ( ताः त्वां जरसे सं श्वयन्तु ) वे तुझे बुद्धावस्थातक रहनेके लिये बुनें । द ( आयुष्मती इदं वासः परि धरस्व ) दीर्घ आयुवाली होकर इस वस्त्रको धारण कर ॥ ४५ ॥

भावार्थ— सुवर्ण, जल, गौका बंधनस्तंभ, जुरके भाग आदि सब कुर्यके कल्याण करनेवाले हैं । जल तो सी प्रकारसे पवित्रता करनेवाला है । गृहस्थके घरमें धर्मपत्नी पतिके साथ दिव्य लगाकर रहे ॥ ४० ॥

गृहस्थ तथा स्त्री अपनी तीन प्रकारकी सुखदायक कृपासे कराके सूर्यके समान तेजस्वी बनकर यहां बिराने ॥ ४१ ॥ गृहस्थके घरमें स्त्री उत्तम मन, संतान, सौभाग्य व धनकी इच्छा करती हुई, पतिके अनुकूल कर्म करती हुई, अमरत्व प्राप्तिके श्रेष्ठ सुखदायी मार्ग पर चले ॥ ४२ ॥

जैसे महासागर नदियोंका समूह है, उसी प्रकार पतिके घर पहुंचकर यह धर्म गृहस्थको सम्राट और अपनेको उसकी साम्राज्य बनाकर व्यवहार करे ॥ ४३ ॥

समुद्र, देवर, जनद और सास आदि सबके साथ शान्तिके समान व्यवहार करे और सबको सुख देवे ॥ ४४ ॥ घरमें देवियों मृत काते, कपड़ा बुनें, ताना तानें, कपड़ेके अन्तिम भाग दीक्ष करें । ऐसा उत्तम कपड़ा बुनें कि जो बुद्धावस्थातक धारण देवे । स्त्री दीर्घायु बनकर इस कपड़ेको पहने ॥ ४५ ॥



जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसिति दीव्युर्नरी ।

वामं पितृभ्यो य इदं संमीरिरे मयः जनये परिष्वजे ॥ ४६ ॥

स्योनें ध्रुवं प्रजापै धारयामि तेऽग्रमानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।

तमा तिष्ठानुमायां सुवर्चां दीर्घं तु आयुः सविता कृणोतु ॥ ४७ ॥

येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।

तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यधिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च ॥ ४८ ॥

देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु ।

अग्निः सुमगां जातवेदाः पत्ये पर्त्नी जरदधि कृणोतु ॥ ४९ ॥

अर्थ— ( जीवं रुदन्ति ) जीवित मनुष्यकी विदाई पर लोग रोते हैं, ( अध्वरं विनयन्ति ) पशुको साथ ले जाते हैं, ( नरः दीर्घां प्रसिति अनु दीव्युः ) मनुष्य दीर्घ मार्गका विचार करते हैं, ( ये पितृभ्यः इदं वामं समीरिरे ) जो निर्वै अपने मातापिताके लिये यह सुन्दर कार्य करते हैं, ये ही अपने ( पतिभ्यः मया जनये परिष्वजे ) पति-पौके लिये सुखदायी होती है जो स्त्रीको आर्हिंगन करता है ॥ ४६ ॥

( देव्याः पृथिव्याः उपस्थे ) पृथ्वी देवीके पास ( ते प्रजापै स्योनें ध्रुवं अग्रमानं धारयामि ) तेरी संतानके लिये सुखदायी और पथर जैसे स्थिर आधारको स्थापित करता हूँ ( ते आतिष्ठ ) उत्तर दक्षिण राह, ( अनुमायां ) आनन्दित हो, ( सुवर्चाः ) उत्तम तेजसे युक्त हो, और ( सविता ते आयुः दीर्घं कृणोतु ) सविता तेरी आयु लंबी करे ॥ ४७ ॥

( येन अग्निः ) जिस उदरपने अग्नि ( अस्याः भूम्याः दक्षिणं हस्तं जग्राह ) इस भूमिका दायां हाथ ग्रहण किया, ( तेन ते हस्तं गृह्णामि ) उसी उदरपने तेरा हाथ मैं पकड़ता हूँ, ( मा व्यधिष्ठाः ) दुःखी मत हो, ( मया सह प्रजया च धनेन च ) मेरे साथ प्रजा और धनके साथ रह ॥ ४८ ॥

( सविता देवः ते हस्तं गृह्णातु ) सविता देव तेरा पालिश्रम करे, ( राजा सोमो सुप्रजसं कृणोतु ) राजा सोम तुझे उत्तम सम्मानयुक्त करे, ( जातवेदाः अग्निः पत्ये सुमगां पर्त्नी जरदधि कृणोतु ) जातवेद अग्नि पतिके लिये लीनययुक्त स्त्रीको वृद्धावस्थातक जीनेवाली करे ॥ ४९ ॥

भावाध— विदाईपर मनुष्य रोया करते हैं। परंतु यह कन्या यद्यपि पितृवृत्से विदा होती है, यद्यपि पतिके घरमें गृहपञ्च करनेके लिये या रही है, अतः इस गृहस्थाश्रमके दीर्घ मार्गका लोग विचार करें और न रोयें। पितृपरके छोर्गोंको तो यह सुखका दिन है, क्योंकि यह बच्चे पलका प्रारंभ है। यह बच्चे पतिको सुख देती है और पति इसको आर्हिंगनसे सुख देता है। परस्पर सुखवृद्धि करना ही गृहस्थका पञ्च है ॥ ४६ ॥

इस भूमिपर तेरी संतान सुखपूर्वक दीर्घकालतक रहे, इसलिये यह पथरका आधार स्थापित करता हूँ। उत्तर पश्च, आनन्दित और तेजस्वी हो। इस तरह गृहस्थाश्रममें सुख रहनेसे तेरी आयु दीर्घ हो ॥ ४७ ॥

जैसे अग्नि और भूमिका संबंध है, वैसे ही संबंधके लिये मैं इस बच्चेका पालिश्रम करता हूँ। बच्चेको कष्ट न हो। यह बच्चे मेरे साथ प्रजा, धन और ऐश्वर्यसे युक्त हो ॥ ४८ ॥

सविता जैसे तेजस्वी बनकर पति स्त्रीका पालिश्रम करे, और सोम जैसे कलायुक्त होकर भर्भरचीमें संतान उत्पन्न करे। पतिपत्नी मिलकर दोनों इस गृहस्थाश्रममें वृद्धावस्थातक आनन्दित रहें ॥ ४९ ॥

गृहामि ते सौमगत्याय हस्तं मया पत्या ज्वरदृष्टिर्यथासः ।

भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्महं स्वादुर्गाहंपत्याय देवाः

॥ ५० ॥

भगस्ते हस्तमग्रहीत्सविता हस्तमग्रहीत् । पत्नी त्वमसि धर्मणाऽहं गृहपतिस्त्वहं

॥ ५१ ॥

गमेयमस्तु पोष्या महं त्वादाद् बृहस्पतिः । मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः छतम्

॥ ५२ ॥

त्वष्टा वासो व्युदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कशीनाम् ।

तेनेमां नारीं सविता भर्गश्च सूर्यामिव परि धत्ता प्रजया

॥ ५३ ॥

इन्द्राग्नी घावाशुषिवी मातरिषां मिश्रावरुणा भगो अश्विनोमा ।

बृहस्पतिर्मरुतो मरु सोम इमां नारीं प्रजया धर्षयन्तु

॥ ५४ ॥

अर्थ— (ते हस्तं सौमगत्याय गृहामि) तेरा हाथ मैं सौभाग्यके लिये पकड़ता हूँ । (मया मया पत्या ज्वरदृष्टिः असः) जिससे तू मुझ पतिके साथ बृदानवस्थाक जीनेवाली होकर रह । (भगः अर्यमा सविता पुरंधिः देवाः) भग, अर्यमा, सविता, पुरंधि और सब देवोंने (मया महं गाहंपत्याय अहुः) तुझको मेरे हाथमें शुद्धस्याधम पलानेके लिये दिया है ॥ ५० ॥

(भगो ते हस्तं अग्रहीत्) भगने तेरा हाथ पकड़ा है, (सविता हस्तं अग्रहीत्) सविताने तेरा हाथ पकड़ा है, (स्वं धर्मणा पत्नी असि) तू धर्मसे मेरी पत्नी है, और (अहं तव गृहपति) मैं तेरा गृहपति हूँ ॥ ५१ ॥

(इयं मम पोष्या अस्तु) यह स्त्री मेरे द्वारा पोषणकरनेयोग्य हो । (बृहस्पतिः मया महं अदाद्) बृहस्पतिने तुझे भुझको दिया है । दे (प्रजावति) संजानवाली स्त्री ! (मया पत्या शरदः संतं संजीव) मुझ पतिके साथ तू सौ वर्षतक जीवित रह ॥ ५२ ॥

(त्वष्टा वासः) त्वष्टाने यह वस्त्र (शुभे कं) कस्याम और तुझके लिये (बृहस्पतेः कशीनां प्रशिषा) बृहस्पति और कविके भातीनांदके साथ (व्युदधात्) बलाया है । (तेन इमां नारीं) उसने इस स्त्रीको (सविता भगः) सविता और भग (सूर्या इव) सूर्यके समान (प्रजया परिधत्तां) उत्तम संजानके साथ संजुक्त करे ॥ ५३ ॥

(इन्द्राग्नी) इन्द्र, अग्नि, (घावाशुषिवी) तुलोक, भूमि, (मातरिषां) वायु, मित्र, वरुण भग, (अश्वी अश्विनी) देवों अश्विनीकुमार, बृहस्पति, मरु, मरु, सोम ये सब (इमां नारीं प्रजया धर्षयन्तु) इस स्त्रीको संजानके साथ बड़ावे ॥ ५४ ॥

भावावार्थ— हे स्त्री ! मैं पति तेरा पाणिग्रहण सौभाग्यप्राप्तिके लिये करता हूँ । मुझ पतिके साथ तू बृदानवस्थाक रह । सब देवोंने तुझको शुद्धस्याधम पलानेके लिये मेरे हाथमें देया है ॥ ५० ॥

भग अर्थात् धनवान् होकर और सविता जैसा समर्थ और वेदवादी होकर तेरा पाणिग्रहण मैं करता हूँ । भगसे तू धर्मके अनुसार मेरी धर्मपत्नी है और मैं तेरा गृहपति हूँ ॥ ५१ ॥

यह धर्मपत्नी मेरे (पतिके) द्वारा पोषणके योग्य है । परमेधरने यह कन्या मेरे हाथमें दी है । यहाँ मेरे घरमें यह बहू सन्तानके पुत्र होकर मुझ पतिके साथ सौ वर्षतक सालभूसे रहे ॥ ५२ ॥

इस कारिगरेके द्वारा इसके लिये बनाया यह वस्त्र है, शशी माहणोंने इसको भातीनांद दिया है । यह धर्मपत्नी इसको पढ़ने और ईश्वरी कृपासे उत्तम संजानके पुत्र होने ॥ ५३ ॥

इन्द्राग्नादि सब देवी शक्तियां इस नारीको उत्तम संजानके साथ बड़ावे ॥ ५४ ॥

बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीपे केशी अकल्पयत् ।

सेनेमार्मभिना नारीं परये सं शौमयामसि

॥ ५५ ॥

इदं तद्रूपं यदवस्तु योषां ज्ञायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।

तामन्वर्तिष्ये सखिमिर्नवगवैः क इमान्विद्वाञ्चि चर्त पाशान्

॥ ५६ ॥

अहं वि प्यामि मयि रूपमस्या वेदुदित्ययुग्मनसा कुलार्पम् ।

न स्तेपमधि मनसोर्दमुच्ये स्वयं श्रध्नानो वरुणस्य पाशान्

॥ ५७ ॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाप्यन्नात्सविता सुशेवाः ।

उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहर्षन्त्यै वधु

॥ ५८ ॥

अर्थ— ( बृहस्पतिः प्रथमः ) बृहस्पतिने सबसे प्रथम ( सूर्यायाः शीपे केशान् अकल्पयत् ) सूर्यके तिरस केतोंको बताया । ( सेन ) उसी तरह ( अग्निनी ) हे अग्निनी कुमारी ! हम ( इमां नारीं परये सं शौमयामसि ) इस स्त्रीकी पतिके लिये सुशोभित हो ॥ ५५ ॥

( यत् योषा भवस्त, तत् रूपं इदं ) जो एक स्त्रीने धारण किया उसके कारण उसका यह रूप है । ( मनसा चरन्ती जायां जिज्ञासे ) मनसे भ्रमण करनेवाकी स्त्रीके मैं जानना हूँ ( नवगवैः सखिमिः तां अन्वर्तिष्ये ) पशुओं और अतिथियोंके साथ उसका मैं अनुसरण करता हूँ । ( कः इमान् विद्वाञ्चि चर्त ) कौन शान्ति इन पाशोंको काट सकता है ? ॥ ५६ ॥

( मनसा कुलार्पं यदयन् ) मनसे अपने कुलकी वृद्धिकी देखा हुआ ( अहं ) मैं ( अस्याः रूपं मयि विप्यामि ) इस स्त्रीके रूपको अपने मनमें स्थापित करता हूँ, यह भी ( इत् वेदुत् ) मेरे प्रेमके व्यवहारको जाने । मैं ( मनसा स्तेपे उवमुच्ये ) मनसे भी इस वपुके साथ चोरीका व्यवहार छोट देता हूँ, और उससे चोरी करते कोई भी चीज ( न मधि ) नहीं खाऊंगा । और ( स्वयं ) मैं स्वयं ( वरुणस्य पाशान्, अज्जानः ) वरुणके पाशोंको शिथिल करता हूँ ॥ ५७ ॥

हे ( वधु ) स्त्री ! ( येन सुशेवाः सविता त्वा अपञ्चात् ) जिससे सेवा करनेयोग्य सविताने तुझे बांध दिया था, ( त्वा वरुणस्य पाशात् प्रमुञ्चामि ) उस वरुणके पाशसे मैं तुझे मुक्त करता हूँ । ( तुभ्यं सहर्षन्त्यै ) तुझ सह-धर्मपत्नीके लिये ( अत्र उरुं लोकं सुगं पन्थां कृणोमि ) यहाँ विस्तृत स्थान और उत्तम गमनयोग्य मार्ग बनाता हूँ ॥ ५८ ॥

भावार्थ— स्त्रीके तिरसर उत्तम बात हो और वह नारी पतिके मासिके लिये सुशोभित हो ॥ ५५ ॥

स्त्रीका उत्तम वस्त्र धारण करनेसे जो रूप बनता है, वही देखनेयोग्य है । मनका चाटखन कैसा है, यदि स्त्रीके विषयमें देखना चाक्षिपे । पति यशकर्मोंमें धर्मपत्नीको मनसे साथ सदा रखे । विपरीत पाशोंको कौन विद्वाञ्चि काट सकता है ? ॥ ५६ ॥

मैं इन वस्तुओंको खोजता हूँ । इस मेरी धर्मपत्नीका रूप केवल मेरे लिये है । इसके अन्तर्गत वरीष्ठा करते ही मैंने यह जान लिया है । मैं जो भोग करूँ वह इस वपुको बचाकर ही करूँ, चोरीके चरका भोग मैं नहीं करूँ । मैं वरुणके पाशोंको शिथिल करता हुआ मनके बलसे मुक्त होऊँ ॥ ५७ ॥

सविताने तुझे इस समयतक त्रिं पाशोंसे बांध रखा था, उन वरुणके पाशोंको मैं खोजता हूँ । तुझ स्त्री सुयोग्य धर्मपत्नीके लिये यहाँ विस्तृत शोक है और उत्कृष्ट मार्ग भी सुगम है ॥ ५८ ॥

उपच्छन्मपु रक्षो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात ।

धाता विपश्चित्पतिमस्यै विवेदु भगो राजां पुर पंतु प्रजानन्

॥ ५९ ॥

भगस्ततश्च चतुरः पादान्मभस्ततश्च चत्वार्युर्षलानि ।

त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्धन्तसा नो अस्तु सुमङ्गली

॥ ६० ॥

सुकृिद्युक् बहंतु विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।

आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो बहंतुं कृणु त्वम्

॥ ६१ ॥

अभानृषीं वरुणापंशुनीं वृहस्पते । इन्द्रांपतिर्षीं पुत्रिणींमास्मभ्यं सवितर्बह

॥ ६२ ॥

मा हिंसिष्टं कुमार्यैः स्यूणे देवकृते पयि । शास्तापा देव्या द्वारं स्योनं कृणो यधूपयम् ॥ ६३ ॥

अर्थ— ( उद् यच्छन्मपु ) अपने शत्रुओंको डर डराओ । ( रक्षः अपः हनाथ ) शत्रुओंको मारो । ( इमां नारीं सुकृते दधात ) इस स्त्रीको पुण्य कर्ममें लगाओ । ( विपश्चित् धाता अस्मै पतिं विवेदु ) शत्रु विघातने इसके लिये पति प्राप्त कराया है । ( भगः राजा प्रजानन् पुरा पंतु ) राजा भग जलता हुआ भगो बडे ॥ ५९ ॥

( भगः चतुर पादान् सतश्च ) भगने चार पावोंको बनाया, उनपर ( भगः चत्वारि उर्षलानि ततश्च ) भगने चार कमलोंको बनाया । ( त्वष्टा मध्यतः वर्धन्तु धनु पिपेश ) रवशने मध्यमें कमराईको बनाया । ( सा नः सुमंगली अस्तु ) वह कन्या हमारे लिये उत्तम मंगल करनेवाली हो ॥ ६० ॥

हे ( सूर्ये ) सूर्ये ! ( सुकृिद्युक् विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रं यद्यु आरोह ) उत्तम पुष्पोंसे युक्त, अनेक रूपवाले सोनेके रंगके समान चमकनेवाले, उत्तम देहनोंसे युक्त और उत्तम चरोंसे युक्त इस रूपपर चढ़ । ( अमृतस्य लोकं आरोह ) अमृतके लोकपर चढ़ । ( त्व बहंतुं पतिभ्यः स्योनं कृणु ) १ इस रथको पतिवोंके लिये सुलदायी कर ॥ ६१ ॥

हे ( वरुण वृहस्पते इन्द्र सवितः ) देवो ! ( अभानृषीं ) भाईयोंका यध न करनेवाली, ( अपशुर्षीं, अपतिर्षीं, पुत्रिणीं अस्मभ्य आ यद् ) पशुका यध न करनेवाली, पतिरा नात न करनेवाली और पुत्र उत्पन्न करनेवाली इस वधुको हमारे लिये प्राप्त कराओ ॥ ६२ ॥

हे ( स्यूणे ) देवों स्तमो ! ( देवकृते पयि ) देवोंके बनाये मार्गपर चलनेवाले ( कुमार्यै मा हिंसिष्टं ) इस कुमारी बधुकी हिंसा न करो । ( देव्यां शास्तापाः द्वारं यधूपयं स्योनं कृणु ) चारप देवताके द्वारमें वधुके आनेके मार्गको इस सुषुकर करते हैं ॥ ६३ ॥

भाष्यार्थ— इस धर्मपत्नीको कष्ट देनेवाले शत्रुओंका नाश करनेके लिये तुम लोग इष्टिपर सदा सुसजित रहो । सूर्य, वृह, व्याक्रो, पुण्यकर्ममें, लग्नश्री, शशी, त्रिजगत्श्री, मेमतिमे, वृत्क्रो, वद्, पति, पात, शुभा, रं, राजा, भी, यद्, यतत, शुभा, विवाहमें अथगामी हुआ था ॥ ५९ ॥

भगने पतिवोंके चार आशुपण और शरीरपर धारण करनेके चार पूरा बनाये और हमने धारण करनेकीय कमराडा बनाया है । इनको धारण करके यह स्त्री उत्तम मंगलमयी बने ॥ ६० ॥

यद् यधु उत्तम पूरोंसे युक्त, मुदा, सोनेके कामसे सुसोभित और उत्तम चक्रवाले रूपपर चक्रकर अमर पदके मार्ग पर चले । यह धर्मपत्नी का विवाहमंगल पतिवोंके धारणोंके लिये सुलकारक होये ॥ ६१ ॥

यद् भी पतिवोंके परमें पतिवोंके मार्ग, पशु आदिओंका सुल देवे । पतिवोंके सुल देवे । पुत्रोंको उत्पन्न करे । और अथका आशुपु बनायेवाली बने ॥ ६२ ॥

यद् वधु देवोंके मार्गसे जा रही है अतः इसको किसी तरह कष्ट न हो । इसके पतिवोंके यथा मार्ग और इसके पतिवोंके यथा द्वार इसके लिये सुलदायी होये ॥ ६३ ॥

महापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मेष्यतो ब्रह्म सर्वतः ।

अनाध्याषां देवपुरां प्रपद्यं शिवा स्योना पतिलोके वि राज

॥ ६४ ॥

[ २ ]

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्सूर्यां बह्वतुनां सह । स नः पतिभ्यो ज्ञायां दा अग्रे प्रजयां सह

॥ १ ॥

पुनः पत्नीमभिरंदादायुषा सह वचसा । दीर्घायुरस्या यः पतिर्जायति शरदः शतम्

॥ २ ॥

सोमस्य ज्ञाया ग्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः । तुतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः

॥ ३ ॥

सोमो ददद्रन्धर्वाय गन्धर्वो ददद्रमयं । रविं च पुत्रोदादादुभिर्महामयो हुमाम्

॥ ४ ॥

अर्थ— ( अग्रे पूर्वं अन्ततः मध्यतः सर्वतः ब्रह्म युज्यतां ) सागे, पीडे, भक्तमें, शीघमें, अर्थात् सर्वत्र ब्रह्म अर्थात् ईश्वरार्पणाके मंत्रोंका प्रयोग किया करो । हे वधू ! तू ( अनाध्याषां देवपुरां प्रपद्य ) व्याधिरहित देवनागरीको प्राप्त होकर ( पतिलोके शिवा स्योना वि राज ) अपने पतिके स्थानमें कल्याणकारिणी और सुख देनेवाली होकर प्रकटित हो ॥ ६४ ॥

[ २ ]

हे अग्रे ! ( अग्रे तुभ्यं ) आरंभमें तेरे लिये ( घहतुना सह सूर्यां पर्यवहत् ) दहेजके साथ सूर्याको ले जाते थे । ( स्तः ) वह तू ( नः पतिभ्यः ) हम सब पतियोंको ( प्रजया सह जायां दा ) सततविरहित पत्नीको प्रदत्त कर ॥ १ ॥

( आयुषा धर्चसा सह ) दीर्घायुष्य और तेजके साथ ( अग्निः पत्नी पुनः अदात् ) अग्निने पत्नीको पुनः प्रदत्त किया । ( अस्याः यः पतिः ) इसका जो पति है, वह ( दीर्घायुः शरदः शतं जीयति ) दीर्घायु बनकर सौ वर्ष तक जीवित रहे ॥ २ ॥

( प्रथमं सोमस्य जाया ) यह सबसे प्रथम सोमकी भी है, ( ते अपरः पति गन्धर्वः ) तेरा दूसरा पति गन्धर्व है । ( ते तुतीयः पतिः अग्निः ) तेरा तीसरा पति अग्नि है और ( ते तुरीयः मनुष्यजाः ) तेरा चतुर्थ पति मानव है ॥ ३ ॥

जिसको ( सोमः गन्धर्वाय ददत् ) सोमने गन्धर्वको दी और ( गन्धर्वः अग्नये ददत् ) गन्धर्वने अग्निको दी, ( अथो हुमां ) और बादमें इसी कन्याको तथा ( रविं च पुत्रान् च अग्निः मृत्यं अदात् ) धन और पुत्रोंको अग्निने तुझे प्रदान किया ॥ ४ ॥

भाषार्थ— इस वधूके चारों ओर ज्ञान और ईश्वरार्पणाका वायुमण्डल है । व्याधिरहित रहितपतिने घररूप देवनागरीको यह वधू प्राप्त हो । पतिके परमें सुखयुक्त और कल्याणयुक्त बनकर यह विराजे ॥ ६४ ॥

[ २ ]

दहेज पतिके घर भेजनेके पूर्व कन्या प्रथम अग्निकी उपासना करती है, जिसने उस कन्याको पतिने पर सुख और उच्चम सततविरहित करे ॥ १ ॥

अग्नि की उपासना अर्थात् यजन अथवा हवन करनेमें दीर्घ आयुष्य, और नारीरिक कर्मि प्राप्त होती है । कन्याका पति भी इस हवनसे दीर्घजीवी अर्थात् शतायु हो सकता है ॥ २ ॥

सोम, गन्धर्व और अग्नि ये वधुवनमें कन्याके तीन पति हैं । और पञ्चात् धन कन्याका विवाह मनुष्यवं माप होगा है ॥ ३ ॥

सोम गन्धर्वको देता है, गन्धर्व अग्निके हाथमें समर्पण करता है और अग्नि पुत्रोत्पादनकारिने साथ मनुष्यके स्वार्थान इस कन्याको करता है ॥ ४ ॥

आ वाग्मन्सुमतिर्वीजिनीवसू न्यश्विना हस्तु कामा अरंसत ।  
 अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्घ्यम्नो दुर्या अशीमहि ॥ ५ ॥  
 सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयि धेहि सर्ववीरं वचसाम् ।  
 सुगं तीर्षं सुप्रपाणं शुभस्पती स्वाणुं पथिष्ठांमपं दुर्मतिं हतम् ॥ ६ ॥  
 या ओषधयो या नद्योश्च यानि क्षेत्राणि या वना । तास्त्वां वधु प्रजावर्ती परये रक्षन्तु रक्षसः ॥ ७ ॥  
 एमं पन्थांमरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् । यस्मिन्वीरो न रिष्यत्पन्थेयां विन्दते वसु ॥ ८ ॥

अर्थ— (घां सुमतिः आगन्) भापको उत्तम भक्ति प्राप्त हुई है। हे (वाजिनीवसू अश्विनौ) वधु और धनसुक्त अश्विनी देवो! (कामाः हस्तु नि अरंसत) हमारी शुभ इच्छाएं हृदयोंमें स्थिर हो गई हैं। हे (शुभस्पती) शुभके पात्रको! (मिथुना गोपा अभूतं) तुम दोनों इन्द्रियोंके पात्रक बनो। (अर्घ्यम्नः प्रियाः दुर्यान् अशीमहि) भाप्यं मनवाले तथा श्रेष्ठ देवोंके मित्र होकर हम उत्तम धरोंको प्राप्त हों ॥ ५ ॥

(सा मन्दसाना) वह आलस्य रहनेवाली स्त्री (शिवेन मनसा) शुभ भावनायुक्त मनसे (सर्ववीरं वचस्यं रयिं धेहि) सर्व वीरोंसे युक्त प्रशंसनीय धनको धारण करे। हे (शुभस्पती) शुभके पात्रको! हमारे लिये (तीर्षं सुगं) वैदिक स्थान सुगम हो, (सुप्रपाणं) अन्न पीनेका स्थान उत्तम हो, तथा (पथिष्ठां स्वाणुं) मार्गमें रक्षावट बाधनेवाले शतंम जैसे (दुर्मतिं) दुष्ट दुश्चिन्तक वधुको (हतं) मार कर बुर करो ॥ ६ ॥

हे वधु! (या ओषधयोः) जो औषधियां, (यानः नद्यः) जो नदियां, (यानि क्षेत्राणि) जो क्षेत्र, और (या वना) जो वन हैं (तां) वे सब पदार्थ (प्रजावर्ती त्वा पत्ये) संसारयुक्त तुझको पतिके लिये (रक्षसः रक्षन्तु) राक्षसोंसे सुरक्षित रखें ॥ ७ ॥

(यस्मिन् वीरो न रिष्यति) जिसमें वीरका नाश नहीं होता और (अन्थेयां वसु विन्दते) दूसरोंकी धनका जहां धन अधिक मिलता है। (इमं पन्थां अरुक्षाम) ऐसे इस मार्गसे हम चले, वह (सुगं स्वस्तिवाहनं) सुगम और गौरीके लिये भी सुखकर है ॥ ८ ॥

भाषार्थ— उत्तम देवोंके आधिपत्यमें कन्याको उत्तम बुद्धि प्राप्त होती है। पश्चात् उसके हृदयमें कामको स्थान मिलता है। उस समय अश्विनी देव इत वधुवतोंके रक्षक होते हैं। इस समय अपना मन श्रेष्ठ विचारोंसे युक्त करके अपने धरोंमें सबको प्राप्त करना उचित है ॥ ५ ॥

अपने पतिके धरमें आलस्यसे रहनेवाली धर्मपत्नी अपने मनमें शुभसंकल्प धारण करे और वीरमारयुक्त संतान और प्रशंसा योग्य धनकी स्वामिनी बने। इस दंपतीके मार्ग सुगम हों, इनको पथप्रसन्न स्थान प्राप्त हो, और इनके वधुवतोंके मार्ग निष्कण्ठ हों और वधु बुद्धि इनसे बुर हो ॥ ६ ॥

औषधियां, नदियां, क्षेत्र, स्थान, वन आदि सब स्थानोंमें संतानोंवाली और पतिके घर जानेवाली इस स्त्रीकी रक्षा हो, अर्थात् कोई राक्षस इसको बुरा न पहुँचावे ॥ ७ ॥

जो मार्ग सुगम और निर्दोष हो उससे जाये बड़ा। और उस मार्गसे जानो कि जिसमें उत्तम विद्यामके साधन मिलते हों ॥ ८ ॥

इदं सु मे नरः शृणुत यथाशिया दंपती वाममंभ्रुतः ।

ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु येऽपि तस्युः ।

स्योनास्ते अस्य वध्वै मवन्तु मा हिंसिष्वर्द्धतुमुक्षमानम् ॥ ९ ॥

ये वध्वश्चन्द्रं वदन्तं यक्ष्मा यन्ति जनां अनु । पुनस्तान्यद्विया देवा नपन्तु यत् आगताः ॥ १० ॥

मा विदन्परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती । सुगेन दुर्गमतीतामर्ष द्रान्तरातयः ॥ ११ ॥

सं काश्यामि बहंतु ब्रह्मणा गृहैरघोरिण्य चक्षुषा मिश्रियेण ।

पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्यः सविता तत्कृणोतु ॥ १२ ॥

श्रिवा नारीयमस्तुमागंक्षिमं धाता लोकमुस्यै दिदेश ।

वामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजयां वर्धयन्तु ॥ १३ ॥

अर्थ— हे (नरः) मनुष्यो ! ( मे इदं सुशृणुत ) मेरा यह भाषण सुनो । ( यथा आशिया ) जिस आगीवादीसे ( दम्पती वामं अस्तुतः ) ये घर और वधू सुपत्नी प्राप्त होते हैं । ( एषु वानस्पत्येषु ) इन कर्मीं ( ये गन्धर्वाः देवीः अप्सरसः अपि तस्युः ) जो गन्धर्व और अप्सराएं हैं, ( ते अस्य वध्वै स्योनाः मवन्तु ) वे इस वधूके लिये सुखदायी हैं और ( उहामानं बहंतु मा हिंसिषुः ) इन्हें ले जानेवाले इस रथका नारा न करें ॥ ९ ॥

( ये यक्ष्माः जनान् अनु ) जो रोग मनुष्योंके संघन्धसे ( ध्वयः चन्द्रं बहंतु यन्ति ) वधूके तेजस्वी इहंजके रथके पास पहुंचते हैं, ( तान् आगताः यद्वियाः देवाः ) उन रोगीको यहां भारे हुए रथके देव ( यतः आगताः पुनः मयन्तु ) परांसे आये थे, जिससे यहीं ले जायें ॥ १० ॥

( ये परिपन्थिनः आसीदन्ति ) जो लुटेरे समाप्त प्राप्त हों, वे ( दम्पती मा विदन् ) इस पतिपत्नीको न जाने । ये वधूपर ( सुगेन दुर्गं अतीतां ) सुगमतासे कठिन प्रसंगसे पार हो जायें । और इनके ( अरातयः अप द्रान्तु ) शत्रु दूर भाग जायें ॥ ११ ॥

( बहंतु ) वधूके तेजयुक्त रथको ( गृहैः ब्रह्मणा अघोरेण मिश्रियेण चक्षुषा ) चारों ओरके घरवाले लोग ज्ञानपूर्वक ज्ञात और मित्रताकी आंखसे देखें, मैं ( सं काश्यामि ) इनको प्रकाशित करता हूं । ( यत् विश्वरूपं पर्याणद्धं अस्ति ) जो विश्व रूपवाला और ब्रह्मा हुआ रथ है, उसको ( सविता पतिभ्या स्योनं कृणोतु ) ईश्वर पतिके लिये सुखदायी बनावे ॥ १२ ॥

( इयं शिया नारी अस्ते आगन् ) यह कल्याणकारिणी श्री पतिके घर आगयी है । ( धाता अस्यै इमे लोकं विदेश ) इन्होंने इसे पतिलोकका मार्ग दिखाया है । ( अर्यमा भगः उभा अभिजा प्रजापतिः ) ये सब देव ( तां प्रजया वर्धयन्तु ) उसको प्रजाके साथ बढ़ायें ॥ १३ ॥

भाषार्थ— सब लोग इस योगवाली सुनें, कि ये विवाहित स्त्रीयुक्त इस संसारमें सुखपूर्वक रहें । पतिपत्नी तथा प्रामयाली कोई भी इनको दुःख न दें । ये दूसरी जगद् जायें, जो भी इनको किसी प्रकार दुःख न हो ॥ ९ ॥

जबसमुदायमें जायेंगे जो रोग संसर्गके कारण होते हैं, और वधूकी मार्गमें भी जो रोग होने संभव हैं, वे सब रोग यथेते दूर हों ॥ १० ॥

मार्गपर जो लुटेरे हों, उनसे इस दम्पतीको कष्ट न हों, वे पतिपत्नी सुगमतया कठिन प्रसंगोंके पार हो जायें । और इनके सब शत्रु दूर हों ॥ ११ ॥

जब इहंजका रथ या पत्नीका पतिके घर जानेका रथ मार्गसे चले, तब दोनों ओरके घरवाले उस कम्पाको प्रेमकी और मित्राक्षिसे देखें । जो भी कुछ मित्रिय रंगरूपवाले पदार्थ हों, वे सब ईश्वरकी कृपासे इस पतिपत्नीके लिये सुखदायी हों ॥ १२ ॥

यह सुखमाधवाली श्री पतिके घर जाती है, क्योंकि विधाताने यही स्थान इसके लिये निर्दिष्ट किया था । सब देव इसके उत्तम संलाभ हैं ॥ १३ ॥

आरुमन्वत्पुर्वरा नारीयमागुन् तस्यां नरो वपत् वीजमस्याम् ।

सा वं प्रजां जनयत्सुष्णांभ्यो विभ्रती दुग्धमृषुमस्तु रेतः ॥ १४ ॥

प्रति विष्ट विराडसि विष्णुरिवेह संरस्वति । सिनीवाल्लि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ १५ ॥

उद्वं ऊर्मिः शम्पा हुन्वापो योक्त्राणि मुञ्चत । मादुष्कृतौ व्येनिसावद्भावधुनमारताम् ॥ १६ ॥

अघोरचक्षुरपतिष्ठी स्योना शम्पा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः ।

धीरसुः देवुफामा सं त्वर्थेधिपीमहि सुमनस्यमाना ॥ १७ ॥

अदेवुध्न्यपतिष्ठीहेधिं श्रिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।

प्रजावती धीरसुः देवुफामा स्योनेममहि गार्हपत्यं सपर्यं ॥ १८ ॥

अर्थ— ( आत्मन्वती ऊर्वरा इयं नारी भगान् ) आत्मिक बलसे युक्त तथा सुपुत्र उत्पन्न करनेवाली यह नारी पतिसे घर भाग्य है । ( नरः तस्यां अस्यां वीजं वपत् ) हे मनुष्यो ! उस स्त्रीमें बीज बोधो, वीर्यका भाषण करो । ( सा वः ) यह तुम्हारे लिये ( भ्रमणस्य दुग्धं रेतः ) विभ्रती वीर्यवान् पुरस्कृत वीर्य धारण करती हुई ( वक्ष्याभ्यः प्रजां जनयत् ) अपने गर्भादापसे संतान उत्पन्न करे ॥ १४ ॥

हे स्त्री ! तू ( प्रति विष्ट ) यहाँ प्रतिष्ठित हो, तू ( विराट् असि ) विशेष तेजस्विनी हो । घेरा पति ( इह विष्णुः इव ) यह विष्णुसे समान है । हे ( संरस्वति, सिनीवाल्लि ) विद्या और बलसे युक्त देवी ! इसे ( प्रजायतां ) संतान हो और यह ( भगस्य सुमतां अस्तु ) भाग्यके देवकी सुमतिमें रहे ॥ १५ ॥

( वः ऊर्मिः शम्पाः उद्वं हन्तु ) भाग्यकी छहर शान्तिका-स्मरणार्थ भंग करे । हे ( आपः ) उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्य ! ( योक्त्राणि मुञ्चत ) तुमोंको छोड़ दो । ( अदुष्कृतौ व्येनसौ अप्ण्यौ ) दुष्ट कर्म न करनेवाले, गार्हपत्य छोड़े हुए दोनों वैश्व ( अजुनं मा आरतां ) अजुनको भाव न हो ॥ १६ ॥

हे बधू ! ( गृहेभ्यः ) अपने घरके लिये ( अघोरचक्षुः अपतिष्ठी स्योना ) मृत पति न रखनेवाली, पतिकी हत्या न करनेवाली, सुप्रकारिणी ( शम्पा सुशेवा सुयमा ) कल्याणकारिणी, सेवा करने योग्य, सुनिष्ठासे चलनेवाली, ( धीरसुः देवुफामा ) वीर पुत्र उत्पन्न करनेवाली, देवकी इच्छा पूर्ण करनेवाली और ( सुमनस्यमाना ) उत्तम बलः करनेसे युक्त ( त्वया पधिपीमहि ) तुमसे हम संपन्न हों ॥ १७ ॥

( अदेवुष्ठी अपतिष्ठी ) देवका नाश न करनेवाली, पतिका श्राव न करनेवाली, ( पशुभ्यः श्रिवा ) पशुओंका हिंस्र करनेवाली, ( सुयमा सुवर्चाः ) उत्तम नियमोंसे चलनेवाली और उत्तम तेजसे युक्त, ( प्रजायती धीरसुः ) संतान युक्त, वीर पुत्र उत्पन्न करनेवाली, ( देवुफामा स्योना ) परम देव रते ऐसी कामना करनेवाली, सुलक्षणादिनी तू ( इमं गार्हपत्यं अस्ति सपर्यं ) इस गार्हपत्य अग्निमें पूजा कर ॥ १८ ॥

भाषार्थ— यह स्त्री आत्मिक बलसे युक्त है और पुत्र उत्पन्न होनेकी शक्तिसे युक्त है अर्थात् यह वैष्णवा नहीं है। पति इस छोड़के अपने हीरका भाषण करता है और शम्पा यह स्त्री उस वीरके धारण करती हुई अपने गर्भादापसे संतानोत्पत्ति करती है ॥ १४ ॥

स्त्री अपने पतिपुत्रमें प्रतिष्ठाको प्राप्त हो, स्त्री घरकी सज्जानी है, उसका पति देव है और यह उसका देवी है । हम पतिव्रताको उत्तम संतान प्राप्त हो और ये दोनों उत्तम बुद्धि धारण करें ॥ १५ ॥

प्रवासमें जब शान्तिका भंग हो, अर्थात् मनको कष्ट प्रतीत हो, उस समय वाहनके बैठ तोड़ दिव् उत्तम और उनके उत्तम स्थानमें सुरक्षित रखा जाय ॥ १६ ॥

यह स्त्री पतिसे परम भाकर भयन्दसे रहे, बाले शोधयुक्त न करे, पतिकी हितकारिणी बने, धर्मनियमोंका पालन करे, सबको सुख देवे, अपनी संतानोंको वीरताकी शिक्षा देवे, देव आदिको संतुष्ट रखे, अन्न-करणमें शुभ भाग रखे । ऐसी स्त्रीसे घर सुसंवत्त होता है ॥ १७ ॥

स्त्री पतिपुत्रमें आकर देव और पतिका हित करे, पशुओंका पालन उत्तम रीतिमें करे, धर्म नियमोंके अनुसरण करे, तेजस्विनी बने, अपनी संतानोंको वीरताकी शिक्षा दे और अग्निकी हवनद्वारा उपासना करे ॥ १८ ॥



उत्पिष्टता किमिच्छन्तीदमागा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाहृहात् ।

शून्यैषी निर्झते याज्ञमन्बोधिष्ठारते प्र पत मेह रंस्याः ॥ १९ ॥

यदा गार्हपत्यमसंपर्येतपूर्वमग्निं वपुषियम् । अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कृत ॥ २० ॥

शर्म वमंतदा ईरास्यै नार्या उपस्तरं । सिनीवाल्लि प्र जायतां भगस्य सुप्रजावंधत् ॥ २१ ॥

यं चत्वंजं न्यस्वध चर्म चोपस्तृणीघनं । तदा रोहितु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् ॥ २२ ॥

उपै स्तृणीहि चत्वंजमधि चर्मणि रोहिते । तत्रौपविश्यं सुप्रजा इममग्निं संपर्यतु ॥ २३ ॥

अर्थ— हे ( निश्रंते ) परिव्रते ! ( उत् पिष्ट ) उठ और कह कि ( किं इच्छन्ती ) क्या चाहती हुई ( इदं आगाः ) यदा आई है । ( अहं अभिभूः ) मैं तेरा पराभव करनेवाला ( स्वाहृ हात् त्या इडे ) अपने घरसे कुछ भगाता हूँ । ( या शून्य-परिष ) जो घरको शून्य करनेको इच्छा करती हुई है ( आजगन्धाः ) यदा आई है, हे ( अ-रते ) शत्रुघ्न परिव्रते ! ( उत्पिष्ट ) यदा उठ और ( प्र पत ) दूर भाग जा । ( इह मा रंस्याः ) मैं यदा मल रन ॥ १९ ॥

( यदा इयं वपुः ) जब यह स्त्री ( गार्हपत्यं अग्निं पूर्वं जलपर्येत ) गार्हपत्य अग्निको पहिले पूजा करे ( अधा ) तत्पश्चात् हे ( नारि ) स्त्री ! हे ( सरस्वत्यै पितृभ्यः च नमस्कृत ) सरस्वतिको और पितरोंको नमन कर ॥ २० ॥

( अस्यै नार्यै ) इस स्त्रीके ( उपस्तरं एतत् शर्म चर्म ) बिछानेके लिये यह सुख और संरक्षण ( आहृत् ) लेना । हे ( सिनी-वाल्लि ) अह देवेवाली देवी ! ( प्र जायतां ) यह स्त्री उत्तम रीतिसे संवधि उत्पन्न करे और ( भगस्य सुमतौ भसत् ) भगवान्को उत्तम मतिमें रहे ॥ २१ ॥

( यं चत्वंजं न्यस्वध ) जो चटाई नीचे बिछाले है ( च चर्म उपस्तृणीघनं ) और चर्म ऊपर बिछाले है । ( या कन्या पतिं विन्दते ) जो कन्या पतिको प्राप्त करती है, वह ( सुप्रजा तत् आरोहतु ) उत्तम संतान उत्पन्न करनेवाली होकर उत्तर चरे ॥ २२ ॥

( चत्वंजं उपस्तृणीहि ) पहिले चटाई फैलाओ, फिर ( अधि चर्मणि रोहिते ) शृणुचर्मके ऊपर ( तत्र सुप्रजा उपविश्य ) सुप्रजा उत्पन्न करनेवाली यह स्त्री बैठकर ( इमं अग्निं संपर्यतु ) इस अग्निकी उपासना करे ॥ २३ ॥

भावार्थ— स्त्री पतिगृहमें भाकर देवर और पतिका शिष्य करे, पशुमोंका पालन उत्तम रीतिसे करे, धर्मोपदेशके अतुल्य चले, तेजस्विनी बने, अपनी संतानोंको पीरताकी शिक्षा दे और अग्निको हवनद्वारा उपासना करे ॥ १८ ॥

गृहस्थीके घरमें दरिद्रता न रहे । गृहस्थ अपने प्रयत्नसे दारिद्र्य दूर करे । जो घर पुष्पार्थसे शून्य होता है, उसमें दारिद्र्य रहता है । अतः प्रयत्नद्वारा दरिद्रताको दूर करना चाहिए ॥ १९ ॥

स्त्री पतिपरमे प्रतिदिन सबसे पहिले गार्हपत्याग्निकी हवनद्वारा उपासना करे, पश्चात् विवादेवीकी और पश्चात् पितरोंकी पूजा करे ॥ २० ॥

पति अपनी स्त्रीके लिये हरएक प्रकारसे सुख देवे, और उसकी उत्तम रक्षा करे । वह स्त्री उत्तम लक्ष सेवन करके उत्तम संतान उत्पन्न करे और देसा भाषण करे कि ईश्वरका आशीर्वाद इसे प्राप्त हो ॥ २१ ॥

पहिले पासकी चटाई बिछाई जाने, उत्तरपर कृष्णाजिन बिछाना जावे । जो पतिको प्राप्त करती है, वह सुप्रजा उत्पन्न करनेवाली स्त्री इस विद्योत्तेपर चरे ॥ २२ ॥

पहिले चटाई फैलाओ, उत्तरपर चर्म बिछा दो, यदा उत्तम संतान उत्पन्न करनेवाली स्त्री बैठकर अग्निकी उपासना करे ॥ २३ ॥

आ रोह चमोषं सीदाधिष्ठेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा ।

इह प्रजां जनय पत्ये अस्यै सुज्यैष्ठ्यो भवत्पुत्रस्तं पुषः

॥ २४ ॥

वि तिष्ठन्तां मातृस्वा उपस्थानानारूपां पशवो जायमानाः ।

सुमहृग्व्युषं सीद्विमममिं संपत्नीं प्रति भूषेह देवान्

॥ २५ ॥

सुमहृगली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः । स्योना श्वश्रुवै प्र गृहान्विशेमान् ॥ २६ ॥

स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः । स्योनास्यै सर्वस्यै विशेषे स्योना पुष्टायैषां भव ॥ २७ ॥

सुमहृलीरिषं वृष्टिमां समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दुष्ट्वा दौर्भाग्यैर्विपरंतन

॥ २८ ॥

अर्थ— (धर्म आरोह) इस धर्मपर चढ़, (अग्नि उप आसीद) अग्निसे समीप बैठ। (पुषः देव, सर्वाः रक्षांसि हन्ति) यह देव सब राक्षसोंका नाश करता है। (इह अस्यै पत्ये प्रजां जनय) यहां इस पतिके लिये संतान उत्पन्न कर। (ते पुषः पुत्रः सुज्यैष्ठ्यः भवत्) तेरा यह पुत्र उत्तम भेद बने ॥ २४ ॥

(अस्याः मातुः उपस्थात्) इस माताके पास (जायमाना, नानारूपाः पशवः' वि तिष्ठन्तां) उत्पन्न होने-वाले अनेक प्रकारके पशु हैं। (सुमहृगली संपत्नी इम अग्नि उपसीद) उत्तम मंगल कामनावाली और उत्तम पतिके साथ रहनेवाली यह स्त्री इस अग्निकी उपासना करे और (इह देवान् प्रतिभूय) यहां देवोंकी सेवा करे और शोभा पशाने ॥ २५ ॥

इ वधु<sup>१</sup> (सुमंगली) उत्तम मंगल भावपूर्ण धारण करनेवाली (गृहाणां प्रतरणी) घरोंको दु,खसे दूर करनेवाली (पत्ये सुशेवा) पतिकी उत्तम सेवा करनेवाली (श्वशुराय शंभूः) श्वशुरको मुल देनेवाली, (श्वश्रुवै स्योना) सासको भाव देनेवाली वृ (इमान् गृहान् प्रतिदा) इन घरोंमें प्रविष्ट हो ॥ २६ ॥

हे वधु<sup>१</sup> वृ (श्वशुरेभ्यः स्योना भव) श्वशुरोंके लिये मुल देनेवाली हो, (पत्ये गृहेभ्यः स्योना) पति और घरके लिये दितकारणी हो, (अस्यै सर्वस्यै विशेषे स्योना) इस सब प्रजासमूहको मुलदायिनी हो और इस प्रकार (स्योना एषां पुष्टाय भव) सुखदायक होकर इन सबकी पुष्टिमें लिये हो ॥ २७ ॥

(इयं सुमंगली वधुः) यह महारथुक्त वधु है। (सं पेत, इमां पश्यत) इच्छे होना और इसको देखो। (अस्यै सौभाग्य दत्त्वा) इसको सौभाग्यका आशीर्वाद देकर (दौर्भाग्यै वि परेतन) दुष्ट भागको दूर करते हुए भागस जाओ ॥ २८ ॥

भावार्थ— उस धर्मपर चढ़, अग्निकी पूजा कर। यह अग्निदेव सब दुष्ट राक्षसोंका नाश करता है। इस सेतारामें अपने पतिके लिये संतान उत्पन्न करे १ यह देव, अग्नि उप आसीद) उत्तम मंगल भेद बने ॥ २४ ॥

जय यह स्त्री माता होगी, सब उसके साथ विविध मंगलपवाले गौ आदि पशु रहेगें। यह स्त्री उत्तम मंगल धारणाकी कामना करके अग्निकी उपासना करे और देवोंकी सुमूर्धित करे ॥ २५ ॥

उत्तम मंगल कामनावाली, गृहकार्योंको दूर रखने मुजानेवाली, पतिकी सेवा करनेवाली, श्वशुरको मुल देनेवाली, सासका दित करनेवाली स्त्री अपने घरमें प्रविष्ट हो ॥ २६ ॥

यह स्त्री श्वशुरोंका दित करे, पतिको मुल दे, सब घरवालोंका दित करे और सबको पुष्ट रखे ॥ २७ ॥

सब भाग्यशु इच्छे होकर यहां आये और इस वधुका दर्शन करे। यह वधु बहुत कल्याण करनेवाली है। सब दे इस वधुको सुभागीपौर देकर, इससे जो दुष्ट भाग्य है, उनको दूर करने भागस अपने घर आये ॥ २८ ॥

या दुर्हादीं युवतयो वाश्रेह जरतीरपि । वचो न्यस्यै सं वुत्ताथास्वं विपरेतन ॥ २९ ॥  
 रुक्मप्रस्तरणं वृक्षं विश्वा रूपाणि चित्रतम् । आरोहत्सूर्या सावित्री वृद्धते सौमगाय फम् ॥ ३० ॥  
 आ रोह तस्य सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्यै ।  
 इन्द्राणीव सुबुधा बुधमाना ज्योतिरग्रा उपसः प्रति जागरासि ॥ ३१ ॥  
 देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्तृशन्त तन्वस्तुनूभिः ।  
 सूर्येवं नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह ॥ ३२ ॥  
 उत्तिष्ठेते विश्वावसो नर्मसेडामहे त्वा ।  
 जामिर्मिच्छ पितृपदं न्यक्तानं स ते मागो अनुपा वस्य विदि ॥ ३३ ॥

अर्थ— (या दुर्हादीः युवतयः) जो बृहद्दववारी शिवा हैं और (याः च ह्य जरतीः अपि) जो बहा बृहद्द शिवा हैं, ये (अस्ये तु यचः सं दत्त) इसको विश्ववर्षक तेज देवें, (अथ अस्तं विपरेतन) और अपने घरको वापस जानें ॥ २९ ॥

(रुक्मप्रस्तरणं) सोनेके बिलोलेसे युक्त (विश्व्या रूपाणि चित्रतं) अनेक सुन्दर सजावटको धारण करनेवाले (कं वृक्षं) कुलदायक रत्नपर (सूर्या सावित्री वृद्धते सौमगाय आरोहत्) सूर्या सावित्री बड़े सौभाग्यकी भाँतिके लिये चढ़ी ॥ ३० ॥

(सुमनस्यमाना तस्य आरोह) मनमें उत्तम भाव धारण करती हुई थीं दिलीपेर चढे। (इह अस्यै पत्ये प्रजां जनय) यहाँ इस पतिके लिये सत्ताल उत्पन्न कर। (इन्द्राणीव इव सुबुधा) इन्द्राणीके समान उत्तम ज्ञानवाली होकर (ज्योतिः अग्राः उपसः बुधमाना) सूर्यकी ज्योतिके पहले आनेवाली उपसोंके पूर्व ही (प्रति जागरासि) विद्या छोड़कर बढ ॥ ३१ ॥

(अग्रे देवाः पत्नीः नि अपद्यन्त) पूर्व समर्थमें देव लोग अपनी शिबोंके साथ सोते थे। (तन्व तनूभिः सं अस्तृशन्त) अपने शरीरोंसे शिबोंके शरीरको स्पर्श करते थे। उसी प्रकार हे (नारि) श्री ! द (इह) इस सत्तामें (सूर्या इव) सूर्यभन्नेके समान (महित्वा विश्वरूपा) महारतसे अनेक रूपवाली होकर (प्रजावती पत्या संभव) प्रजायुक्त होकर पतिके साथ सत्ताल उत्पन्न कर ॥ ३२ ॥

हे (विश्ववावसो) सब धनसे युक्त घर ! (इत उत्तिष्ठ) यहासे बढ, (त्या नर्मसा ईडामहे) तेरी नर्मस्कारोंसे पूजा करते हैं। (पितृपदं न्यक्तानं जामिर्मिच्छ) पिताके पदमें रहनेवाली सुसौखिन वधुको दू मात करनेकी इच्छा कर। (सः ते भागः) यह तेरा भाग है। (तस्य जनुपा विदि) उसका जन्मसे ज्ञान प्राप्त कर ॥ ३३ ॥

भावाार्थ— जो बृहद्दववारी और बूढ़ी शिवा हैं, ये भी सब शिवा इस वधुको अपना तेज अर्पणकर अपने घरको वापें ॥ २९ ॥

जिसपर सोनेके कलाबन्धके कामवाले सोदे लगे हुए हैं और विविध हुनरोंसे जिसकी सोभा बढ़ाई गई है, ऐसे सुन्दर रत्नपर यह वधु चढे और पतिके घर प्राप्त होकर यहाँ सौभाग्य प्राप्त करे ॥ ३० ॥

यह श्रीं मनमें उत्तम भाव धारण करती हुई विश्वेपर चढे, और पतिके लिये उत्तम सत्ताल निर्माण करे। उत्तम ज्ञान संपादन करने उप कालके पूर्व जागरूक निद्रासे निवृत्त होकर उठे ॥ ३१ ॥

पूर्व समर्थमें देव भी अपनी धर्मपरिचोईं साथ सोते रहे, अपने शरीरसे श्रीके शरीरका आश्लिषण करते रहे। उसी प्रकार यह श्रीं भी अनेक प्रकार अपने रूपको सजावट करती हुई, उत्तम प्राणनिर्माण करनेकी इच्छासे पतिके साथ मिलकर रहे ॥ ३२ ॥

हे धनवाले पुंस ! यहाँसे उठकर यहाँ आ, हम आपका स्वागत करते हैं। यह वधु इस समर्थवक पिताके घर रहती थी, भाव इस वधुको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, तो यह आपका भाग ही सकता है। इस भावके भागों— इस छोटे-जन्मसे अल्पकला सब वृत्तांत भाव वादे तो जान सकते हैं ॥ ३३ ॥

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्त्रा सूर्यं च ।  
 तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ॥ ३४ ॥  
 नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो मामाय चक्षुषे च कृणमः ।  
 विश्वावमो ब्रह्मणा ते नमोऽभि जाया अप्सरसः परेहि ॥ ३५ ॥  
 राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीवृताम ।  
 अगन्तसः देवः परमं सधस्यमगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ ३६ ॥  
 सं पितरावृत्तिये सुजेयां माता पिता च रेतसो भवाथः ।  
 मर्यं इव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृणवाथामिह पुण्यतं रयिम् ॥ ३७ ॥

अर्थ— ( हविर्धाने अन्तरा सूर्यं च ) हविर्धान और सूर्यके मध्यमें ( अप्सरसः सधमादं मदन्ति ) अप्सराएँ साथ साथ मिलकर आनन्दित होनेवाले कर्ममें आनन्दित होती हैं । ( ताः ते जनित्रं ) वह तेरा जन्मस्थान है । ( ताः अभि परेहि ) उनके पास जा । ( गन्धर्व-ऋतुना ते नामः कृणोमि ) गन्धर्वके ऋतुके साथ तुझे मैं नमन करता हूँ ॥ ३४ ॥

( गन्धर्वस्य नमसे नमः ) गंधर्वकी धिक्प्रताको हम नमस्कार करते हैं । उधकी ( मामाय चक्षुषे च नमः कृणमः ) तेजस्वी आंखके लिये हम नमन करते हैं । हे ( विश्वावसो ) सब धनसे युक्त । ( ते ब्रह्मणा नमः ) इसे हम ज्ञानके साथ नमन करते हैं । ( अप्सरसः जाया अभि परेहि ) अप्सरा जैसी शिवके साथ परे जा ॥ ३५ ॥

( वयं राया सुमनसः स्याम ) हम धनके साथ उत्तम मनवाले हों ( इतः गंधर्वं उद् आवीवृताम ) यहाँसे गंधर्वको धेरे, स्वीकार करें । ( सा देवः परमं सधस्यं अगन् ) वह देव परम भेद्य स्थानको प्राप्त हुआ है । ( यत्र आयुः प्रतिरन्तः अगन्म ) जहाँ आयुको दीर्घ बनाने हुए हम पहुँचते हैं ॥ ३६ ॥

हे ( पितरौ ) मातापिताओ ! ( ऋत्तिये संजयेयां ) ऋतुकारणें संयुक्त होवो । ( रेतसः माता च पिता च भवाथः ) शीर्षके योगसेही तुम माता और पिता बनोगे । ( मर्यं इव योषां अधिरोहय ) मर्दके समान इस स्त्रीके साथ मिलकर चढ़ । ( इह प्रजां कृणवाथां ) यहाँ संतान उत्पन्न करो और ( रयिं पुण्यतं ) धनको पुण्य करो अर्थात् बढ़ाओ ॥ ३७ ॥

भावार्थ— इस गृहस्थानध्याय और सूर्यके बीच अन्तरिक्षमें अप्सराएँ ( सूर्य प्रगाढ़ ) एक धरमें आनन्दसे रहकर बहुत आनन्द प्राप्त करती हैं । इस प्रकार गृहस्थ अपने धरमें आनन्दते रहे । शिवां ही सबकी उत्पत्तिका स्थान है, अतः उनके साथ उठकर रहे और ऋतुके अनुसार आदरपूर्वक ऋतुगामी होवें ॥ ३४ ॥

तुम्हारेके नमस्कार करनेपर उसको नमन करना उचित है, उसकी तेजस्वी आंखके साथ अपनी आंखें मिलाकर नमन करना उचित है । इस तरह परस्परको जानकर नमस्कार किया जावे । और दुबली स्त्रीके साथ पुराने वृद्ध जाकर एकान्त परे ॥ ३५ ॥

भगुणको जैसे जैसे धन मिले, वैसे वैसे वह मनके शुभ संस्कारोंसे युक्त बने । और वह ईशको माननेवाला हो । वह ईश्वर परम उच्च स्थानपर विराजमान है, जहाँ हम आयुको दीर्घ करते हुए पहुँच सकते हैं ॥ ३६ ॥

हे स्त्री पुरुषो ! तुम अपने रबीर्षके बलसे ही मातापिता बन सकते हो, अर्थात् सन्तान उत्पन्न कर सकते हो । अतः ऋतुकारणें संयुक्त होवो । मर्दके समान स्त्रीसे युक्त होवो, सन्तान उत्पन्न करो और धन भी प्राप्त करो और बढ़ाओ ॥ ३७ ॥

तां पूर्णं छिवत्तं मा मे रयस्य पस्यां वीजं मनुष्याः वपन्ति ।  
 या न ऊरु उग्रवी विश्रयाति यस्यामृशन्तः प्रहरेम श्रेयः ॥ ३८ ॥  
 आ रोहो रुमुपं घत्स्य हस्तं परि ष्वजस्य जायां सुमनस्यमानः ।  
 प्रजां कृष्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ॥ ३९ ॥  
 आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्तव्यसा ।  
 अर्दुमेङ्गली पतिलोकमा विश्रेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुस्पदे ॥ ४० ॥  
 देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद्वाधुयं वासो वृष्यश्च वक्ष्यम् ।  
 यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद्रक्षांसि तल्पानि हन्ति ॥ ४१ ॥  
 यं मे दत्तो ब्रह्ममायं वधुवोर्वाधुयं वासो वृष्यश्च वक्ष्यम् ।  
 युवं ब्रह्मणेऽनुमन्वमानौ बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ॥ ४२ ॥

अर्थ— हे (पूज्य) एसा ! (यस्यां मनुष्याः वीजं वपन्ति) जिसमें मनुष्य बीज बोते हैं । (तां शिवत्तमां परयस्य) उस कल्याणमयी धीकी भाव कर । (या उग्रवी नः ऊरु विश्रयाति) जो इच्छा करती हुई हमारे लिये अपना शरीर देती है । (यस्यां उग्राम्नाः श्रेयः प्रहरेम) जिसकी कामना करनेवाले हम विषय-सेवन करें ॥ ३८ ॥

(उरु भारोह) ऊपरकी ओर चर, (हस्तं उप धत्स्य) हाथ लगा । (सुमनस्यमानः जायां परि ष्वजस्य) उत्तम मनसे युक्त होकर धीकी भावित्वागत कर । (इह मोदमानौ प्रजां कृष्वाथां) यहाँ आनन्द भोगते हुए प्रजाको उत्पन्न करो । (सविता वां प्रजां दीर्घ आयुः कृणोतु) सविता आप दोनोंकी दीर्घ आयु करे ॥ ३९ ॥

(प्रजापतिः वां प्रजां जनयतु) प्रजापति ईश्वर तुम दोनोंकी संगत उत्पन्न करे । (अर्यमा अहोरात्राभ्यां समनक्तु) अर्यमा तुम दोनोंकी दिवरात्र संयुक्त करे । (अ-नुमन्गली इमं पतिलोकं आविश) अशुभभावको न धारण करनेवाली दू की इस पतिस्थानको भाव कर । (नः द्विपदे चतुस्पदे शं भव) हमारे द्विपद और चतुष्पादके लिये सुखदायी हो ॥ ४० ॥

(देवैः दत्तं) देवोंद्वारा दिया हुआ (मनुना साकं) मनुके साथ प्राप्त हुआ (पतत् वाधुयं वासः) यह विवाहके समयका वस्त्र (घष्यः च वक्ष्यं) और वधुका वस्त्र है, यह (यः चिकितुषे ब्रह्मणे ददाति) जो शानी ब्राह्मणके दान करता है । (स इत् तल्पानि रक्षांसि हन्ति) वह निश्चयसे विचारेपर रहनेवाले राक्षसोंका नाश करता है ॥ ४१ ॥

हे (बृहस्पते) बृहस्पति ! और (साकं इन्द्रः च) साथ रहनेवाले इन्द्र ! तुम दोनों (घपूयोः वाधुयं वासः) वधुका विवाहके समयका वस्त्र और (वष्यः च वक्ष्यं) जो वधुका वस्त्र है (यं ब्रह्ममाणं मे दत्तः) उस ब्राह्मणके भावको तुम दोनों मुझको देते हो । (युवं ब्रह्मणे अनुमन्वमानौ ब्रह्मणे दत्तं) तुम दोनों ब्राह्मणको प्रदान करनेकी संमति देनेवाले ब्राह्मणको उत्तम वस्त्र प्रदान करते हो ॥ ४२ ॥

भावार्थ— शुभ रीकारसे युक्त वधुके पुरुष प्राप्त करे । मनुष्य उत्तम स्त्रीमें ही बीज बोते हैं । पुरुषपत्निपी इच्छासे स्त्री अपना शरीर पुरुषको समर्पण करती है, जिसमें पुरुष वीर्यधान करे ॥ ३८ ॥

पुरुष स्त्रीके साथ प्रेमसे मिले, उसका आदरके साथ भावित्वागत करे, दोनों स्त्रीपुरुष आजन्मदसे समभाग होंगे और सन्तान उत्पन्न करें । इन स्त्रीपुरुषोंकी आयु सविता सति दीर्घ प्रमावे ॥ ३९ ॥

प्रजापत्यक ईश्वर इन स्त्रीपुरुषोंमें संगत उत्पन्न करे । यही दिन रात्र इनको प्रेमके साथ इकट्ठे रखे । वधुके सोई दुर्गुण न हो और उत्तम शुभगुणवाली स्त्रीही पतिको प्राप्त करे । इस स्त्रीसे घरके सब हिस्सा वधुप्यादका कल्याण हो ॥ ४० ॥

वधुके पदनेके लिये लाया गया वस्त्र ब्रह्मण्य ब्राह्मणको दान देनेसे दानरक्षानामें उत्पन्न होनेवाले कुम्हकार दूर हो सकते हैं ॥ ४१ ॥

वधुके पदनेके लिये लाया गया वस्त्र ब्राह्मणका भाग है । यह अनुमतिपूर्वक ब्राह्मणको दिया जावे ॥ ४२ ॥

स्पोनाद्योनेरधि सुष्पमानौ हसापुदौ महसा मोदमानौ ।

सुगू सुपुत्री सुगृहौ तरायो जीवावुपसो विभातीः

॥ ४३ ॥

नवं वसानः सुरभिः सुवासा उदागां जीव उपसो विभातीः ।

अण्डात्पतत्रीवासाधि विश्वस्मादेनसस्परि

॥ ४४ ॥

शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुसे महिब्रते । आपः सप्त सुसुबुद्धेवीस्ता नो मुञ्चन्त्वहंसः

॥ ४५ ॥

सूर्याधि देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च । ये भूतस्य प्रचेतस्तेभ्य इदमकरं नमः

॥ ४६ ॥

य ऋते चिदभिधिपः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।

संधाता संधि मघवा पुरुवसुनिष्कर्ता विहृतं पुनः

॥ ४७ ॥

अर्थ— (हसापुदौ महसा मोदमानौ) हास्यविनोद करनेवाले, महापके विचारसे आनंदित होनेवाले (स्पोनाद्योनेः अधि सुष्पमानौ) सुसदायक शयनमंदिरसे जागकर उठनेवाले, (सुगू सुपुत्री सुगृहौ) उत्तम इंद्रियों और गौत्रोंसे युक्त, उत्तम पाल पक्षीवाले, उत्तम घरवाले (जीवौ) दो जीवों अर्थात् श्री और पुरुषो ! तुम दोनों (विभातीः उपसः तरायः) प्रकाशमय उप-काशवाले दीर्घ आयुष्मंत दिनोंको सुलके साथ तैर जाओ ॥ ४३ ॥

मै (नवं वसानः सुरभिः सुवासाः जीवः) नवीन वस्त्र पहनना हुआ सुगंध धारण करके उत्तम वस्त्र पहनने-वाला जीवधारी मनुष्य (विभातीः उपसः उदागां) वेत्सवी उप-कालोंमें उठता हूँ। (अण्डात् पतत्री इष) अण्डसे निकलनेवाले पक्षीके समान मैं (विश्वस्मात् पनसः पति असाधि) सब पापसे मुक्त होऊँ ॥ ४४ ॥

(द्यावापृथिवी अन्तिसुसे महिब्रते शुम्भनी) श्री और पृथिवी ये दोनों लोक समयसे मुक्त देनेवाले, बड़े नियम पालन करनेवाले, और शोभावाले हैं। (देवीः सप्त थापः सुसुबुः) दिव्य सातों ऋषयः यत्र पदे हैं। (ताः अहंसः नः मुञ्चन्तु) ये जलप्रवाह पापसे हम सबका बचाव करें ॥ ४५ ॥

(सूर्याधि देवेभ्यः मित्राय वरुणाय च) उषा, अग्नि आदि देव, सूर्य, वरुण तथा (ये भूतस्य प्रचेतसः) जो भूतोंके ज्ञानदाता देव हैं (तेभ्यः इदं नमः अकरं) उनके लिये यह नमस्कार मैं करता हूँ ॥ ४६ ॥

(यः ऋते अभिधिपः) जो निष्कलके विना तथा (चित् जत्रुभ्यः आतृदः) गर्दनकी इड़ियों सुराल करनेके विना (संधि संधाता) जोड़के जोड़नेवाला और (विहृतं पुनः निष्कर्ता) फटे हुएको पुनः ठीक करनेवाला और (पुरुवसुः मघवा) उत्तम पर्याप्त धन देनेवाला बलवान् ईश्वर हूँ ॥ ४७ ॥

भावार्थ— जोपुरुष हास्यविनोद करते हुए, आनंद मनते हुए, सुसदायक शयनमंदिरमें सोकर योग्य समयमें जागते हुए, उत्तम गौत्रोंसे युक्त, उत्तम कुत्रोंसे युक्त और उत्तम घरवाले होकर, दीर्घ आयुंके साथ दिन आनंदपूर्वक व्यतीत करें ॥ ४३ ॥

मैं उत्तम वस्त्र पहनकर, सुगंध धारण करता हुआ, शरीरको सुशोभित करके, ऐसे सदाचारते रहूँ कि जिससे सब प्रकारके पाप बुर हो जायें ॥ ४४ ॥

शुलोक और पृथ्वी लोक सबको मुक्त देनेवाले हैं, ये अपने नियमसे ऋते हैं। इनके मन्थमें सात प्रवाह बह रहे हैं। ये हम सबको पापसे बचावें ॥ ४५ ॥

सूर्य, अग्नि देव, मित्र, वरुण आदि सबको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४६ ॥

जो ईश्वर मानवी शरीरमें दो हड्डियोंको विना पिपकाये और विना सुराल लिये जोड़ता है, वही सबको जोड़नेवाला है। वह सब हटे हुएकी मरामत करता है ॥ ४७ ॥

अपासत्तम उच्छतु नीलं विशङ्गमृत लोहितं यत् ।	
निर्दुहनी वा पृषातस्येऽस्मिन्तां स्थाणावध्या संजामि	॥ ४८ ॥
यावतीः कृत्या उपवास्ते यावन्तो राहो वरुणस्य पाशाः ।	
व्यूद्ध्यो वा असमृद्धयो वा अस्मिन्ता स्थाणारधि सादयामि ।	॥ ४९ ॥
वा मे प्रियतमा तनूः सा मे विभाय वारसः ।	
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुषु मा वयं रिपाम	॥ ५० ॥
ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः ।	
वातो यत्पत्नीभिरुतं तघ्नः स्योनमुषं स्पृशात्	॥ ५१ ॥
उशती कन्यला इमाः पितृलोकास्वर्ति यतीः । अवं दीक्षामंसृशत स्वाहा	॥ ५२ ॥

अर्थ— ( यत् नील विशङ्ग उत लोहित तम ) जो नीला, पीला तथा काले रंगा मिलापन है, वह ( अस्मत् अप उच्छतु ) हम सबसे दूर होवे । ( या निर्दुहनी पृषातकी अस्मिन् ) जो जलनेवाली दोरबन्धि इस्म है, ( ता स्थाणी अधि आ संजामि ) उसकी इस स्तनमें लगा देता हूँ ॥ ४८ ॥

( यावती कृत्या उपवास्ते ) जो हिंसाहत उपवस्तेमें हैं, ( यावन्त राह वरुणस्य पाशा ) जितने राह पुरुषके पास हैं, ( या व्यूद्ध्य वा असमृद्धय ) जो दरिद्रताएँ और दुखस्वाएँ हैं, ( ता अस्मिन् स्थाणी अधि सादयामि ) उन सबको मैं इस स्तनमें स्थापित करता हूँ ॥ ४९ ॥

( वा मे प्रियतमा तनू ) जो मेरा मलय मिय शरीर है, ( सा मे वासस विभाय ) वह मेरे वस्त्रों जैसा है । इत्यर्थे दे ( वनस्पते ) वृक्ष ' ( अग्रे त्व तस्य नीविं कृणुषु ) पहिले तू उसकी प्रथी बना, जिससे ( वय मा रिपाम ) हम दुस्ती न हों ॥ ५० ॥

( ये अन्ता यावती सिच ) जो शत्रु हैं और किनारिया हैं, ( ये ओतव ये च तन्तव ) जो बाने हैं और जो धागे हैं, ( यत् यात पत्नीभि उत ) जो वस्त्र भियोंने गुना है, ( तत् य स्योन उपस्पृशात् ) वह हमारे शरीरको सुल देनेवाला बने ॥ ५१ ॥

( उशती इमा कन्यला ) पतिकी हथला बननेवाली ये कन्याएँ ( पितृलोकास्वर्ति यती ) पिताक परसे पतिके घर जाती हुई ( दीक्षा असृशत, सु-आहा ) दीक्षात्मको धारण करें, वह उत्तम उपदेश है ॥ ५२ ॥

भाषार्थ— जो सब प्रकारका हमारा गहान है वह हम सबसे पूरी तरह दूर हो जावे । जो हृदयको जलनेवाली दोरबन्धि है, वह भी हम सबसे दूर हो ॥ ४८ ॥

जो कुछ हिंसा और पापघातके कृष्ट हैं, जो दरिद्रताएँ और दुष्ट स्थितियाँ हैं, वे सबकी सब हमसे दूर हों ॥ ४९ ॥ मेरा शरीर सुदौल और हृद्युष्ट है । वस्त्रधारणसे उसकी शोभा घटती है, तथापि जोधर हम पक्ष धारण करते हैं, जिससे हमें कोई कष्ट न हो ॥ ५० ॥

जो हमारे की धर्मने उपाध बन्ना हुआ है, जिसमें सुदर किनारियाँ और शत्रु हैं लगा हुई हैं वह वस्त्र हों सुल देने वाला हो ॥ ५१ ॥

ये कन्याएँ उपरर होनेक कारण पतिकी कानना करती हैं और पतिके पास पहुँचती हैं । अर्थात् पुरुषधर्मकी दीक्षाएँ स्वीकार करती हैं ॥ ५२ ॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अंधारयन् । वचो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५३ ॥	॥ ५३ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अंधारयन् । तेजो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५४ ॥	॥ ५४ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अंधारयन् । भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५५ ॥	॥ ५५ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अंधारयन् । यशो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५६ ॥	॥ ५६ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अंधारयन् । पथो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५७ ॥	॥ ५७ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अंधारयन् । रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५८ ॥	॥ ५८ ॥
यदुमि केधिनो जना गृहे तै समनतिषु रोदेन कृण्वन्तोऽपम् । अग्निष्ठा तस्मादेनेसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ५९ ॥	॥ ५९ ॥
यदुमि दुहिता तव विकेदयकृदद् गृहे रोदेन कृण्वन्त्यपम् । अग्निष्ठा तस्मादेनेसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६० ॥	॥ ६० ॥
यजामयो यद्यवतयो गृहे तै समनतिषु रोदेन कृण्वतीरपम् । अग्निष्ठा तस्मादेनेसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६१ ॥	॥ ६१ ॥
यचै प्रजायां पशुषु यदा गृहेषु निष्ठितमघर्कङ्गिर्यं कृतम् । अग्निष्ठा तस्मादेनेसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६२ ॥	॥ ६२ ॥

अर्थ— ( बृहस्पतिना अवसृष्टां ) बृहस्पतिके द्वारा रची हुई इस दीक्षाको ( विश्वे देवाः अंधारयन् ) सब देवोंने धारण किया । ( यत् वचः गोषु प्रविष्टं ) जो वच गौधूमिं प्रविष्ट हुआ है, ( तेन इमां सं सृजामसि ) उससे इसको संयुक्त करते हैं ॥ ५३ ॥

बृहस्पति द्वारा रची हुई इस दीक्षाको सब देवोंने धारण किया । जो ( तेजः ... भगः ... यशः ... पथः ... रसः ) तेज, भाग्य, यश, दूध और रस गौधूमिं प्रविष्ट हैं, उससे इसको संयुक्त करते हैं ॥ ५४-५८ ॥

( यदि हमे केधिनो जनाः ) यदि वे लघे बालवाले लोग ( ते गृहे समनतिषुः ) तेरे घरमें नाचते रहे और ( रोदेन अघं कृण्वन्तः ) रोनेसे पाप करते रहे ॥ ( यदि ह्यं दुहिता ) यदि यह पुत्री ( विकेदी तव गृहे अयदत् ) बालोंको खोलकर तेरे घरमें रोती रही और ( रोदेन अघं कृण्वती ) से रोककर पाप करती रही ॥ ( यत् जामयः यत् युवतयः ) जो घड़िनें और जिया तेरे घरमें रोती रहें और रोककर पाप करती रहें ॥ ( यत् ते प्रजायां पशुषु यत् या गृहेषु निष्ठितं ) जो तेरी प्रजायें, पशुओंमें और जो तेरे घरमें ( अघकृङ्गिर्यं अघं कृतं ) पापियोंके पाप किया है, ( अग्निः सविता च ) अग्नि और सविता ( तस्मात् एनेसः त्वा प्रमुञ्चतां ) उस पानसे तुझे बचावें ॥ ५९-६२ ॥

भाचार्य— यह गृहस्याश्रमकी दीक्षा बृहस्पतिके द्वारा की है । जो वच, तेज, भाग्य, यश, दूध और रस गौधूमिं हैं, वह सब इस गृहस्याश्रममें रहनेवालोंको प्राप्त हो ॥ ५३-५८ ॥

जो बालोंवाले लोग, जो कुमारिकण, जो जियां रोते पीड़ते पाप करती हैं, जो बाल खोलकर पिताती हैं, इस प्रकारका जो पाप धरों, सेतारों और पशुओंके संबंधमें हो रहा है, वह सब पाप दूर होवे ॥ ५९-६२ ॥



इयं नार्युषं ब्रूते पूर्यान्वावपन्तिका । दीर्घायुस्तु मे पतिर्जीवति श्रद्धंः शतम् ॥ ६३ ॥  
 इहेमार्विन्द्र सं तुद चक्रवाकेषु दंपती । प्रजयैनौ स्वस्त्यौ विश्वमायुर्वर्षानुताम् ॥ ६४ ॥  
 यदासुन्धामुपधाने यदोपधासने कृतम् । विवाहे कृत्यां यां चक्रुराग्राणे तां नि दध्मसि ॥ ६५ ॥  
 यदुंभ्रुतं यच्छमले विवाहे यद्वतौ च यत् । तस्मिन्मलस्य कम्बले मूजमहे दुरितं वृषम् ॥ ६६ ॥  
 संमले मले सादपित्वा कम्बले दुरितं वृषम् । अभूम युष्मिषाः श्रुद्धाः प्र ण आयुषि तारिषत् ॥ ६७ ॥  
 कृत्रिमः कण्टकः श्रुतदुन्य एषः । अवास्याः केशपुं मलमर्षं दीर्घेषु लिह्यात् ॥ ६८ ॥  
 अज्ञादुज्ञाह्वयस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि ।  
 तन्मा प्रापेत्पृथिवीं मोत देवान्दिवं मा प्रापेदुर्वै न्तरिक्षम् ।  
 अपो मा प्रापन्मलेमहर्षे यमं मा प्रापन्पितृशु सर्वांन् ॥ ६९ ॥

अर्थ— (इयं नारी पूर्यानि आवपन्तिका) यह स्त्री फूले हुए धानपकी आहुति देती हुई ( उप ब्रूते ) कहती है कि ( मे पतिः दीर्घायुः अस्तु ) मेरा पति दीर्घायु होवे और वह ( श्रद्धंः शतं जीवति ) सौ वर्ष जीवित रहे ॥ ६३ ॥  
 हे इन्द्र ! ( चक्रवाका इष ) चक्रवाक पक्षीके जोड़ेके समान ( इमौ दम्पती इह सं तुद ) इन पतिव्रतियोंको इस संसारमें प्रेरित कर । ( एनौ सु-अस्त्यौ प्रजया ) ये दोनों उत्तम घरवाले होकर संतानके साथ ( विश्वं आयुः ज्यद्भुतौ ) सब आयुका उपभोग ले ॥ ६४ ॥

( यत् आसंघां ) जो पाप बैक्कर, कुर्सीपर, ( यत् उपधाने ) जो बिहारेपर, सिराहलेपर, और ( यत् या उपधासने कृतं ) उपवस्त्रर किया था, तथा ( विवाहे यां कृत्यां चक्रुः ) विवाहमें मिल हिंसक प्रयोगको किया था, ( तां आस्नाने नि दध्मसि ) उसको हम स्नानमें पो डालते है ॥ ६५ ॥

( यत् विवाहे यत् च यद्वतौ ) जो विवाहमें और जो बरतके रूपमें ( दुष्कृतं यत् शमले ) जो दुष्ट कृम और मलिन कर्म किया ( तत् दुरितं संमलस्य कम्बले मूजमहे ) यह पाप हम संमलेके कण्टकमें पो देते है ॥ ६६ ॥

( संमले मले सादपित्वा ) संमलमें मल डालकर, और ( दुरितं कम्बले ) पापको कण्टकमें रखकर, ( ययं यमियाः श्रुद्धाः अभूम ) हम सब करनेयोग्य श्रद्ध हो । यह ( नः आयुषि प्र तारिषत् ) हमारी आयुओंको दीर्घ बनाये ॥ ६७ ॥

( यः पपः शतदन् कृत्रिमः कण्टकः ) जो यह सैकड़ों बीतवाला कृत्रिम कंषा है वह ( अस्याः दीर्घेषु केश्यं मले अप अप तिरिषत् ) इसके सलकके मलको दूर करे ॥ ६८ ॥

( ययं अस्याः अंगात् अंगात् यक्ष्मं ) हम हृष्ये प्रत्येक अंगमें शोकां ( अप निदध्मसि ) दूर करते है ( तत् पृथिवीं मा प्रापत् ) वह रोग पृथ्वीको न प्राप्त हो, ( उत देवान् मा ) और देवोंको भी न प्राप्त हो, ( दिव्यं उर अन्तरिक्षं मा प्रापत् ) बुलोक और अन्तरिक्ष लोकको भी न प्राप्त हो । हे अग्ने ! ( एतत् मले अपः मा प्रापत् ) यह मल अग्नि में मास न हो, ( यमं सर्वान् पितृन् थ मा प्रापत् ) यमके और सब पिताओंको न प्राप्त हो ॥ ६९ ॥

भाषार्थ— यह नारी धावका हवन करती हुई ईश्वरसे प्रार्थना करती है कि मेरा पति दीर्घायु बनकर सौ वर्ष जीवित रहे ॥ ६३ ॥

हे मने ! पतिव्रती मिलकर सदा एक विचारसे रहे । चक्रवाकपक्षीके जोड़ेके समान भावेदने रहे । उत्तम घरवा बनकर और उत्तम संगत निर्माण कर संपूर्ण आयु कायंपो स्पतीन करें ॥ ६४ ॥

बैटक, गिरहाना, किन्ना, कच्छ तथा विवाहके विषयमें जो कुछ पाप या पाशक दोष होते हैं, वे सबके सब आत्म-शुद्धिसे दूर किये जायें ॥ ६५ ॥

विवाहमें और बरतमें जो कुछ पाप या दोष होता है, वह भी विचारके साथ दूर किया जाये ॥ ६६ ॥

अपने मल और दोष दूरकर हम सब पूज्य पवित्र और दीनरहित तथा दीर्घायु बनें ॥ ६७ ॥

कंषा लेकर स्त्रीके सगच्छा मल दूर किया जाये और वहाँको स्वच्छता की जाये ॥ ६८ ॥

सं त्वा नक्षामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नक्षामि पुपसौपधीनाम् ।

सं त्वा नक्षामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजभेमम्

॥ ७० ॥

अमोऽहर्मास्मि सा त्वं सामाहमस्मपूकत्वं धौरहं पृथिवी त्वम् ।

ताधिह सं भवाय प्रजामा जनयावहे

॥ ७१ ॥

जनिवन्ति नाव्ययः पुत्रियन्ति सुदानवः । अरिष्टाश्च सचेवहि बृहते वार्षसातये

॥ ७२ ॥

ये पितरो वधूदृशा इमं बहदुसार्गमन् । ते अस्थै वध्वै संपत्स्यै प्रजावृच्छर्मं यच्छन्तु

॥ ७३ ॥

येदं पूर्वाग्निश्चनापमाना प्रजामस्यै द्रविणं वेह दुश्वा ।

ता बहन्त्वर्गस्तस्यान् पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्यंजैपीत्

॥ ७४ ॥

अर्थ— (त्वा पृथिव्याः पयसा संनक्षामि) तुझे पृथ्वीके पोषक पदार्थसे मैं पुक करता हूँ । (त्वा औपधीनां पयसा संनक्षामि) तुझे औषधियेके पीष्टिक सत्वसे पुक करता हूँ । (त्वा प्रजया धनेन संनक्षामि) तुझे प्रजा और धनसे पुक करता हूँ । (सा संनद्धा इमं वाजं सनुहि) यह ए स्त्री उक्त गुणोंसे युक्त होकर इस बरको प्राप्त कर ॥७०॥

(अहं अमः अस्मि) मैं प्राण हूँ और (सा त्वं) पथित हूँ है । (साम अहं प्राह त्वं) साम मैं हूँ और ऋचा तू है, (द्यौः अहं पृथिवी त्वं) तुलोक मैं हूँ और पृथ्वी तू है । (तौ इह संमथाय) वे हम दोनों एकट्ठे हों और (प्रजां आ जनयावहे) संतान उत्पन्न करें ॥ ७१ ॥

(अप्रयः औ जनियन्ति) हमारे मातापिता आदि वृद्ध मनुष्य हम दोनों (दम्पती) को पैदा करते हे अर्थात् संयुक्त करते हैं, और यादमें हम (सुदानवः पुत्रियन्ति) दाता लोग पुत्रकी कामना करते हैं । (अरिष्टाश्च बृहते वाजसातये सचेवहि) प्राण रहनेवाले हम दोनों बड़े बलजातिके लिये साथ साथ मिलकर रहें ॥ ७२ ॥

(ये वधूदृशाः पितरः) जो वधूको देखनेकी इच्छा करनेवाले बड़े लोग (इमं बहदुं आगमन्) इस रथको देखने आये हैं, (ते अस्थै वध्वै संपत्स्यै) वे इस वधू अर्थात् उत्तम पंथीके लिये (प्रजावत् शुभं यच्छन्तु) प्रजा-युक्त सुख प्रदान करें ॥ ७३ ॥

(या रक्षामायमाना पूर्वा इव आ अगन्) जो रक्षानके समान अच्छे संबंधसे युक्त पहिली स्त्री इस स्थानपर प्राप्त हुई, वह (अस्थै प्रजां द्रविणं च इह दत्त्वा) इसके लिये संतान और धन बड़ा देकर (तां अगतस्य पन्थां अनु यच्छन्तु) उसको भविष्यकालके मार्गसे सुरक्षित ले जायें । (इयं विराट् सुप्रजा अति अजैपीत्) यह वधू तेजस्विनी और उत्तम प्रजावाली होकर विजयी होवे ॥ ७४ ॥

माचार्य— इसी प्रकार स्त्रीके शरीरका प्रत्येक भाग स्वच्छ किया जावे, यह मूत्र शुष्ण, मंथरीश, आकाश, लघु, वनस्पति आदिके पास न जावे, बपितु ऐसे स्थानपर मूत्र गाढ़ दिया जावे कि जिससे यह फिर किसीको कष्ट न दे सके ॥९१॥

स्त्रीको शुष्ण और औषधियेके पीष्टिक रहनेसे पुष्ट किया जावे । उसको धन दिया जावे ताकि उत्तम संतान उत्पन्न हो । स्त्री बलजातिकी होकर धनमें विरते ॥ ७० ॥

पुरुष प्राण है और स्त्री रथि है, पुरुष क्षमगान है और स्त्री मंत्र है । पुरुष सूर्य है और स्त्री पृथ्वी है । ये दोनों मिलकर इस संसारमें रहे और उत्तम संतान उत्पन्न करें ॥ ७१ ॥

भविष्यद्विश्व स्त्री पुरुष अपने सहपत्नीधरणके लिये योग्य पुरुष और योग्य स्त्रीकी अपेक्षा करते हैं जो उदार दाता होते हैं उनको ही उत्तम संतान होती है । ये मनुष्य उत्तम बलको प्राप्तिका यत्न करें ॥ ७२ ॥

जब वधूको देखनेके लिये बराबरके समय अनेक स्त्री पुरुष उभा होते हैं । वे सब नववधूको सुसंतान होनेका शुभ आशीर्वाद देवें ॥ ७३ ॥

जैसे बोरियों अनेक भागे होते हैं, वैसे ही गृहस्थाधम मिलकर रहनेका आधम है । गृहस्थाधममें एकट्ठे हुए सब लोग स्त्रीको धन और सुसंतान प्राप्त होनेका शुभआशीर्वाद देकर उसको शुभ मार्गसे चलायें, इस तरह यह स्त्री तेजस्विनी, पत्न-स्विनी तथा सुसंतान युक्त होकर विजयी होवे ॥ ७४ ॥

प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशरदाय ।  
गृहान्वाञ्छ गृहपत्नी यथासौ दीर्घं त् आयुः सविता कृणोत

॥७५॥

अर्थ— दे वप ! तू ( सुबुधा बुध्यमाना ) उत्तम ज्ञानयुक्त तथा ज्ञानरहकर ( शतशरदाय दीर्घायुत्वाय प्र बुध्यस्व ) सौ वर्षके लिये जीवनके लिये जगती रह । ( गृहान् गृहपत्नी ) अपने पतिके घरकी जा, ( यथा गृहपत्नी असः ) गृहस्वामिनी जैसी बनकर रह । ( सविता ते आयुः दीर्घं कृणोत ) सविता देरी ज्ञानु दीर्घ बनावे ॥ ७५ ॥

भावार्थ— जो विदुषी होवे, सबेर प्रातःकाल उठे, सौ वर्षकी दीर्घ आयुके लिये ज्ञानमोक्षपूर्वक प्रयत्न करे । अपने पतिके घरमें रहे । अपने घरकी स्वामिनी बनकर विराजे । परमात्मा इसको दीर्घायु करे ॥ ७५ ॥

## विवाह-प्रकरण

### वैदिक विवाहका स्वरूप

#### प्रथम-सूक्त ।

मपर्ववेदके इस षतुर्दश काण्डमें वैदिक विवाहका स्वरूप और वैदिक विवाह-प्रवृत्ति वर्णायी है । प्रथम सूक्तके प्रारंभमें पांच मंत्र केवल सामान्य उपदेश देनेवाले हैं । इनमें सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथ्वी और सोम आदिका वर्णन है, परंतु इन मंत्रोंमें इन देवताओंका वर्णन करते हुए विवाहका तथा पतिपत्नीका आदर्श बताया है ।

#### धौः और भूमि ।

प्रथममंत्रमें भूमिको पत्नीके रूपमें और सूर्य अधवा सुलोकोको पतिके रूपमें बताया गया है । माता सबकी माता पृथ्वी है और सबका पिता सूर्य है । यह सब संसार मानो पृथ्वी और सूर्यकी मातापिताकी संतानरूप हैं । एक ही परिवारके इन सब हैं । जितने भी संसारके मनुष्य या पशु-पक्षी हैं, वे सब एक ही परिवारके हैं । संपूर्ण मनुष्योंमें माई-माईका माता है । पतिका आदर्श सूर्य है या सुलोको है । सुलोको वह है जो खगोल है, सदा प्रकाशित है । वह सबको प्रकाश देता है । इसी प्रकार पति अपने परिवारको उत्तम ज्ञानका प्रकाश देवे और सब संतानोंको ज्ञानप्राप्त करे । इसी तरह भूमि सबको आश्रय देती है, फल और अन्न देकर सबको पालि करती है । इसी तरह माता सब संतानोंको अपने प्रेमका आश्रय देवे और सबको स्नानपाव द्वारा योग्य शिथिले पुष्ट करे । इस तरह विचार करते पर तथा धाव-भूमिके आदर्शका मनन करनेसे ही पुरुषके अपना पतिपत्नीके

आदर्श सबकी उपदेश इस मंत्रमें स्पष्ट विहिते जात हो सकते हैं ।

गृहस्थधर्मका आधार सत्य है, यह बात इस सूक्तके प्रारंभमें ही ' सत्य ' शब्द द्वारा बताया है । स्त्रीपुरुषका व्यवहार सत्यका ही होवे, वरममें असत्य, कपट, छल आदि कभी न आवें । इसीसे आदर्श गृहस्थधर्म हो सकता है । दूसरा मंत्र ' क्रतु ' है । क्रतुका अर्थ सरलता है । सत्य और क्रतु ये दो ही उच्चतिके नियम हैं । सत्य धर्मनियमोंका यही स्वरूप है ।

#### सोम

द्वितीय मंत्रमें ' सोम ' के महत्त्वका वर्णन किया है । यह सोम स्वर्गमें, पृथ्वीपर और कक्षोंमें भी है । नक्षत्रोंमें जो सोम है वह चन्द्र ही है । यह सब नक्षत्रोंकी शोभा है, राशिके समग्र इतकी भवर्णनीय शोभा होती है । यह ज्ञानिका आदर्श है । मनुष्य इस ज्ञानिके आदर्शको सदा मनमें धारण करे और ध्यात्न रहे, श्रौष्य बलवति आदि सुगुणोंको दूर रखे । सोम द्वारा यह आदर्श मंत्रने पवित्र सामने रखा है ।

पृथ्वीपर भी ' सोम ' है, यहाँ सोमका अर्थ ' वनस्पति तथा भक्ष ' है । यह पृथ्वीपर रहनेवाला सोम आकाशमें सोमका प्रतिनिधि है । यह पृथ्वीपर रहनेवाले मनुष्यों और पशुपक्षियोंकी दृष्टि करता है । पशुपति दोनोंका नाम सोम है, परंतु वे दोनों एक नहीं हैं । सोमके अनेक अर्थ हैं और सोम शब्द द्वारा अनेक पदार्थोंका बोध वेदमें होता है । मतः सर्वत्र सोम शब्दसे एक ही पदार्थका बोध लेना अवश्यक है ।

आगे तृतीय मन्त्रक पूर्वार्धमें सोमरसका पान करनेका वर्णन है। यह सोमपान यज्ञमें होता है इसको सप जानते ही हैं। परंतु इसा मंत्रक उत्तरार्धमें विशेष अर्थमें सोमपानका उल्लेख है। वहा कहा है कि ' जो सोमपान मज्जसानी करते हैं, वह सोमपान कोई अन्य मनुष्य कर नहीं सकता। ' यहाका सोमपान महानदका पान है। जो मज्जसानी ही कर सकता है। यह भी सोम है। यही परमात्मा बल्लभ आनंदका रस है। परमात्माको एकल कहते ही हैं। यही अन्तिम और अविशेष सोमपान है। धर्म मनुष्यको इसी सोमपानक लिये योग्य बनाता है। साधारण मनुष्य इस सोमको नहीं पी सकता, क्योंकि विशेष उच्च अवस्था प्राप्त होनेपर ही यह सोम पीना संभव है।

परमात्माक सरोजानन्दरसरूप सोमके विचारके साथ साथ सततचित्तसे सोमपानकी अनेक शोभप्रशंसा कल्पनाएँ वेदने कहा जाता है। इनके बीच सप प्रकारके सोम खा जाते हैं। इस प्रकार इस सोमपानका महान्य है। इसका वर्णन यहा करनेका उद्देश्य यह है कि गृहस्थी लोग अपने यज्ञमें सोमपान करें। सर्वाधारणका सोमपानका अर्थ है औपश्रितिका सेवन करना। यह सप गृहस्थी करें। गृहस्थियोंका यह भय है। यत्नसे, धान्य पल, शाक आदिका सेवन गृहस्थियोंक परिचारोंमें होता रहे। मांस, रक्त, शण्ड आदिका सेवन निषिद्ध है। पुत्री माता जिस सोमरससे सपकी पुष्टि कर रही है, वह यही वानरवल सोम है।

इसके पश्चात् ऋषि, मुनि, साधु, सत आदि अपनी भावार्थानक उच्चति करते हुए परमात्माके आनंदका रसपान करते हैं। यह भी सोमपान ही है। इसकी योग्यता सर्व साधारण गृहस्थियोंके पास नहीं होती। गृहस्थाध्यायका धर्म इस योग्यताको मनुष्यों उत्पन्न करता है। शर्षात् गृहस्थाध्यायका पालन उत्तम रीतिले कर चुकनेपर गृहस्थी यज्ञप्रस्थाध्यायमें प्रवेश करता है, उस अध्यायमें भी अपने धर्मको अच्छीतरह पालन करके वह इस सोमपानके योग्य होकर सन्यासाध्यायमें प्रविष्ट होता है। गृहस्थाध्यायसे आगे चलकर साध्य होनेवाली यह बात है, यह सूचित करनेके लिये और गृहस्थियों परकी निर्मोचारी बतानेके उद्देश्यसे ये सब प्रकारके सोमपान यहा इन मन्त्रमें बताये हैं।

### बरातका रथ

आगे मंत्र ६ से १२ तक बरातके रथका वर्णन है। यह रथ आत्यंतिक वर्णन है। यह तो मनका ही काव्यनिक ('अनो मनस्वर्थ' मं १२' तथा 'मनो अस्य अन

आसीत्' मं १०') रथ है। तथापि यह काव्यनिक रथका वर्णन इसलिये दिया है कि मनुष्य विवाहके समय ऐसे उत्तम रथ बनाके और बरात निकाल और वधूको पतिक घर बड़े टाटसे ले आये। इस बरातके रथके विषयमें इन मन्त्रोंका वर्णन देखने योग्य है।

जप (सूर्या पति अपात्) सूर्यको पुत्री अपने पतिक घर गई, तब इस प्रकारके सुंदर रथपर वह बैठकर गई थी। इस समय (उपसर्गण। मं ६) उत्तम तक्षिया रथमें था, क्षियोंने अपनी आंखोंमें (आङ्गज्ज) काण्ड लगाया था, पर्याप्त (कोश) धन साथमें ले लिया था। यह धन चाँदे बालूपण हो या मुद्रारूपमें। परंतु यह इसमें भयङ्ग होना चाहिये। जप रथ चरने लगा एक सत्र लोगोंने (अनुदेयी। मं ७) अनुकूल भागीचाँदे दिये, सब लोगोंने वधूकी प्रशंसा (नादरासी) की। इस तरह सब बालुगदल मनुहल धन गया था। उस मन्त्रमें एक भी मनुष्य इनक प्रतिकूल न था। न कोई विशेष करनेवाला था। सत्र जानन्दमत्तक थे और सभी वधूवरका हित एकचित्तसे चाहते थे।

(भद्र यास.) इस समय सूर्यका दक्ष उत्तम था, बहुत ही सुंदर रथ था। ऐसे सुंदर रथोंसे युक्त होकर सत्र क्षिया वधूके साथ थीं।

इस बरातमें आगे उत्तम गायक थे, वे सुंदर छंदोंमें और गधुर स्वरमें मंगल पद्य गाते हुए आगे चल रहे थे। सबसे आगे दो बैध चल रहे, उनके साथ अग्नि मार्गदर्शक था। इसके प्रकारमें यह बरात चल रही थी।

जिस रथमें यह वधू बैठी थी, उस रथपर सुंदर उठ थी, मंदिर जैसा उसका शिखर था, यह एक भद्ररसे सुंदर भाकातके तामान बिलारु देती (सौ छवि. मं १०) थी। दो श्वेत बैल (शुभ्री अन्व्याहौ) इस रथमें जोड़े गए थे। यह बरात सोमके घर चल रही थी। क्योंकि सोम ही इस सूर्यका पति था। सोमने ही इस सूर्यका मंगनी की थी और सोमके साथ इस सूर्यका विवाह हुआ था।

जब सोमने मंगनी की थी, उस समय बहा शौनों मधिनी कुमार देवोंके बैध थे। शर्षात् वैद्योंक सामने यह मंगनी हुई थी। इस मंगनीको सूर्यक पिताने स्वीकार किया था।

सूर्या यत् पत्ये शसन्ती मनसा सचितावृद्धात् ॥

( म ९ )

'सचिताने मन्ते पतिके विषयमें पूज्यभाज रखनेवाली अपनी पुत्री सूर्यका दान पतिके हाथमें किया था।' यह महाविवाहका आदर्श देनेके मनुष्योंके सम्मुख रखा है। इसमें

वधुका पिता अपनी कन्याका दान करता है और उस दान विधिसे कन्या बरको मास होती है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि शाश्वत विवाहका आदर्श वेदको मान्य नहीं है। वर अपने लिये वधुकी गगनी करता है, वधुका पिता उस मग नीको स्वीकार करता है, नार सुमुहूर्तपर अपनी पुत्रिका दान करता है। इससे स्पष्ट है कि कन्यापर अधिकार पहिले पिताका होता है और इस कन्यादानविधिसे कन्यादानक पश्चात् इस्पर पतिको अधिकार हो जाता है। श्री स्वतंत्र अर्थात् स्वेच्छाचारिणा न रहे। या तो वह पिताके अधिकारमें रहे अथवा पतिके आधीन रहे। इन दोनोंकी अनुपस्थितिमें वह ज्येष्ठ पुत्र, भाई या अन्य भेद पुरुषकी आशामें रहे, परंतु स्वतंत्र न रहे। (अदात्) दान तो होता है वह स्वतंत्रका नहीं हुआ करता। पुरपका दान कभी नहीं होता, क्योंकि वह स्वतंत्र है। कन्याकाही दान पहा दिया है।

सूर्या सधिता पत्ये अदात् । ( भर्ष १४११६१५ )

महां त्वाऽहुर्माहिपत्याय देया । ( ऋ १०८५१३६, अर्थ १४११५० )

इस दोनो स्थानोंपर अर्थात् कन्येदमं और अर्धवेदमं (अदात्, अहुः) कन्यादान ही लिया है। जत जो लोग समझते हैं कि वैदिक कालमें कन्या स्वतंत्र थी, यह उनकी भूल है।

। न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ।

यह स्मृतिवेदां का धन वेद समत है, जो लोग इस स्मृति-वचनका उपहास करते हैं, वे इस वेदवचनका अधिक मनन करें। कन्या स्वतंत्र न रहे, बाल्यमेंसे मातापिताकी शिक्षामें रहे, विवाहित होनेपर पतिसे शिक्षा प्राप्त करे। वर कन्याकी वाचना वधुके विवाले वरे और विवा (मनुसा अदात्) अपने मनसे समति दे। तब विवाह हो। कन्या स्वयं विवाहो अनुमतिके बिना अपना स्वयंवर न करे, स्वयंवर करना भी हो, तो उक्त लिये ही प्रित्तकी समति ले ले। वेदमें इत्ये वरके मत्र किसी स्थानपर अथवा देवतेमें नहीं आये हैं। इससे प्रतीत होता है कि स्वयंवरकी प्रथा पंडितों कणी है, जस्तु।

इस तरह कन्यादानपूर्वक विवाह होनेके पश्चात् वधु अपने पतिके घर जानेका समय आता है। उस समय सुंदर रथ तैयार किया जाये। उसमें गाइनों और कनिके से, रथ सुंदर सजाया जाये। उसमें बिल उसमें जोते जायें। उनमें घोड़े भी जोते जा सकते हैं। रथके चक्र भी (शुची) सुंदर रत्न और सजावटसे युक्त हों। इस तरह रथ प्रयासे

सुंदर और सजावटसे मनोरम बनाये गए उस सुखदायी रथपर आरुढ़ होकर वधु अपने पतिके घर जाये।

### दहेज ।

विवाह होनेके पूर्व वधुका पिता अपने दामादक लिये अपने सामर्थ्यके अनुसार (वहनुः) दहेज भेज दे। मत्र १३ में (गाय०) गौरीको दहेजे रूपमें भेजनेका उल्लेख है। गौर ही बटा धन है। कन्य धन इससे कम योग्यतामान्य है। गौरीके वधुसे धारके सब आचार्यवृत्तोंकी पुष्टि होती है, इसलिये वधुका पिता अपनी कन्याके पतिको उक्तम उक्तम गौरी देवे और वे गौरी विवाहके पूर्व पतिके घर पहुँचें। पश्चात् विवाह होवे और तत्पश्चात् वधु अपने पतिके घर जाये। भवा नक्षत्रके समय दहेज भेज दिया और चन्द्रमा जत्र कलुनी नक्षत्रमें आगए तब विवाह हो। प्राय यह कपसे कम पत्रह दिनका समय है, दामादके घर गौरी पहुँचानेके पश्चात् विवाह हो, यह शास्त्रमें है। जब वह वधु अपने पतिके घर चली जायगी, तब उसको अपनी ही परिचित गौरी मिलेगी। और गौरीको भी अपने परिचयकी स्वामिनी मिलनेसे परस्पर प्रेम रहेगा। इस तरह यह कन्यादानके पूर्व गौरीको दान वैदिक विवाहमें एक मुख्य बात है।

मत्र १४ और १५ में कहा है कि वधुसरे दो मनुष्य (शश्विनौ) घोड़ेपर सवार होकर वापसके घर पहुँचते हैं। वाको वह दहेज भरणित करते हैं। इस तरह इन परस्पर संमेलनका सब पारिवारिक लोग समति और अनुमति देते हैं और सब जातिको समति उसमें रहती है। मगनीय मयय, विवाहके समय और बरातके समय सब पारिवारिक जन, सब पालिक मजब उपस्थित होते हैं। यह बात 'दवा' पन्से सिद्ध होती है। सूर्यदेव और सोमदेवक पारिवारिक जन जातिव सजन (देवाः) देव हैं। इनमें यह मनुष्योंमें विवाह होनेके समय वधु आर वर पश्चात् पारिवारिक तथा जातिक लोग सम्मिलित होने चाहिये, यह बात उसी वर्णनसे स्वयंविद्ध है। क्योंकि सूर्यमें जैसा विवाह अपनी पुत्री सूर्यी का सोमके साथ किया, वैसा ही मानवोंको अपनी पुत्रियाँका करना है। वरतुव सूर्यने जो अपनी पुत्री सूर्यीका विवाह किया वह एक आन्तरिक बात है। यह वर्णन इसलिये वेदमें किया है कि इसको देखकर लोग अपने विवाह इस विधिसे अनुसार करें। वेदका यह रूपक सूर्यका विरग कन्द-माको प्रकाशित करता है, इस मूल वाक्यको लेकर रचा गया है। और विवाहके आवश्यक सिद्धांत इस आन्तरिक वर्णनमें उक्तम रीतिसे सामग्रीय किये गये हैं।

## पुराना और नया संबंध ।

मंत्र १० और १८ में वधूका संबंध पितृकुलसे और पतिकुलसे होनेका उक्तम वर्णन है—

इतः वंधनात् प्रमुञ्चामि, न अमुता । (मं. १०)

इतः प्रमुञ्चामि न अमुता, अमुतः सुयदां करम् ।  
(मं. १८)

इन मंत्रोंमें स्पष्ट कहा है कि 'इस पुत्रीको हम पितृकुलमें छोड़ते हैं, और पतिकुलके साथ ऐसा सुसंबंध करते हैं कि यह पतिकुलसे कभी न छूट सके।' कन्याका पितृकुलसे छूटना तो आवश्यक ही है, परंतु प्रश्न यहां यह उत्पन्न होता है कि यह कन्या पतिकुलसे किसी प्रकार छूट सकती है, या नहीं? इस प्रश्नके उत्तरमें वेदका यह कथन है कि कन्या पतिकुलसे अपना संबंध नहीं छोड़ सकती। किसी भी अवस्थामें उसका संबंध पतिकुलसे छूटना वैदिक धर्मकी दृष्टिसे असंभव है। उक्त मंत्रोंमें गुप्ततः रीतिसे कहा है कि (न अमुता, अमुतः सुयदां करं) नहीं, पतिकुलसे तो उसको उक्तम पक्षी रीतिसे बांधता है। इस सुबद्ध करनेका तात्पर्य यह है कि वह पतिकुलसे कभी विमुक्त न होवे। निवोगका रीतिमें निवृत्तपुरुषके साथ संबंध होनेसे भी पतिकुलका संबंध गुप्त रहता है और संतान तो पूर्व पतिकी ही होती है। परंतु पतिके जीवित रहते हुए स्त्रीका पुनर्विवाह तो सर्वथा असंभव है, क्योंकि पुनर्विवाहसे तो पतिकुलका संबंध छूट जाता है। इस कारण वैदिक धर्ममें पतिके जीवित रहते हुए स्त्रीका पुनर्विवाह संभव नहीं है। वैदिकधर्ममें द्विजाविधियोंमें तो सर्वथा पुनर्विवाह असंभव है।

आजकालका पतिलाय (पत्न्य) या पत्नीत्वान्तो निर्वात अवैदिक है। आजकल प्रयोग, अनारीकाका अनुकरण करनेवाले कई भोटे भारतीय लोग विवाहित संबंध भद्रालासे तोड़नेके पक्षपाती दौखिते हैं। परंतु यह रीति वैदिक धर्मके अनुकूल नहीं है। स्वयंवरके प्रथममें भी पतिव्रतित्वात् या पत्नीपरित्याग संभव नहीं है, फिर ब्राह्मविवाहके अनुसार तो कैसे संभव हो सकता है! पूर्वीक मंत्रमें उपमा दी है कि जैसे कोई पत्त (उपारिक्तबंधनात्) अपने वृक्षसे या बेलसे परिपक्व होनेपर बंधनसे छूटता है, वैसे वह कन्या पितृकुलसे संबंधसे विवाहके समय मुक्त हो शयी है। इसका संबंध पतिकुलसे हुआ है और यह संबंध सुबद्ध अर्थात् दृढतर हो चुका है, वहांसे मुक्तता नहीं हो सकती।

आगे १९ वें मंत्रमें कहा है कि यह कन्या वधुके पाससे

पितृकुलसे सुसंबद्ध हुई थी। विवाहके समय ये पास तोड़ दिये गये हैं। वरुणके पास किसी अन्य कारणसे दूट नहीं सकते। पितृकुलसे संबंध तोड़कर पतिके कुलसे नया संबंध जोड़ दिया है। यह संबंध जो पतिके कुलसे हो गया है, वह (सह-सं-भलायै) इस कुलकी देखभालके लिये है। पतिके कुलके परिवारके साथ इस स्त्रीकी देखभाल होती रहे। अर्थात् यह कन्या बाल्यमें पितृकुलसे पारोक्षिक साथ बांधी गई थी, वधुवेदके पारोक्षिक साथी गई थी, और वरुणके पास ऐसे होते हैं कि उन्हें पोटनेका सामर्थ्य किसीके अन्दर नहीं होता। वे वरुणके पास विवाहविधिते दूट आते हैं, परंतु वही वधू पतिकुलसे ऐसी बांधी जाती है कि वहासे आसराण वह अपना संबंध छोड़ नहीं सकती। इस पतिकुलमें रहती हुई—

ऋतस्य योनी सुकृतस्य लोके स्योनाम् ॥

(मं. १९)

'सत्यके घरमें और पुण्यदानोंके स्थानमें जो सुकृत प्राप्त हो सकता है, वह इसकी पतिके घर प्राप्त हो।' अर्थात् यह पतिके घरमें रहती हुई सत्य मार्गसे चले और पुण्य कर्म करती हुई सुकृतको प्राप्त हो। यह स्त्रीका धर्म है। पतिके रहनेका या पतिके मरनेके पश्चात् भी स्त्रीका वही धर्म है, इस धर्मसे वह पतिव्रत न हो, और इस धर्मका आचरण करती हुई वह सुकृतको प्राप्त करे। स्त्रीका स्वतंत्र आचार या स्वच्छाचार सर्वदा ग्रहित है। स्त्री न पितृघरमें स्वतंत्र है और न पतिके घरमें ही और न पतिके मरनेके पश्चात् ही यह स्वतंत्र हो सकती है।

ब्राह्मणधर्ममें जो सविता देवने वरुणके पाससे उसे पितृकुलसे बांध रखा था (मं. १९), विवाह होनेके समय ये पास तो दूट गये, परंतु भगवदेवतामें उसका हाथ पकड़कर बरातके रथक चलाया, पश्चात् जब वह पतिके घर आनेके लिये रथमें बैठी, तब अधिधीदेव उसके रक्षक बने (मं. २०), अतएव यह वधू पतिके घर नहीं पहुंचती, बहोतक आधीनी देवीकी रक्षामें यह रहती है। पश्चात्—

गृहान् गच्छ, गृहपत्नी यथाऽन्यो वशिनी स्वम् ॥

(मं. २०)

पतिके घर यह नव वधू पहुंचती है और वहां वशिनी होकर रहती है। यह स्वयं अपनी ईशियां वशमें रखती है, वरुणके परिवारको वशमें रखती है और स्वयं बड़े लोगोंकी आशामें रहती है। इस तरह यह पतिके घर पहुंचनेके पश्चात् वशी

करती है। तत्पश्चात् यह विद्वद्भूमि वरुणके पाशोंसे बंधी रहती है। स्वतंत्र नहीं होती। इसके ऊपर प्रथम पिता और माता निगरानी रखते हैं, फिर देवताओंकी निगरानी रहती है, और अन्तमें पतिकी निगरानी होती है। नियमबद्ध पर-वेक्षणमें जितनी स्वतंत्रता हो सकती है, उतनी तो अवश्य है। विद्या, कला, संस्कृति आदिके विकासके लिये जितनी आवश्यक है, उतनी स्वतंत्रता होनी ही चाहिये, पर स्वेच्छा आह्वान विहायकी स्वतंत्रता वेदके लिये अभिमत नहीं है। वैदिक समयमें प्रत्येक कुमारी अपने मातापितासे आवश्यक शिक्षा पाती थी और पश्चात् पतिसे। स्वतंत्र रीतिसे काले-जोमें रहना और कुमारीके साथ मिलकर शिक्षा पाना, उत्तम शिक्षाका रूप नहीं है।

### गृहस्थाश्रमका आदर्श

भाग्य संक्र २१-२३ तक गृहस्थाश्रमका सुंदर वर्णन है। प्रत्येक गृहस्थी इस सुखका अधिकारी है। जो धर्मादुकूल रहे और गृहस्थी धर्मका पालन करे, वह इस सुखको प्राप्त कर सकता है।

( १ ) अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जाग्रहि । ( म २१ )

इस पतिके घरमें अपने गृहस्थ-धर्मका जागते हुए पालन कर' अपने गृहस्थ-धर्म पालनमें प्रमाद न कर, दृष्टगणसे अपने पतिके घरमें रह और अपना कर्तव्य कर।

( २ ) इह ते प्रजायै प्रियं समुद्रपताम् । ( म २१ )

' इस गृहस्थाश्रममें रहते हुए अपने संतानका प्रिय, सुख और कल्याण करना तेरा मुख्य कर्तव्य है । ' सुसंतान निर्माण करना गृहस्थका धर्म है। गृहस्थधर्मका यह पुष्प और फल है, इसे सुयोग्य बनानेके लिये जो वाक किया जाये, वह योद्धा है। मातापिताके सब संस्कार शैशवरूपसे संतानमें भाते हैं, अतः मातापितापर यह जिम्मेवारी है कि वे अपनेपर कोई अनुभव संस्कार न होने दें। शरीरके रोग, सुखी आदित्त और अन्य दुःसंस्कार संतानमें अंशरूपसे उतरते हैं, अतः मातापिता-जनोंको उचित है कि वे स्वयं परिशुद्ध रहें और शुभ संतान निर्माण करनेका यत्न करें। इस तरह प्रयत्न करनेपर संतान मेंके लिये शुभसंस्कार ही मिलेंगे, और उनकी संतानमें क्रमशः सुधरती और सुसंस्कारसंपन्न होती जायगी।

( ३ ) एना पत्या तन्यं से सृष्टारव । ( म २१ )

' हे बच्चे ! इस पतिके साथ आनंदप्रसन्न होकर रह । ' बच्चे सब प्रकारके धर्मादुकूल उपभोग प्राप्त करें। सदा मम कृताये दिनपरायण स्थित रहें। दुःखी रहनेसे बीसा पित्रधि

दायन भी उलानमें भा जायगा, इसलिये प्राप्त देवर्षिके उप-भोगके चित्तकी प्रसन्नता रखें और अन्त करण सदा शुभच-रित्तमें ही रहें। इस समयमें रहनेका यही मुख्य नियम है।

( ४ ) अथ जिधिः विदुर्ध आ यदासि । ( म २१ )

' इस ढंगसे गृहस्थाश्रममें रहते हुए जब कारण बड़ा जाय, और बृद्ध अवस्था प्राप्त हो, अर्थात् बहुत अनुभव आ जाय, तब तू अपने अनुभव उपदेशद्वारा दूसरोंको बता । ' इससे पूर्व नहीं। इसके पूर्वका समय ज्ञानग्रहण करनेका है, उपदेश देनेका नहीं। उपदेश देनेका काम अनुभवी पूर्वका ही है। इस समयमें पर्याप्त अनुभव आनेपर ही अनुभव उप-देश करे। इसके पूर्व जो उपदेश करते हैं, उससे लाभकी अपेक्षा हानिकी अधिक सम्भावना हो सकती है।

( ५ ) इहैव स्तं, मा विद्वैदं, विश्वमायुर्व्यनुत्तर । ( म २२ )

' पतिव्रती इस गृहस्थाश्रममें रहे, उनमें वियोग न हो, पूर्ण आयुकी समाप्तिक तक वे दोनों एक विचारते रहें । ' यह है विवाहित बुद्धका आदर्श। विवाह होने ही वैवाहिक संवधको मोदनेकी बुद्धि, जो अनार्य देशोंमें चर्ची जाती है, यह वैदिक विवाहमें सर्वथा नहीं है। वेद चाहता है कि जो विवाह एक समय हुआ वह जीवनके अन्ततक स्थिर रहे, जन्ममें किसी तरह विरोध न सदा हो, शगुने होकर उनमें वैवाहिक संबंध न टूटें।

( ६ ) स्वस्त्यौ मोदमानी पुत्रैः मनुभिः श्रीडन्ती । ( म २२ )

' पतिव्रती उत्तम वादको हों, आनंदप्रसन्न हों और पुत्रोंके तथा नाशियोंके साथ खेलेते हुए सुखसे गृहस्थाश्रमका कर्तव्य करते रहें। गृहस्थाश्रममें रहनेवाले पुत्री पितृधिदे ने हों, मन आनंदप्रसन्न रखकर सुखके साथ अपने कर्तव्य गृहस्थी लोग करते रहें।

( ७ ) सूर्यचन्द्रके समान तेजस्वी पुत्र हों ।

( मं २३ )

' जैसे सूर्य और चन्द्र सब जगत्को प्रकाश देनेवाले हैं, वैसे ही गृहस्थीके घरमें उत्तम तेजस्वी संतान हों, वे विविध संतानमें ( श्रीडन्ती ) प्रवीण हों, ( भावयया चरतः ) कील-व्युत्के साथ जगत्में भ्रमण करें, अर्थात् दुःखलोकमें कर्म करें, बलावार् हों और विधका भ्रमण करें। अपनी बलावत् लक्ष विकार करें, संतान बलावुक्त होगा है, उसको कल्पिति कहते हैं, उनी प्रकार सूर्यकी मन्मणि भी कलाओंकी

विधि बन। और कलाकुशलतासे अपनी तथा अपने शष्टकी उन्नति मिट करे। अपनी सत्ताओंको बरत-करागरीकी शिक्षा दे।

### ब्राह्मणोंको धन और वस्त्रदान

मंत्र २५ में (ब्राह्मणोंको वस्तु विभज, शासुर्ल्यं च देहि। म २५) ब्राह्मणोंको धन दान दो और वस्त्रका दान करो। ब्राह्मणोंको दान करनेकी पद्धति आदि की है। विवाहके समय सुयोग्य विद्वान् ब्राह्मणोंको धन और वस्त्र देना चाहिये। गो, भूमि आदिका भी दान दिया जाये। यह दान बपूके सम्पत्ति दिया जाये, और इसका माणिक्य परिणाम बपूके ऊपर होवे। दान देनेकी बात इस प्रकार तब शुरू मनपर प्रतिबन्धित हो। दान देनेमें बपूका मन न लगकर वेपल भोगमें ही उस वस्त्रका मन रमने लगे, तो वह एक कुदुवका नाश करनेवाली शक्ति सिद्ध होगी। ऐसी भोगी स्त्री पतिके कुलका नाश करनेवाली होती है।

एषा पद्धती त्वया जाया पतिं विदधते ॥ (म २५)

‘यह दो पादवाली विनाशक शक्ति भागीरूपसे पतिक पर प्रवेश करती है।’ अतः स्त्रीके मनमें दान देनेके भाव नहीं आते, वह भोगी स्त्री ऐसी ही बात करने शक्ति बन्ती है। गृहस्थीका भूषण उपर की है। उदारताकी शिक्षा उस वस्त्रों अपने पिताने परसे मिलनी चाहिये और पतिव्रतमें भी मिलनी चाहिये। इसलिये दान देनेका महत्त्व उस स्त्रीके मनपर स्थिर करना चाहिये। गृहस्थीका यह एक विशेष महत्त्वका भाग है।

विगने दातव्य स्थिर नहीं हुआ, उसके मनमें (इत्या-मन्तिः) विनाश करनेकी बुद्धि उत्पन्न होती है। किसी स्त्रीमें ऐसा धृष्ट बुद्धि न हो इसलिये दानकी बुद्धि वधमें मजबूती चाहिये। यदि ऐसा न होकर स्त्री स्वैरान्तरण करनेवाली हुई तो अन्तमें पतिकुलका नाश ही होता है—

पृथक्ते अस्याः प्रातयः, पतिर्न्येषु वप्यते ।

(म २६)

‘इसकी जातिके वस्त्र प्रकृत होता है, और अन्तमें विवाह पति कलहके प्रथममें प्राय जाता है।’ इसलिये कन्या और वधुमें प्रारम्भ ही दानकी बुद्धि, परोपकार करनेकी बुद्धि स्थिर होनी चाहिये। अपने सुपुत्रका त्याग करके भी सन्तानकी सेवा करनेकी सुबुद्धि स्थिर होनी चाहिये। धर्म सेवा, दानसेवा, भादि सेवाकार्य मन्में बड़े और वे इस सेवासे ही मन् द्वेषकार्य करे।

### पुरुष स्त्रीका वस्त्र न पहने

मंत्र २७ में कहा है कि पुरुष कभी स्त्रीका वस्त्र न पहने। पुरुषका शरीर किनारा भी सुन्दर हो, परन्तु स्त्रीका वस्त्र पहननेसे वह अश्लील बनता है, शोभाहीन हो जाता है।

इससे स्पष्ट है कि स्त्रियोंका वस्त्र आरोग्यकी दृष्टिसे पहननेका अयोग्य होता है। यद्यपि स्त्रीका वस्त्र दूसरी स्त्री पहने या न पहने, इस विषयमें भी कुछ नहीं लिखा है। स्त्रीका वस्त्र पुरुष न पहने यह बात बड़ा स्पष्ट और असेविद्य है।

त्रिविध वस्त्र पहननेसे स्त्रीके रूप विशेष शोभायुक्त होते हैं, यह बात म २८ में कही है। (आशरसनं) भारीगला वस्त्र, (विशरसनं) सिरपर ओढ़ने योग्य ओढ़नी, और (अधिपिर्जनं) यह सर्वोपरि ओढ़नेका वस्त्र है। स्त्रियोंके पहननेसे वे तीन वस्त्र हैं। इनके त्रिविध रगणोंके कारण स्त्रियोंके स्वरूपकी सुदृढता बढ़ती है।

### कन्याका गुरु

कन्याका शिक्षा कैसी होनी चाहिये, यह आजका एक मुख्य प्रश्न है। आर्यतत्त्व तो कन्या और पुत्र एक ही पाठशालामें पढ़ते हैं और उनकी पाठशिक्षा समान होती है। वस्तुतः देवता जय तो पुरुषों और स्त्रियोंके कार्य दृष्ट संसारमें त्रिविध होते हैं, अतः एक ही पाठशिक्षा दोनोंके लिये लाभ देनेवाली नहीं हो सकती। आर्यतत्त्व स्त्रियोंका पुरुषीकरण और पुन्योक्त स्त्रीकरण हो रहा है। मिथ्यात्रिविधता और महतिशक्ताका यह दोष है। यद्यपि उपदेशानुसार स्त्रीपुरुषोंकी पाठशिक्षा भिन्न भिन्न होनी चाहिये। स्त्रियोंको विनोदित एक ज्ञान अर्थालाभ प्राप्त करनेकी त्रिविधता उत्तम ज्ञान होना चाहिये। (एतत्तु नृपुं) यह पदार्थ पुरुष उत्पन्न करनेवाला अर्थालाभ उत्पन्न करे, (एतत्तु कर्तृकं) यह बट्ट है, (एतत्तु अणुप्रयत् विपजत्) यह पदार्थ स्वस्थ स्वस्थ विद्याज्ञानेवाला है, वे पदार्थ त्रिविध समान गुरु उत्पन्न करते, (एतद् अन्ते न) वे पदार्थ स्वस्थोप नहीं हैं, इसी तरह त्रिविध पदार्थोंका ज्ञान कन्याओंकी पाठशिक्षामें देना चाहिये। तथा याने योग्य पाठ्य और पारित्यक पदार्थोंका भी योग्य ज्ञान स्त्रियोंको दिया जाये। स्त्रियोंके ऊपर साधुत्वोपरि एतत्तु पाठ्य नका भार रहता है, इसलिये उनको भय भोग्य छेदक वेप आदि श्रावणपदार्थोंका उत्तम ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकारकी पाठशिक्षा स्त्रियोंके लिये होनी चाहिये और उत्तम ज्ञानको प्राप्त भाग अन्तर्गत है, उसे पूर्ण करनेकी योग्यता उनमें उत्पन्न करनी चाहिये।



जो गुरु इस तरहकी शिक्षा कन्याओंको देता है उसको उस कन्याके विवाहके समय उत्तम दख दान देना योग्य है। इसी तरह मंत्र ३० में कहा है कि, जो गुरु (माय-क्षिति अप्येति) विद्यगुरु करनेका उपदेश देता है, पिताके पुरे मार्गमें जानेपर उसे धर्ममार्गपर जानेका विवेक जिस सद्गुरुकी कृपासे मनमें उत्पन्न होता है, उस शिक्षकका सम्मान करना चाहिये। उस कन्याके विवाहके समय (सुमंगलं स्वोर्नं वास) उत्तम मंगल और शुभवचन उस मातापिताको अवश्य दिया जाना चाहिये। क्योंकि इसी ज्ञानसे (येन जाया न रिप्यति) उस स्त्रीकी मिरावट नहीं होती। यह शिक्षित स्त्री अपने धर्मव्यवहारे रहती हुई सबको आनन्द देती है। यह शिक्षाका प्रभाव है, ऐसी शिक्षा स्त्रीको देनी चाहिये।

स्त्रीको योग्य शिक्षा यदि न दी गई तो यह पतिकुलका किस प्रकार नाश करती है, इसका वर्णन म २५-२६ में किया है। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियोंको सुशिक्षा देना अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षा न होनेसे बड़े अपायक परिणाम होते हैं।

### सद्ब्यवहारसे धन कमाओ

गृहस्थाश्रममें धनको आवश्यकता सदा रहती है। कोई कर्म धनके बिना नहीं हो सकता। अतः गृहस्थीको धन कमानेकी अथवा आवश्यकता है। यह धन कैसे कमाया जाये, यह एक समयका गृहस्थियोंके सम्मुख सदा रहती है। इसका उत्तर ३० वें मंत्रमें दिया है।

(मन्त्र—उद्योपु श्रुतं यदस्ती) सरल व्यवहारोंमें सरल भागण करो। उसमें उत्कण्ठ न हो। सबसे प्रथम देवे व्यवहारमें न जाओ। जो व्यवहार करता हो, वह सरल व्यवहार हो और उसका करनेके समय सरल भावना भी करो। और इस प्रकारके धर्मानुसूल सरल व्यवहार करके (समृद्धं भगं संमत्तं) बहुत धन प्राप्त करो। अपने लिये मिलने धनकी आवश्यकता है उल्ला धन कमाओ। धर्मानुसूल व्यवहार करनेसे नि संदेह पत्र प्राप्त होगा और समृद्धि भी होगी।

पतिपत्नी अपने घरमें प्रेमके साथ रहें। पति (साम्रतः प्राय धार्चं यदनु) अपनी धर्मपत्नीके साथ मीठा भावण बोधे, मंगल भावण करे, सुंदर वस्त्र कड़े तथा (अस्मै पतिं रोचय) इस स्त्रीको पतिके विषयमें बड़ी रुचि हो, बड़ा प्रेम हो। इस तरह दोनों प्रेमके साथ रहें, व्यवहार करें और उन्नति करते रहें।

८ ( म पर्व भा. ३ गृ. विधी )

### गौशुद्धा

मंत्र ३२ और ३३ में उपदेश है, कि गृहस्थी लोग गौशुद्धा करें, गौवं घरकी घोमा हैं, बालकोंकी उन्नति इसीसे होगी है। सब प्रकारका कारक गौसेले होता है, इसलिये गौशुद्धा गृहस्थाका धर्म है।

### सरल मार्ग

सबके चलनेके मार्ग सरल और निष्कण्टक हो, इस विषयमें ३४ वें मंत्रका आदेश प्याजने धरने योग्य है—

पन्थिनः अनुश्रवाः ऋजवः सन्तु ॥ ( म ३४ )

'मार्ग कठकरहित और सरल हो।' धरकों पटुवनेके मार्ग, धरके पारके मार्ग, राष्ट्रमें जाने जानेके सब मार्ग निष्कण्टक और सीधे हो। मनुष्यके सब व्यवहारके मार्ग भी सीधे ही हों। यहाँ 'मार्ग सीधे हों' इस कथनका तात्पर्य केवल इतना ही नहीं है कि आने जानेके मार्ग सीधे हों, क्योंकि वह मार्ग तो जैसी भूमि होगी वैसा ही बनेगा। परन्तु मनुष्यके व्यवहारके मार्ग सीधे हो, यह बात विशेषतया कहा करी है। बीचमें कटे न बिछाये जायें।

आजकलन राष्ट्रके और समाजके व्यवहार देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि, मनुष्य स्वयं ही अपनी मतिहीनतासे अपने मार्गपर कटे बिछाते हैं और सीधा व्यवहार होनेकी संभावना होनेपर भी उद्वेगमय व्यवहार करते हैं और इस कारण सुख प्राप्तिके प्रयत्न करते हुए भी सदा दुःख ही प्राप्त करते हैं। इस तरह वे गृहस्थी अपनी उन्नतिके मार्गमें कटे न जाने यह उपदेश वेद यहाँ गृहस्थाश्रमके प्रारंभमें दे रहा है। सब गृहस्थी इसको अवश्य ध्यानमें लें। इस प्रकारके सीधे मार्गसे चलनेपर (घाता भगेन यत्वेसा स रुजनु) परमेश्वर फल और तेज देगा। वह परमात्मा तो सरल व्यवहार करने-वालोंको यह फल अवश्य ही देगा। हममें छिपाका संदेह करनेकी आवश्यकता नहीं है। परमेश्वरकी सहायता प्राप्त करनेका मार्ग भी सीधा और निष्कण्टक है। यही धर्ममार्ग है। इससे चलकर सब मनुष्य सुखपामको पहुँच सकते हैं। इस प्रकार इस मंत्रका उपदेश बड़ा मनन करने योग्य है और प्रत्येक गृहस्थीको सदा ध्यान रखनेयोग्य है, क्योंकि सबको उन्नति सरल और निष्कण्टक मार्गमें ही होगी मंत्रज है। उन्नतिका दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

### तेजस्वी बने

गृहस्थी तेजस्वी बनें, बलवादी बनें, कर्दारि विरुध्वादी न हो। गृहस्थाका धर्म असाहक है, यह तेजस्वी मनुष्योंका धर्म है इसलिये वेद उपदेश देता कि गृहस्थी तेजस्वी बनें।

यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि गृहस्त्री तेजस्वी कैसे बने ?  
उत्तरमें वेद कहता है कि—

यत् वर्चं शश्वेषु सुरायाम् ( म ३५ )

' जो तेज साश्वीमें शश्वेषु सुरायाम् होता है और जो मद्यमें होता है ' यह तेज इन गृहस्त्रियोंमें आवे । यह पढ़कर पात्रक कहेंगे कि यह क्या अर्थ है ? वेद ऐसा उपदेश क्यों देता है ? क्या वेद इस उपदेशसे गृहस्त्रियोंको दुआरी और मद्यपी बनाना चाहता है ? कदापि नहीं । वेद तो इन दुर्घटनासे गृहस्त्रियोंको बचाना चाहता है, परंतु यह तेजस्वी उत्साहका वर्णन है । किन्तु लोगोंमें तेजस्वी उत्साह अत्यधिक होता है ? उत्तरमें दुआरी और मद्यपीमें होता है, ऐसा ही कहना पड़ेगा । जुआ खेलनेके कार्यपर सरकारी प्रतिषेध है, जुआरीको राजपुरष पकड़ते हैं और कारागृहमें डालते हैं, न्यायालयमें इनको दण्ड दिया जाता है, घरपरसे इस जुआरीके विरोधी होते हैं । इष्ट मित्र तथा परिवारके लोग चाहते हैं कि यह जुआ न खेले, इस तरह सब लोग विरोध करते रहते हैं, तथापि जुवेयाग मनुष्य रातों समय, अंधेरेमें, कष्ट सहन करते हुए, छिपे और छिपाते हुए जुवेके धर्ममें पड़चला है, न उसको किसीका मय होता है और न मूल ब्याह होती है एकमात्र निश्चय पर भट्ट होता है कि मैं जुआ खेलूँगा । सब जगत्क विरुद्ध होनेपर भी यह अपने निश्चय पर भट्ट रीतिसे स्थिर रहता है, यह इसका निश्चय, प्रयत्न, उत्साह और एकाग्र मन देखने योग्य है । यदि यही तेजस्वी गुण, जो इससे प्राप्तिके लक्षमें लगे हुए हैं, श्रेष्ठपुरुषार्थके कर्ममें लग जाय, तो उसका बड़ा फल होनेमें क्या संशय है ? अत्र वेद कहता है कि जो तेज और उत्साह तथा निश्चय जुआरी लोग धारण करते हैं वेदाते हैं, यही तेज और उत्साह गृहस्त्री, मनुष्य अपने गृहस्थधर्मपालनमें धारणें, उद्योग मनोनिष्ठा, उद्योग निश्चय, उद्योग उत्साह, उद्योग प्रयत्न गृहस्त्री अपने धर्मपालनमें धारणें, यह उपदेश पढ़ा है ।

मद्यपी भी इसी तरह मद्यपानके समय पर मद्यपानके स्थानपर जाता है और मद्य पीता ही है, समय टालता नहीं, अपने साथ इष्ट मित्रोंकी भी पिलाता है, यह उदाहरण भी मद्यपीमें होती है । इस मद्यपीमें समयपर यह कार्य करनेका जो माग्युत्तर होता है और अपने साथियोंको पिलानेकी जो उदाहरण होती है, यह माग्युत्तर गृहस्थियोंमें भी अवश्य रहे । गृहस्त्री अपने धर्मपर यही माग्युत्तर करें और उदाहरण देना देते रहें । यह उपदेश गृहस्त्री लोग ले सकते हैं ।

यही गुण और प्राप्तिका उदाहरण मंत्र ३६ में पुनः अन्य रीतिसे आया है । उसका भी भाव यही है । इसमें जो उपदेश योग्य है यही देना चाहिये । यद्ये मदारामा लोग कुत्से और चीटियोंने भी उपदेश देते रहते हैं । जाम्ब, विद्रा और स्वामिनिष्ठाका उपदेश कुत्से और प्रयत्नशीलताका उपदेश चीटियोंने किया जाता है । इससे अन्य दुर्गुणोंकी ओर मद्यपान लोग देखते नहीं हैं, केवल गुणोंको अपनाते हैं । इसी तरह मद्यपी और जुआरी भी गृहस्थियोंको प्रेरित उपदेश देते हैं । ये उपदेश इनसे गृहस्त्री प्राप्त करें और अपने गृहस्थ धर्मका पालन उत्तम रीतिसे कर सकत हूय बनें ।

पाठक पूछेंगे कि ये ही उपदेश यहाँ क्यों दिये हैं ? क्या उत्तम उदाहरण जगत्में नहीं मिलेंगे ? उत्तरमें निर्विकृत है कि मनुष्यकी लक्ष्यता जैसी स्वयंमें ही होती है वही सदाचारमें नहीं होती । मायः यही नियम सर्वत्र है । संसारमें रहते हुए मनुष्य परमात्मपान कैसे करे ? इसके उत्तरमें स्वभित्तिरिणी ऋषि उदाहरण देता उच्च शास्त्रकार देते हैं । जैसी स्वभित्तिरिणी यही अपने विषयहित परिके सब कार्य करती हुई अपने मनमें परपुरुषका ध्यान सदा करती है और समय मिलते ही उसके पास चली जाती है, उसी प्रकार संसारी जीव संसारके कार्य करते हुए अपना सब ध्यान परमात्मामें रखें और जो समय मिल जावे उस समय परपुरुष परमात्मामें उपसन्ना करें, यही पर पुरुष किंवा परम पुरुष और उपान्त्य सबके लिये है । यह उपमा यद्यपि हीन है तथापि पूर्ण है । ऐसे ही दुआरी और मद्यपीकी उपमा भी पूर्ण है । मनुष्योंकी चाहिये कि वे उनकी कार्य क्षमता अपनेमें लावे और उससे सुयोग्य कार्य करके कृतकृत्य बनें ।

मंत्र ३५ और ३६ में शश्वेषु सुरायाम् में तेजस्वित्ता सुखरूप से रखी हुई है, इस तेजस्वित्तासे सब गृहस्थ युक्त हैं, ऐसा कहा है । ' ( गोपु यर्चं ) । महानुष्ण्या अद्यत्ने ' इन शश्वेषु सुरायाम् गौका सुखस्थान वर्गीया है । सधुसु गौका दूध अर्थात् तेजस्वी होता है । शश्वेषु दूध सुस्ती लानेवाला है, गौका दूध सुस्ती इतनेवाला है । अत्र सब गृहस्त्री और उसके घरके बालकके गौका ही दूध पीकर तेजस्वी, वर्चस्वी, शश्वेषु, माग्युत्तर और गुरुपार्थी बने ।

मंत्र ३७ में कहा है कि जलोमें एक प्रकारका तेज है जिससे तेजस्वित्ता, माग्युत्तर, वीर्य और सागर्ध्व ब्रह्मा है । गृहस्थियोंको इस जलो से गुण प्राप्त हो सकते हैं । वेदमें मनुष्य जन्मो जीवनका एक मात्र साधन बताया है, सोपायक

कहा है, आरोग्यवर्धक मात्रा है, यही सब आशय इस श्रममें सरासररूपसे कहा है। गृहस्त्री श्रमसंग्रहका उत्तम मनन करें।

मंत्र १८ को सम लिंगोंके द्वारा मनन करने योग्य मंत्र है।

[१] यदन्तं तन्नुद्यमि ग्रामं अपोहामि ॥

[२] भद्रः रोचनः तं उद्चामि ॥ ( म १८ )

' ( १ ) जो शरीरको क्षीण करनेवाला, शरीरमें विष उत्पन्न करनेवाला और शरीरमें आकर स्थिर रहनेवाला रोग-बीज या रोग है उसको मैं हटाता हूँ, और ( २ ) जो शरीरका तेज बढ़ानेवाला और अपना कल्याण करनेवाला है, उसको मैं अपने पास करता हूँ।' यह नियम तो सब मनुष्योंको सदा सर्वदा प्यारमें धारण करना चाहिये और इसी प्रकार सापरण करना चाहिये। हर एक स्थानमें दोषोंको दूर करना और गुणोंको अपनेमें बढ़ाना योग्य है। उदाहरणका यही एकमात्र उदाहरण है। बच्चा अपने घरमें इसी नियमका पालन करे।

मंत्र १९ में कहा है कि ( श्वशुरः देवरा घ प्रती-क्षन्ते ) पतिके घरमें भद्र और देव बच्चे जानेके मार्ग की प्रतीक्षा करते हैं। बच्चा स्वागत करनेके लिये सब रोग उलुक्त रहते हैं। यह मंगल बच्चे अपने पतिके घर प्रविष्ट हो, यहाँ पहुँचते ही अतिथि प्रदक्षिणा करे, अतिथि नमन करे और पश्चात् शशुर मादिका दर्शन करे। यहाँ प्राणम मंत्रपूत जलसे इस बच्चेको अभिषेक करे। यह जल बच्चेके अंदर जो भीरता ( अवीर्यताः आपः ) हो, उसको दूर करे। यह अर्थात् महत्त्वकी बात है। भाष्यमें भीरता नहीं होनी चाहिये। भाष्य तो सदा विचार और धैर्यके प्रेरक होने चाहिये। इसलिये बच्चे गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होकर पतिके घर जो प्रथम स्नान करती है, यह स्नान प्राणमों द्वारा वैद्वन्त्रसे पवित्र और विरहित हुए जलसे करे। जिस मंत्रपवित्र जलसे स्नानसे इस बच्चेकी भीरता अर्थात् सब दोष दूर हो और वह पवित्र, मंगल और धैर्यरत्नी बने। ऐसी सुयोग्य गृहस्वामिनी बने कि जो अपनी सत्तालोंको सुयोग्य उपदेश द्वारा उत्तम आर्ष बनावे।

पतिके घरके सुवर्ण रत्न आदि आभूषण इस लक्ष्यपूर्वक लिये कल्याणकारी हों, गिरानेवाले न हों। यही तो धनमनुष्य-को गिराता है। धनसे उत्पन्न हुआ धर्म मनुष्यकी अधोगति करता है। इसलिये सावधानताकी सूचना देनेके लिये यहाँ कहा है कि सुवर्ण आदि धन बच्चेकी गिरावट न करे।

दूसरे घरकी क्रियाके उत्तमोत्तम आभूषण देखकर अपने लिये भी वैसे ही आभूषण बनवानेका हठ धिया करती है और पतिको बड़े पत्ने देती है, ऐसा कोई भी न करे और प्राप्त सुवर्णमें ही न रह सतुष्ट रहे। सुवर्ण, आभूषण, गाड़ी, घोड़े आदि सुखसाधन सबके सब भोग्यमें आते हैं। भोग्यका क कारण घरमें विविध श्रावण होते हैं, अतः कहा है कि इन भोग्यसाधनोंसे कोई श्रावण न हों, यवितु ( ही भवतु ) पतिके घरमें शामिल रहे, श्रावण होकर अदायि न बने। और पानी ( पत्या तन्वं शं स्पृशस्थ ) अपने पतिके साथ सुखसे आनन्दप्रसक्त रहे। पतिपत्नी ऐसे एक विधासे रहें कि यहाँ किसी भी कारण विवाद न हो, घरमें अदायि न बटे और दोनोंको कौटुंबिक सुख यथायोग्य प्राप्त हो।

### स्त्रीकी इच्छा

आशासाना सौमनसं प्रजां सीमायं रयिम् ॥

( म ४२ )

पतिके घर भायी हुई नरबच्चे समीप गृहिणी किस आश-की आशा करती है, अर्थात् क्या चाहती है, यह प्रश्न कोई पूछे तो उसके उत्तरमें निवेदन है कि वह स्त्री ( सी-मायसं ) अपने घरके सब रोग आनन्दप्रसक्त रहें, श्रावण न हों, परस्परका प्येवहार प्रेमपूर्वक हो, घरमें उत्तम दान्ति, आनन्द और प्रसन्नताका ताव्य रहे, यही इच्छा सुगीत ही की हो। दूसरी इच्छा यह होनी चाहिये कि, ( प्रजां ) उत्तम सत्तात उत्पन्न होवे, अपनी सत्तात सुयोग्य बने, अपनी सुख-चित्ते सुखका हृत् हरनरा रहे। तीसरी इच्छा यह होवे कि ( सीमायं ) उत्तम भाग्य प्राप्त हो, अपने पतिके घरमें उत्तम भाग्य वृद्धिपल होता रहे। चौथायमें विशेषकर उस भाग्यका समावेश होता है कि जो पतिके कारण पत्नीको और पत्नीके कारण पतिके सुख होता है और जिस सुखके लिये विवाद होता है। यह सीमायं अपने घरमें बटे यही इच्छा धर्मोपनीकी हो। इसमें पश्चात् यत्रुय इच्छा यह है कि ( रयिं ) धन प्राप्त हो, अपने पतिके घर क्रिया प्रकार हरिद्वान न रहे। वैश्वर्ष धन सुवर्ण आभूषण आदि सब विपुल रहे और इस अर्थसे स्वकी सुख प्राप्त होगा रहे। धर्मपत्नी की पतिके घरमें यही धार प्रकारकी इच्छा हो। यही सबसे प्रथम उत्तम मनकी इच्छा की है, उभयके मंगल पतिपत्नीके उत्तम सुखकी इच्छा है, और अन्तमें धनकी इच्छा है। क्योंकि धन सुखका साधन तो है, परन्तु यह धन सु-मान न होनेपर, घरमें सुखसाधन न होनेकी अवस्थामें, पतिपत्नी सबंधकी विपरिधयमें कोई सुख नहीं देता, इसमें

विपरीत इन अवस्थाओंमें वह दुःखदायी ही होता है। इस लिये कौनसी आशा प्रथम करनी चाहिये और कौनसी अन्तमें करनी चाहिये, इसका विचार गृहस्थी लोग इस मंत्रके मननसे ज्ञानें।

### श्री कैसी हो ?

( परमुः अनुमत्ता ) पतिके अनुकूल रहकर निवम पालन करनेवाली श्री हो। श्री कभी पतिके प्रतिकूल आचरण न करे। इस नियमके अन्तर यद्यपि श्रीके लिये पतिके अनुकूल होनेकी आज्ञा कही है तथापि इससे पति भी श्रीके अनुकूल रहे यह भी भाव निकलता है। पति वैसा चाहे वैसा आचरण करे और पेशव परनी ही पतिके आशान रहे, यह भाव इस मंत्रका नहीं है। धर्मोपदेश समान हुआ करता है और वह एकके निर्देशसे दूसरेके लिए भी देना योग्य है। तात्वयै यह है कि जिस प्रकार धर्मपत्नी पतिके अनुकूल रहे उर्मा प्रकार पति भी पत्नीके अनुकूल रहे। दोनों परस्पर अनुकूल रहकर एक दूसरेका सुख बढ़ावें और गृहको स्वर्गधाम बनावें। उस धर्ममें ( अमृताय कं संनहस्य ) अमृत की प्राप्ति हो। धर्मपत्नी और पति ये दोनों अपने साय अमृतस्य अर्थात् मोक्षको नित्य प्रति प्पानसे रखें। उस अमृतस्य मोक्षधामको पहुँचनेका जो मार्ग है उस मार्ग पर शुभसे चलनेके लिये इस गृहस्थाधमकी सहायता है यह कोई गृहस्थी न मूले। इस बातसे लिये सब गृहस्थी सिद्ध हो। सब व्यवहार में इसी उद्देश्यकी सिद्धि लिये करें। अर्थात् धर्मो-नुकूल व्यवहार करते हुए मोक्षकी सिद्धि प्राप्त करें। प्रत्येक गृहस्थीका यह कर्तव्य है। प्रत्येक गृहस्थी प्रत्येक व्यवहार करनेके समय स्मरण रखे कि मेरा यह कर्म मोक्षका साधक हो, और कर्मो वाधक न हो प्रत्येक कर्म योग्य रीतिसे करने पर मोक्षके लिये साधक ही सकता है। यदि प्रत्येक कर्म फलवागर्क किया जाय, लोभका त्याग किया जाय, तो सभी कर्म उसी मोक्षधामको प्राप्त करनेमें सहायक हो सकते हैं। फलमोगर्क स्वार्थेच्छासे ही मनुष्यकी गिरावट होती है, अतः कहा है कि ( मा गृधः । यद्, १०१ ) मत रत्नचालो, सब प्रकारका लोभ छोड़ दो और बर्म करो इस तरह जिनमेंनासे किया हुआ कर्म मोक्षके मार्गमें सुख देनेवाला होता है। गृहस्थाधमके सभी कर्म सुख देने हुए मोक्षमार्गके साधक हैं।

### गृहस्थीका साम्राज्य

गृहस्थीका पर एक बड़ा भारी साम्राज्य है। साम्राज्य राज्य नहीं है, बड़ा साम्राज्य है। यजमान गृहस्थी स्वयं सम्राट् है। पत्नी उसकी सम्राज्ञी है। यह गृहस्थीके सधर्म-

चारिणी उसकी मंत्रणा देनेवाली है, इसमें जो परिवार है वे सब प्रजाजन हैं। गौ, घोड़े आदि जो घरके उपयोगी पशु पक्षी हैं, वे भी सब इस साम्राज्यकी प्रजा हैं और इस प्रजाका योग्य पालन करना गृहस्थीका आवश्यक कर्तव्य है। ( साम्राज्यं सुपुत्रे वृषा । मं. १३ ) जो बलवान् होगा वही इस साम्राज्यका पालन और संवर्धन कर सकता है। अनाजका यहाँ कार्य नहीं है। ( वृषा ) जो बलवान् होगा वही इस गृहस्थाधममें यशस्वी होगा। बलवानोंका ही साम्राज्य हो सकता है। मन्त्रोंका साम्राज्य नष्ट होगा। यह नियम इस स्थानमें पाठक देख सकते हैं।

पति सम्राट् बने और उसकी धर्मपत्नी साम्राज्ञी बने। इसका अर्थ पूर्व अनुसंधानसे यह है कि पति भी बलवान् बने और पत्नी भी बलदाहिनी बने और दोनों मिलकर इस गृहस्थाधमके साम्राज्यको योग्य रीतिसे चलावें। ( मंत्र ३३ में ) मन्त्रधूलसे कहा है कि वह सन्तु, देवर, नन्द तथा सात भादि पारिवारिक जनोंके साथ योग्य यत्नां साम्राज्ञी बनकर बने, इसका अर्थ यह है कि पतिके घर इस श्रीका यही दुर्ग रहे कि जो साम्राज्यमें साम्राज्ञीका रहता है। श्रीका अधिकार साक्षात्कार श्रेष्ठ है। पूर्व स्थानसे कहा है कि श्री स्वत्व नहीं है, या तो वह मरतापिताके आधीन रहेगी अथवा पतिके आधीन रहेगी, इस कथनके साथ यह विधान विरोधक नहीं है। क्योंकि कोई सम्राट् या साम्राज्ञी पूर्णतया स्वतंत्र नहीं होती। साम्राज्यके नियमोंसे बंधी होती है। यह साधारण श्रीके समान इधर उधर जा नहीं सकती। उसके साथ सदा अनारसक रहते हैं। इस प्रकार साम्राज्ञी परलक्ष्य होती हुई भी विशेष रीतिमानि होती है। यही बात श्री की भी है। धर्मनियमोंसे बंधी हुई धर्मपत्नी परलक्ष्य होती हुई भी पूर्ण रीतिसे साम्राज्ञी है। धार्मिक उन्नति करनेके लिये स्वांत्र है। मनुष्यको अपने मुक्तिधामके मार्ग पर चलना है, यही उसका प्रिय है। इस धर्मकी सिद्धिके लिये त्रिविध स्वतंत्रता चाहिये उतनी स्त्रीको देनेका विधान है। इससे जो अधिक स्वतंत्र है वह श्रीको गिरानेका कष्टम भवता है।

### द्विषोका सूत काटना

वैदिक धर्मोनुसार सर्वसाधारणतया स्त्रीपुरुषोंका ही विरोधकर द्विषोका घरेलू व्यवसाय सूत काटना और उसका कपड़ा बुनना है। प्रत्येक गृहस्थीके घरकी सब स्त्रियाँ इस सूत्र निर्माणके कर्मको अवश्य करें। ( देव्याः अग्रन्तन् । मं. ४५ ) घरकी देवियाँ सूत काँवें, जो सूत्र काटती हैं वे ही देवियाँ हैं। ये ही देवियाँ ( तन्निरे ) ताना तानती हैं, सूत्रको ठीक करके योग्य रीतिसे ताना तानती हैं तथा ( अभिता

अन्तानु द्दन्त) धारो भागोंक गणितम भागोको ठीक करती है। इस तरह सप उत्तम रीतिसे ठीक होनेपर (अय-यन, संदययन्तु) देविवा कपडा बुनें, ठीक तरह बुनें, तालक्यकी अवस्थामें कपडा विशेष धमक साथ बुनें, ताकि (जरते) कृदावस्थामें, जब कि विशेष धम होना संभव नहीं है, काममें भाये। (आयुष्मती इदं चासः परि-धस्य) दीर्घे आयु प्राप्त करती हुई यह स्त्री अपने प्रयत्नमें सुना हुआ वस्त्र पहने। यही वस्त्र शिबोका और पुरपाका भूषण है। प्रत्येक परिवार इस तरह वस्त्रक विषयमें स्वावलंबी बने। अपने वस्त्रके लिये दूसरोंपर निर्भर रहना सर्वथा अयोग्य है। यह उपदेश यहाँ वेद दे रहा है। यहाँ वेदने धरेल्ल उद्योग धन्धोंपर अधिक जोर दिया है। प्रत्येक घर हर तरहसे स्वावलम्बी बने। प्रत्येक गृहस्त्री धरेल्ल उद्योग धन्धोंक द्वारा समृद्ध हो। यह वेदके द्वारा बताया गया उपाय अमनु-स्यका एक सर्वोत्तम उपाय है।

मंत्र ४६ में कहा है कि स्त्री पुण्य करने दीर्घे जीवनक मार्गको (दीर्घां प्रसितिं धनुदीप्युः) स्वामने रखकर, अपने (पितृभ्यः वामं) मातापिताके लिये सुख देवे और स्त्री पुण्य परस्परको सुख देने हुए आनन्दसे अपना कर्तव्य करे। गृहस्थाश्रमका मार्ग अतिदीर्घ है, कामसे कम सी पर्यं तक इस मार्गपर चलना पड़ता है। सौ वर्ष चलनेपर भी यह धर्ममार्ग समाप्त नहीं होता। इसका संघा मार्ग गृहस्थि योंक सामने है। इतने लंबे मार्गपर सुखक साथ प्रवास करना चाहिये। इस कारण अपने मातापिताको सुख देना चाहिये। मातापिताका सकार करना एक आवश्यक कर्तव्य है। यदि कोई गृहस्त्री अपने मातापिताको देखभाल नहीं करेगा, तो उसका बालकसे भी उसकी देखभाल नहीं करेगी। स्वयं अपने मातापिताकी देखभाल करनेसे अपने संतानोको भी सुयोग्य शिक्षा मिलनी है, जिससे वे भी अपने माता-पिताका आदरसत्कार करनेमें प्रवृत्त होते हैं। सब गृहस्था-धम सुखमय करना हो तो बुद्धों और बालकोंकी पालना उसमें उच्चम रीतिसे होनी चाहिये। गृहस्थाश्रममें सुखवृद्धि करनेका यह महातत्व है।

गृहरिषोक् ऊपर सुमना निर्माणका क्या भारी भार है। प्रत्येक गृहस्त्रीको उचित है कि वह (प्रजापै स्पेन ध्रुयं) अपनी संतानके लिये सुख और स्वयं प्राप्त करनेका प्रबंध करे। अपनी सब संतानें मुनी हो, और स्थिर हों, सुख हो तथा दीर्घायु बने। संतानकी आयु दीर्घे किस रीतिमें हो सकती है। इससे उपायमें वेदका कहना है कि (सधिता आयुः

दीर्घं वृणोति। मं ४७) सूर्य ही मनुष्यकी आयु दीर्घ बनाता है। सूर्यप्रकाशसे मनुष्यको दीर्घायु प्राप्त हो सकती है। मनुष्य सूर्यकिरणोंके विषरे, सूर्यस्नान करे, सूर्यकी उपा-यना करे और अपनी आयु दीर्घे बनाये।

**पाणिग्रहण**

पुरष स्त्रीका पाणिग्रहण करता है। यह पाणिग्रहण होते ही स्त्री पुरुषके धीप पत्नी और पतिका माता मुक्त होता है। इस समय पति अपनी पत्नीसे प्रेमके साथ बातचीत करे और जरासे बड़े—

- (१) ते हस्तं गृह्णामि, (२) मा व्यधिषाः,
- (३) मया प्रजया धनेन सह ॥ (मं. ४८)

'दे पत्नी! तेरा हाथ मैं पकड़ता हूँ, तु मी मत हो और मेरे साथ तथा संतानों और भनोंके आयुसुखसे निवाण कर।' इस तरह प्रेमपूर्वक पति अपनी धर्मपत्नीक साथ भाषण करे। तबपूरु दूसरेके कुरसे जाती है, उसका कोई परिचित यहाँ नहीं होता है, इसलिये पतिसे पहले श्रेण डम नवरपूरु साथ प्रेमका बर्ताव करे। पति नवरपूरु बड़े कि 'दे पत्नी! मैंने तेरा हाथ पकड़ा है, इससे तुसमक कि तुमे मैंने सब अवस्याजोमें आपार दिया है। हाथ पकड़नेका अर्थ आभार देना है, अतः जबतक मैं हूँ तपतक तुसे करनेकी कोई जरूरत नहीं। तू यहाँ मय तरहसे सुरक्षित है। मेरा जो धन है, वह भी तेरा ही धन है। उससे तुमे भी हर तरहका सुख प्राप्त हो सकता है। हम दोनोंकी जो संतानें उत्पन्न होंगी उनका कषायोग्य पालन करना हम दोनोंका कार्य है। यदि हम यह कार्य करे तो वे मय हमारी संतानें और हमारे सुखक हेतु हो सकती हैं। इस तरह दे पत्नी! मेरे साथ रहकर तू इस समासें सुखसे रह और हम दोनों गृहस्थधर्मका पालन करोगे हुए मौखों मार्ग पर चले।' इस दंगमें पति और पतिके श्रेण नवरपूरुके साथ मधुर, शिव और सुखकारक भाषण करे और डमके मनमें पतिके धरक विषयमें प्रेम उत्पन्न करे।

यहाँ जहाँ वेदमें पाणिग्रहणका विषय आया है, वहाँ यह पति पत्नीका पाणिग्रहण करना है, ऐमें ही सम्य प्रयोग है।

- (१) ते हस्तं गृह्णामि। (अपर १७११२८; ५०)
- (२) ते हस्तं गृह्णामि। (अपर १७११२९)
- (३) ते हस्तं गृह्णामि। (अपर १७११३१)
- (४) ते हस्तं गृह्णामि। (अपर १७११३३)

इन स्थानोंमें हाथ पकड़नेवाला पुरुष है और स्त्रीका हाथ पकड़ा जाता है, यह धी है। हममें भी गृहस्थाश्रममें

पुरषकी विनिष्ठता है, यह बात स्पष्ट होती है। वेनुमें कियी भी न्यायपर की द्वारा पुरषक हाथ पकड़े जानेका विधान नहीं है, अथिनु सर्वत्र पुरष ही स्त्रीका हाथ पकड़ता है। पाणिग्रहण करनेका अधिकार पुरषका है, यह इन मंत्रोंसे निश्चित होता है। इसीलिये मंत्र ४३ में (सिन्धु-नदीनां सास्रा-त्य सुपुत्रे) कहा है। एक समुद्र अनेक नदियोंका सम्राट् होता है, अर्थात् एक पति अनेक स्त्रियोंका पाणिग्रहण करता हुआ गृहस्थाश्रमस्त्री बड़े साम्राज्यका सम्राट् होता है। पति ही स्त्रीका पाणिग्रहण करनेवाला है, इस कथनसे भी पत्रिका ही मुख्य होना सिद्ध है। स्त्रीका दान पत्रिका क्रिया जाता है, इस विषयके मंत्र भी हमने पूर्वव्याख्यान देखें हैं। इन मंत्र बातांसे निःसंदेह वैदिक धर्मके द्वारा गृहस्थाश्रममें पुरषका मुख्य स्थान है, यह दर्शाया है।

आगेर लीनें मंत्रोंमें पाणिग्रहणका ही विषय है और उन मंत्रोंमें स्त्रीका हाथ पुरष पकड़ता है ऐसा ही भाव है। तथा आगे विशेष स्पष्ट करव कहा है कि—

त्व धर्मणा पत्नी असि, अह तव गृहपतिः ॥

( म ५१ )

इयं मम पौण्या, महा त्वा प्रजापतिः अदात् ॥

( म ५२ )

'पुरषकी स्त्री धर्मसे पत्नी है, और पति स्त्रीका गृहपालक है। यह स्त्री पतिके द्वारा पौण्याके योग्य है, क्योंकि इस पतिके अधिकारमें प्रजापतिने इस स्त्रीको सौंप दिया है।

स्त्रीके पौण्याका भार पतिके ऊपर है, यह बात इस मंत्रसे स्पष्ट है। पति पत्नीका पालनपोषण करे। पालन-पोषणका विचार पत्नी न करे। पौण्याकी सामग्रीके घरसे भाविक पश्चात् पत्नी उस सामग्रीका योग्य विनियोग करव सबको यथायोग्य अन्न भाग पहुँचावे।

सुपुत्र निर्माण करनेमें देवताओंकी सहायता प्राप्त होती चाहिये। यह सहायता इस स्त्रीको प्राप्त हो, इस प्रकारका भागीर्वाद् मंत्र ५३ आर ५४ में है। इन्द्र, अग्नि आदि सब देवता इस स्त्रीको अपना नेत्र अर्पण करें और इस स्त्रीके अन्दर उत्तम सन्तान उत्पन्न करें और ऐसे सुपुत्रियोंके साथ यह स्त्री उन्नत होती रहे।

### केशोंकी सुंदरता

सिरपर (शीर्षे देशान् व्यवस्यत्) परमेधरने बड़े बड़े केश बनाने हैं। विशेषतः स्त्रीके सिरकी शोभा केशोंकी सुगन्धरूपसे बढ़ती है। (तेन इमां मार्षीं पत्ये सशोभयामसि) मन् पतिके लिये सुंदर केशने योग्य स्त्री

सिरकी सजावट करे और अपने सिरकी शोभा बढ़ावे। स्त्री अपने सिरपरके बालोंका सुगन्धरूपसे रम्य और शोभाके लिये सजावट करे।

(मनसा चरन्ती जायां जिज्ञासे) मनसे चालचलन स्त्रीका कैसा है यह जानना चाहिये। ऐतन्न वाक् चालचलन द्वारा कितनीकी परीक्षा नहीं करनी चाहिये। मन कैसा है, विचार कैसे है, मनसे किम् बातका विचार करती है, मनमें किसका मनन करती है, यह देखना चाहिये। जो मनसे शुद्ध है, उसे ही शुद्ध सम्झना चाहिये। जब मनको शुद्ध रखनेके लिये जो शिक्षा देनी योग्य है वही देनी चाहिये। स्त्री हो या पुरष, उनके मन शुद्ध रखनेयोग्य चावविधि बनानी चाहिये।

(योग्य यत् अवस्ता, तत रूपं) स्त्री जो बद्ध परिधान करती है, उससे उसका रूप शोभागात होता है। अर्थात् स्त्रीको इस प्रकारके बद्ध परिधान करनेके लिये देने चाहिये कि जिससे उसकी सुंदरता बड़े। यहाँ सूचीसावित्रीका उदाहरण पाठक देखें। सध्यासमयमें कितने विविध रंगके बद्ध यह सूर्यपुत्री सध्या पहनती है और अपने रूपकी शोभा बढ़ाती है। पति अपनी शक्तिसे अनुसार स्त्रियोंको उत्तम बद्ध पहनावे। यह कोई आवश्यक नहीं है कि रोज प्रतिदिन नये नये बद्ध पहने, परंतु जो बद्ध पहने वे ऐसे सुगन्धरिपत्त हो कि उनसे उस स्त्रीकी शोभा बड़े। परकी देवी स्त्री है और परवरमें इस गृहस्वामिनीकी अगल बद्ध भूषणोंसे पूजा होती रहे और वह पूजा परके स्वामीकी आर्थिक अक्षमताके अनुसार होती रहे।

(नक्षत्रैः सरिभिः तां अन्वर्तिष्ये) तिनमें भी पौषों अर्थात् सब इंद्रियोंका समर्पण किया जाता है, उन यज्ञोंके साथ और जो हमारे मित्रजन उन यज्ञोंमें भाग लेते हैं उनके साथ यज्ञमय जीवन बनाकर उस यज्ञके साथ मैं सब रूप धार करता हूँ। अर्थात् मैं स्वयं और मेरी धर्मपत्नी दोनों मिलकर अपना सब जीवन हम यज्ञरूप बनाते हैं। जो जो कर्म हम करते हैं वह यज्ञरूप करते हैं। इससे हम दोनों यज्ञरूप बनेंगे और अन्तों हमारा यज्ञमें यज्ञमरूप परमेधर प्रसन्न होगा और हम कृतकृत्य बनेंगे।

(त्रिद्वान् पाशान् विचर्चन्) स्त्री पुत्र विद्वान् होकर अपने पाशोंको काँटे और बंधनसे मुक्त हों। सब बंधन बंधनसे मुक्त होनेके लिये होने चाहिये। अतुल्य अनेक प्रकारके प्रलोभनोंमें पसता है, और स्वयं अपने लिये बंधन निर्माण करता है और उन बंधनसे बंध जाता है। ये सब

बंधन काटने चाहिये और मुक्त होना चाहिये। यह मुक्त होनेका ज्ञान जिसको होता है उसीको ज्ञानी भवना विद्वान् कहते हैं। मनुष्य-श्री वा पुरुष- इस मुक्तिकी विधाको प्राप्त करें और उसकी सहायतासे मुक्त हो जाय।

प्रत्येक मनुष्य कहे कि ( अहं विव्यामि ) मैं ये सब बंधन तोड़ता हूँ, मैं बंधनसे मुक्त होनेका यत्न करता हूँ। क्योंकि मनुष्य-जन्मकी सार्थकता बंधनमुक्त होनेमें ही है। मनुष्यका जन्म ही इस कार्यके लिये है। ये सब बंधन मनके कारणसे होते हैं अथ- कहा है कि ( मनस- कुलाय पदपद्म वेदद् ) मनका यह घोसला है यह बात मनुष्य देखे और मनद्वारा उबरत हुए ये सब बंधन हैं, ऐसा जानें। यदि मनुष्यको इस बातका ज्ञान होगा कि ( मन एव मनुष्याणां कारण बंधमोक्षयो ) मन ही मनुष्योंके बंधन भवना मोक्षका कारण है, तो वह मनुष्य कभी बंधनोंमें नहीं पड़ेगा। साधारण मनुष्योंको ऐसा प्रतीत होता है कि अपने बंधन प्राप्त कारणसे हैं, परंतु वस्तुतः वह असत्य है। बाह्य कारण मनुष्यको बंधनमें डालनेमें असमर्थ हैं। मनुष्यका मन ही अपने बंधन पैदा करता है और उसमें स्वयं फँसता है और मनुष्यको फँसता है। इसलिये बंधनसे मुक्त होने वाले मनुष्यको उचित है कि वह अपने मनको ज्ञानसे शुद्ध करे और उस शुद्ध मनसे वह अपने सब बाह्य बाध देखे। निश्चय यह है कि ( मनसा उत् अमुच्ये ) अपने मनसे ही मनुष्य उबरत होता हुआ मुक्त होता है। मनुष्य अपने मनसे बंधनोंमें बाधा जाता है और अपने मनसे ही बंधनसे मुक्त होता है। इतनी शक्ति मनुष्यके मनमें है। इतनी शक्ति प्रत्येक मनुष्यके मनमें होती हुई भी मनुष्य अपने भाग्यको असमर्थ मानता है और सहायताकी याचना करता रहता है। परंतु यदि यह स्वयं अपने कारणसे बंधनों में पड़ा है तो वह अपने ही कारणसे बंधनोंकी तोड़कर मुक्त भी हो सकता है। जर्णत मुक्त होनेकी शक्ति हमसिधे अन्दर है। अतः कहा कि ( स्वयं ध्यध्यात्- ) 'स्वयं मैं अपने पापोंकी विधिल करता हूँ।' तुम्हारे पापोंको दूसरा कोई विधिल कर नहीं सकता। यदि तुम अपने बंधनोंको तोड़ना चाहते हो तो तुम ही तोड़ सकते हो, यदि बंधनमें ही पड़े रहना चाहते हो तो वैसा भी हो सकता है। जो तुम्हारे मनमें होगा वही पड़ा हो सकता है। तुम ही अपने उदात्त और तुम ही अपने धातक हो। दूसरा तुम्हें कुछ देता है यह बात भारी भ्रम है। यह बात जैसे वैदिककाल मुक्तियोंमें सत्य है वैसे ही सामाजिक और राष्ट्रीय मुक्तियों में सत्य है। अतः सब ही

पुरुषोंको उचित है कि वे अपने बंधन विधिल करनेका स्वयं यत्न करें और प्रयत्न करके स्वयं मुक्त हो। यदि प्रयत्न किया जाय तो यह सिद्ध हो सकता है।

### चौरीका अन्न न खाओ

इस योग्यताको प्राप्त करनेकी इच्छा है तो यह नियम करना चाहिये कि ( न स्तेय अधि ) मैं चोरीका अन्न नहीं खाता हूँ। आज अधिकांश जनसत्ता जो भ्रष्ट होती है वह चोरीका होता है, जिसपर दूसरेका अधिकार होता है। यदि हम उसको भक्षण करेंगे तो वह चोरी है। वह चोरी घरमें भी होगी और समाजमें भी होगी। यदि कोई पदार्थ घरमें जाता है और वह सब मनुष्योंको न भाड़े हुए अवेला ही उसको खाता है तो वह चोरीका अन्न खाता है। अपने ग्राममें जो अन्न उत्पन्न होता है वह ग्रामके सब लोगोके लिये होता है। यदि ग्रामके कई लोगोंने अपने पास अन्नसंग्रह अधिक किया और इस कारण ग्रामके कई लोग भूखे मरने लगे, तो निःसन्देह अधिक संग्रह करनेवाले चौरीका अन्न ही खाएंगे। यह सब विचार करके कुटुंबियोंको निश्चय करना चाहिये कि हम चोरीका अन्न खाते हैं या नहीं अन्न खाते हैं। मनुष्यको उचित है कि वह अन्नक्षेप भ्रष्ट खावे और पवित्र खाने। जो मनुष्य पन्न न करके स्वयं अपने लिये ही पकाता है वह चोर है। मनुष्य मायको जो शिक्षा मिलनी चाहिये, वह यह है।

येन त्वा अयध्यात्, पाशात् त्वा प्रमुञ्चामि ॥

( मे ५८ )

'जिस बंधनसे तुझे बाध रखा था, उस बंधनसे तुझे मैं मुक्त करता हूँ।' यह वचन पति अपनी धर्मपत्नीसे कहता है, और उसको विहास देता है कि मेरी सदायतासे तु भ्रष्ट (अथ लोक) विस्तृत लोकको प्राप्त हुई है, तैरे लिये विस्तृत कर्मभूमि यहा प्राप्त हुई है और (अथ तुभ्यं तुर्गं पयां कृष्यामि) यहा तैरे लिये सुताममार्ग मैं बना देता हूँ। इस मार्गसे तु जायगी तो तेरा कल्याण होगा। यह गुरुश्यासन एक अति विस्तृत कार्यक्षेत्र है, सुरपार्थी मनुष्य यहाँ सुरपार्थ करके अपना भाग बना सकता है। यहाँ अनेक मार्ग हैं परंतु सत्य मार्गपर ही मनुष्यको चलना चाहिये। अस्तु। पतिको उचित है कि वह अपनी स्त्रीके मुक्तिका देवे, उसकी सीधे मार्गसे चलाने और स्वयं वृत्त मोक्षके लिये जो जो पुरुषार्थ करने आवश्यक हैं वे सब धीमे करने। पुरुषपर यह इतनी भारी जिम्मेवारी है। पुरुष ही मनुष्य मुक्त रखे और अपनी स्त्रीको भी मुक्ति प्रदान करे।

स्त्रीके योग्य अथवा अयोग्य आचरणका उत्तरदायित्व पुरपरा है। स्त्रीशिक्षाका सब भार पुरपरा है यदि स्त्री विद्याहीन है, तो उसका दोष पुरपरा है। यही अगले ५९ वें मंत्रमें कहा है—

( इमा नारीं सुवृत्ते दधात । म ५९ ) इस स्त्रीको पुण्यमार्गमें चलानो, इससे पुण्यकर्म हो ऐसी व्यवस्था करो यदि स्त्रीपुरा व्यवहार करती है, तो उसका दोष पुरपरा ही जाना है। पुरुषका यह कर्तव्य है कि वह स्त्रीको अपने कर्तव्यका आवश्यक ज्ञान बता दे और स्त्रीको धर्महीन बना दे। ( धाता अस्मै पतिं विवेद ) परमेश्वरने इस स्त्रीके लिये पति प्राप्त करा दिया है, अतः वह पति ( रक्षः अथ हनराथ ) इसके अन्दरके राजसी मानोंका नाम करे। पति स्त्रीको ऐसी शिक्षा देवे कि जिससे स्त्रीके अन्दरकी सब आसुरी वृत्तियां दूर हों और उसमें ऐसी वृत्तियां स्थिर हो जायें और वह सच्चमुष 'देवी' बने। इस स्त्रीको ( उन् यच्छुध्यं ) उच्च बनानेके लिये अपने आपको सज्ज रखो, सँभार रखो, अपने ललाछ ऊपर उठाओ, इसका उच्चत रक्षण करो, इसको उत्तम धर्मेतिवसमें रखो। जिन प्रयत्नोंसे स्त्रीकी सच्ची उन्नति हो सकती है वे सब प्रयत्न करो। स्त्रीकी उन्नतिके मार छोड़नेमें पितृकुलपर और विवाह होनेके पश्चात् पतिकुलपर है। इसकी उन्नति करनेके लिये ही ( धाता पतिं विवेद ) ईश्वरने इसको पति प्रदान किया है, अतः पतिका कर्तव्य है कि वह अपनी धर्मपत्नीका सर्वोत्तम उन्नतिके लिये बल करे।

( सा सुमंगला अस्तु । मं ६० ) यह स्त्री उत्तम मंगल करनेवाली बने, मंगलकी मूर्ति बने, उस स्त्रीके कारण परका और कुलका मंगल हो, इस स्त्रीकी मंगलमूर्ति देखकर सब लोग आनन्दित हो। इसकी उन्नतिके लिये सब देवताएँ ( अग, धाता, स्वहा आदि ) सहायता दें।

### परातका रथ

बराहके रथका वर्णन पुनः मंत्र ६१ में है। यह रथ उत्तम ( सु-विशुद्ध ) प्लोसे सुसज्जित किया जावे, तथा उत्तम दूर लाल पुष्पसे सजाया जावे।

( विभ्य-रूपं ) अनेक प्रकारको ललाछउत्सपर कीजावे, हिरण्य-यज्ञे सुकर्मके रंगका यह रथ हो, उत्तम घमक-उत्सपर हो, सुवृत्तं सुशुद्धं ) उत्तम शालके लगी हों और उमरो चक्र उत्तम हों। इस तरहका सजासजाया रथ ( वाहृतं ) बराहके काममें लाया जावे। यह बराह पतित पर पहुँचे और बहाव स्थानको ( अमृतान्य लोके पृथु )

अमर लोक, सुखपूर्ण स्थान बतावे। धर्मपत्नी अपने पतित पर पहुँचकर बहावका मुल यदावे। ( अ-ध्रावृ-प्री ) बर्हिषका नाश न करनेवाली, ( अ-पानु-ध्वी ) पशुओंका पालन करनेवाली, ( अ-पाति-ध्वी ) पतिका पालनपोषण करनेवाली, पतिको कष्ट न देनेवाली, ( पुभिणा ) संतानसे युक्त, ऐसी स्त्री पतिके पर इस रथसे जाए। यह स्त्री ( देववृते पथि ) देवीके द्वारा बनाये गए सन्मार्गमें जाना चाहती है, अतः इसका विवाह हुआ है, इस कारण ( शुमार्यं मा हिंमिष्टं ) इस समयतक लुगारी रही हुई वह नमन्य है, इसको बहा पतिके परसे किसी प्रकारका कष्ट न हो। ( धधूरथं स्योनं कृष्णः ) इस वधुका माँस हम सुखदायक करते हैं। इसका चलेला जो देवमार्य है वह इस वधुके लिये सुखदायी हो, ऐसा प्रबंध हम करते हैं। ( शालायाः द्वारं स्योनं कृष्णः ) इस स्त्रीके लिये गृहप्रवेशके समय पतिके घरका द्वार हम सुखमय बनाते हैं। इस स्त्रीको पति-गृहमें उत्तम सुख प्राप्त हो और वह अपनी उन्नति वधायोग्य रीतिले प्राप्त बने, निर्विघ्नतासे वह देवी उन्नतिके प्राप्त हो।

इस स्त्रीको ( अपर पूर्व मध्यतः प्रह्ल युज्यतां । मं ६४ ) आगे, पछि, बीचमें और सब ओरसे ज्ञान प्राप्त हो। ज्ञानसे ही सबका उन्नति होती है। यहाँ 'प्रह्ल' शब्दके अर्थ 'ईश्वर, मय, वेदज्ञान, पशु, शक्ति, तप, धर्म विधियाँ, प्रह्लर्ष्य, धन, शब्द' ये हैं। श्री पतिवरमें जहाँ जावे वहाँ ये पदार्थ उपस्थित हो, इनसे निमुक्ता कमी न होने पावे। यह धर्मपत्नी ( अनाज्याधां देवपुरां प्रपद्य ) प्याधि रहित दिव्य नगरोंको अर्थात् पतिते स्थानको प्राप्त होकर, पतिगृहमें रोगरहित रहकर, मीरोगलाके साथ अपना सब व्यवहार करके ( शिष्या स्योना पतिलोके विराज ) शुभ-मंगलमयी गृहदेवता होकर पतिके स्थानमें विराजती रहे। यह स्त्री पतिके घरके शोभा बढावे, सुखकी रूचि करे और बहाव मंगलका हेतु बने।

यहलोक प्रथम सूक्तके मंत्रोंका विचार किया। अब हम द्वितीय सूक्तका विचार करते हैं—

### द्वितीय सूक्तका विचार

द्वितीय सूक्तमें भी विवाहका ही विचार है। पहिले चार मंत्रोंमें कुमारिकाके चार पति होनेका उल्लेख है। इस विषयमें हम तरह स्पष्ट कहा है—

सोमस्य जाया प्रथमं गंधर्वस्तेऽपरः पतिः ।

मृतीषो अग्निष्टे पतिस्तुतीयस्ते मनुष्यजाः ॥



‘कुमारिकाका पहिला पति सोम, दूसरा पति गंधर्व, तीसरा अग्नि और चौथा मनुष्य-योनिमें उत्पन्न (अर्थात् मनुष्य) होगा है।’ यदा कौमार्यमें चार पतिते होनेका उद्देश्य है। अश्विनमें यह मंत्र इस प्रकार है—

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वां विविद उत्तरः ।

वृत्तीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥

( ऋग्वेद १०।८५।१० )

इस मंत्रका अर्थ वैसा ही है जैसा ऊपर दिया है। इस कल्पनाको सोमने पहिले प्राप्त किया, फिर दूसरी चार गन्धर्वोंमें इस कल्पनाको पनोरूपमें स्वीकार किया, तीसरा पति अग्नि हुआ और चतुर्थे मानव हुआ। इस मंत्रमें चतुर्थे पतिको ‘मनुष्य’ कहा है। इस बातसे ही पूर्वके पति मनुष्य योनिमें नहीं हैं इसकी सिद्धि होती है। अतः यद्यपि इस मंत्रमें चार पतियोंका उल्लेख है, तथापि यह मंत्र नियोग अथवा बहुपत्निकी सिद्धि करता है ऐसा मानना असंगत है। क्योंकि इस बातकी सिद्धिके लिये तीनों पति भी ‘मनुष्य-ज’ होने चाहिये। यदा स्पष्ट मंत्रमें कहा है कि पहिले तीन पति मनुष्यज नहीं हैं, केवल चतुर्थे पति ही मनुष्य है। इस कारण इससे नियोग अथवा पुनर्विवाह सिद्ध होगा असंभव है।

चतुर्थे मंत्रमें स्पष्ट कहा है कि सोमने यह कन्या सन्धर्वके पास दी, गंधर्वने अग्निके सुपुत्र को और अग्निने मानवी पतिके हाथमें दी। इसलिये पहिले तीनों पति देवी पतिके केन्द्र हैं यह सिद्ध है। मातृपिताके घर रहती हुई कन्या शाल्य अथवा अन्य देवताओंके भाषीन रहती है किवा इनका प्रभाव उसपर रहता है। जब विवाह होम होता है, तब वह हयनाभि इस कन्याको मालवी पतिके हाथमें देती है।

कई विद्वान् भी इस मंत्रपर ऐसी विचित्र कल्पना कर बैठे हैं, कि पूर्वकालमें विवाह होनेके पूर्व कन्याको सोम, गंधर्व और अग्नि संसृक्त जातिवैयंके पुरोहित के पास रखा जाता था और तत्पश्चात् यह कन्या उनकी अनुमतिसे मानवको प्राप्त होती थी ॥ सचमुच यह कल्पना विचित्र और हास्यास्पद है। इस कल्पनासे तो व्यवसाय ही धर्म सिद्ध होता है। परन्तु हमें अभी तक सोम और अग्नि नामके कोई व्यक्ति भी, इस विषयमें प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ। अतः यह कल्पना निराधार एवं असंगत है।

इसके अतिरिक्त सत्य वैदिक वाङ्मयमें भी सोम देवता स्वातंत्र्य भी नहीं दिया है। इस प्रकार अन्य पुरोहितके पास जाकर रहनेके लिये उल्लेखको समर्थ ही नहीं है। वेदमें किसी

९ ( अथर्व. भा. ३ पृ. द्विती )

भी अन्य स्थानमें इस तरह विवाहके पूर्व तीन पति होनेका विवेक भी नहीं है, अतः यह भयानक कल्पना असंगत है। क्योंकि मंत्रमें स्पष्ट है कि मनुष्योंसे पूर्वके ये तीन पति मनुष्य हैं अर्थात् देवत हैं। देवताओंका सामित्व किसी भी प्रकार दोषमय नहीं हो सकता। जैसे कोई भक्त अपने उपास्य देवको भक्त समर्पण करके पश्चात् यह भक्त स्वयं भक्षण करता है, उतने उच्छिष्ट भक्षणका दोष नहीं होता, क्योंकि वह भक्त समर्पण एक भावनाको बात है। इसी तरह मातापिता कन्याके बालकपनमें समर्थ कि अपनी कन्या इस समय सोमदेवताके प्रभावमें है, पश्चात् यह गंधर्व देवताके प्रभावमें होगी, तदनन्तर वह अग्निदेवताके प्रभावमें होगी और तत्पश्चात् यह मानवी पतिके भाषीन होगी। कुमारिका जीवन इस प्रकार देवतामय होना चाहिये। देवताओंके समीप होनेका अर्थ पवित्राधारणता होना है। यदि कोई मनुष्य राजाके समीप किंविद काल रहेगा, तो वह उस समय अधिक पवित्र रहेगा, इसी तरह जब यह कन्या इन देवोंके पास रहेगी तो उसको पवित्रता अधिक होनेमें कोई संदेह ही नहीं है। देवता सर्वश होते हैं। अतः अपना पाप उनसे छिपाना असंभव है, इस सब कथनका तात्पर्य यह है कि ये तीन देवी पति देवत्व मनोभावनाके प्रकृत्यर्थ हैं। चतुर्थे मानवी पति ही सच्चा पति है। अर्थात् इस मंत्रमें जो अनेक पतिको कल्पना की जाती है, वह निराधार है।

### विवाहका समय

आगे दो मंत्रोंसे विवाहके समय बधू और परकी आसु कितनी होती चाहिये, अर्थात् कितनी आसुमें विवाह हो, इसका निर्णय हो सकता है। ( सुमतिः आगन्. मं. ५ ) इस मंत्रभाष्यसे यह ज्ञात होता है कि उत्तम बुद्धिके प्राप्त होनेके बाद ही विवाह हो, अथवा कहकर चाहिये कि बुद्धिके परिपक्व हो जाने पर ही विवाह हो। इससे विवाहके उत्तम बुद्धिपर होनेकी बात सिद्ध होती है। उत्तम विद्या प्राप्त होने पर विवाहका विचार करना चाहिये। ( इत्सु धामाः अर-सत्तु। मं. ५ ) बुद्धिके बान्धने अपना स्थान जमाया हो। इसकी युवा अवस्था प्राप्त हुई हो, तब विवाह करना चाहिये। बुद्धिके कामका चीज उत्पन्न होना चाहिये। ( वाग्निनी यस्त् ) अतः और धनके युक्त होना चाहिये। तत्पश्चात् विवाह हो। विद्या प्राप्त होनेके पश्चात् धन प्राप्त करके ज्योतिषी विवाहका विचार करना चाहिये। ( मिथुना शुभस्पर्ती गौडा अभूत ) साथ साथ रहनेकी इच्छा करनेवाले, उत्तम पाठके संरक्षक जब हों, तब विवाहका विचार करे। ( अथर्व-

म्यः = खर्यै-मनः) भाष्ये शर्यात् श्रेष्ठमनवले वधूवर हों, तब विवाहका समय होगा।

विवाहके समय स्त्री भी (मन्दसाना। सं. ६) आनन्द-प्रसन्न, आनन्दित चित्तवाली, (शिवेन मनसा) शुभ मन-वाली, स्वस्थानपूर्णा विचारले सुकृत हों। (सर्ववीरं वचस्य रयिं) सब प्रकारके वीरताके भाव उत्पन्न हो, उत्तम वचनत्व उत्पन्न हो और हर तरहकी शोभा वह धारण करे और (दुर्मति हतं) दुष्ट बुद्धिका नाश करे। इस तरह स्त्रीकी योग्यताके विषयमें निर्देश हमें मिलते हैं।

घांधां विवाहके समय स्त्री और पुरुष विद्या, धन, बल, सुविचार आदि गुणोंसे युक्त होने चाहिये। कुटुंबका सब भार सिरपर लेनेकी शक्ति उनमें होनी चाहिये। इस निर्देशका विचार करनेपर पता चलता है कि वधूवर युवावस्थामें ही निमग्न करे सभ्य वाचकपनमें उनका विवाह न हो। वैवाहिक संश्लोक कायै और संश्लोक प्रतिज्ञाका भाव समझने योग्य बुद्धिवाले वधूवर हों। वैदिक संश्लोकें मातापिताका अधिकार कुमार-कुमारिकाओंपर पूरे है, तथा कन्यादान भी वेदमें कहा है। इससे कुमार-कुमारियोंका स्वयंवर वेदको अभीष्ट नहीं है यह बात सिद्ध होगी है। स्वयंवरका उल्लेख वेदमें किसी स्थानपर स्पष्टतया नहीं है। और कन्यादान-यदतिमें स्वयंवरका स्थान मिलना संभव है। जहां स्वयंवर हो वहां कन्याका दान कैसे हो सकता है? कन्यादानकी प्रथा वैदिक होनेके कारण मातापिताका अधिकार कुमार कुमारियोंपर है और इस कारण मातापिताकी अनुमतिसे ही वैदिक विवाह हो सकता है। अतः जो समझते हैं कि वेदमें पुरोपीयनोंके समान स्वयंवरकी रीति है और जो स्वयंवरको वैदिक विवाह कहते हैं और जो 'प्रथम दर्शनसे ही प्रेम' होनेकी संभावना वैदिक विवाहमें मानते हैं, वे सब वैदिक धर्मके उल्लेख हैं। अस्तु। इस तरह वैदिक विवाहमें कुमार कुमारिकाओंका पुत्रा और सुमनस्क होना सिद्ध है, तथापि मातापिताकी संमति भी उतनी ही प्रबल है यह बात विशेषतया ध्यानमें धारण करनी चाहिये।

भाग्य मंत्र ७ से ९ तक नवविवाहित वधूवरोंको आशीर्वाद दिया है। राक्षस, दुष्ट, दुराचारियोंसे वधूकी रक्षाकी प्रार्थना सातवें मंत्रमें है। सब मार्ग वधूके लिये सुरक्षित होनेका आशीर्वाद अष्टम मंत्रमें है। और नवम मंत्रमें यह इच्छा प्रकट की है कि वधूवरोंको मंगल, अश्विस्त, देवीभादि सुखदायक हों और इन वधूवरोंकी कोई हिला न करे।

## यज्ञसे यज्ञमनाश

यज्ञम मंत्रमें वधूसे यज्ञरोगके नाश होनेका संदेश बनी काव्यमयी भाषासे दिया है। उसका विचार किंचित् विशेष विचारके साथ करना उचित है।

ये घष्यश्चन्द्रं वहतुं यदमा यन्ति जनां भनु।

पुनस्तान् यक्षिया देवा नयन्तु यत् आगताः ॥

( मं. १० )

'जो (यज्ञमा) यज्ञ रोग (जनान् भनु यन्ति) मनुष्योंके साथ साथ चले हैं, वे (घष्यः चन्द्रं वहतुं) वधूके वैजसवी वरातके रथके साथ यदि शा गये हों, तो (तान्) उन यज्ञ रोगोंको (यक्षियाः देवाः नयन्तु) यज्ञके देव दूर ले जायें, अर्थात् वधू या वरके साथ आने न दें।' यज्ञके देव अग्नि, वनस्पति आदि हैं, तिनसे पूजा होता है और यज्ञमें त्रिनका नामनिर्देश हुआ करता है। वे सब देव मनुष्योंके साथ भाष्ये यज्ञ रोगोंको दूर करें। इस मंत्रके मतमेंसे यह बात सिद्ध होती है कि जहां मनुष्योंकी भीत होती है वहां रोगी मानवोंके साथ यज्ञमादि रोगोंके बीजोंका नाश संभव है। वरातमें जहां संकटों आदमी हकटे होते हैं वहां कितने कौनया रोग है इसका ज्ञान होना भी असंभव है। अतः ऐसे भीषण प्रसंगमें शरीरजन्म रोगकी भांजा होनेकी संभावना होती है, इसलिये ऐसे प्रसंगमें वधू दृष्ट करके ऐसे यज्ञमाका दामन करना योग्य है। जहां जहां वरात जैसे बहुत भयुषोंके समाव जमा होते हैं वहां वहां परी नियम ध्यानमें रखना योग्य है।

## शत्रु दूर हों

वराहमें मंत्रमें शत्रुको दूर करनेका उपदेश है। एवं मंत्रमें व्याधिरूप शत्रुको दूर करनेका उपाय कहा और इस मंत्रमें मलनी शत्रुमोको दूर करनेकी सूचना दी है। (परिप्रेथितः स्य विपदः) दुष्ट भावोंसे कलेशले दुराचारी इस संकलितोम प्राप्त हों। दुराचारी अनेक मलोमत बलाकर मनुष्यको धोखा देते हैं, उगते हैं, फैलाते हैं, टूटते हैं और अपना मतलब माधते हैं। अतः ऐसे दुष्टोंसे संबंधसे नवविवाहित वधूवर तथा अन्य लोग भी दूर रहें। यह सर्व सामान्य उपदेश है। (भरातयः अथ द्रान्तु) मनु दूर भाग जायें, मनुष्य मनुष्य जो इस नवविवाहित वधूवरोंको वगानेके इच्छुक हों वे दूर हों। इनसे वे दंपति सुरक्षित रहें। तथा वे स्त्री पुरुष (सुगेन दुर्गो अतीति)। मं. ११) सुलपूर्वक सभी बलि प्रसंगोंसे मुक्त हो जायें।

बारहवें मंत्रमें प्रार्थना है कि 'सबका उत्पत्तिकर्ता सविता देव इस सब विषयों रूपको इस पतिपत्नीके लिये सुखदायक बनाये।' धर्मार्थ यह सब देव इस देवपतिको सुख देवे, इससे दुःख न होवे। यहा पाठक ध्यान रखें कि उगर्त के सब पदार्थ सुखदायक भी हो सकते हैं और दुःखदायक भी हो सकते हैं। अपने व्यवहारपर ही सुख या दुःखकी प्राप्ति अब दीक्षित है। अतः वधुवर ऐसे धार्मिक मुनियमंत्रसे व्यवहार करें कि जिससे उनको सदा सुख होता रहे और दुःख सबदायक न हो।

### विवाहमें ईश्वरका हाथ

तेरहवें मंत्रमें (घाता इमे लोक अस्मै दिदेश। मं १३) विधाताने यह पतिका स्थान इस वधूके लिये निर्दिष्ट किया है, ऐसा कहा है। इसका सरल भावय यह है कि अब भी या पुरुष उत्पन्न होता है, अब उसके लिये विवाहकी योजना विधाताद्वारा निश्चित होती है। विधाताके संदेशको लेकर जो चलने हैं, उनके लिये यथायोग्य धर्मपत्नी मिलती है। जो स्वयं अपना इष्ट धर्ममें लगे हैं, वे कष्ट भोगी हैं। जो सदाबन्धे आत्ममा पालते हैं उनका यह हेतु भी ईश्वरीय कृपासे ही सिद्ध होता है। जो विवाहेच्छुक होता है उनको उचित है कि वे अपना उचित धर्ममनुष्ठान रखें, उत्तम मुनियमंत्रका पालन करें और समस्तकी प्रतीक्षा करें। विधाताके निमग्नानुसार सुयोग्य वधूके साथ सबदय संबन्ध होगा। धर्मोन्मुख संयमपूर्वक प्रती मनुष्यका सब योगक्षेम ईश्वरीय विषयानुसार चलता है। जिसका परम पिता एकमात्र सहायक सहा होता है उनको किसी बातकी न्यूनता नहीं होगी।

(इयं शिवा नारी अस्त आगन्) यह शुभ आचार पाली की पतिके घर आयी है। यह शुभ आचारवाली स्त्री ऐसे ही धर्मात्मा पुरुषको प्राप्त होती है और उसका गृहस्थाश्रम सुखपूर्वक चलानेमें सहायक होती है। धर्मपत्नीका शुभ आचारवाली मिलना एक भाग्यका लक्षण है और वह धर्माचारसे ही सिद्ध होता है।

(देवा प्रजया वर्धयन्तु। मं १३) सब देव इस देवपतिको उत्तम सतानके साथ बढ़ावे, सुसंयति देवें, अन्य सब प्रकारका भाग्य देवे और हरएक सुख इस देवपतिको मिले। यह सब ईश्वर भवितवसे ही प्राप्त होता है। विधाताकी कृपासे ही यह होता है।

### धर्मोपान ।

विवाहक पश्चात् धर्मोपान प्रकरणका आना स्वाभाविक और प्रसन्न है। उस सबका विवेक १४ वें मंत्रमें है।

(आत्मन्यती उर्वरा नारी) धार्मिक बलवाली, सुपुत्र या सुसंतान उत्पन्न करनेवाली होनेसे कठिन प्रसंगमें जिसका धर्म नष्ट नहीं होता, ऐसी स्त्री होती है। 'उर्वरा' शब्द उपजाऊ धर्ममें यहाँ है। जिसप्रकार भूमि उत्तम उपजाऊ होती है, उसी प्रकार स्त्री भी उत्तम इष्टपुत्र सुमतिपुत्र संतति उत्पन्न करनेवाली हो। रोगी संतति उत्पन्न न हो। जैसा बाहुबलमें कहा है वैसा आचरण स्त्रीपुरुष करेंगे, जो उत्तम संतति हो सकती है।

(तस्या नरो धीज वपत) ऐसी सुपुत्री कल्पनी, आत्मबलशालिनी उत्तम सतान उत्पन्न करनेमें समर्थ स्त्रीमें ही पुरुष धर्मोपान करे। किसी अन्य स्थानमें धर्मोपान निश्चय न करे। धर्मपत्नीको छोड़कर किसी अन्य स्थानमें धर्मोपान नाश करना सर्वथा लघोष्प, अधार्मिक और अवलतिकारक है। पुरुष (वृषभ.) बेलके समान धर्मवान् हो। वृषभ पुरुष में धर्म कीर्तयदशक है। धर्मवान् सुपुत्री पुरुष ही धर्मोपान करे। होनी, सुपुत्री, निर्वाह पुरुष धर्मोपान करेगा जो उसको सतान भी वैसी ही शीघ्र और दीन होगी। अतः यह सावधानता आवश्यक है।

स्त्री अपने पतिके घर (विराट्) विशेष तेजस्विनी होकर अपने सब व्यवहार करे, (सरस्वती) विधातृकी स्त्री मूर्ति धनकर रहे अर्थात् विपुत्री कहलवाने योग्य ज्ञान पाली दने। (सिन्धीवाली) विविध अन्नरस प्राप्त देवाली गृहस्थाश्रमिनी बने। अपना पति (विष्णु इव) साक्षात् विष्णुमग्नवान् ही है और नै उसकी धर्मपत्नी है ऐसा भाव मनमें रखे। जैसे विष्णु सब जगत्का पालनद्वारा है, वैसे ही मेरा पति भी अपने परिवारका उत्तम पालक है यह विचार मनमें रखकर पतिके विषयमें बड़ा आदरका भाव अपने अङ्ग करणमें रखे। और (भगवस्य सुमतो असत्। मं १५) अपने पतिकी उत्तम प्रतिमं अपने भावको रखे अर्थात् उसके विषयके उत्तम विचार मनमें धारण करे और उसके मनमें अपने विषयमें उत्तम विचार रहे ऐसा अपना आचरण करे। पति की अपनी स्त्रीके विषयमें बड़ा आदर रखे। इस तरह पतिपत्नी परस्परका सत्कार करते हुए गृहस्थधर्मका पालन करें।

पतिपत्नीकी व्यवहारशैली ऐसी हो कि उनमें भावनामग्नता न हो, शाश्वतिका भंग न होवे। दोनों बड़े प्रेमक साथ मिलजुलकर रहें। (अदुष्टतौ) दोनों पति और पत्नी द्वारा कामधेदा, दुराचार कभी न करें, सदा अच्छे शुभ कर्मोंमें दृढचित रहें, (वि-पुत्रसी) वे दोनों सदा विषय

रहें, कभी प्रमादसे भी पापमार्गमें न प्रवृत्त हों, (अशुभ मा शरतां ।) अशुभ व्यवहार कभी न करें। दोनों मिलकर परस्परको धर्म करनेमें सहायता देते हुए अपने उचितके मार्ग पर चलें।

### पतिके घरमें पत्नीका व्यवहार

अप पतिके घरमें खीका निवास स्थिर होकर गर्भधारण होती है तब वधूषा दिल पतिघरमें जम जाता है। तबतक वह अपने पिताक घरका सारण करती है। जब गर्भधारण होता है तब पतिके घर पर प्रेम बढ जाता है। ऐसी अथ स्थानमें वह नारी पतिके घरमें किस तरह व्यवहार करे, इस विषयमें उत्तम उपदेश मंत्र १७ से प्रारंभ होज है।

(अ-घोर-चक्षु) मूर दृष्टिकरनेवाली स्त्री न बने, सदा सौम्य बानद प्रसन्न रहितो अपने घरके कार्य करती रहे, किसीपर क्रोध न करे, वक्र (देवी) दृष्टिसे किसीकी ओर न देखे, (अ पति-धर्मी) पतिका घात, अपमान तथा विरोध कभी न करे, सदा पतिके दितमें दक्ष रहे, (स्योना शिवा) स्त्री सधको सुख देवे, सबका हित करे, सधका कल्याण करनेक कार्यमें वृत्तचित रहे, (शाम्भा) सदा शुभ कार्य करे, सर्वहितकारी कार्यमें अपने मनकी लगन रखे, (सु-यमा) स्त्री अपने पतिके घरमें उत्तम धर्मविषयोंक अनुकूल आचरण करे, कभी अनियमका आचरण न करे, (सु-सेया) गुण-नोकी सेवा उत्तम रीतिमें करे, सेवा करनेवालोंपर क्रोध न करे, प्रसन्नतासे सेवकोंक साथ बसे, (वीरसू; प्रजापती) धीर सतान उत्पन्न करनेके लिये जो भी पण्य व्यवहार करना आवश्यक हो, वह करती रहे, अपने मनमें वीरताक विचार धारण करे और बालकपदमें अपनी सजानोंको धीरताकी शिक्षा देती रहे। इस तरह अपनी सतानको सुधीर बनानेके लिये जो जो उपाय करना आवश्यक हो वह करती जाव। (देवु-यामा, अ देवु-प्रि) अपने पतिपर भार्योका हित करे, उनसे कभी द्वेष न करे, द्वेषका कभी घात न करे, (सुमनस्यमाना) अन्न खरगमें उत्तम भावना रखनेवाली तथा उत्तम मनोवृत्तिवाली स्त्री हो, अर्थात् शिवा और सुनि-यमोंक द्वारा स्त्रीअपना मन उत्तम, शांत, गंभीर और दिनप दुष्क बनाने और घरमें सबके मन अपनी ओर आकर्षित करे। (सुदर्चा) स्त्री उत्तम तेजस्विनी बने, घरकी शोभा बनकर घरमें रहे, (पद्मस्य शिवा) पद्म भादिपोकका भी पति गृहिणी करे, पद्मोंको घास दावगानी मिला है या नहीं, उनका आरोग्य कैसा है इत्यादि विचार कर इस संके धमें जो आवश्यक कार्य हो वह करे। (गार्हपत्य सपर्य)

गार्हपत्याग्निमें प्रतिदिन इपन करे, ईश्वर उपासना करे। अग्नि में २६ और २७ में भी यही विषय पुन आया है। उसमें इसी तरह गृहपानीक कर्तव्य शब्दोंद्वारा इसी तरह कहे हैं, स्त्री (सुमंगली) उत्तम मंगल करनेवाली सुमंगल काम वादाकी, (अ-तरणी) दुःखसे पार होनेवाली (सुसेया) उत्तम सेवा करनेवाली, उत्तम सेवनीय, (पत्ये श्वशुराय शम्भु) पतिका और ससुरका हित करनेवाली, (श्वश्वे स्योना) सासका सुख बढ़ानेवाली, (श्वशुरेभ्या; गृहे-भ्यः पत्ये, अस्मै सर्वस्ये विशे स्योना) ससुर, पत्न्याके पति और सप पारिवारिक लोगोंक लिये सुख देनेवाली गृहिणी हो।

### दरिद्रताको दूर करो

पतिके घर धर्मपत्नीका प्रवेश होनेके पश्चात् पत्नी और वरका मिलकर प्रयत्न इसलिये होना चाहिये कि अपने घरका दारिम्य दूर हो। इस विषयका संदेश देते हुए १९ वें मंत्रमें कहा है कि—

हे निर्दोषे! प्रपत, इह मा रंस्या । अग्निभू स्वात्  
गृहात् । न्या ईडे । ( मं १९ )

वधू और वर कहें कि 'हे दारिद्र्ये! हमसे दूर भाग जा यहाँ हमारे घरमें न रह, मैं तेरा पराभव करूँगा। और अपने घरसे तुझे निकाल दूँगा, यह सध सच कहता हूँ।' इस प्रकारके निश्चयपूर्ण वाक्य दरिद्रतासे कहे जाय। इसका तात्पर्य यह है कि पति और पत्नी अपने घरका दारिम्य दूर करनेका निश्चय करें और तदनुसार प्रयत्न करें।

### बहोंको नमस्कार

धीरतव मंत्रमें कहा है कि, जब वधू अग्निवी पृथा करे और अपनी ईश्वरोपासना समाप्त करे, तब वह (पितृभ्यः नमः स्फुर । मं २०) अपने घरक बड़े स्त्री पुराणोंको नमस्कार करे और पदपाद अपने कार्यमें लगे। यहाँ एक बड़ा भारी वैदिक आदर्श प्रतीया है। स्त्री मान काठ जडे शरीरमुक्ति रनातादि कर्म करे, ईश्वर उपासना इवन आदिसे विरुद्ध होकर अपने घरक बड़े लोग अर्थात् पति, पतिके मातापिता उत्तक बह गार्ह तथा अन्त्याय्य गुरुजन जो भी घरमें हों उनको पद्यायोग रीतिसे नमस्कार करे, उनका आशीर्वाद लेवे और पश्यत अपने कार्यमें लगे। यह नियम न केवल नव वधूक लिये ही उत्तम है, अतितु यह घरके सब वृत्ता कृतारिकामोंक लिये भी अत्यंत उत्तम है।

इस तरह गुरुजनोंको सेवने नमस्कार करना यह एक

( शर्म वार्ध पत्र १ । म २१ ) सुखदायक और सरलक कवच है। यह रीति अनेक भाषणियोंसे कुमारी और कुमारािकाभोकी रक्षा करती है। अत इस पद्धतिका प्रचार भार्य गृहोंमें होना शुभ है।

( सूचना— मंत्र १५ व का दूसरा भाग यहा मंत्र २१ में पुन आया है । )

नववधू ईश्वर उपासना और अग्निमें हवन करनेक समय चर्मपर— आप कृष्णाम्बिन पर—बैठे और अपनी उपासनाका कार्य करें। ( हेतु म २२-२४ )

रोहिते चर्मणि उपविद्य सुप्रजा अग्नि सपयतु ।  
( म २२ )

‘ कृष्णाम्बिनपर बैठकर उत्तम प्रजा निर्माण करनेवाली की अग्निकी उपासना करें ’ अग्निकी उपासना करनेका लक्ष्य वेदमन्त्रे इस तरह बताया है—

एय देव सयां रक्षासि हन्ति । ( म २४ )

‘ यह अग्नि देव सब रोगबीजरूपी राक्षसोंका नाश करता है ’ और कुटुंबियोंको भीरोगी बनाता है। यह अग्नि उपासनाका महत्व है। अत हवन प्रत्येक कुटुंबमें होना चाहिये। इस तरह जो श्री करती है उसका (सुज्येष्ठ पुत्र १ म २४) उत्तम श्रेष्ठ पुत्र होता है। सुप्रजा निर्माण करनेक लिये ईश्वर उपासनाकी अथवा भावश्यकता है, इससे मालापित्त और कुटुंबियोंक मन सुस्तरकार लेपक होते हैं और उसका परिणाम सुप्रजा निर्माण होनेसे होता है। २५ व मन्त्रमें भी इसी कारण पुन —

प्रतिभूय देयान् । ( म २५ )

‘ देवोंको सुभूषित करो ऐसा आज्ञा दी है। ईश्वरोंका सेवा करनेक लिये ही यह आज्ञा प्रेषित करती है। देवताओंको भास्वपूर्णसे सुभूषित करो, यह आज्ञा यहा है। मातृ देव, विदुदेव, अग्निदेव, पतिदेव आदि अनेक देव प्राप्त होते हैं, उनको सुभूषित करनेक विषयमें यह आज्ञा हाना सम्भवनीय है। धर्मों जो जा देवता हो उनकी शोभा बढ़ाना गृहविषयोंका परम कर्तव्य ही है।

कई लोग ‘ देवताओंकी मूर्तियोंकी सजावट करो ’ ऐसा इस मंत्रका अर्थ मानते हैं और इस मन्त्र लोग कहते हैं कि वेदमें इन्द्रादि देवताओंकी मूर्तियां वर्णित हैं, इस विषयमें उनके प्रमाण ये होते हैं—

क इम दशमिर्मेंद्र ऋणाति धेनुभि ।

( ऋ १२११० )

महे चन त्वामद्रिच परा शुल्काय देयाम् ।

न सहस्राय नानुताय यजिवो न शताय शतामघ ॥  
( ऋ ८११५ )

‘ ( इम इन्द्र ) इस इन्द्रको ( दशभि धेनुभि ) दस गीबें देकर ( ऋणाति ) खरीद लेता है। मैं सैकड़ों और सहस्रों गीबें मिलनेपर भी ( शुल्काय न परा देया ) भयथा बहुतथा मूल्य मिलनेपर भी इस इन्द्रको नहीं बेचूंगा। ’ इन मन्त्रोंमें ये लोग कहते हैं कि इन्द्रकी स्मृति खरीदने और विक्रयका उल्लेख है। श्री० बाबू भवितासचन्द्र दास एम् ए, पीएच डी ने अपनी ‘ वैदिककल्चर ’ नामक पुस्तकमें पृ १४५ १४८ पर इन मन्त्रोंका विचार किया है। अन्तमें उन्होंने हतने मंत्र देकर भी वेदमें निम्नलिखित मूर्ति पूजा है ऐसा अपना मत नहीं दिया। इसलिये उनक मतस भी वेदमें स्मृतिपूजाका होना सिद्ध नहीं हुआ। अत विषयमें इस दक्षक उपासकों ही संदेह है उस विषयका स्वतन्त्रमन हमें यहा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। हमने यह मत यहा इसलिये दिया है कि इन मन्त्रोंपर पूर्वोक्त बाबू महामय यह कल्पना करते हैं। जो पाठक स्रोतकी दृष्टि अध्ययन करते हों वे इन मन्त्रोंका अधिक विचार करें। उन बाबू महाशयजीका और भी कथन यह है कि ( ऋ ८११५ । १५ १६ जैसे ) मन्त्रोंमें इन्द्रक रथम बैठनेका उल्लेख है यहा इन्द्रमूर्तिकारथपर सवार होना ऐसा अर्थ समझना चाहिये। यदि इस तरह कल्पना करनी हो तो प्राय सभी देवताओंका मूर्तियां वेदमें वर्णित हैं, ऐसा ये कह सकते हैं, क्योंकि वेदमें अनेक देवताओंके वर्णनोंमें उनक रथमें बैठनेका वर्णन है। देवताक रथमें बैठनेका आध्यात्मिक अर्थ क्या है इसका चर्चा हमने ‘ वैदिक अग्निविदा ’ नामक पुस्तकमें अग्निदेवताक विषयमें की है। इसी प्रकार इन्द्रदेवतापर स्वतन्त्रतया एक पुराण लिखकर उसमें इन्द्रदेवताक रथपर बैठनेका आशय क्या है इसका विचार किया है। यह विचार यहा संक्षेपत कहनेसे कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा, इसलिये वह विषय हम यहा नहीं लेते। हमारा विचारसे यहाके ‘ देयान् प्रतिभूय ’ का अर्थ अपने परिवारमें जो गृहजन हैं उनको सुभूषित करो ऐसा है। आगे सोच होकर जो बात सिद्ध होगी वह प्रकाशित करेंगे। अस्तु।

उन प्रकारकी सुमंगल यूपको सज्जन स्त्रीरुपर देल और आक्षीर्वाद द, उसका भरा चाँद और उसकी सहायता कर, यह भाव २८ वें मन्त्रका है। जो दुष्ट हृदयवाली ( दुर्दादि युवतय ) किया तपनोंको धोखा देती रहती हैं और उनका

प्रेम और आनन्द प्राप्त होते। अपने घरमें बनाया बरत न पहन कर और परकीयो द्वारा बनाया बरत पहन कर ( वयं मा रियाम न ५० ) हममेंसे कोई भी नाशको न प्राप्त होने। क्योंकि अपना बनाया बरत न पहन कर और परकीयोद्वारा बनाया बरत पहननेसे निःसन्देह नाश होगा। इस नाशसे गृहरिपयोक्त मचावका एक मात्र उपाय यह है कि प्रत्येक घरमें सूत काता जाय और उसका बरत बनाकर वही उस घरके लोग पहनें। आपणिले बचनेका और सपत्तिमान् बननेका एक मात्र उपाय यह है। प्रत्येक घरमें इस वैदिक धर्मके आदर्शका पालन होना रहे। अपने बनाये बरतमें कोई मनुष्य धृष्टा न करे और परकीयो द्वारा बनाये बरतपर कोई मनुष्य प्रेम भी न करे। वही एकमात्र साधन उधारका है।

मंत्र ५२ में कहा है कि 'पतिकी इच्छा वरके पतिके घरमें पहुंचानेवाली कन्या इस दीक्षावतका पालन करे। यह दीक्षावत स्वयं सूत कातना और उसका बरत धरवाणिके लिये बनाना है। जो स्त्री इस वतका पालन करेगी वही दीक्षाको धारण करनेवाली होगी और मुक्तका उद्धार करेगी। परंतु जो स्त्री स्वयं तो सूत कातती नहीं और परकीयोद्वारा बनाये बरत पहननेका आग्रह करेगी, यह अपने घरमें स्वयं दरिद्रताको बुलावेगी।' इसलिये वरके पारिवारिक स्त्रीपुरस्कारोंको उचित है कि वे सबके सब इस दीक्षावतको धारण करें और इस वतका पालन करके उचितको प्राप्त हों। वेदका यह आदेश सब गृहरिधर्मोंके लिये है। जो इसका पालन करेंगे वे अभ्युदय प्राप्त करेंगे और जो इससे विमुख होंगे वे असफल जीवनमें तिर जायेंगे।

### गौर्वका यज्ञ

मंत्र ५३ से ५८ तक गौर्वके यज्ञका वर्णन है। सब गृहस्थियोंको उचित है कि वे अपने घरमें गौर्वका पालन करें और उनका ही दूध, दही, मक्खन, घी आदिका सेवन करें। गौर्वका (वर्णः) रंग, (तेजः) कुर्त्ती, (भगः) वैश्वर्य, (यज्ञः) यज्ञ, (पयः) दूध, (रसः) शक्करम है। गौर्वके दूधसे हमकी प्राप्ति मनुष्यको होती है। इसके अतिरिक्त शुद्ध गौका मूत्र, गोमय आदि भी औषधि गुणोंसे युक्त हैं। इन सब पदार्थोंद्वारा ही मनुष्योंको सुख देती है। ये सब लाभ गौका घरमें पालन करनेके विना नहीं हो सकते। अतः गृहस्थियोंके अपने घरमें गौवोडी पालना करने वर्षावरी, तेजस्वी, भगवान् और यशस्वी होना चाहिये।

आगे मंत्र ५९ से ६२ तकके मंत्रमें पापसे बचनेका उपदेश किया है जो अपने (पेशिनः) पाल बढ़ाते हैं, (अग्रं कृपयन्तः) पाप करते हैं, (रोदेन समनर्तिषुः) रोते हैं। माघसे कूदते हैं। स्त्रियां (निकेरी) बालोंको सोलकर घरमें रोती पीटती हैं, आक्रोश करती हैं। घरको स्त्रियां घरमें जिस कारण आशौच करती हैं, नावा प्रकारके पातक करती हैं। वे सबके सब पापकारी लोग हैं और वे समाजसे दूर होने योग्य हैं। जो पापकारी भाव हैं वे मनसे दूर हों और जो पापकारी मानव हैं वे समाजसे दूर हों। इस तरह पापी विचारोंसे मन शुद्ध हो और पापी जनोंसे समाज मुक्त हों। और मर्ता और समाजसे रोने पड़नेका मूल कारण दूर हो जाये और संपूर्ण समाजमें आनन्द प्रसन्नता निवास करे। वही गृहस्थाश्रमका ध्येय है।

मंत्र ६३ और ६४ में कहा है कि (मे पतिः दीर्घायुः अस्तु) मेरा पति दीर्घायु हो वह स्त्रीको इच्छा हो, स्त्री कभी अपने पतिका अहित न चाहे। पतिका हित बननेमें सदा दृष्ट रहकर उससे दीर्घायुका ध्यान करती रहे। (चक्रयाना इयं दम्पती) जैसे चक्रयुक्त पत्नी रहते हैं, आपसमें प्रेमके साथ विद्वान् करते हैं वैसे ही स्त्रीपुरय गृहस्थाश्रममें प्रेमके साथ रहें। पत्नीके लिये एक मात्र पति और पतिके लिये एक पत्नीकी स्थिति गृहस्थाश्रमियोंमें होवे। उनसे अश्लिष्टादि दोष उत्पन्न न हों। एक दिलसे और एक विषयसे वे गृहस्थाश्रममें रहें। इस प्रकार (सु-वस्तकौ) अपने उत्तमोत्तम घरवात करके उसमें रहें और (विश्वं आयुः व्यभुजतां) सब पूर्ण आयु व्यतीत करें। इस तरह गृहस्थाश्रममें पति और पत्नी सुखसे रहें और मानन्द प्रसन्नताके साथ गृहस्थाश्रमका कार्य चलायें।

आगे मंत्र ६५ से ६७ तकके तीन मंत्रोंमें विशेष रीतिसे कहा है कि जो विवाहादिके समय (हृत्पां) घातक विचार क्रिये हों, जो (दुष्टकृतं, दुष्टकृतं) जो दुष्टाचार अथवा शपथ विचार हुए हों, जो (मले) मलिन भाषाएँ तथा (दुरितौ) बुरे व्यवहार हुए हों, वे सबके सब हमसे दूर हों और हम (शुद्धाः यशियाः अभूम) शुद्ध, पवित्र और स्वयं बन जायें और (नः आयुषि प्रतारिषत्) हमें दीर्घ आयु प्राप्त हों। साधारणतः यह नियम है कि कबे उसमेंमें, विवाह जैसे मंगल कार्योंमें जहाँ अनेकानेक बुरे मले मनुष्योंका संघ जाता है, वहाँ किसी न किसी रीतिसे कुछ न कुछ हीन आचार हो ही जाया करते हैं, कुछ दोष होते रहते हैं। उनसे अपने आर्यों बचानेका उद्योग करना चाहिये और

शुद्ध पवित्र और यशके लिये योग्य बननेका बाल प्रत्येक गृहस्त्रीको करना चाहिये। यदि पूर्व समयमें कुछ दोष ही भी गये हों, तो उनकी चिन्ता करनेमें समय व्यतीत न करते हुए भाग्यके सम्बन्धमें आभ्युद्भि करके प्रयत्नमें दृष्टिगत होना चाहिये। इस तरह शुद्ध और पवित्र बनकर गृहस्थियोंको आदर्श जीवन व्यतीत करना चाहिये।

### बालोंकी पवित्रता

सिध्दिक वंशोक्ती स्पष्टता और पवित्रता करनेका उपदेश मंत्र ६८ और ६९ में है। ( कौटिल्यः बन्ध्याः केदर्यं मर्लं अपलितज्ञात् । म ६८ ) कथा इस कौर वंशोंके मूलको दूर करे। यह प्रतिदिनका कार्य है। स्त्रीको उचित है कि वह अपने बाल खोलकर उत्तम स्वच्छ तेल लगावे और कहेसे सभ बाल स्वच्छ करे और फिर वंशोंका प्रसाधन स्पष्ट रीतिसे करे। धार या भाद दिनोंमें एक या दो बार अपने बाल किसी मन्त्रधारक साधनसे पानीके साथ धोकर, पवित्र यज्ञसे पानी दूर करके बालोंको सुखाये और फिर कथा करके केशप्रसाधना अच्छी प्रकार करे। वंशोक्ती निर्मलता रखना स्त्रियोंके लिये एक आवश्यक कर्म है। जिस स्त्रीके वंशमेंसे दुर्गन्धी जाती है, वह स्त्री धर्मकर्मके लिये भयान्य समझी जाती है। इसलिये स्त्रीका केशप्रसाधन कर्म एक अर्थात् आवश्यक कर्म है।

श्रीके ( अंगान् अंगान् यदमं अपनिदुध्यासि । म. ६९ ) प्रत्येक अंग और अवयवसे मूल अथवा रोगबीजको दूर करना चाहिये। क्योंकि स्त्री राष्ट्रीय सतानोकी जननी है। यह यदि मजिन, अपवित्र अथवा रोगयुक्त रह्यो, तो राष्ट्रकी भावी सत्ताज भी वैसी ही होगी। इसलिये स्त्रियोंके शरीर पवित्र, नरोग और स्वच्छ होने चाहिये, जिससे संतान उत्तमोत्तम निकलती रहे। सब मूल जलसे दूर होना है यह शक्य है, इसीलिये केशप्रसाधनको पवित्र रखनेका बाल होना चाहिये। नहीं तो जलस्थानोंमें लोग स्नान करेंगे और पीनेके जलमें ही वह मूल बाधगा और जिस जलसे पवित्रता होनेवाली है, उसी जलसे अपवित्रता और रोगकी अवस्था बढ़ेगी, इसलिये कहा है कि ( आपः मर्लं मा प्रापत् । मं. ६९ ) जलस्थानमें मूल न प्राप्त हो, अर्थात् संपूर्ण जलस्थान स्वच्छ, पवित्र और निर्मल रहे। भाग्यकालतालमंत्र, ज्योतिष, नदियोंमें तथा अन्धान्य जलाशयोंमें योग्य स्नान करते हैं, कपडे धोते हैं और अन्य प्रकारसे अस्वच्छता करते हैं और उसी स्थानसे पीनेका पानी भी करते हैं। इससे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। अतः वेदका यह आदेश गृहस्थियोंको

अवश्य स्मरण रखना चाहिये। किसी भी जलाशयमें किसी प्रकारसे भी मनुष्य मलिनता न करें। जलाशयको पवित्र, स्वच्छ और शरीरगी अवस्थामें रखे और ऐसे शुद्ध जलका उपयोग करके अपने शरीरका भागोग्य साधन करें। जलकी स्वच्छतापर मनुष्योंका और पशुपक्षियोंका भागोग्य निर्भर है।

### पुष्टिका साधन

इस द्वितीय सूक्तके ७० वें मंत्रमें गृहस्थियोंकी पुष्टिका साधन कहा गया है। इससे किस अन्नका सेवन करना चाहिये इसका उपदेश हमें मिलता है। ( पृथिव्याः पयसा ) पृथ्वीसे उत्पन्न होनेवाले दूधका सेवन करना चाहिये। तथा ( औषधिनां पयसा ) औषधियोंके दूधका भी सेवन करना चाहिये। यहां औषधियोंका रस और भूमिका रस ये दो ही रस गृहस्थियोंके भोजनके लिये कहे हैं। औषधियोंके रसको सब जानते ही हैं। औषधी, फल, फूल, पत्ते आदिको सेवन मनुष्य करते ही हैं। गृहस्थियोंको चाहिये कि वे पुष्टिकारक औषधियोंको बढ़ावें और उनका सेवन करके पुष्ट और दृढ बनें। भूमिका दूध सेवन करनेके लिए भी इस मंत्रमें कहा है। भूमिका रस एक तो शुद्ध और पवित्र स्रोतका जल है, दूसरा भूमिका धान्य आदि भी है। अस्तु, इस तरह शुद्ध जल, शुद्ध अन्न और शुद्ध फलादि का सेवन करना चाहिये। वेदने यहां किसी भी स्थानमें पशुके मांसका भोजन मनुष्योंके लिये नहीं कहा है। अर्थात् मांसका भोजन मानवोंके लिये वैदिक मर्यादाके अनुकूल नहीं है। इतने जहां जहां भोजनका विषय वेदमें दिया है, वहां वहां किसी भी स्थानपर हमें मांसका वानतक नहीं मिलता है। इसके विपरीत वहां धान्य, औषधि, वनस्पति, फलमूल आदिका ही उल्लेख देखा है, अतः हम कह सकते हैं कि वैदिक भोजन शुद्ध निर्मांस-भोजन अर्थात् शाक-भोजन ही है। इस शाक-भोजनसे ही ( वाजं सनुहि ) बल्को प्राप्त करो, यह वेदका आदेश है।

आगे ७१ वें मंत्रमें स्त्री और पुरुष किस तरह स्वच्छता करे, इस विषयका उचित उपदेश है, यह तालिका रूपमें नीचे दर्शाते हैं—

पुरुष	श्री
अम	सा
साम	कङ् ( कृष्ण )
श्री	पृथिवी

श्री और पुरुष आचमनमें एकमतसे रहें यह उत्तम उपदेश पदा दिया है। ऋग्वेदके मंत्रकी ताल और आलापके साथ गावन करनेसे यह साम होता है। वस्तुतः ऋग्वेद और

सामंजस एक ही है। इसी तरह स्त्री और पुरुष एक ही हैं, केवल एक स्थावर सौम्य गुणोंका विकास और दूसरे स्थावर पर उन्नत गुणोंका विकास है। वही भाव स्त्रीको पृथ्वी और पुरुषको सुलोकके रूपमें प्रताप्य है। स्त्री पुरुष इस प्रकारके ऐकमत्वके साथ रहें। भावसमें प्रगटा भादि कुछ भी न हो। आनन्द प्रसन्नताके साथ सब गृहस्थधर्मके व्यवहार करें। वे दोनों (इह संभवाय प्रजां आजनयावहै। मं. ७१) यहां संतान उत्पन्न करें, सुप्रजाका निर्माण करें। अपने बाल-बच्चोंको सुसंस्कारसे संपन्न करें और सब प्रकारकी उच्छतिते युक्त हों। दोनोंको प्रयत्न इस बातका करना चाहिये कि सब प्रकारका अभ्युदय और निःश्रेयस उत्तम रीतिसे सिद्ध हो।

(अग्रयः जनिव्यन्ति) भागे बढनेवाले लोग ही स्त्रीको प्राप्त करनेकी इच्छा करें। वृद्धि रहनेवाले, प्रयत्न न करनेवाले लोग विवाहित होनेकी इच्छा न करें। क्योंकि ऐसे आदर्श लोगोंकी संतान भी अयोग्य ही होगी और अंतमें जातिपर उनके दोषोंके कारण कर्कट रोगगा। (सुदानयः पुत्रियन्ति) उत्तम दान देनेवाले, परोपकार करनेवाले, मानव समाजका भला करनेके लिये आत्मसमर्पण करनेवाले ही दुप्रप्राप्तिके इच्छुक हों, क्योंकि ऐसे लोगोंके शुभसंस्कार पुत्रोंमें आ सकते हैं और शुभसंतानके उत्पन्न होनेसे राष्ट्रका तथा मानव समाजका भला हो सकता है। इसलिये उत्तम दान करनेवाले विवाहित होकर संतान उत्पन्न करें और जो दान न करनेवाले स्वर्गीय हों वे भविष्यवाहित रहें। (अ-रिष्ट-आर्त्त धाजसा-तये सचेवाहि। मं. ७२) अपने प्राणोंको सुरक्षित रखने हुए बच्चा बल प्राप्त करनेके लिये वे स्त्री पुरुष बन करें। हर एक स्त्री पुरुषको उचित है कि वे बल प्राप्त करें, कोई कमजोर, या विर्यल न रहें। बल प्राप्त करके जगत्के व्यवहारपुद्धमें भागे बढकर विभ्रय प्राप्त करें। अपुरुषार्थवृत्ति कोई धारण न करे। सब लोग पुरुषार्थी बनें और अपने अपने कर्तव्य करते रहें।

## आर्शावाद्

अतिम तीन मंत्रोंमें नवविवाहित पक्षरको शुभ भाशी-वाद् दिया है। मंत्र ७३ में कहा है कि जो संघेयी और जाति-बांधव वरातमें संमिलित हुए हों, वे अपने अपने घर वापस जानेके पूर्व (ते अस्थै संपत्तयै प्रजावत् शर्म यच्छन्तु। मं. ७३) इस शुभपत्नीके लिये प्रजापुत्र सुख दें, अर्थात् इसके सुप्रजा निर्माण हो और इसको उत्तम गृहसौख्य प्राप्त हो, ऐसा शुभाशीर्वाद दें और पश्चात् वे अपने घर वापस जायें।

जो विवाह इस वरातमें भाषी हो, वे अपने घर जानेके पूर्व प्रजा और घन प्राप्त होनेका शुभाशीर्वाद दें और (अगतस्य पंथां वनुयहन्तु) भविष्यमें सुमार्ग पर चलनेके तथा योग्य आचारके निर्देश इनको दें तथा यह (विराद् सुप्रजा) विशेष सप्राप्ती जैसी बनकर उत्तम प्रजापुत्र होवे, ऐसा सुंदर आशीर्वाद दें और पश्चात् अपने घरको वापस जायें। वरातमें भाषे हुए कोई भी ऋषियुक्त भाशीर्वाद दिये बिना वापस न जाये।

विवाहित स्त्री अर्थात् धर्मगनी (दीर्घायुत्याय दात-शारदाय) दीर्घायु और दातापु बननेका प्रयत्न करे। ऐसा आहारविहार करे कि भियसे घरवाले दीर्घजीवी बनें। (सुबु-धा बुध्यमाना प्रमुष्यस्व) उत्तम ज्ञान प्राप्त करनेका यत्न करे। हर एक प्रकारकी सुविधा प्राप्त करके उत्तम शुभ-मंगलमय संस्कारोंसे युक्त बने। अपने पतिके घरमें जाकर (गृहपत्नी) अपने घरका स्वामिनी बनकर रहे। स्वामिनी-युक्ती देवी बननेका इसका अधिकार है। (सपिता दीर्घ आयुः करोतु। मं. ७५) सखिना इसकी आयु दीर्घ बनाये। इस प्रकार दीर्घायु बनकर अपने पतिके घरमें यह विराजे।

सब लोगोंका गृहस्थाश्रम धर्मानुष्ठान हो और यह सबको शुभ देकर जगत्का उपकार करनेवाला बने।



## पति और पत्नीका मेल

कां. २, सूक्त ३०

( ऋषि - प्रजापति । देवता - अश्विनी । )

यथेदं भूम्या अधि तृणं वारो मद्यावति ।

एवा भ्रामि ते मनो यथा मां कामिन्पसो यथा मन्त्रार्पणा असः ॥ १ ॥

सं चैन्नपांशो अधिना कामिना सं च वर्धयः । सं वां भगांसो अमृत सं चित्तामिं समु व्रता ॥ २ ॥

यत्सुपर्णा विवक्ष्यो अनमीषा विवक्ष्यवः । तत्र मे गच्छताद्द्वं शुश्व इव कुलमलं यथा ॥ ३ ॥

यदन्तरं तद्वाहं यद्वाहं तदन्तरम् । कन्यार्नां विश्वरूपाणां मनो गृमायोषधे ॥ ४ ॥

एयमग्न्यविकामा जनिं कामोऽहमागमम् । अद्यः कानिं कदुयथा भर्गनाहं सहागमम् ॥ ५ ॥

अर्थ— ( यथा वातः ) जैसे वायु ( भूम्याः अधि ) भूमिपर ( इव तृणं मद्यावति ) यह घास खिलाता है, ( एव ते मनः मद्यामि ) जैसे ही वेता मन में खिलाता है, जिससे तू ( मा कामिनी असः ) मेरी इच्छा करनेवाली हो और ( यथा मत् अप-गाः न असः ) मुझसे दूर जानेवाली न हो ॥ १ ॥

हे ( कामिनी अधिनौ ) परस्पर कामना करनेवाले दो बरवानों ! ( च इत् सं नयाधः ) मिलकर पक्षी ( च सं वक्ष्यधः ) और मिलकर भागे पड़ो । ( वां भगासः सं अमृत ) तुम दोनोंको ऐश्वर्य इच्छे प्राप्त हो, ( चित्तामि सं ) तुम दोनोंके चित्त परस्पर मिलें और ( यतामि सं ) तुम्हारे कर्म भी परस्पर मिल जुल कर हों ॥ २ ॥

( यत् ) यहाँ ( विवक्षयः सुपर्णाः ) बोलनेवाले सुन्दर पक्षीवाले पक्षी जाते हैं और ( विवक्ष्यवः अनमीषाः ) बोलनेवाले नीरोग मनुष्य जाते हैं, ( तत्र ) यहाँ ( मे इव गच्छतात् ) मेरी प्रेरणानुसार उसी प्रकार जाओ, ( यथा शल्पः कुलमलं इव ) जैसे बाणको नोक तिरातेपर जाती है ॥ ३ ॥

( यत् अन्तरं तत् वाहं ) जो अंदर है वही बाहर है और ( यत् वाहं तत् अन्तरं ) जो बाहर है वही अंदर है । हे शीपधे ! ( विश्वरूपाणां कन्याणां ) विविध रूपवाली कन्याओंका ( मनः गृमाय ) मन मद्ध कर ॥ ४ ॥

( इयं पति-कामा आ अगन् ) यह कन्या पतिकी इच्छा करती हुई आपी है और ( जनि-कामः अहं आ अगमं ) खी की इच्छा करनेवाला मैं आया हूँ । ( अहं भगेन सह आ अगमं ) मैं पनके साथ आया हूँ, ( यथा कामिन्पत्न्यु अश्वः ) जैसे दिनहिताया दुग्ध पीटा जाता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— जिस रीतिसे वायु घास खिलाता है उस रीतिसे मैं तेरा मन खिलाता हूँ, जिससे तू मेरे ऊपर प्रीति करनेवाली होकर सदा मेरे साथ रहनेवाली तथा मेरेसे दूर न होनेवाली हो ॥ १ ॥

हे परस्पर प्रेम करनेवाले खी पुरुषो ! तुम दोनों मिलकर पक्षी, मिल कर भागे पड़ो, मिलकर ऐश्वर्य प्राप्त करो, तुम दोनोंके चित्त परस्पर मिले रहें और तुम्हारे कर्म भी मिल जुल कर होते रहें ॥ २ ॥

यहाँ सुन्दर पक्षीवाले पक्षी शब्द करते हैं और जहाँ नीरोग मनुष्य भ्रमण करने जाते हैं ऐसे सुन्दर स्वागपर तू मेरी प्रेरणासे चल ॥ ३ ॥

जो हमारे अंदर है वही बाहर है और जो बाहर है वही अंदर है । मैं निष्कण्ट भावसे यहाँच करवा हूँ और इस निष्कण्ट आचरणसे मैं विविध रूपवाली कन्याओंका मन आर्क्षित करता हूँ ॥ ४ ॥

पतिकी इच्छा करनेवाली यह खी प्राप्त हुई है और खी की इच्छा करनेवाला योकेके समान दिनहिताया दुग्ध मैं पनके साथ आया हूँ । इस दोनोंका इस रीतिसे मेल अर्थात् विवाह हुआ है ॥ ५ ॥

## पति और पत्नीका मेल

### अश्विनी देव

यह सूक्त विवाहके विषयमें बड़े महत्त्वपूर्ण उपदेश दे रहा है। इस सूक्तके देवता 'अश्विनी' हैं। ये देव सदा जोड़ेके रूपमें रहते हैं, कभी एक दूसरेसे पृथक् नहीं होते। विवाहमें भी स्त्रीपुरण एकवार विवाह हो जानेपर कभी पृथक् न हों, आमरण विवाह बचनसे बंधे रहें, इस उद्देश्यसे इस सूक्त यह देवता रखे हैं। किस प्रकार अश्विनी देव सदा एकट्टे रहते हैं कभी वियुक्त नहीं होते, उसी प्रकार विवाहित स्त्रीपुरण गृहस्थाधममें एकट्टे रहें और परस्परसे वियुक्त न हों अर्थात् विवाह बंधन तोड़कर स्वैर वर्तन करनेवाले कर्म न करें।

द्वितीय मंत्रमें 'कामिनौ अभिनौ' कहा है, अर्थात् परस्परकी कामना करनेवाले अश्विनी देव किस प्रकार एक कार्यमें मिलजुलकर रहते हैं, उसी प्रकार विवाहित स्त्रीपुरण गृहस्थाधममें रहें और एक दूसरेसे विभक्त न हों। यहाँ भी 'अश्विनौ' शब्द 'अशशक्तिसे युक्त' होनेका भाव बता रहा है। पुरणको गर्भाधान करनेमें समर्थ बनानेके लिये वैद्यक शास्त्रमें 'वासीकरण' के प्रयोग लिखे हैं। वासीकरण और मर्वाकरण ये शब्द सम्मानार्थक ही हैं। स्त्रीपुरण अश्विनी हैं, इनका अर्थ वासीकरणसे प्राप्त होनेवाली शक्तिसे युक्त हों, अर्थात् गर्भाधान करनेकी शक्तिसे युक्त पुरुष हो और गर्भधारण करनेकी शक्तिसे युक्त स्त्री हो। 'अग्नि' शब्दका यह श्रेयार्थ यहाँ अवश्य द्रष्टव्य है। स्त्री पुरुष 'कामिनौ' अर्थात् परस्परकी इच्छा करनेवाले हों, स्त्री पुरुषकी प्राप्तिकी इच्छा करे और पुरुष स्त्रीकी प्राप्तिकी इच्छा करे। इस शब्दसे विवाहका समय भी निश्चित हो सकता है—

### विवाहका समय

मंत्र पाचमो निश्चलित भाग आत्ता हे, उससे विवाहका काल निश्चित हो सकता है—

इय पातकामा आ अगम् ।

अहं जनिक्वामः आ अगमम् ॥ ( मं ५ )

'यह स्त्री पतिको इच्छा करता हुई आई है और मैं स्त्रीकी इच्छा करता हुआ आया हूँ।' यह समय है जो विवाहके लिये योग्य है। स्त्रीके शब्द पति-प्राप्तिकी इच्छा और पतिके शब्द स्त्री-प्राप्ति की इच्छा प्रकट होनी चाहिये। उक्त समय विवाह करना चाहिये। परंतु यहाँ यह भी संभव भला जा सकता है कि यह गर्भाधानका समय हो। निर

समावद करनेके पूर्व विवाह करनेकी बात पहले भा चुकी है। यदि विवाह पहिले हुआ हो तो यह समय गर्भाधानका मालना पड़ेगा। तथापि निश्चय यही प्रतीत होता है कि मङ्गलचर्य समाप्तिसे पश्चात् युवा और गृहस्थाधमके योग्य होनेके पश्चात् ही विवाह करना चाहिये। इस विषयमें इसी मंत्रमें आगे बताया है—

यथा कनिक्वदत् अम्बः ।

अहं मगेन सह आगमम् ॥ ( मं ५ )

'जैसे दिनदिनात्ता हुआ घोडा आता है, वैसे ही मैं धनके साथ आया हूँ।' यहाँ उक्तम तारुण्य और गर्भाधानकी मध्युक्तम शक्ति जिसके शरीरमें है ऐसे तारुण्य वर्णन है, यही विवाहके लिये योग्य है। विवाहके लिये न केवल तारुण्य और शीर्षकी ही आवश्यकता है, प्रत्युत ( भ्रम ) धनकी भी आवश्यकता है। कुटुंबका पालन पोषण करनेके लिये भत्त-इक धन कमालेकी योग्यता पुरुष प्राप्त करे, जब वह धन कमाने लगे तभी विवाह करे। पहले मङ्गलचर्य पालन करे, तर्ण बने, शीर्षवान् और बलवान् हो, धन कमाने लगे और पश्चात् सुयोग्य स्त्रीसे विवाह करे। यह पंचम मंत्रका भाग्य सतत ध्यानमें धारण करने योग्य है।

द्वितीय मंत्रसे 'कामिनौ अभिनौ' शब्द हैं, इनका भाग्य इसके पूर्व बताया ही है। 'कामिनौ' शब्दका विशेष स्वचरित्रण पंचम मंत्रके पूर्वार्धमें किया है और 'अश्विनी' का-व्यशीकरण पंचम मंत्रके तृतीय चरण द्वारा हुआ है। 'अश्विनी' शब्द यहाँ उक्तम तारुण्यसे युक्त पतिपत्नीका वाचक है और 'अश्व' शब्द वासीकरण निर शीर्षवान् पुरुषका विशेषतया वाचक है।

पंचम मंत्रमें धन कमानेके पश्चात् विवाह करनेका उपदेश तो विशेष ही मानन करने योग्य है। 'धीः, शीः, स्त्रीः' यह वैदिक क्रम प्रसिद्ध है।

### निष्कपट वर्ताय

स्त्रीपुरणका परस्पर वर्ताय, पतिपत्नीका परस्पर स्पष्टता निष्कपट भावसे और हृदयकी एकतासे ही होना चाहिये। तभी गृहस्थाधमो पुरुषको सुख प्राप्त हो सकता है। इस विषयमें शत्रुपे मंत्रका उपदेश विशेष महत्त्वपूर्ण है—

यदन्तर सदादां, यद्वाही तदन्तरम् । ( मं ४ )

'जो अंदर है वही बाहर है और जो बाहर है वही अंदर है।' यह निष्कपट स्पष्टताका परम उच्च आदर्श है। पति पत्नीके विषयमें तथा पत्नी पतिके विषयमें अंतर्बाह्य एक जैसा स्पष्टता करे, अंदर दूसरा और बाहर दूसरा भाव न

रोग । गृहस्थियोंके लिये व्यवहारका आदर्श यक्षा वेदने सुबोध शब्दोंद्वारा बताया है । वैदिक धर्मका पालन करनेवाले गृहस्थी इसका अवश्य भावना करें और अपने गृहस्थपनका सुख बढ़ावें ।

विश्वरूपाणा नन्यानां मनः गृभाय । ( म ४ )

‘ विविध रूपवाली कन्याओंका मन इसी प्रकार आकर्षित किया जावे । ’ कोई तरण किसी कन्याका गाय बालपीत करने तथा अन्य व्यवहार करनेके समय अपने अक्षर और बाह्यका बर्ताव सीधा और कपटरहित रखे । कपट भावोंका कन्याको घोषा देकर उसको प्रसन्नके फल कोई न करे । सरल निष्कपट भावसे ही अपनी धर्मपाली बनानेके लिय किसी कन्याका मन आकर्षित किया जाय । श्रीपुराणके व्यवहारके विषयमें इस मंत्रका यह उपदेश अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

### आदर्श पतिपत्नी

पुरुष मंत्रमें परस्पर निष्कपट व्यवहार करनेका उपदेश दिया है, उस उपदेशके पालन करनेसे आदर्श कुटुम्ब बन सकता है इसमें कोई संदेह ही नहीं है, इसका घोषासा नशुना द्वितीय मंत्रमें भी बताया है, इसमें पाँच उपदेश हैं—

१ संनयथ — सम्मार्गसे चलें और चलाओ । एक मतसे चलो । एक मतसे बसाए चलाओ । स्त्री और पुरुष एक दिक्से चले और परिवारको चलावें ।

२ स्रवक्षथ — मिलकर भाग बढ़ो । स्त्री और पुरुष एक विचारसे भागें बढ़ने तथा उत्तरी संपादन करनेका स्थान करें ।

३ भगाल स्र अगमत्— तब मिलकर ऐश्वर्य प्राप्त करें । मिलकर देना प्रयत्न करें कि त्रिमते विस्तृत पन प्राप्त हो ।

४ विचानि स्र— आपस विचारे मिले हुए हों ।

५ वतानि स्र— आपस कार्य भी मिलकर कर किये जाय ।

‘ अर्थात् पतिपत्नीमें वैर भाव या कठोर भाव न हो । इनमें यद्यत् एक एकताका भाव हो कि वे दोनों मिलकर एक ही शरीरके अणुवणुके प्रतीक हों । यद्यत् वे शब्द यद्यपि सामान्यतः पतिपत्नीके कर्तव्य वस्तुके लिये प्रयुक्त हुए हैं, तथापि सामान्यतः ऐश्वर्य प्रतिपादन परक भी इस मंत्रका भाव लिया जा सकता है और इस दृष्टिसे यह मंत्र सामाजिक ऐश्वर्य भावका उत्तम उपदेश दे रहा है ।

### भ्रमणका स्थान

पतिपत्नीको मिलकर भ्रमणके लिये जाना हो, तो किस प्रकारके स्थानमें जाय, इस बातका उपदेश द्वितीय मंत्रमें किया गया है—

यत् सुपर्णा विपक्षय ।

अनमीया विपक्षयः ॥

तत्र मे ह्य गच्छतात् ॥ ( म ३ )

‘ यद्यत् सुन्दर पक्षीके पक्षी शब्द करते हैं और जहाँ बीरोग पुरुष वार्तालाप करते हुए जाते हैं, वहाँ प्रेरणानुसार जाय । ’ ऐसे स्थानमें पतिपत्नी परस्परकी इच्छानुसार भयवा प्रेरणानुसार, परस्परकी रक्षिक अनुकूल भ्रमणके लिये जाय । जहाँ सुन्दर सुन्दर पक्षी मनुष्य शब्द कर रहे हैं और जहाँ बीरोग मनुष्य जानेक इच्छुक होते हैं वहाँ जाय । यह स्थानका वर्णन कितना मनोरम है ! उत्तम भावसे ही ऐसे वन भयवा उद्यान श्री पुराणको भ्रमणके लिये प्राप्त हो सकते हैं । यह वेदने आदर्श स्थान ही भ्रमणके लिये बताया है, यदि ऐसा स्थान हराणके परिवारके लिये न मिले तो इसी प्रकारका कोई अन्य स्थान भ्रमणके लिये पसन्द करें और निष्कपट भावसे उत्तम वार्तालाप करते हुए गमन करें ।

### स्त्रोके साथ बर्ताव

पुरुष स्त्रीके साथ कैसा बर्ताव करे और स्त्री भी पुरुषके साथ कैसा बर्ताव करे, इस विषयमें एक उत्तम उपमा प्रथम मंत्रमें दी है और इस विषयका उपदेश किया है । ‘ निम्न प्रकार वायुसे घास हिरापी जाती है । उसी प्रकार स्त्रीका मन हिलाता है । ’ ( म १ ) वायुके अंदर प्रचण्ड शक्ति है, वायु वेगसे यदि चलने लगे, तो बड़े बड़े वृक्ष भी टूट जाते हैं, परंतु वही वायु कोमल घासको तोड़ता नहीं, जवत् हिलाया ही है । इसा प्रकार वीर पुरुष, जो अपने कोपसे प्रचण्ड वायुको भी ठिक भिन्न कर सकता है, स्त्रियोंसे कोमलताका बर्ताव करे, कठोर व्यवहार कभी न करे ।

स्त्रिया भी अपने अक्षर वाक्यके समान कोमलता धारण करें और प्रचण्ड वायुके चलनेपर भी जैसे घास टूटती नहीं, उसी प्रकार वे भी अपने कुटुम्ब स्थानमें कभी विचलित न हों ।

यद्यत् इस उपमासे दोनोके उत्तम कर्तव्य बताया है । इस उपमाका विचार कितना अधिक किया जाय उतना अधिक बोध मिल सकता है । यह पूर्ण उपमा है, इतना योग्य उपमा अन्यत्र नहीं मिल सकती ।



# पतिपत्निका एकमत्

## कांड ७, सूक्त ३८

(ऋषि - अथर्व । देवता - वनस्पति ।)

इदं खनामि भेषुं मां पश्यमभिरोरुदम् । परापतो निवर्तनमायतः प्रतिनन्दनम् । ॥ १ ॥  
 येना निचक्र आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परिं । तेना नि कुर्वे त्वामहं यथा तेऽसानि सुमिषा ॥ २ ॥  
 प्रतीची सोममसि प्रतीच्यत सूर्यम् । प्रतीची विश्वान्देवान्तां त्वाच्छावदामसि ॥ ३ ॥  
 अहं वेदामि नेचं सभायामह त्वं वद । ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥ ४ ॥  
 यदि धासि तिरोजनं यदि वा नद्यस्तिरः । इयं ह मह्यं स्वामोर्षधिर्दृष्ट्वेव न्यानयत् ॥ ५ ॥

अर्थ— मैं ( इदं औपधि खनामि ) इस औपधि वनस्पतिको सोदती हूँ । यह औपधि पतिकी दृष्टिको ( मां—पश्यं ) मेरी ओर तिरालेपाला और ( अभिरोरुदं ) सब प्रकारके दुर्वर्तनसे रोकनेवाला, ( परापतः तिरानं ) दुर्मार्गमें दूर जानेवालेको भी वापस लानेवाला और ( आयतः प्रतिनन्दनं ) संघामें रहनेवालेका आनन्द बढ़ानेवाला है ॥ १ ॥

जिस ( आसुरी ) आसुरी नामक औपधिने ( येन देवेभ्यः परि इन्द्रं नि चक्रे ) जिस युगके कारण इन्द्रको त्रेबोंमें सबसे अधिक प्रभावशाली बनाया, ( तेन अहं त्वां निकुर्वे ) उससे मैं तुझे प्रभावशाली बनाती हूँ, ( यथा ते सुमिषा असानि ) जिससे मैं मेरी शिव धर्मपत्नी बनी रहूँ ॥ २ ॥

दू ( सोमं प्रतीची असि ) चन्द्रके संमुख रहती है, ( उत सूर्ये प्रतीची ) और सूर्यके संमुख रहती है, तथा ( विश्वान् देवान् प्रतीची ) सब देवोंके भी संमुख रहती है । ( तां त्या अच्छा वदामसि ) ऐसे मेरा मैं उत्तम पर्वण करती हूँ ॥ ३ ॥

( अहं वेदामि ) मैं बोलती हूँ, ( न इत् त्वं ) दू न बोल । ( त्वं सभायां अहं वद ) दू स्वामें निभयपूर्वक बोल । ( त्वं केवलः मम इत् असः ) दू केवल मेरा ही होकर रह, ( अन्यासां न चन कीर्तयाः ) मन्वोंका नाम तक न ले ॥ ४ ॥

( यदि वा तिरोजनं असि ) यदि तू जनोंसे दूर जंगलमें जाकर रहेगा अथवा ( यदि वा मह्यः तिरः ) यदि तू नदीके पार गया हुआ होगा, तो मैं ( इयं औपधिः ) यह औपधि ( त्वां ध्याया ) तुझे बांधकर ( मह्यं नि आनयत् ह ) मेरी पास ले लावेगी ॥ ५ ॥

भावार्थ— मैं इस औपधिको भूमिसे सोदती हूँ, इससे मेरी ओर ही पतिकी आंखें लगेगी, अर्थात् किसी अन्य स्थानमें नहीं जायेगी, सब प्रकारके दुर्वर्तनसे बचाव होगा, यदि दुर्मार्गमें उसका पांव पड़ा भी होगा, तो वह वापस आ जायेगा और वह संघामें रहकर अथवा आनन्द प्राप्त कर सकेगा ॥ १ ॥

इसका नाम आसुरी वनस्पति है । इसके प्रभावसे इन्द्र तथा देवोंमें विशेष प्रभावशाली होनेके कारण अहं वद तथा इत् वनस्पतिसे मैं अपने पतिको प्रभावित करती हूँ, जिससे मैं अपने पतिको शिवा बनकर रहूँ ॥ २ ॥

यह वनस्पति चन्द्रके अभिमुख होकर शान्तगुण प्राप्त करती है तथा सूर्यके संमुख रहकर तेजस्विता प्राप्त करती है और अन्य देवोंमें अन्त्यान्त्य दिव्य गुण लेगी है । इसीलिये इसकी प्रशंसा की जाती है ॥ ३ ॥

हे पति ! धारमें मैं बोलूंगी और मेरे भाषणका अनुमोदन तू कर । धारमें तू न बोल ! तू स्वामें एव बचनूय कर । पारतु धारमें जाकर तू केवल मेरा शिव पति बनकर मेरे अनुग्रह रह । ऐसा करनेसे तुझे किसी अन्य स्त्रीका नाम तक लेनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी ॥ ४ ॥

चाहे तू प्रारमें रह या वनमें जंगल आ अथवा चाहे तू नदीके उभय पार रह अथवा इस पार रह, यह औपधि ऐसी है कि शिवके प्रभावसे तू मेरी पास बंधा चला आयेगा और किसी दूसरे स्थानपर नहीं जायेगा ॥ ५ ॥

यह सूक्त स्पष्ट है इसलिए अधिक विवरण करनेकी आवश्यकता नहीं है। पठित लिये एक ही स्त्री धर्मपत्नी हो और पत्नीके लिये एक ही पुरुष हो, यह विवाहका उच्चतम भावार्थ है। इस सूक्ते पाठकों सम्मुख रखा है। कोई पुरुष अपनी विवाहित धर्मपत्नीको छोड़कर किसी भी दूसरी स्त्रीको अपेक्षा न करे और कोई स्त्री अपने विवाहित पतिको छोड़कर किसी दूसरे पुरुषकी कमी अपेक्षा न करे।

दोनों एक दूसरेके यशसे होकर परस्पर अत्यन्त प्रेमपूर्वक व्यवहार करें। इस सूक्ते 'आसुरी' वनस्पतिका उपयोग कहा है। इसका सेवन करनेसे मनुष्य पराक्रमी और उत्साही होता है, मनुष्यकी प्रवृत्ति धार्मावस्थाकी ओर नहीं होती। यह भीषण कौनसी है इसका पता नहीं चलता। यह बैद्योंके द्वारा अन्वेषणीय है।

## एक विचारसे रहना

कां. ६, सूक्त ७३

( कपि - अथर्व । देवता - सामवत्यम्, नामा देवता । )

यह यांतु बर्हेणः सोमो अर्षिर्वृहस्पतिर्वसुभिरेह यांतु ।

अस्य श्रियमुपसंपातु सर्वे उग्रस्य चेतुः संमनसः सजाताः ॥ १ ॥

यो वः शुभ्रो हृदयेऽनुन्तराकृतिर्या वो मनसि प्रविष्टा ।

तान्सीवयामि इविषां घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥ २ ॥

इहैव स्तु मापं याताभ्यस्मरत्वा परस्तादर्पथं वः कृणोतु ।

वास्तोस्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥ ३ ॥

अर्थ— वरुण, सोम, अग्नि और बृहस्पति ( इह आ यातु ) यहाँ आये और ( यत्तुभिः सह इह आ यातु ) वसुओंके साथ यहाँ आये। हे ( सजाताः ) उग्रम कुलमें उत्पन्न पुरुषों ! ( सर्वे संमनसः ) सब एक मनवाले होकर ( अस्य उग्रस्य चेतुः श्रियं उपसंपात ) इस दूर और चेतना देनेवालीकी शोभाको पडाओ ॥ १ ॥

( यः शुभ्रः यः हृदयेऽनुन्तः ) जो बल तुम्हारे हृदयमें है, ( या वाकृतिः यः मनसि प्रविष्टा ) जो सकल्य तुम्हारे मनमें प्रविष्ट हुआ है। ( तान् इविषां घृतेन सीवयामि ) उनके अन्न और घृतसे मैं जोड़ देता हूँ। हे ( सजाताः ) उग्रम कुलमें उत्पन्न पुरुषों ! ( यः रमतिः मयि अस्तु ) तुम्हारी प्रसन्नता मुझ नापक पर रहे ॥ २ ॥

( इह एव स्तु ) यहाँ पर रही, ( वास्तुर् मयि मा तप यात ) इससे ही मत जाओ। ( पूषा वः परस्तात् आपथं कृणोतु ) पूषा तुम्हारे लिये भागे जानेका मार्ग बंद करे। ( वास्तोस्पतिः वः अतु जोहवीतु ) वास्तुपति तुम्हें अनुकूलतासे बुलावे। हे ( सजाताः ) उग्रम कुलमें उत्पन्न मनुष्यों ! ( यः रमतिः मयि अस्तु ) आपका प्रेम मुझपर रहे ॥ ३ ॥

भावार्थ— सब ज्ञानी एक स्थानपर इकट्ठे हो। सब मनुष्य एक विचारमें रहकर अपने नापकका बल बढ़ावे ॥ १ ॥ जो लोगोंमें बल और विचार है, उसका पीरन योग्य उपायसे करना चाहिये। सब मनुष्य अपने नापकपर प्रसन्न रहें ॥ २ ॥

सब लोग एक स्थानपर स्थिर रहें। इधर बधर न भागे। भागनेका मार्ग उनके लिये सुका न रहे। इधर उगलने अनुकूलतासे एक कार्यमें रहे। इस प्रकार सब लोग प्रेमसे एक नापकके नीचे रहें ॥ ३ ॥

म्रैणांमृणोहि प्र मृणा रभस्व मृणिस्ते अस्तु पुरस्ता पुरस्तात् ।	
अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वाश्वः	॥ २ ॥
अयं मणिर्वरुणो विश्वमेपजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः ।	
स ते शत्रून्धरान्पादयाति पूर्वस्तान्दम्भुहि ये त्वा द्विपन्ति	॥ ३ ॥
अयं ते पुत्र्यां प्रिततां पौरुषेयादुधं भयात् । अयं त्वा सर्वस्मात्पापाद्दरुणो वारयिष्यते	॥ ४ ॥
वरुणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः । यस्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तम् देवा अवीवरन्	॥ ५ ॥
स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यति पापं ममः सति यति पावाद्दक्षुष्टाम् ।	
परिश्रवान्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरुणो वारयिष्यते	॥ ६ ॥
अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथौ भयात् । मृत्योरोजीवसो वषाद्दरुणो वारयिष्यते	॥ ७ ॥
यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरौ यत्र मे स्वा यदेनेशकृमा वयम् ।	
तसौ नो वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः	॥ ८ ॥

अर्थ— ( पमान् प्र शर्णाहि ) इनको माय, ( प्रमृण ) मसल दे, ( आ रभस्व ) गठ कर । वह ( मणिः ) मणि ( ते पुरस्तात् पुरस्तात् अस्तु ) वेरे अग्रभागमें जानेवाला भद्रेश्वर हो । ( देवाः वरणेन ) देवोंने इस वरणमणिले ही ( असुराणां श्वः श्वः अभ्याचारं ) असुरोंके प्रतिदिन होनेवाले अलाचारोंका ( अवारयन्त ) निवारण किया ॥ २ ॥

( अयं वरणो मणिः विश्वमेपजः ) यह वरणमणि सब मौषधियोंका सार है । ( सहस्राक्षः हरितः ) सहस्र भांखवाला, सब दुःखोंका हरण करनेवाला है और यह ( हिरण्ययः ) शुभमेंसे शुभ है ( सः ते शत्रून् अघटन् पादयाति ) वह वेरे सब शत्रुओंको नीचे गिराता है । ( ये त्वा द्विपन्ति ) जो तेरा द्वेष करते हैं ( तान् पूर्वः दम्भुहि ) उनको सबसे पहले दबा दे ॥ ३ ॥

( अयं वरणः ) यह वरणमणि ( ते विततां कृत्यां ) वेरे पातों और फैले हुए कृत्याप्रयोगको नष्ट कर ( वारयिष्यते ) मनुष्यकृत भयसे, ( सर्वस्मात् पापात् त्वा ) तथा सब प्रकारके पापोंसे तुझे ( वारयिष्यते ) हटावेगा ॥ ४ ॥

( अयं वरणः देवो वनस्पतिः ) यह वरणमणि वनस्पति देव ( वारयति ) दुःखनिवारक है । ( यः दक्षमः अस्मिन् आविष्टः ) जो शपथसे इसमें प्रविष्ट हुआ है, ( तं व देवा अवीवरन् ) उसका देव निवारण करते हैं ॥ ५ ॥

( स्वप्नं सुप्त्वा ) स्वप्नमें निद्राके समय ( यदि पापं पश्यति ) यदि वह पापके दृश्य देखता है उससे ( यति अशुष्टं सति प्रायत् ) और यदि शपथसे किसी शीघ्र तो उससे भी और ( शकुनेः परिश्रवात् ) शकुनिके अर्थसे हुए शब्दसे और ( पापवादात् ) निन्दार्थ शब्दोंसे ( अयं वरणो मणिः वारयिष्यते ) यह वरणमणि निवारण करता है ॥ ६ ॥

( अरात्याः निर्ऋत्याः ) शत्रुभय, विनाश, ( अभिचारात् अधो भयात् ) विनाशक प्रयत्न और कृमय भय और ( मृत्योः ओजीवसो वषात् ) मृत्युके भयात्क वयसे ( त्वा वरणः वारयिष्यते ) तुझे यह वरणमणि हटावेगा ॥ ७ ॥

( यत् मे माता ) जो मेरी माता, ( यत् मे पिता ) जो मेरा पिता, ( यत् मे भ्रातरः ) जो मेरे भाई, जो मेरे ( स्वाः ) भ्रातृजन तथा ( यत्र यत् एनः चकृमः ) हम सब जो पाप करते रहे हैं, ( ततः ) उस पापसे ( अयं वनस्पतिः देवः ) यह वनस्पति देव ( नः वारयिष्यते ) हमारा निवारण करेगा ॥ ८ ॥

वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सयन्धवः । असूते रजा अयंगुस्ते यन्वधर्मं तमः ॥ ९ ॥  
 अरिष्टोऽहमरिष्टगुरावुंमान्तसर्वपूरुषः । तं मायं वरुणो मणिः परि पातु दिशोर्दिशः ॥ १० ॥  
 अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः । स मे शत्रुन्वि वांधताभिन्द्रे दस्पृनिपासुरान् ॥ ११ ॥  
 इमं विमामि वरणमायुंमान्छुवशारदः । स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशुनोजघ मे दधत् ॥ १२ ॥  
 यथा वातो वनस्पतीन्बुक्षान्भनक्तयोर्जसा  
 एवा सपत्नान्मे मरुग्धि पूर्वीञ्जातां उतापरान्वरणस्त्वामि रक्षतु ॥ १३ ॥  
 यथा वातक्षामिधं बुक्षान्पसातो वनस्पतीन् ।  
 एवा सपत्नान्मे प्साहि पूर्वीञ्जातां उतापरान्वरणस्त्वामि रक्षतु ॥ १४ ॥  
 यथा वातेन पक्षीणा वृक्षाः श्रे न्यर्पिताः ।  
 एवा सपत्नान्स्त्वं मम प्र क्षिपीहि न्यर्पय पूर्वीञ्जातां उतापरान्वरणस्त्वामि रक्षतु ॥ १५ ॥  
 तांस्त्वं प्र च्छिन्द्व वरण पुरा दिशात्पुरायुषः । य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रद्विप्सवः ॥ १६ ॥

अर्थ— ( सयन्धवः मे भ्रातृव्याः ) अपने चापगोक साय मेरे शत्रुगण ( वरणेन प्रव्यथिताः ) वरणमणिके कारण पीडित होकर ( असूते रजः अपि अयुः ) अन्धकारमय-पुलित्वय स्थानको प्राप्त हों । ( ते अघर्मं तमः पन्तु ) वे निरुद्ध अन्धकारको प्राप्त हों ॥ ९ ॥

( अहं अरिष्टः ) मैं अविनाशी, ( अरिष्टगुः ) अविनाशी वस्तुगोकों प्राप्त करनेवाला ( आयुमान् सर्वपूरुषः ) दीर्घायु और समस्त पुरपाती बनोले युक्त हूँ । ( अयं वरणः मणिः ) यह वरणमणि ( दिशोर्दिशः मा परि पातु ) समस्त दिशाओंमें मेरी रक्षा करे ॥ १० ॥

( इन्द्रः दस्पृन् असुरान् इय ) जैसे इन्द्र असुरों और शत्रुओंको तार देता है, उसी प्रकार ( अयं वरणः राजा वनस्पतिः देवः ) यह वरणमणि राजा वनस्पति देव ( मे उरसि ) मेरी छातीमें विराजता हुआ ( सः मे शत्रुन् वि पाधतां ) मेरे शत्रुओंको पीटा देवे ॥ ११ ॥

( इमं वरणं विमामि ) इस वरणमणिको मैं धारण करता हूँ । जिससे मैं ( आयुमान् शतशारदः ) दीर्घायु और तातायु होऊंगा । ( सः मे राष्ट्रं च क्षत्रं च ) वह मेरे लिये राष्ट्र और क्षत्रियदलका तथा ( पशुन् ओजः च मे दधत् ) पशुओं तथा ओजको मेरे लिये धारण करे ॥ १२ ॥

( यथा वातः ) जैसे वायु ( ओजसा ) वेगसे ( बुक्षान् वनस्पतीन् ) वृक्षों और वनस्पतियोंको ( भनक्ति ) तोड़ देता है, ( यथा ) उसी तरह ( मे पूर्वाञ्जातान् ) मेरे अधिकृत बने हुए ( नृप अधरान् स्वयन्मान् ) और वृक्षों शत्रुओंको ( भक्षिन्ध ) तोड़ दे । ( वरणः त्वा अभिरक्षतु ) वरणमणि मेरी रक्षा करे ॥ १३ ॥

( यथा वातः अग्निः च ) जैसे वायु और अग्नि मिलकर ( वनस्पतीन् वृक्षान् ) वृक्षवनस्पतियोंको ( प्सातः ) गूढ कर देते हैं, ( यथा सपत्नान् मे स्पाहि ) उसी तरह मेरे शत्रुओंका नाश करे ॥ १४ ॥

( यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः ) जिस तरह वायुसे क्षीम वृक्ष ( न्यर्पिताः श्रेते ) गिराये हुए गेट जाते हैं, ( यथा त्वं मम सपत्नान् ) उसी तरह मेरे शत्रुओंको व वरणमणि ( न्यर्पय ) गिरा दे ॥ १५ ॥

हे ( वरण ) वरणमणि ! ( ये एनं पशुषु दिप्सन्ति ) जो इतने पशुओंमें पाव करते हैं तथा ( ये अस्य राष्ट्र-द्विप्सवः ) जो इसके राष्ट्रविधायक दण्ड हैं, हे वरणमणि ! तू ( पुरा आयुषः ) आयुके क्षय होनेके पूर्व और ( दिशात् पुरा ) निश्चित समयसे ही एवं ( त्वं तान् प्रच्छिन्द्वि ) व उनको ठिक ठिक कर ॥ १६ ॥

यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन्नेज्ज आहितम् ।

एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ १७ ॥

यथा यशश्चन्द्रमस्पादित्ये च नृचक्षति ।

एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ १८ ॥

यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिन्ज्जातवेदसि ।

एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ १९ ॥

यथा यशः कन्वापां यथास्मिन्संभृते रथे ।

एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २० ॥

यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।

एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २१ ॥

यथा यशोऽग्निहोत्रे वपट्कारे यथा यशः ।

एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २२ ॥

यथा यशो यजमाने यथास्मिन्पुत्र आहितम् ।

एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २३ ॥

यथा यशः प्रजापती यथास्मिन्परमेष्ठिनि ।

एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २४ ॥

यथा देवेश्वमृतं यथेषु सत्यमाहितम् ।

एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २५ ॥

अर्थ— (यथा सूर्यः अतिभाति) जैसे सूर्य प्रकाशित होता है, (यथा अस्मिन् तेजः आहितं) जैसे इसमें तेज है, (एवा वरणः मणिः) इसी तरह यह वरणमणि (मे कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु) मुझे कीर्ति और ऐश्वर्य देवे । (मा तेजसा समुक्षतु) मुझे तेजसं साथ संयुक्त करे, (मा यशसा समनक्तु) मुझे यशसे वशस्वी बनावे ॥ १७ ॥

(यथा यशः चन्द्रमसि नृचक्षति आदित्ये०) जैसा यश चन्द्रमा और दर्शनीय आदित्यमें है, (यथा यशः पृथिव्यां अस्मिन् जातवेदसि०) जैसा यश पृथिवी और जातवेद अभिमें है, (कन्वापां संभृते रथे०) जैसा यश कन्वाजमें और हुदके रथे सिद्ध हुए रथमें है, (सोमपीथे मधुपर्के०) जैसा यश सोमपीथे और मधुपर्कमें है, (अग्निहोत्रे वपट्कारे०) जैसा यश अग्निहोत्र और वपट्कारमें है, (यजमाने, यशे०) जैसा यश यजमानमें है और यशमें है (प्रजापती परमेष्ठिनि०) जैसा यश प्रजापति और परमेष्ठीमें है, उसी तरहका यश यह वरणमणि मुझे देवे और मुझे तेज और यशसे युक्त करे ॥ १८-२४ ॥

(यथा देवेषु अमृतं) जैसे देवोंमें अमृत है, (यथा एषु सत्यं आहितं) जैसे देवोंमें सत्य है, (एवा मे वरणो मणिः) इसी तरह मेरे लिये यह वरणमणि कीर्ति और ऐश्वर्य (नि यच्छतु) देवे और मुझे (तेजसा समुक्षतु) तेजसे युक्त करे और मुझे (यशसा मा समनक्तु) यशसे संयुक्त करे ॥ २५ ॥

इस सूक्तमें शत्रुनाश और भयने वशकी साभिहितिके लिये प्रार्थना है । इस सूक्तके सुबोध होनेसे अन्तिक स्वष्टिकरणकी कोई आवश्यकता नहीं है ।



## पत्नी पतिके लिये कृत्वा कर्माक्षे

कां. ७, सूक्त ३७

( ऋषिः— अथर्वी । देवता— वाम. । )

अभि स्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा । यथासौ मम केवलं नान्यासां कूर्त्विषाश्चन ॥ १ ॥

अर्थ— ( मम मनुजातेन दाससा ) अपने विवाहके साथ बनाये गइसे ( त्वा अभि दधामि ) तुझे मैं बांध देती हूँ । ( यथा केवलः मम असः ) जिसमे तू केवल मेरा ही पनि होकर रहे और ( नान्यासां न चन कीर्तयाः ) अन्य दिव्योंका नाम तक देनेवाला न हो ॥ १ ॥

श्री अपने हाथसे सूत कादे, धर्मा नरुवे, सूत निर्माण करे और अपनी कुशलतासे निर्माण किये हुए कपड़ेसे पतिके पहिरनेके वस्त्र तैयार करे । पत्नीके निर्माण किये सूतसे बने हुए वस्त्र पति पहने । सूत निर्माण करनेके समय पत्नी अपने आन्तरिक प्रेमके साथ सूत काते और पति भी ऐसा कपड़ा पहनना अपना वैभव माने । इस प्रकार परस्पर प्रेमका व्यञ्जना करनेसे पति भी दूसरी स्त्रीका नाम नहीं देगा और धर्मपत्नी भी दूसरे पुरुषका नाम नहीं देगी । इस प्रकार दोनों गृहस्थाश्रमका आनन्द प्राप्त करते हुए सुखी होंगे ।

## उत्कृष्टिकी दिशा

कांड ३, सूक्त २६

( ऋषिः— अथर्वी । देवता— अन्वयादय । )

येकुंसां स प्राच्यां दिशि हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निर्षवः ।

ते नो मृदत ते नोऽर्षि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ १ ॥

येकुंसां स दक्षिणायां दिश्यविष्पयो नाम देवास्तेषां वः काम इषवः ।

ते नो मृदत ते नोऽर्षि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ २ ॥

येकुंसां स प्रतीच्यां दिशि वैराजा नाम देवास्तेषां व आप इषवः ।

ते नो मृदत ते नोऽर्षि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ३ ॥

अर्थ— ( ये अस्यां प्राच्यां दिशि ) जो तुम इस पूर्व दिशामें ( हेतयः काम देवाः ) पञ्च नामवाले देव हो, ( तेषां वः ) उन तुम्हारा ( अग्निः इषवः ) अग्नि वाण है । ( ते नः मृदत ) वे तुम हमें सुखी करो, ( ते नः अधिभूत ) वे तुम हमें उपदेश करो । ( तेभ्यः वः नमः ) उन तुम्हारे लिये हमारा नमन होवे, ( तेभ्यः स्वाहा ) उन तुम्हारे लिये हम अपना समर्पण करते हैं ॥ १ ॥

जो तुम इस ( दक्षिणायां दिशि ) दक्षिण दिशामें ( अविष्पयो नाम देवाः ) रक्षा करनेकी इच्छा करनेवाले इस नामके जो देव हैं ( तेषां वः काम इषवः ) उन तुम्हारा काम वाण है । वे तुम हमें सुखी करो और हमें उपदेश करो, उन तुम्हारे लिये हमारा नमन होवे और तुम्हारे लिये हम अपना अर्पण करते हैं ॥ २ ॥

जो तुम इस ( प्रतीच्यां दिशि ) पश्चिम दिशामें ( वैराजा नाम देवाः ) विराज नामक देव हो, उन तुम्हारा ( आपः इषवः ) शक्त ही वाण है । वे तुम हमें सुखी करो और उपदेश करो । तुम्हारे लिये हमारा नमन और समर्पण होते ॥ ३ ॥

येदृश्यां स्थोदीच्यां दिशि प्रविष्यन्तो नाम देवास्तेषां वो वात इष्यः ।

ते नो मृदत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ४ ॥

येदृश्यां स्थ ध्रुवायां दिशि निलिम्पा नाम देवास्तेषां व औषधीरिष्यः ।

ते नो मृदत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ५ ॥

येदृश्यां स्थोर्ध्वायां दिशगर्वस्वन्तो नाम देवास्तेषां वो बृहस्पतिरिष्यः ।

ते नो मृदत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ॥ ६ ॥

अर्थ— जो तुम इस ( उदीच्यां दिशि ) उत्तर दिशामें ( प्रविष्यन्तः नाम देवाः ) वेध करनेवाले इस नामके देव हो, उन तुम्हारा ( वातः इष्यः ) वायु भाग है । वे तुम हमें सुखी करो और उपदेश करो । तुम्हारे लिये हमारा नमन और समर्पण होवे ॥ ४ ॥

जो तुम इस ( ध्रुवायां दिशि ) ध्रुव दिशामें ( निलिम्पा नाम देवाः ) निलिम्प नामक देव हो, उन तुम्हारा ( औषधीः इष्यः ) औषधी भाग है । वे तुम हमें सुखी करो और उपदेश करो । उन तुम्हारे लिये हमारा नमन और समर्पण होवे ॥ ५ ॥

जो तुम इस ( ऊर्ध्वायां दिशि ) ऊर्ध्व दिशामें ( अयस्वन्तः नाम देवाः ) रक्षक नामवाले देव हो, उन तुम्हारा ( बृहस्पतिः इष्यः ) ज्ञानी भाग है । वे तुम हमें सुखी करो और उपदेश करो । उन तुम्हारे लिये हमारा नमन और समर्पण होवे ॥ ६ ॥

भाषार्थ— पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ध्रुव ( पृथिवी ) और ऊर्ध्व ( आकाश ) ये छः दिशाएँ हैं, इन छः दिशाओंमें क्रमशः ( हेति-दास्तासु ) घस, रक्षाकी इच्छा करनेवाले स्वयंसेवक; ( वि-राज् ) राजरहित अवस्था अर्थात् प्रजासत्ता, वेधकता, छेप करनेवाले वैश और उपदेशक इनकी प्रधानता है । ये जनताको उपदेश करते हैं और उनकी रक्षा करते हैं, इसलिये जनता भी उनका साकार करती है और उनके लिये आत्मसमर्पण करती है ॥ १-६ ॥



## संमनस्य

### कां. ६, सूक्त ७४

( कृषि-शपथ । देवता-संमनस्पम्, नाना देवता, पिशाचा । )

सं वः पृथ्यन्तां तन्वं १ः सं मनांसि समुं ब्रूता । सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्मगः सं वो अजीगमत् ॥ १ ॥

संज्ञपनं वो मनसोऽथो संज्ञपनं बृदः । अथो भगस्य चच्छान्तं तेन संज्ञपयामि वः ॥ २ ॥

अर्थ— ( वः तन्वः सं पृथ्यन्तां ) तुम्हारे शरीर मिले, ( मनांसि सं ) तुम्हारे मन मिले और ( उ ब्रूता सं ) तुम्हारे कर्म भी मिलजुल कर हों । ( अयं ब्रह्मणस्पतिः वः सं ) यह जानबलि तुम्हें मिलाकर रखे । ( भगः वः सं अजीगमत् ) माग्य देनेवाला भी तुम सबको मिलाये रखे ॥ १ ॥

( वः मनसः संज्ञपनं ) तुम्हारे मनको मिलकर रहनेका अभ्यास हो ( अथो बृदः संज्ञपनं ) और हृदयको भी मिलनेका अभ्यास हो ( अथो भगस्य यत् ध्यान्तं ) और माग्यदानका जो परिश्रम है ( तेन वः संज्ञपयामि ) उससे तुम सबको मिलकर रहनेका अभ्यास हो ॥ २ ॥

भाषार्थ— तुम्हारे शरीर, मन और कर्म सबके साथ एकते अर्थात् समतासे युक्त हों । तुम्हें ज्ञान देनेवाला एकताका ज्ञान दे तथा तुम्हारा भाग बनानेवाला तुम्हें मिलाने रखे ॥ १ ॥

तुम्हारे मन और हृदय एक हों । माग्य प्राप्त करनेके लिये जो परिश्रम करने पड़ते हैं, उन कर्मोंको करते हुए तुम आपसमें मिलकर रहो ॥ २ ॥

यथादित्या वसुभिः संवसुवुर्मुकृद्विरुद्रा अहणीयमानाः ।

एवा त्रिणामन्त्रहणीयमान इमान्जनान्त्संभनसम्कृषीद्

॥ ३ ॥

अर्थ— ( यथा अहणीयमानाः उभाः आदित्याः ) जैसे किसीसे न दबनेवाले उग्र आदित्य ( वसुभिः मरुद्भिः संवसुवुः ) वसुओं और मरुतोंसे मिलकर रहे, ( एवा ) उसी प्रकार है ( त्रिणामन् ) तीन नामवाले ! ( अहणीयमानाः ) न दबता हुआ ( इह इमान् जनान्त्सं भनसः कृषी ) यहाँ इन लोगोंको एक विचारसे युक्त कर ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार दूर आदित्य, वसुओं और मरुतोंसे मिलकर रहते हैं, उसी प्रकार तुम भी स्वयं मिलकर रहो और इन सब जनोंको मिलाकर रहो ॥ ३ ॥

### एकताका बल

इस सूक्तसे मिलजुल कर रहने और अपनी एकतासे अपनी उन्नति लायक करनेका उपदेश है। इन्द्र, मन, विचार, संकल्प और कर्म आदि सबमें समता और एकता चाहिये। किसीमें विपरीत भाव हुआ तो भिद्यता होगी और संयमनाब नष्ट होगा। इस जगत्में आदित्य, वसु और रुद्र वस्तुतः भिन्न होनेपर भी जगत्के कार्योंमें मिलजुलकर लगे रहते हैं। इसी प्रकार मनुष्य रंगरूप और जातिकी भिद्यता रहनेपर भी राष्ट्रकार्य करनेके लिये सब मिल जायें और एक होकर राष्ट्रकार्य करें।

## सौभाग्य-वर्धन-सूक्त

कां. १, सूक्त १८

( अर्थः— प्रविष्टोदाः । देवता— वीतायकं सौभाग्यम् । )

निरुह्यं ललाम्यं । निररातिं सुवामसि ।

अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरारतिं नयामसि

॥ १ ॥

निरराणि सविता सविपक् पदोर्निर्हिस्तपोर्वरुणो पित्रो अर्थमा ।

निरसम्यमनुमती रराणा प्रेमां देवा असाविपुः सौभगाय

॥ २ ॥

अर्थ— ( ललाम्यं ) सिरपर होनेवाले ( लह्यं ) घुंटे धनुको ( निः ) कि-रूपकासे दूर करते हैं; तथा ( अरारतिं ) कंगूती आदि ( निःसुवामसि ) विशेष पूर करते हैं ( अथ या भद्रा ) और जो कल्याणकारक सिद्ध हैं ( तानि नः प्रजायै ) उन्हें सब अपनी संवातके लिये हम प्राप्त करते हैं और ( अरारतिं ) कंगूती आदिको ( नयामसि ) दूर भगते हैं ॥ १ ॥

सविता, वरुण, मित्र और अर्यमा ( पदोः हस्तयोः ) पावों और हाथोंकी ( अररणिं ) पीपत्तो ( निः निः सविपक् ) दूर करें। ( रराणा अनुमतिः ) दानशील अनुमतिसे ( असम्यं निः ) हमारे लिये विशेष प्रेरणा की है। तथा ( देवाः ) देवोंने ( इमां ) इस शीको ( सौभगाय ) सौभाग्यके लिये ( प्र असाविपुः ) प्रेरित किया है ॥ २ ॥

भावार्थ— सिरपर तथा सरीसृप जो कुलक्षण हैं उनको दूर करना चाहिये तथा अंग-अरगमें कंगूती आदि दुर्गुणोंको भी दूर करना चाहिये और जो सुलक्षण हैं उनको अपने तथा अपने संतानोंके पास स्थिर करना अथवा बढ़ाना चाहिये। तथा कंगूती आदि मनुके घुंटे भागोंको हटाना चाहिये ॥ १ ॥

सविता, वरुण, मित्र, अर्यमा, अनुमति आदि सब देव और देवता हाथों और पावोंकी पीपत्तो दूर करें, इस विषयमें वे हमें उपदेश हैं। क्योंकि देवोंने स्त्री और पुरुषको उन्नत भाग्यके लिये ही बनाया है ॥ २ ॥

१२ ( अथर्व. भा. ३ गृ. दिग्दी )

यत् आत्मनि तुन्वा घोरमस्ति यद्वा केरोषु प्रतिचक्षणे वा ।

सर्वं तद्वाचार्यं हन्मो यत् देवस्त्वा सविता संदयतु ।

॥ ३ ॥

रिश्यपदीं वृषदतीं गोपेषां विंधामासुत । विलीळ्यं ललाम्यं वा अस्मन्नाशयामसि

॥ ४ ॥

अर्थ—(यत् ते आत्मानि) जो तेरी आत्मानें तथा (तन्वा) शरीरमें (या यत् केरोषु) अथवा जो केरोमें (वा प्रतिचक्षणे) अथवा जो दृष्टिमें (घोर अस्ति) भयानक चिन्ह है (तत् सर्वं) यह सब (यय याथा हन्म) हम वाणोते हया दते हैं। (सविता देव) सविता देव (त्वा सुदयतु) तुझे सिद्ध करे अर्थात् परिष्कृत करनेसे ॥ ३ ॥

(रिश्यपदीं) हरण समान पाववाली, (वृषदतीं) बैल समान दाढ़वाली, (गोपेषां) गायक समान चलने वाली, (विंधमा) विरुद्ध शब्द बोलनेवाली, जिसका शब्द कठोर हो पेंली की (उत ललाम्य विलीळ्य) और सिरपरका कुलक्षण यह सब हम (अस्यत् नाशयामसि) अपनेसे दूर करते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—सुदारी आत्मा अथवा मनस शरीरमें, कशमें तथा दृष्टिमें जो कुछ कुलक्षण हा, जो कुछ भी दुर्गुण हों उनको हम अपनेसे दृष्टाते हैं। परमेश्वर तुम्हें उन्नत लक्षणोंस युक्त बनावे ॥ ३ ॥

हरिणक समान पांव, बैल समान दाढ़, गायक समान चलनेकी भांति, कठोर डुरी भावात तथा सिरपरक अल्प कुलक्षण आदि सब हमसे दूर हो ॥ ४ ॥

## सौभाग्य-वर्धन-सूक्त

### कुलक्षण और सुलक्षण

इस सूक्तमें शरीर, मन, बुद्धि और भावना आदिक भी जो कुलक्षण हो उनका दूर करने तथा अपने भावको पूर्ण सुलक्षणयुक्त बनानेका उपदेश किया है। इस सूक्तमें वर्णित कुलक्षण ये हैं—

(१) ललाम्य लक्ष्म्य—सिरपरका लक्षण, कपाल जोटा होना, माथेपर घाल होने, सुदिहीन दंतैर्न आदि कुलक्षण। (मंत्र १)

(२) ललाम्य विलीळ्य—सिरपर वालोंके गुच्छे रहना और उससे सिरकी शोभाका विघाट आदि कुलक्षण। (मंत्र ४)

(३) रिश्यपदी—हरिणक समान कृत पाव। (मंत्र ४)

(४) वृषदती—बैलके समान बड़े दाढ़। (मंत्र ४)

(५) गोपेषा—गायक समान चलना। (मंत्र ४)

(६) विंधमा—कानोंको डुरा लगनेवाली भावात, जिसकी गीटी मंडल आवारा नई। (मंत्र ४)

ये ऋषि (३-६) चार कुलक्षण छिपेके छिपे बहुत पुते हैं अर्थात् छिपोंमें ये न हों। वर्ष पसेद करनेसे समस्त इन लक्षणोंका विचार करना योग्य है।

(७) केरोषु घोर—घालोंमें झूला अथवा भयानकता दिखाई देना अर्थात् बालोंके कारण मुल झूला दीखना। (मंत्र ३)

(८) प्रतिचक्षणे क्रूर—नेत्रोंमें झूला, भयानक नेत्र, भयानक दृष्टि। (मंत्र ३)

(९) तन्वा क्रूर—शरीरमें भयानकता, अर्थात् शरीरक अवयवके टेढ़ामेढा होनेके कारण भयानक दृश्य। (मंत्र ३)

(१०) आत्मनि क्रूर—मन, वैद्वि, चित्त, आत्मानें झूलाके भाव होना। (मंत्र ३)

(११) श-रार्ति—कनसी, उदारभावका अभाव। (मंत्र १)

(१२) पदो हस्तयो अ-रपि—पाव और हाथोंकी पीटा अथवा कुछ विकार। (मंत्र २)

इन कुलक्षणोंके दूरकरना और इनके विरोधी सुलक्षणोंको अपनेमें यशाना हरएकका कर्तव्य है। इन कुलक्षणोंका विचार करनेसे सुलक्षणोंका भी ज्ञान हो सकता है। जिससे शरीर सुदीर्घ दिखाई देता है वे शरीरके सुलक्षण समझने चाहिये। इसी प्रकार इंद्रियो, मन, बुद्धि, वाचा आदिक भी सुलक्षण हैं। इन सबका निश्चित ज्ञान प्राप्त करके अपनेमेंसे कुलक्षण दूर करना और सुलक्षण अपनेमें यशाना हरएकका कर्तव्य है।

### वाणीसे कुलक्षणोंकी इटाना

मंत्र ३ में 'सद्य तद्वाचाप हन्मौ वय ।' अर्थात् हम वे सब कुलक्षण वाणीसे दूर करते हैं, जयवा वाणीसे इन कुलक्षणोंका नाश करते हैं, कहा है, तथा साथ साथ यह भी कहा है कि 'वैयस्वत्या सविता रुद्रयत्तु' सविता देव तुम्हें पूर्णसुरक्षणयुक्त बनायें, परमेश्वरकी कृपासे मनुष्य सुलक्षणोंसे युक्त हो सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं परंतु वाणीसे कुलक्षणोंको दूर करनेके विषयमें बहुत लोगोंकी संदेह होना संभव है, अतः इस विषयमें कुछ स्पष्टीकरणकी आवश्यकता है । वेदमें यह विषय कई सूक्तोंमें आया है ।

### वाणीसे प्रेरणा

वाणीसे अपन आपकी अथवा दूसरोंकी भी प्रेरणा या सूचना देकर रोग दूर करना, तथा मन आदिके कुलक्षण दूर करना संभवनीय है, यह बात वेदमें अनेक स्थानोंपर आई है । यह सूचना इस प्रकार दी जाती है— 'मेरे अदर

यह कुलक्षण है, यह केवल योही देर रहनेवाला है, यह चिरकाल नहीं रहेगा, यह कम हो रहा है, अतिशीघ्र कम होगा । मेरे अदर सुलक्षण बढ़ रहे हैं, मैं सुलक्षणोंसे युक्त होऊँगा । मैं निर्दोष बन रहा हूँ । मैं निरोगी रहूँगा । मैं दोषोंकी हटाया हूँ और अपनेमें गुणोंकी विकसित करता हूँ ।'

इत्यादि रीतिले अनेक प्रकारकी सूचनयें मनको देने और उनका प्रतिबिम्ब मनके अदर स्थिर रखनेसे दृष्ट सिद्ध होती है । वेदका यह मानसशास्त्र सिद्धांत हरएक विचार करने योग्य है । 'मैं हीन हूँ, दीन हूँ' आदि विचार जो लोग स्वातः कल थोकेते हैं, वे विचार मनमें प्रतिबिम्बित होनेसे मनपर कुलस्कार होनेके कारण हमारी गिरावटके कारण हो रहे हैं । इसलिये शुद्ध वाणीका उच्चारण ही हमेशा करना चाहिये, कभी भी अशुद्ध गिरे हुए भावोंसे युक्त वाक्योंका उच्चारण नहीं करना चाहिये । अतीव ही शुद्ध प्रेरणाके विषयमें साक्षात् उपदेश देनेवाले कई सूक्त जागे आयेवाले हैं, इस लिये इस विषयमें यह इतना ही लेख पर्याप्त है । अस्तु,

इस प्रकार शुद्ध वाणीद्वारा और परमेश्वर भक्तिद्वारा अपने कुलक्षणोंको दूर करना और अपने अदर सुलक्षणोंको बढ़ाना हरएक मनुष्यको योग्य है ।

### हामों और पावोंका दर्द

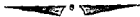
द्वितीय मंत्रमें कहा है कि सविता ( सूर्य ), वरुण ( जल ), मित्र ( प्राणवायु ), अर्यमा ( आगका पौधा ) ये हमों और पावोंके दर्दको तथा शरीरके दर्दको दूर करें । सूर्यप्रकाश, समुद्र आदिका जल, शुद्ध वायु, आगके पत्तोंका सेक आदिले बहुतसे रोग दूर हो जाते हैं । इस विषयमें इससे पूर्व बहुत कुछ कहा गया है और जगें भी यह विषय धारवार जाने वाला है । आरोग्य तो इनसे ही प्राप्त होता है ।

### सौभाग्यके लिये

'इमा देवा असाविषु सोभगय ।' इसको देखते सौभाग्यके लिये बनाया है । विशेष करके सूर्यके उदयसे यह मंत्रभंग्य है, परंतु सबके लिये भी यह माना जा सकता है । अर्थात् मनुष्य मात्र स्त्री ही या पुरुष ही वह अपना कल्याण साधन करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है और यह यदि परमेश्वरकी भक्ति करेगा तथा शुद्ध वाणीकी सूचनसे अपने मनको प्रभावित करेगा तो अवश्यमेव सौभाग्यका भागी बनेगा । हरएक मनुष्य इस वैदिक धर्मके सिद्धांतको मनमें स्थिर करे । अपनी उन्नतिके लिये अपना हरएकके पुरुषार्थपर भव लक्षित है । यदि अपनी अन्नतासे दुई है तो निश्चय जानना चाहिये कि पुरुषार्थमें शुद्धि हुई है ।

### सन्तानका कल्याण

जब ही अपनेमें कुछ कुलक्षण हो, तथापि अपनी सत्ता नोमें सुलक्षण ही आये ( या भद्रा तानि न- प्रजापते ) यह प्रथम मंत्रका उपदेश हरएक गृहस्थीको ध्यानमें धरना चाहिये । अपनी सत्ता निर्दोष और सुलक्षणसे तथा सद्गुणोंसे युक्त बने यह भाव यदि हरएक गृहस्थीमें रहेगा, तो शक्ति दुर्लभमें मनुष्यको सुखरूप होता अपना और राष्ट्र प्रति दिन उन्नतिकी सीढ़ीपर चड़ेगा । यह उपदेश हरएक प्रकारसे कल्याण करनेवाला है, इसलिये इसको कोई गृहस्थी न भूले ।



## सौभाग्य-कर्मणि

कां. ६, सू. १३९

(ऋषिः-अथर्षा । देवता-वनस्पतिः ।)

न्यस्तिका हेरोहिथ सुभगंकरणी मम ।

शुभं तथे प्रतानास्त्रयैश्चिञ्चिताः । तथा सहस्रपुण्या हृदयं शोषयामि ते ॥ १ ॥

शुष्यंतु मयि ते हृदयमथो शुष्यत्वास्पृम् । अथो नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥ २ ॥

संवननी समुपप्ला यभु कल्पानि सं जुद । अमूं च मां न सं जुद समानं हृदयं कृधि ॥ ३ ॥

यथोदुक्कमर्षपुषोऽपशुष्यस्यास्पृम् । एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥ ४ ॥

यथा नकुलो विच्छिद्य संदघात्यहिं पुनः । एवा कामस्य विच्छिद्यं सं धेहि वीर्यावति ॥ ५ ॥

अर्थ— (मम सुभगंकरणी न्यस्तिका हेरोहिथ) मेरा सौभाग्य बढ़ानेवाली और दोष दूर करनेवाली यह औषधी उत्पन्न हुई है । (तथे शतं प्रतानाः) तेरो सी प्रकारकी शाखाएँ हैं और (त्रयैश्चिञ्चिताः) तैसीत उपजावारी हैं । (तथा सहस्रपुण्या) उस सहस्रपुणी औरफिले (ते हृदयं शोषयामि) मेरा हृदय शुष्क करना हूँ ॥ १ ॥

(ते हृदयं मयि शुष्यंतु) मेरा हृदय मेरे विषयमें विचार करके सूख जावे (अथो आस्यं शुष्यंतु) और शुष्क भी सूख जावे । (अथो मां कामेन नि शुष्य) मुझे भी कामसे शुष्क करके द (अथो शुष्कास्या चर) शुष्क सुखवाली होकर चले ॥ २ ॥

हे (यभु कल्पानि) पोषण करनेवाली भयवा पीले रंगवाली और कल्पान करनेवाली ! (संवननी समुपप्ला) सेवन करने योग्य और उत्साह बढ़ानेवाली है । द (अमूं संजुद) उसको प्रेरित कर, (मां च संजुद) मुझे प्रेरित कर । हमारा (हृदयं समानं कृधि) हृदय समान कर ॥ ३ ॥

(यथा उदकं अपपुषः) जिसप्रकार जल न पीनेवालेका (आस्यं शुष्यति) सुख सूख जाता है, (एवा मां कामेन नि शुष्य) इस प्रकार मुझे कामसे सुखकर द स्वयं भी (अथो शुष्कास्या चर) सूखे सुखवाली होकर चले ॥ ४ ॥

(यथा नकुलः बहि विच्छिद्य) जैसे नेमला साँवको काटकर (पुनः संदघाति) फिर जोड़ देता है, (एवा वीर्यावति) इस प्रकार हे वीर्यावती औषधि ! (कामस्य विच्छिद्यं) कामके दूटे हुए संबंधको (सं धेहि) जोड़ दे ॥ ५ ॥

भाष्यार्थ— सहस्रपुणी औषधि सौभाग्य बढ़ानेवाली और दोष दूर करनेवाली है । इसकी सिकड़ें शाखाएँ होती हैं । इससे शोषुरय वीर्यावत होते हैं और परस्परके विषयको सह नहीं सकवे अर्थात् विषय होनेपर सुख जाते हैं ॥ १-२ ॥

यह वनस्पति पुष्टि करनेवाली और सब प्रकार मानंद देनेवाली है, उत्साह भी बढ़ाती है, इसलिये गृहस्थी शोषुरयोंके द्वारा सेवन करने योग्य है । शोषुरयोंको परस्पर इच्छाकी प्रेरणा इसके सेवनसे होती है और दोनोंका हृदय समानतया परस्परके प्रति आकर्षित होता है ॥ ३ ॥

जिस प्रकार जल न मिलनेसे समुष्ण सूख जाता है, इस प्रकार कामसे शोषुरय परस्पर प्राणिकी इच्छासे सूखते हैं ॥ ४ ॥

जिस प्रकार नेमला साँवको काटकर पुनः जोड़ देता है, उसी प्रकार विषुक्त शोषुरयोंको पुनः जोड़ देना योग्य है ॥ ५ ॥

### सहस्रपर्णी औषधि

इस सूक्तमें सहस्रपर्णी औषधीका वर्णन है। यह औषधी स्त्री पुरुषोंको परस्पर संबंध करनेके योग्य पुष्ट और कीर्तमान बना देती है। इसके सेवन करनेपर स्त्रीपुरुषोंको परस्परका विमोह रहन करना असम्भव हो जाता है। निर्वीर्य पुरुष भी बड़ा उत्साहलसक हो जाता है। इस प्रकारकी यह सहस्रपर्णी औषधी कीयसी वनस्पति है, इसका वना भाजकहके वैद्यकदर्पणमें नहीं चलता। वैद्योंकी इस विषयकी खोज करना चाहिये।

### नेवलेका सांपको काटना और जोड़ना

इस सूक्तके पंचम मंत्रमें 'नेवला सांपको काटना है और उसको फिर जोड़ देना है' (सकुल, अर्हि विच्छिद्यथ पुनः संदधाति) ऐसा कहा है। यह विश्वास प्रायः सर्वत्र भारतवर्षमें है। जयबैद्वर्मों भी यहाँ यही बात कही है। अतः इस विषयकी खोज करनी चाहिये। यदि इस प्रकारकी कोई वनस्पति मिली तो यही लाभकारी सिद्ध हो सकती है।

## सौभाग्यके लिये ब्रह्मर्षि

कां. ७, सू. १६

( ऋषि - भृगु । देवता - सविता । )

पूहस्पते सर्वितर्धर्षयेनं ज्योतयेनं महते सौमगाय ।

संशितं चित्संतरं सं शिक्षाधि विश्वं एनमनुं मदन्तु देवाः ।

॥ १ ॥

अर्थ— हे (पूहस्पते सवित) जलपते, हे उत्पादक देव! (एनं वर्धय) इसको बढ़ा, (एन महते सौमगाय ज्योतय) इसको बढ़े सौभाग्यके लिये प्रकाशित कर। (संशितं सं-तरं चित् संशिक्षाधि) पहिले ही शिक्षण बुद्धिवालेकी अधिक उत्तम बनानेके लिये शिक्षाके पुत्र बन। (विश्वे देवा, एनं अनु मदन्तु) तब देवताओंका इसका अनुमोदन करें ॥ १ ॥

भावार्थ— हे ज्ञानी देव! हम सब मनुष्योंको बढ़ानो, हमें बड़ा सुखसे प्राप्त हो, इसलिये अपना प्रकाश धर्यन करो। हममें जो पहिलेसे तेजस्वी लोग हैं, उनको अधिक तेजस्वी बनानेके लिये उत्तम शिक्षा प्राप्त होवे और देवी शक्तिपूर्वी सहायता सबको प्राप्त होवे ॥ १ ॥

पृथ्वी, आप, तेज, वायु, सूर्य, चरसक्तिसादि देवताओंका सहायता हमें उत्तम प्रकारसे प्राप्त हो और उनकी शक्ति प्राप्त करके हम अपनी उत्कृष्टता साधन करें और देशधर्यसे भागी हम बन। ईंधन ऐसी परिस्थितिमें हमें रखे कि, महां हमें उत्कृष्टि करनेके कार्यमें किमोका विरोध न होवे और हम अत्यंत उत्कृष्टता प्राप्त कर सकें।

## दांतोरीकी पीडा

कां. ६, सू. १४०

( ऋषि - भृगवः । देवता - ब्रह्मणस्पति, इन्द्रा । )

यौ वप्राधावर्वरुदो जिधस्तसः पितर मातरं च । यौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते द्विवौ कृणु जातयेदः ॥ १ ॥

अर्थ— (यो व्याघ्रो अयंरुदो) जो बाघर समान बड़े हुए हो जात (मातरं पितरं च जिधस्तसः) माता और पिताको हुआ देते हैं, हे ब्रह्मणस्पते! हे (जातयेदः) मानी! (तौ दन्तौ शिष्यौ पृणु) उन दोनों दांतोंको कटवाने करनेवाला कर ॥ १ ॥

व्रीहिमेत्तं यवमत्तमथो मापमथो तिलम् ।

एष वां मागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥२॥

उपहृती सयुजौ स्योनीं दन्तौ सुमङ्गलौ ।

अन्यत्र वां घोरं तन्व्यः परेतु दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥३॥

अर्थ— ( व्रीहि अत्तं यवं अत्तं ) चावल खाओ, जौ खाओ, ( अथो मापं अथो तिलं ) उषद और तिल खाओ । ( एष वां भागः रत्नधेयाय निहितः ) यह तुम्हारा भाग रत्नधारणके लिये निश्चित हुआ है । हे दांतो ! ( पितरं मातरं च मा हिंसिष्टं ) माता पिताको बच न दो ॥ २ ॥

( सयुजौ स्योनीं सुमंगलौ दन्तौ उपहृती ) साथ साथ जुड़े हुए मुखदायी मंगलकारी दोनो दांत प्रकंशनीय है । ( वां तन्व्यः घोरं अन्यत्र परेतु ) तुम्हारे करीरका बहोर दुःख दूर हो । हे ( दन्तौ ) दांतो ! ( पितरं मातरं मा हिंसिष्टं ) माता पिताको बच न दो ॥ ३ ॥

बालकके जिस समय दांत आते हैं, उस समय उनको बड़े कष्ट होते हैं, उनमें भी दो दांत ऐसे हैं कि जिनके कारण बालकको बड़ा ही कष्ट होता है । बालकको कष्ट दूर कर उनके मातापिता भी बड़े दुःखी होते हैं ।

इस समय बालकको चादर, जौ, उखर और तिल खानेके लिए देना चाहिये । जिस रीतिसे पशु हो ज्ञाप उस रीतिसे बालकी प्रकार अन्न खानेके लिए देना चाहिये । इसके खानेके दांत सुख्य होते हैं और रक्तके समान मुखर होते हैं ।

बैद्यको सौघना चाहिये कि, यह पशु बालकके किस प्रकार करता चाहिये । हर एक बालकके दांतोंका कष्ट होता है, यदि यह पशु दितकारक सिद्ध हुआ, तो हर एक गृहस्थी इससे लाभ उठा सकता है ।

## केशक्षर्षक औषधि

कां. ६, सू. १३६

( ऋषि - वीतहृष्यः । देवता - नवस्वति. । )

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योपधे । तां त्वा नितत्ति केश्यभ्यो दंष्ट्रणाय खनामसि ॥ १ ॥

दंष्टं प्रतान्जनयाजाताञ्जातान् वर्षीपिसस्कृषि । ॥ २ ॥

यस्तु केशोऽवपद्यते समूलो यत्र वृक्षते । इदं तं विश्वभेषज्यामि विञ्चामि वीरुधां ॥ ३ ॥

अर्थ— हे औषधे ! तू ( देवी देव्यां पृथिव्यां अधि जाता ) दिव्य औषधी पृथिवी क्षेत्रमें उत्पन्न हुई है । हे ( नितत्ति ) नीचे फैलनेवाली औषधि ! ( तां त्वा केश्यभ्यः दंष्ट्रणाय खनामसि ) उस तुम्हें औषधिको केशोंको सुख्य करनेके लिये खोदते हैं ॥ १ ॥

( प्रतान्जं दंष्टं ) पुराने केशोंको दूर कर, ( अजातान् जनय ) जहाँ बाल उत्पन्न नहीं होते वहाँ उत्पन्न कर ( जातान् उचर्षीपिसः कृषि ) और जो उपपन्न हुए उनको रूके कर ॥ २ ॥

( यः ते केशः अवपद्यते ) जो वेरा केश गिर जाता है ( यः च समूलः वृक्षते ) और जो मूल सहित उत्पन्न जाता है, ( इदं तं विश्वभेषज्या वीरुधा अभिपिञ्चामि ) उस केशको केशवोषधी दूर करनेवाली रसाके रससे मैं भिगा देता हूँ ॥ ३ ॥

भाषार्थ— नितत्ती नामक औषधी पृथ्वीपर उगती है, उसके प्रयोगसे केश सुख्य होते हैं । जो केश पुराने हों, टूटते हों, गिर जाते हों, इस औषधीके रसके लगानेसे वह सब दोष दूर हो जाता है और बाल सुख्य हो जाते हैं । यदि बाल उगते नहीं यथा इस औषधिको रस लगानेसे बाल आते हैं और जहाँ आते हैं वहाँके बाल बड़े रूके हो जाते हैं ॥ १-३ ॥

इस नितत्ती नामक औषधीको पेशवर्षक कहा है, परंतु यह नीचता औषधी है, इसका पता नहीं चलता । वैद्यको चाहिये कि वे इस औषधिकी खोज करें और प्रकाशित करें ।



## केशवर्धक औषधि

कां. ६, सू. १३७

(श्रुति.— वीतहृद्यः । देवता— वनस्पतिः ।)

यां जमदग्निरखनदुहित्रे केशवर्धनीम् । तां वीतहृद्य आभरदसितस्य गृहेभ्यः ॥ १ ॥

अभीक्षुन्ता मेयां आसन्व्यामेनानुमेयाः । केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्वास्ते असिताः परिं ॥ २ ॥

दृढं मूलमात्रं यच्छ वि मध्यं यामपौषधे । केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्वास्ते असिताः परिं ॥ ३ ॥

अर्थ— (जमदग्निः यां केशवर्धनीं दुहित्रे अखनत्) जमदग्निने जिस केशवर्धक औषधिको अपनी कन्याके लिए छोड़ा था, (तां वीतहृद्यः असितस्य गृहेभ्यः आभरत्) उसको वीतहृद्यने असितरे घरके लिये भर लिया ॥ १ ॥

जो (अभीक्षुन्ता मेयां आसन्) एक अगुलिकोसे माते जले थे वे (व्यामेन अनुमेयाः) हाथोंसे मापने योग्य होगये । (ते शीर्ष्वाः परिं) तेरे सिर पर (असिताः केशाः) काले केश (नडाः इव वर्धन्तां) घासके समान बढ़ें ॥ २ ॥

हे औषधि ! (मूलं दृढं) केशका मूल दृढ कर, (अत्रं वि यच्छ) अन्नभासको दौक कर और (मध्यं यामय) मध्यभागको भी दृढ कर । (ते शीर्ष्वाः परिं) तेरे सिरके ऊपर (असिताः केशाः नडाः इव वर्धन्तां) काले केश घासके समान बढ़ें ॥ ३ ॥

यह केशवर्धक औषधिके रसके उपयोगसे बंश बहुत बढ़ जाते हैं । शीले स्थानमें जैसे घास बहुत बढ़ती है, उसी प्रकार इस औषधसे केश बढ़ते हैं और क्योंकि मूल भी सुदृढ हो जाते हैं, इस कारण वे दृढ़ने बहों । यह केशवर्धक औषधि बड़ी है कि जो पूर्व सूक्तमें वर्णित है । यह औषधि अन्वेषणीय है । क्योंकि इसका पता नहीं चलता ।

## केशवर्धक औषधि

कां. ६, सू. २१

(श्रुति.— शन्तातिः । देवता— वन्द्यमा ।)

इमा यास्तिस्रः पृथिवीस्तासां ह भूमिरुत्तमा । तासांमधि त्वचो अहं मेपजं समुं जग्रमम् ॥ १ ॥

श्रेष्ठमसि मेपजानां वसिष्ठं वीरुधानाम् । सोमो मग इव यामेषु देवेषु वरुणो यथा ॥ २ ॥

अर्थ— (इमाः याः तिस्रः पृथिवीः) वे जो तीन लोक हैं (तासां भूमिः उत्तमा) उनमें यह भूमि उत्तम है । (तासां त्वचः अधि) उनमें त्वचाके विषयमें (मेपजं अहं उ सर्वं जग्रमं) यह औषध मैंने प्राप्त की है ॥ १ ॥

(यथा यामेषु देवेषु) जैसे चलनेवाले देवोंमें (सोमः भगः वरुणः) सोम, भग और वरुण श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार (मेपजानां श्रेष्ठं असि) औषधमें मैं श्रेष्ठ हूँ, (वीरुधानां वसिष्ठं) वनस्पतियोंको यह बसानेवाला अर्षात् श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

रेवंतीरनाघुषः सिपासवः सिपासथ । उत स्थ केयुदंहरिथो ह केशवर्धनीः ॥ ३ ॥

अर्थ—हे ( रेवती' अनाघुषः सिपासवः ) सामपर्वण, अद्विजित और आरोग्य देनेवाले रेवती औषधि। घुष ( सिपासथ ) आरोग्य देनेकी इच्छा करो । ( उत केशवर्धनीः स्थ ) और बालोंको बचवाए करनेवाली होओ ( अथो ह केशवर्धनीः ) और बालोंको बढ़ानेवाली होओ ॥ ३ ॥

'रेवती' औषधी वन बढ़ानेवाली और बालोंको बढ़ करनेवाली है । यह लघुचार् रोगोंके लिये भी उपाम है । यह औषधि आनकह नहीं मिलती, इसलिए इसकी खोज करनी चाहिये ।

## अरुन्धती औषधि

कां. ६, सू. ५९

( अग्नि - लघुवं । देवता - रुद्र, मनुष्योप । )

अनुद्भ्रस्त्वं प्रथमं घेनुभ्यस्त्वमहन्धति । अर्धेनये वयसे शर्म यच्छु चतुष्पदे ॥ १ ॥

शर्म यच्छुस्वोर्षधिः सह देवीरुन्धती । करत्पर्यस्वन्तं गोष्ठमयुक्ष्मो उत पूरुषान् ॥ २ ॥

विश्वरूपां सुभर्गाम्च्छार्दामि बीवलाम् । सा नो रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः ॥ ३ ॥

अर्थ— हे ( अरुन्धती ) अरुन्धती औषधि । ( स्वं अनुद्भ्रयः ) तू वैलकी ( स्वं घेनुभ्यः ) तू गौभोंको तथा व ( चतुष्पदे अर्धेनये वयसे ) धार पाववाले गौसे मिल पशुको तथा पक्षियोंको ( प्रथमं शर्म यच्छु ) शक्ति सुख दे ॥ १ ॥

( अरुन्धती औषधिः देवीः सह ) अरुन्धती नामक औषधी सब अन्य दिव्य औषधियोंके साथ ( शर्म यच्छुतु ) सुख देवे । तथा ( गोष्ठं पर्यस्वन्तं ) गोठालाको बहुत दुग्धयुक्त ( उत पूरुषान् अयुक्ष्मान् परत् ) और मनुष्योंको रोगरहित करे ॥ २ ॥

( विश्वरूपां सुभर्गाम्च्छार्दामि ) नानारूपवाली भगवत्शक्तिनी जीवला औषधिमें विषयमे हम उत्तम बंधन कहते हैं, स्तुति करते हैं । ( रुद्रस्य अस्तां हेतिं ) रुद्रके केश रोगादि शत्रुको ( नः गोभ्यः दूरं नयतु ) हमारे पशुभोंसे दूर ले जावे, उनको नीरोग बनावे ॥ ३ ॥

भाष्यार्थ— अरुन्धती नामक औषधी गाय, बैल आदि पशुव्याद और पक्षी आदि द्विपदोंको नीरोग करता है और सुख देती है ॥ १ ॥

अरुन्धती तथा अन्य औषधियां सुख देनेवाली हैं, हमसे गौंसे अधिक दूध देनेवाली बनती हैं । और सब प्राणी नीरोग होते हैं ॥ २ ॥

अनेक रगरूपवाली यह जीवन देनेवाली जीवला औषधि स्तुति करने योग्य है । पशुपक्षियों और मनुष्योंको होनेवाले रोग इससे दूर होते हैं ॥ ३ ॥

### अरुन्धती

'अरु' का अर्थ राधिरमाल, चोट, इस स्थानके रोग ठीक करनेवाली औषधि 'अरुन्धती' है । इसका व्याजकरका नाम क्या है इसका पता नहीं चलता । खोज करन निश्चय करना चाहिये । इसे गौभोंको शिरानेले गीए अधिक दूध देने लगती है । इसका सेवन मनुष्य कौंसे तो यक्ष्मा जैसे रोग दूर होते हैं । 'बीवला' औषधि भी इसी प्रकार उपयोगी है, संभव है कि जीवला, अरुन्धती ये नाम एक ही औषधिके हों । यह लोअवा विषय है ।

## कृद्धिकरण

कां. ६, सू. ७२

( कृपि - अथवात्रिच । देवता - शैतोर्क । )

यथासितः प्रथयते वशं अनु वपूषि कृष्वन्नसुरस्य मायया ।

एवा ते श्रेयं सहसायमर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोत ॥ १ ॥

यथा पतस्तापादरं वातेन स्थूलमं कृतम् । यावत्परंस्वतः पतस्तावंचे वर्धतां पतः ॥ २ ॥

यावदुङ्गीनं पारंस्वतं हास्तीनं गार्दमं च पत् । यावदर्थस्य वाजिनस्तावंचे वर्धतां पतः ॥ ३ ॥

अर्थ— ( यथा असितः ) जिस प्रकार अघनरहित मनुष्य ( असुरस्य मायया वपूषि कृष्वन् ) आसुरी मायासे देहोंको बनाया हुआ ( यशान् अनु प्रथयते ) अपने सुदोषोंको बशमें करता हुए उनको पैलाया है, ( एवा ते अयं श्रेयः ) उसी प्रकार तेरे इस शरीरगतों ( सहसा अंगेन अङ्गं संसमकं अर्कोः कृणोत ) बलसे दूसरे अल्प भवषणोंके समान ही यह पुजनीय आत्मा पुष्ट करे ॥ १ ॥

( यथा पतः वातेन तापादरं स्थूलमं कृतं ) जिस प्रकार शरीरगत वातसे सम्भानोत्पत्तिके योग्य और पुष्ट किया होता है और ( यावत् परस्वतः पतः ) पूर्ण पुरुषका जैसा शरीरगत होता है ( तावत् ते पतः वर्धतां ) जैसा ही तेरा शरीरगत भी बढ़े ॥ २ ॥

( यावत् अङ्गीनं पारंस्वतं ) जैसे सुदृढ अगनाले पूर्ण पुरुषका तथा जैसे ( यावत् हास्तीनं गार्दमं अभ्यस्य वाजिनः ) हाथी, गधे और घोड़ेका होता है, ( तावत् ते पतः वर्धतां ) जैसे ही तेरा शरीरगत बढ़े ॥ ३ ॥

शरीरगत सुदृढ और संगतोत्पत्तिके कारणसे लिये योग्य बने । सुदृढ हीनांग न हो, रथांग हो ।

## स्त्री-पुरुषकी कृद्धि

कां. ६, सू. ७८

( कृपि - अथवां । देवता - चन्द्रमा, लक्ष्मी । )

तेन भूतेन हविषायमा प्यायतां पुनः । जायां यामस्मा आवांश्रुस्तां रसेनामि वर्धताम् ॥ १ ॥

अमि वर्धतां पर्यसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् । रथ्या सहस्रवर्षसेमौ स्तामनुपक्षितौ ॥ २ ॥

अर्थ— ( तेन भूतेन हविषा ) उस किये हुए हविसे ( अर्थ पुनः आप्यायतां ) यह बारंबार पुष्ट हो । ( जां जायां अस्मै अवाश्रुः ) जिस स्त्रीका इसके साथ विवाह हुआ है, ( तां रसेन अभिवर्धतां ) उसको भी यह रससे पुष्ट करे ॥ १ ॥

ये हमनी ( पयसा अभिवर्धतां ) वृष पीकर पुष्ट हो, ( राष्ट्रेण अभिवर्धतां ) राष्ट्रेण साथ बढ़े, ( सहस्रवर्षसा रथ्या ) सहस्र तैलोंवाले घनसे ( इमौ अनुपक्षितौ स्तां ) ये दोनों पतिपत्नी सदा भरपूर हो ॥ २ ॥

भावार्थ— इस वैवाहिक यज्ञसे यह पति बढ़े और जिस कारण यह को विवाहमें इसे दी गई है, इस कारण विविध रसोंसे यह पति इसकी पुष्टि करे ॥ १ ॥

दोनों पतिपत्नी वृष पीकर पुष्ट हो, अपने राष्ट्रेकी उन्नति में साथ उन्नत हो और इनके पास सदा हजारों तैलोंवाला घन भरपूर रहे ॥ २ ॥

१३ ( अथर्व. भा ३ गृ. हिन्दी )

त्वष्टां जायामञ्जनयत्स्वष्टांस्थे त्वां पतिम् । त्वष्टां सहस्रमायुषि दीर्यमायुः कृणोतु वाम् ॥ ३ ॥

अर्थ—( त्वष्टा जायां अञ्जनयत् ) जगद्भवित्वा देवने स्त्रिको उत्पन्न किया है और ( त्वष्टा अस्त्यै त्वां पति ) उसी ईश्वरने उसके लिये तुझ पतिको भी उत्पन्न किया है । ( त्वष्टा यां सहस्रं आयुषि ) त्वष्टिता ईश्वर तुम दोनोंको हजारों वर्षोंतक रहनेवाला ( दीर्यं आयुः कृणोतु ) दीर्घ आयु प्रदान करे ॥ ३ ॥

भावार्थ— ईश्वरने जिस प्रकार स्त्री को उत्पत्ति की है, उसी प्रकार स्त्रीके लिये पतिको भी उत्पन्न किया है । यह ईश्वर इनके लिये उत्तम दीर्घ आयु देवे ॥ ३ ॥

### गृहस्थीकी पुष्टि

पति और पत्नी धरमें रहकर एक दूसरेकी पुष्टि और उन्नतिका विचार करें । कभी परस्परके नाशका विचार न करें । विविध गुणधर्मोंसे ईश्वरने जैसे स्त्रियोंको बैसे ही पुरुषोंको भी उत्पन्न किया है । इसलिये दोनोंको उचित है कि वे परस्परकी सहायता करके परस्परकी उन्नति करनेमें प्रयत्न हों ।

पाय, कार्की, तमाखू, मस आदि न पीयें, भविष्य रौका दूध ही आवश्यकतानुसार पीये, दोनों दूध पीकर पुष्ट हों । अर्थात् उनमें शरीरकी पुष्टि दूधसे होवे । इसी प्रकार दोनों स्त्रीपुरुष घनादि पदार्थोंका उपभोग करें और सुखसाधनोंसे भरपूर हों ।

दोनों स्त्रीपुरुष एक दूसरेकी पूर्णता बनते हुए संयोग प्राप्त करें और सुखी हों ।

## स्त्री-विकिरत्न

कांड ७, सू. ३५

( ऋषिः-अथर्व । देवता- जातवेदः । )

प्रान्यानत्सपत्नान्सहस्रा सहस्रं प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।

इदं राष्ट्रं विपुष्टिं सौभगाय विष्वं एनुमन्तुं मदन्तु देवाः ॥ १ ॥

इमा यास्ते शतं हिराः सहस्रं धमनीकृत । तासां ते सर्वासामहमश्मन्ता विलुभन्वेषाम् ॥ २ ॥

परं योनेरवरं ते कृणोमि मा त्वां प्रजामि भुम्भोत वृन्तुः ।

अस्वैः त्वाप्रजसं कृणोम्यश्मानं ते अपिधानं कृणोमि ॥ ३ ॥

अर्थ—( अन्यानत् सपत्नान् सहस्रा प्रसहस्र ) दूसरे सपत्नोंको बतले दबा दे । हे ( जातवेदः ) ज्ञानप्रकाशक ! ( अजातान् प्रति नुदस्व ) भागे होनेवाले सपत्नोंको भी दूर कर । ( इदं राष्ट्रं सौभगाय विपुष्टिं ) इस राष्ट्रको उत्तम समृद्धिके लिये परिपूर्ण कर । ( विष्वे देवाः एनं अनुमदन्तु ) सब देव इसका अनुमोदन करें ॥ १ ॥

( याः ते इमाः शतं हिराः ) जो ये सौ नाशिया हैं, ( उत सहस्रं धमनीः ) और हजारों धमनियां हैं, ( ते तासां सर्वासां विले ) तेही उन सब धमनियोंका विद्रि ( अहं अहमना अपि अर्था ) मैं परंपरसे बन्ध करता हूँ ॥ २ ॥

( ते योनेः परं ) तेरे गर्भरधानसे परे जो है उनको ( अवरं कृणोमि ) मैं समीप करता हूँ । जिससे ( प्रजा उत मन्तुः ) संतान अथवा पुत्र ( त्या मा अभिभूत् ) तुझे भिरक्य न करे । ( त्या अस्वैः प्रजसं कृणोमि ) तुझे असुखार्थी शर्थात् प्राणवासी संतान देवा हूँ और ( अश्मानं ते अपिधानं कृणोमि ) पथरसे तुझे ढकका हूँ ॥ ३ ॥

## स्त्री-चिकित्सा

इस सूत्रमें स्त्रीचिकित्साका विषय कहा है। विमलकर योनिचिकित्साका महावर्ण विषय है। सूत्र अस्पष्ट है। मत इसका योग्य स्पष्टीकरण हम कर नहीं सकते। योनिस्थानका सैकड़ों नादियोंका शिष्ट बन्ध करनेका विधान द्वितीय मंत्रमें है। अर्थात् चिकित्सा रक्तस्रावके रोगको दूर करनेका साधन यहाँ प्रतीत होता है। रक्तस्रावको दूर करनेका साधन (अध्मा) पथर कहा है, यह किम जातिका पथर है, इसकी ओर वैद्योंको करनी चाहिये। यह कोई ऐसा पथर होगा कि जिसके दाबपर लगानेसे, यहाँसे होनेवाला रक्तस्राव बन्द होकर रोगीको मारोग्य प्राप्त हो जाता होगा। तृतीय मंत्रमें भी इसी पथरका उल्लेख है। पाथर इस पथरको उभन जैसे रक्तके लिए इस मंत्रमें कहा है। यह विधान इसलिये होगा कि यदि किसी पथरका रक्तस्राव मुकदार लगानेसे बन्द न होता हो, तो उसपर यह औषधिका पथर बहुत समय तक बांध देना चाहिये।

चिकित्सीक पथरको छोटे पाथर लगानेसे यहाँका रक्तस्राव बन्द हो जाता है, यह अनुभूत है। इसी प्रकारका यह कोई पथर होगा, जिसे चिकित्सा योनिस्थानका रक्तस्रावको रोकनेवाला यहाँ कहा है।

तृतीय मंत्रमें सम्भान न होनेवाली स्त्री योनिस्थान और

गर्भाशयकी नादियों और धमनियोंका स्थान बन्द देनेका उद्देश्य है। इस प्रकार स्थान बन्द देनेसे उभ स्त्रीका सन्तान होता है। स्त्री और पुरुष सन्तान भी होती है। इस प्रकार धमनियोंका स्थान बन्द करनेपर संतति उस माताका तिरस्कार नहीं करती (प्रजा मां यामि भूत्) ऐसा मंत्रका वाक्य है। प्रजा अपना मृतान द्वारा स्त्रीका तिरस्कार होनेका स्पष्ट अर्थ यह है कि उस स्त्रीकी संतान न होना। जो विमलका तिरस्कार करता है, वह उभय पास नहीं जाता। यहाँ मन्तान स्त्रीका तिरस्कार करती है, ऐसा कहनेमें उस स्त्री सन्तान नहीं होती यह बात सिद्ध है। ऐसी वंध्या स्त्री (अस्-ध प्रजस हृणोमि) प्राणवाणी प्रजा पैदा करता है। तृतीय मंत्रमें स्त्रीको धमनियोंका प्रवाह बन्द करनेसे वंध्या स्त्री भी प्राणवाणी प्रजा पैदा होती है। 'अस्-ध' अर्थात् 'अस्-चन्', 'असु-चान्' प्राणवाणी इस अर्थमें यहाँ है। यहाँ 'अश्व' ऐसा भी पाठ है। यह पाठ माननेपर 'अन्वचान्' ऐसा अर्थ होगा।

बंध्या दो प्रकारकी होती है, मुकान् मृतान ही नहीं होगा और दूसरी सन्तान होता तो है परंतु मर जाती है। इन दोनो प्रकारकी वंध्याओंके योनिस्थानकी नादियोंकी रज बन्द देनेमें सन्तानोत्पत्तिकी समस्या यहाँ कही है।

## उत्तम गृहिणी स्त्री

कां. ४, सू. ३८

( अग्नि - वादरायणि । देवग-अप्यरा, ऋषभ । )

उद्भिन्दुती संजयन्तीमप्यरां साधुदेविनीम् । ग्लहे कृतानि कृशानामप्यरां तामिह हुंवे ॥ १ ॥

विचिन्वतीसांकिन्तीमप्यरां साधुदेविनीम् । ग्लहे कृतानि गृहानामप्यरां तामिह हुंवे ॥ २ ॥

अर्थ— ( उद्भिन्दुती साधुदेविनी ) मनुका उष्णदेवानी, उत्तम व्यवहार करनेवाली और ( संजयन्ती अप्यरां ) उत्तम निज प्राप्त करनेवाली समशील स्त्री तथा ( ग्लहे कृतानि कृशानामप्यरां तामिह हुंवे ) मरणांत समय उत्तम रूप करनेवाली उस स्त्रीको ( इह हुंवे ) यहाँ बुलाते हैं ॥ १ ॥

( विचिन्वती सांकिन्ती ) मनुष्य करनेवाली और वांछनेवाली ( साधुदेविनी अप्यरां ) उत्तम व्यवहार करने वाली तथा ( ग्लहे कृतानि गृहानामप्यरां तामिह हुंवे ) मरणांत समय उत्तम रूप करनेवाली उस समशील स्त्रीको भी यहाँ बुलाते हैं ॥ २ ॥

भाषार्थ— मनुको मर करके उत्तम होनेवाली, उत्तम व्यवहारमें लक्ष, विपरी और मरणांत समय योग्य करनेपर उत्तम प्रकारसे गिर करनेवाली स्त्रीको हम यहाँ बुलाते हैं ॥ १ ॥

समयपर मनुष्य करनेवाली और समयपर मनुष्यमें पान करनेवाली, उत्तम व्यवहारमें लक्ष तथा मरणांत समय योग्य करनेपर उत्तम प्रकारसे करनेवाली स्त्रीको हम यहाँ बुलाते हैं ॥ २ ॥

यायैः परिनृत्यंस्याददाना कृतं ग्लहात् । सा नः कृतानि सीपती प्रहामामोतु मायया ।

सा नः पयस्वत्यैतु मा नो जैपुतिदं धनम्

॥ ३ ॥

वा अक्षेर्षु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती । आनन्दिनीं प्रमोदिनीं अप्मरां तामिह हुंवे

॥ ४ ॥

सूर्यस्य रदमीननु याः संचरन्ति मरीचीर्वा या अनुसंचरन्ति ।

यासांमूपमो दूरतो वाजिनीवान्त्सद्यः सर्वान् लोकान्पुष्येति रक्षन् ।

स न एतु होममिमं जुषाणोऽन्तरिक्षेण सह वाजिनीवान्

॥ ५ ॥

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन्कूर्वा वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।

इमे ते स्तोका षड्गुला एष्वर्वाष्टियं ते कर्काः ते मनोऽस्तु

॥ ६ ॥

अर्थ— ( या अर्थः ग्लहात् कृतं आददाना ) जो शुभ धर्मविधियोंसे स्वयंसेवक उत्तम कृत्यको स्वीकार करती है । ( सा नः कृतानि सीपती ) वह हमारे उत्तम कर्मोंको निवमचय करती हुई ( मायया प्रहां आप्नोतु ) अपनी बुद्धिसे प्रगतिको प्राप्त करे । ( सा पयस्वती नः आ एतु ) वह भक्तवती उत्तम श्री हमारे पास आवे जिससे ( नः इदं धनं मा जैपुः ) हमारा यह धन कोई दूसरे न ले जाय ॥ ३ ॥

( शुचं क्रोधं च बिभ्रती ) शोक और क्रोधको धारण करती हुई भी ( याः अक्षेसु प्रमोदन्ते ) जो अपनी भाँखोंमें आनन्दित वृत्ति रखती है ( तां आनन्दिनीं प्रमोदिनीं अप्मरां ) उस आनन्द और उल्लास देनेवाली सुन्दर स्त्रीको ( इह तुचे ) यहाँ मैं तुझका हूँ ॥ ४ ॥

( याः सूर्यस्य रदमीननु अनुसंचरन्ति ) जो सूर्यके किरणोंमें अनुकूल संचार करती हैं, ( वा याः मरीचीः अनुसंचरन्ति ) अथवा जो सूर्य प्रकाशमें संचार करती हैं, वे क्षियां हमारे पास आवें और ( वाजिनीवान् उपमः ) बलवान् श्रेष्ठ पुरुष ( वृत्तः सद्यः यासां सर्वान् लोकान् रक्षन् पुष्येति ) दूरसे ही लकाळ जिन क्षियोंके सब समन्धी लोगोंकी रक्षा करता हुआ पातों धोरले जाता है । ( सः वाजिनीवान् ) वह बलवाला पुरुष ( इमं होमं जुषाणः ) इस पत्रको स्वीकार करता हुआ, ( अन्तरिक्षेण सह नः आ एतु ) आन्तरिक विचारके साथ हमारे पास आवे ॥ ५ ॥

हे ( वाजिनीवन् वाजिन् ) बलवाले ! ( अन्तरिक्षेण सह कर्का वत्सां ) मन्त्रकरणके साथ अपने कर्तृत्वप्राप्तिवाली वचनों ( इह रक्ष ) यहाँ रक्षा कर । ( इमे ते षड्गुलाः स्तोकाः ) ये तेरे आनन्ददायक बहुतेके षडे हैं, ( अर्वाष्टयिह ) यहाँ आ, ( इह ते कर्काः ) यहाँ तेरी कर्तृत्वप्राप्ति और ( इह ते मनः अस्तु ) तेरा मन स्थिर रहे ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो स्वयंसेवक समस्त शुभधर्मविधिके अनुसार उत्तम कृत्य करती है तथा जो हमारे सब शुभकृत्योंको उत्तम व्यवस्थासे करती है, वह अपनी बुद्धिसे प्रगतिको प्राप्त करे । वह भक्तवती श्री यहाँ रहे और उसकी व्यवस्थासे यहाँका धन सुरक्षित हो ॥ ३ ॥

शोक और क्रोधके मनमें रहने पर भी जो सदा अपने भाँखोंमें आनन्दकी प्रमाँ दिखती है, वह आनन्द और संतोष यज्ञानेवाली श्री यहाँ आवे ॥ ४ ॥

जो सूर्यको किरणोंमें व्यवहार करती है अथवा सूर्य प्रकाशको अनुकूल बनाती है, इस प्रकारकी क्षियोंकी रक्षा दूरसे अर्वाण् योग्य मर्यादासे ही सब पुरुष किया करें । ये बलवान् पुरुष अपने जीवनका यज्ञ करते हुए अपने हार्दिक विचारसे क्षियोंका आदर करके यहाँ रहें ॥ ५ ॥

हे बलवाले मनुष्यो ! अपने आन्तरिक प्रेमके साथ वक्षियोंकी रक्षा करो, सन्तानकी रक्षा करणा आनन्ददायक कर्म है, आवे दोकर यह कार्य करो, इस कार्यमें तुम्हारा मन स्थिर रहे ॥ ६ ॥

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीचक्रकीं वृत्सरमिह रक्ष वाजिन् ।

अयं घासो अयं यज इह वृत्सां नि चञ्जीमः । यथानाम च ईदमहे स्वाहा ।

॥ ७ ॥

अर्थ— हे (वाजिनीचक्रकीं वाजिन्) पशुचर ! (अन्तरिक्षेण सह चक्रकीं वृत्सां) अपने आंतरिक विचारों से साथ कर्तव्य शक्तिवाली बसोकी (इह रक्ष) यथा रक्षा कर । उसमें लिये (अयं घासः) यह घास है, (अयं यजः) यह गौमोंका स्थान है, (इह वृत्सां निचञ्जीमः) यथा वृत्सोंको पापने है । (यथानाम च ईदमहे) नामोंके अनुसार पुण्यकारी व्यवस्था हम करते हैं, (स्व-आहा) हमारा साथ तुम्हारे लिये हो ॥ ७ ॥

भाष्यार्थ— हे बलबल्ले मनुष्यो ! अपने आन्तरिक प्रेमसे साथ गौकी बलबल्लेकी रक्षा करो, गौमों और बलबल्ले लिये यह घास है, उनके लिये यह स्थान है, बलबल्लेको यहाँ पापने है और उनके नामोंके प्रमसे उनकी उत्तम व्यवस्था करते हैं, उनके लिये हम आभारपूर्वकता समर्पण करते हैं ॥ ७ ॥

## उत्तम गृहिणी स्त्री

### दश स्त्रीका समाप्ति

इस सूत्रमें दश स्त्रीका बहुत भावर किया है। स्त्री गृहिणी होती हैं, इसलिये घरकी व्यवस्था उत्तम रखना और उस कार्यमें उत्तम दक्षता धारण करना स्त्रियोंका परम कर्तव्य है। इस विषयके आदेश इस सूत्रमें किये हैं, जिनका भवन शक्य करते हैं—

### स्त्री कैसी हो ?

(१) संजयन्ती— उत्तम विजय प्राप्त करनेवाली, अर्थात् अपने कुटुंबको विजय दिलानेके उपायोंको साधनपूर्ण करनेवाली हो । (मं० १)

(२) साधुदेविनी— 'दिष्' धारणे 'देविनी' शब्द बनता है। 'दिष्' धारणे अर्थ— 'श्रीका, विजयेष्वा, ध्यपहार, प्रकाश, आनंद, गति' इत्ये हैं। अर्थात् 'साधु देविनी' शब्दका अर्थ— 'श्रीका या शैल शैलान्तेम दुराल, अपने कुटुंबकी विजय चाहनेवाली, धारणे प्रकाशक समान तेजस्विनी होकर रहनेवाली, स्वयं आनंद स्वभावमें रहकर सब लोगोंका आनंद बढ़ानेवाली, सबकी प्राप्ति करनेवाली' इस प्रकार ही समझा है। इस अर्थका संबंध 'संजयन्ती' शब्दसे अर्थसे साथ है । (मं० १, २, ४.)

(३) उद्धिदन्ती— अपने शत्रुओंको उन्माद देनेवाली । (मं० १) इसका भी तात्पर्य 'संजयन्ती' शब्दके समान ही है, विजयेष्वा और व्यवहार दक्ष होनेसे शत्रुको उन्मादना और विजय प्राप्त करना ये दोनों सुसंगत हैं । (मं० १)

(४) गृह्णन्ती— अर्थ— 'गृह्ण' शब्दका अर्थ है 'स्वर्धा', जीवन एक प्रकारकी रक्षा है, इस रक्षणमें

'गृह्ण' अर्थात् उत्तम रूप अथवा उत्तम प्रणय करनेवाली । 'गृह्ण' शब्दका अर्थ यह है—

कलिः शयानो भवति संविज्ञानस्तु द्वापरः ।

उत्तिष्ठन्नेता भवति घृत्नं सं पद्यते प्यग् ॥

पृथै पृथै । (मं० प्र० ७।१५)

"सुप्त चाम्पाका नाम कलिः, जिज्ञा या आनन्दको त्यागनेका नाम द्वापरः, प्रयत्न करनेकी बुद्धिसे उद्वेगनाम घेता है और घृत्न उतको कहते हैं कि निम्न अवस्थामें मनुष्य पुरणार्थ करता है ।" उक्तिके लिये प्रथम पुरणार्थ करनेका नाम घृत्न है। मानो "मनुष्यका जीवन एक सुषुप्तावस्था" है। इसमें सोते रहनेवाले लाभ नहीं प्राप्त कर सकते। इस ज्ञानमें 'कलि' द्वार, श्रेता और घृत्न' ये चार नाम होते हैं। जो शयान और आनन्दमें होते हैं उनको घृत्न जीवनरूपी सुषुप्ते 'कलि' मिलता है किन्तु जागृत हैं। जागृत होते हैं, तो साधारण पुरणार्थका प्रयत्न करते हैं उनको शीघ्र ही लाभ मिलने है, परंतु जो प्रथम पुरणार्थी होता है वही 'घृत्न' शब्दक लाभ प्राप्त करनेके अधिकसे अधिक धन प्राप्त करता है ।

शरीरतः वा शीघ्र भेदनेवाले अपने पक्षियों जो चार प्रकारके लाभ प्राप्त करते हैं, उन चार/लाभोंके शब्द ये चार शब्द हैं । 'घृत्न, श्रेता, द्वापर और कलि' ये चार शब्द प्रथम उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ और हानिकारक शक्तिके मूलक शब्द हैं। वस्तुतः वेदमें "अग्निर्मां दीपय ।" (मं० १।१३।१३३) तथा मन श्रेता। इस प्रकारके शब्दोंमें श्रेता विशेष विद्या है। इसलिये वैदिक धर्ममें श्रेता ही प्रधानता ही नहीं है। तथापि वही यानी मनुष्य अपने आधुनिक शर्तोंका श्रेता श्रेता रहे हैं, अपने आधुनिकता तथा विद्या रहे हैं अथवा शीघ्र श्रेता रहे हैं। इसमें श्रेताओंके पर श्रेता लाभ

कारी होता है और कर्तव्योंको हासिकारक होता है। इसलिये इस जापनस्त्रीकी यात्रीमें उत्तम रीतिसंकेत यह खेप खेलकर मनुष्य यगक भागी हो, यह उपवेदा देनेके लिये रूपककारस इय मूत्रमें 'ग्लह, घृत, देविनी' ये शब्द या जपोंमें प्रयुक्त हुए हैं। ये शब्द ज्वेवाणीका अर्थ भी बताते हैं और ज्वेपस उत्तम विजयी व्यवहारका भी अर्थ बताते हैं। यहा श्रीलका विद्वेष होते हुए भी युवा भी इसमें अपने विजयी जीतन बनावेका घोष प्राप्त कर सकते हैं। अस्तु। 'ग्लहे कृतानि घृत्वाणि' का यहाँ यह अर्थ है— "इस जीवन्स्त्री म्यर्थांके खेतमें जो स्त्री उत्तम पुरपार्थकी दान प्राप्त करती है।" अर्थात् उत्तम स्त्री यह है कि जो इस जीवन्में परम पुरपार्थ प्रयत्न करती है। (म० १, २) मत्र ३ में 'घृत ग्लहात् आददाना' पठ है। इसका भी उक्त प्रकार ही अर्थ है।

(५) विचिन्वन्ती, आकिरन्ती—समह करनेवाली, दान देनेवाली। समह करनेके समय योग्य रीतिसंकेत और दक्षतासे समह करनेवाली और दान करनेके समय उदारता पूर्वक दान देनेवाली। श्री गौरी होने चाहिये कि वह घरमें दक्षतासे और व्यवसायमें योग्य उत्तुभोका समह करे। तथा दान करनेके समय उदारताका साथ दान करे। 'विचिन्वन्ती' का मूल अर्थ चुन चुनकर पदार्थोंको प्राप्त करनेवाली और 'आकिरन्ती' का अर्थ 'खिलेनेवाली' है। यह समह करनेका गुण और दानका गुण सीमें इतना हो कि जिससे उसका कुलका यग घटे घटे नहीं। (म० २)

(६) या अये परिनुत्यति—जो दुःख विधिमें भानदसे मालती है अर्थात् जिसका प्रयत्न सदा सर्वदा धार्मिक शुभ विधि करनेके लिये ही होता है। 'अयः' का अर्थ 'दुःख विधि' है (अयः शुभायहो विधि)। शमर कोय १११:२०) जिसका पूर्व कर्म भी उत्तम है और इस समयका भी कर्म उत्तम है। (म ३)

(७) कृतानि सीपती—जो उत्तम कर्मोंका मुख्य वरपा विपमले करती है। (म ३)

(८) पयस्वती—दूधवाली, निष्क पाय बच्चोंको देनेके लिये बहुत दूध होता है। (म ३)

(९) या शुचि व्रोध च विधती अनेपु प्रमोदन्ते—य शोक और क्रोध भावोंपर भी भावोंमें प्रसन्नताका तेज धारण करती है। 'अक्षु' शब्दका अर्थ 'आंश और इन्द्रिय' है। यहा इन्द्रिय अर्थ अवेक्षित है। जो स्त्री शान्त कानमें शोक उत्पन्न होनेपर अथवा क्रोध उत्पन्न होनेपर भी रौती पीटती या पिछताती नहीं है, प्रयत्न अपने व्यवहारमें, इन्द्रिय ध्यायारमें प्रसन्नताको हलक दिखती है यह उत्तम स्त्री है। (म ४)

(१०) जानन्दिनी, प्रमोदिनी—भानन्द और हर्षसे युक्त। अर्थात् जो सदा भावमिष्ट रहती है। और दूसरोंको प्रसन्न करनेका यत्न करती है। (म ४)

(११) सूर्यस्य रदनीन् संचरन्ति—जो सूर्य किशोरी भ्रमण करती है। 'मरीची' अनुसचरन्ति—जो सूर्य प्रकाशमें भ्रमण करती है। अथवा जो सूर्य प्रकाशको अपने अनुकूल बनाती है। इससे आरोप्य उत्तम होता है। शिष्योंको सूर्यप्रकाशमें व्यवहार करना चाहिये। [यहाँ स्पष्ट होता है कि धूपक या बुझकी पदवि पूर्णतया अवैदिक है।] (म ५)

ये ग्यारह लक्षण उत्तम और दक्ष गृहिणीक हैं। स्त्री, धर्मपत्नी, गृहिणी घरमें किस प्रकार व्यवहार करे, इस विषयपर ये ग्यारह लक्षण बहुत उत्तम प्रकाश डालते हैं। श्री और पुरुष इन लक्षणोंका विचार करें और इस उपदेशको नवानेका कल करे। इन लक्षणोंमें शत्रुको उखाड़ देना और विनय प्राप्त करना ये भी लक्षण हैं, जिससे प्रतीत होता है कि शिष्योंमें इतनी शक्ति तो अवश्य ही होनी चाहिये कि जिससे वे अपनी रक्षा उत्तम प्रकार कर सकें। नाशभरणाके लिये शिष्या दूसरेपर निर्भर न रहें। गृह व्यवहारमें दक्ष, निर्भय और अपने कुलका यश बढ़ानेवाली शिष्या होनी चाहिये। इन लक्षणोंका विचार करनेसे स्त्री-शिक्षाका भी निश्चय हो सकता है। जिस शिक्षासे श्रीक मद्र इतने गुण विकसित हों, वह जिहा शिष्योंको देनी चाहिये। अथवा जो कहिये कि शिष्योंमें शिक्षासे इन गुणोंका विकास करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

## अपसरा

इन लक्षणोंसे युक्त स्त्रीको इस सूत्रमें 'अपसरा' कहा है। सुदर स्त्रीको अपसरा कहते हैं। अपसरा शब्दके बहुत अर्थ हैं उनमें यह भी एक अर्थ है। स्त्रीको सुदरता इस शब्दसे व्यक्त होती है। शरीरकी सुदरता बहुत उठना सुल नही देगी, चित्ता गुणोंकी सुदरता देता है। इसलिये इन गुणोंसे युक्त सुदर स्त्रीको अपने घरमें गृहिणी बनानेका मुचना यहाँ दी है।

इसी अर्थवेदमें कहीं कहीं 'अपसरा' शब्दका अर्थ रोगोपादक मिमि भी है और इस सूत्रमें 'सुदरी गुणवती सुशील स्त्री' है, यह देखकर पाठक चकित न हो। एक ही शब्दक इतनी प्रकार अनेक अर्थ होते हैं। इतनी प्रकार 'सुदर' शब्द परमेश्वरवाचक और राक्षस भी वाच्य होता है अर्थात् इस शब्दोंके अर्थ इसी प्रकार विचक्षण होते हैं और यह एक वेदकी रीति ही है।

इस सूत्रके प्रथम पाँच श्लोकोंमें दक्ष धर्मपत्नीके शुभ



गुणोंका वर्णन है। यह वर्णन त्रैसे शिष्योंके लिए बोधप्रद है उसी प्रकार तुरयोक्त लिये भी बोधप्रद है।

### रश्मिस्नान

पञ्चम मन्त्रमें 'सूर्यरश्मीन् अन्तु सञ्चरन्ति। ( म ५ )' सूर्य रश्मियोंके अन्दर अन्तुएल रीतिमें सञ्चार करनेकी सूचना दी गई है। एक ही विषयको दो धार कहनेसे यह बड़ हो जाता है। अर्थात् शिष्योंका सूर्यकिरणोंमें भ्रमण करना वेदको बहुत ही अभीष्ट है। शिष्यों प्रायः घरेलू व्यवहारमें दूषित रहती हैं और पुरय धरके माहुरक व्यवहारको करते हैं। इसलिये पुरयोक्त उक्त व्यवहार ही कारण सूर्यरश्मिस्नान होना है। शिष्या घरके अन्दरक व्यवहार करती हैं, इसलिये सूर्यरश्मियोंके अन्तुएलसे सञ्चित रहती हैं, अतः उक्त व्यवहारके लिये इस मन्त्रमें रश्मिस्नानका दो धार उपदेश दिया है।

### स्त्री रक्षा

शिष्योंकी रक्षा होनी चाहिये। वह दो प्रकारोंमें हो सकती है। एक तो पुरोहित गुणोंका उत्तम विकास शिष्योंमें करनेसे शिष्या स्वयं अपनी रक्षा करनेमें समर्थ हो जायेंगी और अपनी रक्षा करनेके लिये दूसरोंके मुसकरी और देखनेकी आवश्यकता उनको नहीं रहेगी। तथापि कर्तृ धर्ममें ऐसे हैं कि जिनमें पुरयोक्त शिष्योंकी रक्षा करनी ही पड़ती है। ऐंसे ममयोनि-यासां सर्वान् लोकान् दूरत रक्षन् याजिनियान् पपैति। ( म ५ )

'जिन शिष्योंके साथ लोगोंकी दूरत रक्षा करना हुआ बलवान् पुरय भ्रमण करता है।' इसका भासव यह है कि पुरय शिष्योंकी रक्षा करनेके समय शिष्याघार पूर्वक उचित रीतिसे दूर रहकर रक्षाका कार्य करें। शिष्योंमें घुसकर अथवा शिष्योंका अन्य प्रकार निगूह करने उनकी रक्षाका प्रयत्न करना योग्य नहीं है। जिस प्रकार बड़े प्रतिष्ठित पुरयोक्त रक्षा करनेवाले रक्षा उचित अन्तरपर रहते हुए उनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार शिष्योंकी रक्षा भी उनकी सुयोग्य प्रतिष्ठा करते हुए करनी चाहिये।

इस मंत्रमें और अगले छठे मंत्रमें 'अन्तरिक्ष' शब्द 'अन्तरिक्षा भाव' इस अर्थमें आया है। अन्तरिक्ष लोकका ही अर्थ अपने अर्थमें अपना अन्तःकरण है। मानो, वहाँका यह शब्द अन्तःकरणका ही वाचक है। तात्पर्य यह है कि जो कुछ कार्य करना हो वह अन्तःकरणसे ही करना चाहिये। अपन ऊपरसे किया हुआ कार्य निष्फल होता है और अन्तःकरण लगाकर किया हुआ कार्य सफल होता है। मनुष्यका अन्तुएल समस्त वस्तुओं सत्तावर्षके लिये हुए कर्ममें ही होगा, अन्य मार्ग नहीं है।

यासां इह रक्ष। ( म. ६ )

'पुरीकी वहाँ रक्षा कर।' पुरीकी रक्षाका उत्तम प्रबंध करना चाहिये। दुर्घटना रक्षा होनेसे ही भागे यह पुरी सुयोग्य और सुशील धर्मपत्नी अथवा स्त्री या माता हो सकती है। आजकल पुरीका जन्म होने ही धरके सभी सदस्य दुर्घना होते हैं और प्रायः पुरीकी उन्नतिका विचार नहीं करते, ऐंसे लोगोंमें वेदका यह उपदेश अत्यन्त ध्यान करना चाहिये। आजकी स्थिति और सन्तानपरपरा विचारके कारण होती है, इसलिये शिष्योंकी रक्षायें ही सब जगत्का कल्याण होना समभव है। माता स्वर्गसे भी अधिक श्रेष्ठ है, फिर माताके बाल्यमें उनकी रक्षाका प्रबंध उक्त-मते उत्तम होना चाहिये इसमें संदेह ही क्या हो सकता है?

वस्तुतः जिन प्रकार पुरीके शिष्योंका वाच्य है, उसी प्रकार मनुष्योंके बच्चोंका भी वाच्य है। प्रेमसे पुरीके बाल्य और पुरीमें बलत्ता कहते हैं। इसलिये इस पहलमें बाल्य काल मनुष्योंकी बचपानोंका वाचक और सतत संभवा कला शब्द भी आदिश्योंकी उन्नतियोंका वाचक है। सतत मंत्रमें बचपान लिये धारा और उत्तम उत्तम मोक्षार्थमें बचपानका वर्णन होनेसे बच्चाकी बाल्या भी आदिश्योंकी उन्नतियों है, इसमें संदेह नहीं है। परंतु यह संभवा कला शब्द मनुष्योंके बच्चोंका भी वाचक मानना योग्य है। इसका तात्पर्य यह है कि जैम मनुष्योंके बाल्य बच्चोंकी सुरक्षितताका प्रयत्न करनेसे करना चाहिये, उन्मा प्रकार वाच्य बचपान आदि पुरी जगत्में बचपानोंका भी वाचक प्रबंध उत्तम रीतिसे करना चाहिये। जिस प्रेमसे धरक लोग अपने बच्चोंका पालन करते हैं, उसी प्रेमसे पुरीका संभवा भी पालन किया जाय, यह इस उपदेशका तात्पर्य है। उन्नत धरकका प्रबंध उत्तम हो, उन्नत जगत्पत्नीका प्रबंध उत्तम हो, उन्नत रक्षकका स्वयं प्रयत्न हो, तथा उन्नत रक्षकपत्नीका भी उचित प्रबंध किया जाय। तात्पर्य यह कि पुरीके हुए पुरीमें भी अपनी पत्नीके समान माहुरक उन्नत रक्षा ही प्रेम करना चाहिये।

यह सूत्र अपना प्रेम पुरीमें बचपानका रूप उन्नत उपदेश दे रहा है। प्रेम विना बच्चा और पुरी और पुरीके उन्नत आदिमात्रा भाव विरहित होगा। वैदिक धर्मका अन्तिम माध्य पूर्ण आदिमात्रा भाव मंत्रमें विपर करना ही है, यह इस रीतिमें निःसंदेह निरद होगा।

सत्ता आदर, शीत अदर शुभ गुणोंका विकास करनेकी रीति, शीत रक्षा, पुरीकी रक्षा और बचपानोंकी रक्षा आदि अन्तःकरण रीतिसे हुए सूत्रमें आये हैं।

# सूर्यके पश्चिमवर्त्यकी रक्षा

कां. ५, सूक्त १७

( ऋषि- भयोभू । देवता- ब्रह्मजाया । )

तेऽवदन्प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिर्षा ।	
प्रीहृहरास्त्वप उग्रं मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतस्य	॥ १ ॥
सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजाया पुनः प्रायच्छदहणीयमानः ।	
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदुग्रिहोता इस्तृष्टा निनाप	॥ २ ॥
हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजापेति चेदवोचत् ।	
न दूताय प्रहेयां तस्य एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य	॥ ३ ॥
याम्राहुस्तारकेषा विक्रेतीति दुच्छुनां श्राममप्यथमानाम् ।	
सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि शश उल्कुरीमान्	॥ ४ ॥

अर्थ— ( अ-कूपारः सलिलः ) अनाथ समुद्र, ( मातरिर्षा ) वायु ( प्रीहृहरा- ) बलवान् तेजबला अग्नि, ( उग्रं तपः ) उग्र तप देनेवाला सूर्य ( मयो-भूः ) सुख देनेवाला चन्द्र, ( देवीः आपः ) दिव्य जल, ( ऋतस्य प्रथमजाः ) सत्यका पहिला प्रवर्तक देव ( ते प्रथमा ) वे मुख्य देव भी ( ब्रह्म किल्बिषे अवदन् ) ब्राह्मणके संबन्धमें पापक करनेवाले विषयमें गवाही देने हैं ॥ १ ॥

( अहृषीयमानः प्रथमः राजा सोमो ) क्रोध न करते हुए पहिले राजा सोमने ( ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छत् ) ब्राह्मणकी भार्या उसे वापस दी । उस समय ( वरुणः मित्रः अन्वर्तिता आसीत् ) वरुण और मित्र ये साथ गए और ( होता अग्नि- हस्ततृष्टा निनाप ) होता अग्नि उसका हाथ पकड़ कर ले गया ॥ २ ॥

( ब्रह्मजाया इति चेत् अयोचत् ) यदि वह ब्राह्मणकी पत्नी है ऐसा कहा जाय । ( हस्तेन एव ग्राह्यः अस्या आधिः ) तो उसे हाथके ही प्रहण किया जाने, ऐसा इतका आदेश है, ( एषा दूताय प्रहेया न तस्ये ) यह दूतके द्वारा जानने योग्य नहीं है, ( तथा क्षत्रियस्य गुपितं राष्ट्रं ) वसी प्रकार ही क्षत्रियका सुरक्षित राष्ट्र भी होता है ॥ ३ ॥

( विवेशी एषा तारका इति ) बालोंको बिलसारे हुई यह ब्राह्मणकी स्त्री एक ऐसा तारा है ( श्रामं अवपथमानां दुच्छुनां यां आहु- ) जिसे श्रामके उपर गिरनेवाली विपत्ति कहते हैं । ( यत्र उल्कुरीमान् शश प्र अपादि ) जहाँ यह उल्कायुक्त शशकूपी ब्राह्मणकी स्त्री गिरती है ( सा ब्रह्मजाया राष्ट्रं विदुनोति ) वहाँ यह राष्ट्रको हिसा देती है ॥ ४ ॥

भावाच्यं— अग्नि, जलनिधि समुद्र, वायु, तेजस्वी सूर्य, सुख देनेवाला चन्द्रमा, तथा अन्य सब देव ब्राह्मणके संबन्धमें पाप करनेवाले पापके पापाचरणके विषयमें सतत बात स्पष्ट कह देते हैं ॥ १ ॥

सोमने शान्तिके साथ ब्राह्मणकी स्त्रीको पुन वापस किया, वहा वरुण और मित्र उपस्थित थे और अग्नि भी पालि-ग्रहणके समय होता बना था ॥ २ ॥

जो ब्राह्मणकी पत्नी नहीं जाती है वह पालिग्रहण विधिसे ही विवाहित हुई होती है । यह किसीके दूत द्वारा भगाई जाने योग्य नहीं होती, इसकी सुरक्षाके क्षत्रियका राष्ट्र सुरक्षित होता है ॥ ३ ॥

जिस प्रकार आकाशकी तारका और उल्का किसी ग्रामपर गिरती है और उसे दुग्भिन्ड कहा जाता है, उसी प्रकार यह ब्राह्मणकी भगाई जानेपर राष्ट्रका नाश करती है ॥ ४ ॥

ब्रह्मचारी चरति देविपत्त्रिषः स देवानां भस्त्रेकमद्गम् ।  
 तेन जायामन्वविन्दुवृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वान देवाः ॥ ५ ॥  
 देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वं सप्तऋषयस्त्वपस्ता ये निषेदुः ।  
 भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता दुर्धा दधाति परमे ष्योमन् ॥ ६ ॥  
 ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद्यच्चापलुपते । वीरा ये तुहन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥ ७ ॥  
 उत यत्पतयो दश स्त्रियाः पूर्वं अब्राह्मणाः । ब्रह्मा चेद्दस्तमग्रहीत्स एव परिविकृषा ॥ ८ ॥  
 ब्राह्मण एव पतिर्न राज्ञ्योऽङ्गे न वैश्यः । तत्सूर्यः प्रभुवर्षति पृथ्व्यो मानवेभ्यः ॥ ९ ॥

अर्थ — ( ब्रह्मचारी विप देविपत् चरति ) ब्रह्मचारी प्रजाओंकी सेवा करता हुआ जगद्गुरु संचार करता है इसलिये ( स देवाना एक अंग भवति ) यह देवोंका एक अंग बनता है । ( सोमेन नीतां जुह्वान देवाः ) नियमकार सोमके द्वारा किये हुए यज्ञकेसे हुए बाहुति एवं प्राप्त करते हैं उसी प्रकार ( तेन वृहस्पति जाया अन्वविन्दुत् ) उसके द्वारा वृहस्पतिने भाषां प्राप्त की ॥ ५ ॥

( एतस्या पूर्वं देवा ये अवदन्त ) इसका संबन्ध पूर्व देवाने कहा है तथा ( ये तपसा निषेदु सप्त ऋषय ) जो ऋष करवक लिये बैठे हैं उन सप्त ऋषियोंने भी बैठा ही कहा है कि ( ब्राह्मणस्य अपनीता जाया भीमा ) ब्राह्मणकी भगाई पत्नी भयंकर होती है, वह ( परमे ष्योमन् दुर्धा दधाति ) परम धामम भा हुआ देनेवाली होती है ॥ ६ ॥

( ये गर्भा अवपद्यन्ते ) जो गर्भ गिर जाते हैं ( यत् जगत् च अप लुप्यते ) जो पत्नेवाले प्राणी नाशका प्राप्त होते हैं, ( ये वीरा मिथ तुहन्ते ) जो वीर परस्पर लड़ते मिटते हैं, ( तान् ब्रह्मजाया हिनस्ति ) उनका ब्राह्मणकी भाषां नार डालती है ॥ ७ ॥

( उत यत् पूर्वं अब्राह्मणा स्त्रिया दश पतय ) और जो ब्राह्मणस्य पहिले उस स्त्रीक दस अब्राह्मण पति हान हैं, बादम ( ब्रह्मा चेद् दस्तमग्रहीत् ) ब्राह्मण जब उसका पतिग्रहण कर लेता है वा ( स एव पृथुषा पति ) वह भवेता ही उसका पति होता है ॥ ८ ॥

( ब्राह्मण एव पति न राज्ञ्य न वैश्य ) उस स्त्रीका ब्राह्मण ही पति होसकता है, क्षत्रिय सभवा वैश्य नहीं । ( सूर्य पञ्चम्य मानवेभ्यः तत् प्रभुवर्षति पति ) सूर्य पंचमा मनुष्यको यह कहता हुआ चलता है ॥ ९ ॥

भावार्थ— ब्रह्मचारी विद्या समाप्त करनेपर जनताकी सेवा करता हुआ जगद्गुरु संचार करता है, इसलिये उसके देवतास्य करते हैं । यह उक्त अन्वचारका यज्ञ रचना है और जिसका स्त्री होती है उसे उसका पति पशुचारा है ॥ ५ ॥

उप करनेवाले ऋषि और सब देवता लोग इस विषयोंके बारंबार कहते आये हैं कि, इस प्रकार भगाई गई गुणवती भयानक हानि करती है और दूसरे उक्त लोकमें भी बड़ी पीडा देती है ॥ ६ ॥

हाइने जिस समय बकाळमें बालकोंकी मृत्यु होती है और प्राणियोंका बहुत संहार होता है और आग्नेयमें वीर लोग एक दूसरेके सिर पीडने लगते हैं, तब समझना चाहिये कि यह पीनताम गुलदानीका विप गण पूर्वोक्त कथन कारण ही हो रहा है ॥ ७ ॥

ब्राह्मणसे निष्क दस पति स्त्रीक होते हैं, परंतु जिस समय ब्राह्मण किये स्त्रीका पतिग्रहण कर लेता है उस समय उस स्त्रीका वही एक पति होता है और बाई उस स्त्रीका दूसरा पति नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

ब्राह्मण ही एक पति है, क्षत्रिय और वैश्य नहीं, यह बात सूर्य ही पञ्चमनेस्य कहता है ॥ ९ ॥

पुनर्वै देवा अद्दुः पुनर्मनुष्या अद्दुः । राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्दुः	॥ १० ॥
पुनर्दायं ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम् । ऊर्जं पृथिव्या भ्रुवोर्ग्रायमुपासते	॥ ११ ॥
नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा शये । यस्मिन्नाष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचिन्त्या	॥ १२ ॥
न विकर्णः पृथुश्चिरास्तस्मिन्नेशमनि जायते । यस्मिन्नाष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचिन्त्या	॥ १३ ॥
नास्य क्षत्ता निष्क्रीवः सूनानांमेश्यप्रतः । यस्मिन्नाष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचिन्त्या	॥ १४ ॥
नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते । यस्मिन्नाष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचिन्त्या	॥ १५ ॥
नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डाकं जायते चिसम् । यस्मिन्नाष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचिन्त्या	॥ १६ ॥
नास्य पृश्निं वि दृहन्ति येऽस्या दोहमुपासते । यस्मिन्नाष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचिन्त्या	॥ १७ ॥

अर्थ— ( देवाः वै पुनः अद्दुः ) देवोंने पुनः दिवा, ( मनुष्याः पुनः अद्दुः ) मनुष्योंने पुनः दिवा है । ( सत्यं गृह्णानाः राजानः ) सत्यका पालन करनेवाले राजाश्रेय भी ( ब्रह्मजायां पुनः द्दुः ) माहात्म्यकी पुनः श्रेते हैं ॥ १० ॥

( देवैः निकिल्बिषं पृथ्वा ब्रह्मजायां पुनर्दायं ) देव षण्णदिक करके ब्राह्मणकी पुनः देकर ( पृथिव्याः ऊर्जं भ्रुवोः ) पृथिवीके बलका विभाग करके ( ऊर्ग्रायं उपासते ) वही प्रशंसा करते योग्य देवताकी उपासना करते हैं ॥ ११ ॥

( यस्मिन् राष्ट्रे अधिन्या ब्रह्मजाया निरुध्यते ) जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे माहात्म्यकी स्त्री बंधनमें डाली जाती है । ( अस्य शतवाही कल्याणी जाया तल्पं न आशये ) उसकी सी सतान उत्पन्न करनेवाली कल्याणकारिणी स्त्री भी विकारेपर न सोवे ॥ १२ ॥

जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे माहात्म्यकी बंधनमें डाली जाती है ( तस्मिन् येदमनि विकर्णः पृथुशिराः न जायते ) उस धरमें विशेष सुननेवाला और बड़े शिरवाला पुत्र उत्पन्न नहीं होता ॥ १३ ॥

जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे माहात्म्यकी बंधनमें डाली जाती है, ( अस्य क्षत्ता निष्क्रीवः सूनानां अप्रतः न पति ) उस राष्ट्रका वीर सुवर्णालंकार गलेमें धारण करके लड़कियोंके सम्मुख नहीं आता ॥ १४ ॥

जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे माहात्म्यकी बंधनमें डाली जाती है ( अस्य श्वेतः कृष्णकर्णः धुरि युक्तः न महीयते ) उस राष्ट्रमें श्वेतवर्णका घोडा पुरामें युक्त होकर महत्त्वको प्राप्त नहीं होता ॥ १५ ॥

जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे माहात्म्यकी प्रतिबंधित होती है ( अस्य क्षेत्रे न पुष्करिणी ) उसके क्षेत्रमें कमलोंवाले तालाब नहीं होते और ( चिसं आपण्डिकं न जायते ) कमलोंमें पीर भी नहीं होता ॥ १६ ॥

जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे माहात्म्यकी स्त्री बंधनमें डाली जाती है, उस राष्ट्रमें ( ये अस्याः दोहं उपासते ) को इसको दुहनेके लिये धैर्यते हैं तो वे ( अस्मै पृश्निं न दृहन्ति ) इसके लिये दूध नहीं देतीं ॥ १७ ॥

भावार्थ— देव, मनुष्य और सत्त्ववाक्य राजा लोग गुरुपत्नीको सुरक्षित गुरुके प्रति पहुंचते हैं ॥ १० ॥

अहां निष्पापतासे गुरुपत्नीको सुरक्षितकारके साथ गुरुपुत्रके प्रति पहुंचाया जाता है, वहां भूमिका सत्य बदला है और यश फैलता है ॥ ११ ॥

परंतु जिस राष्ट्रमें गुरुपत्नी पर प्रतिबंध लगाये जाते हैं, उस राष्ट्रमें मानो कोई सुवासिनी को विकारे पर सुरक्षित नहीं सो सकती ॥ १२ ॥

जिस राष्ट्रमें गुरुपत्नीका अपमान होता है, उस राष्ट्रमें वज्रम पुत्र नहीं उत्पन्न हो सकते ॥ सुवर्णके सम्पूर्ण 'भारण करके कोई वीर यादिकारकोके साथ श्रेय नहीं सकता ॥ श्वेतवर्णके घोड़ेको कोई जोत नहीं सकता ॥ कमलपुष्प तालाब प्रचलित नहीं होते ॥ गीयें दूध नहीं देतीं ॥ १३—१७ ॥

नाश्यं धेनुः कल्प्याणी नानुद्धान्तसहदे धुरम् । विज्ञानिर्षत्रं ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया ॥ १८ ॥

अर्थ— ( विज्ञानिः ब्राह्मणः ) खीरहित होकर ब्राह्मण ( यत्र रात्रिं पापया यस्तति ) जहाँ रात्रियों पापबुद्धिसे रहता है, ( अस्य ) उसके राष्ट्रमें ( कल्प्याणी धेनुः न ) कल्पान करनेवाली धेनु नहीं होती और ( न अनुद्धान् धुरं सहते ) न वैद धुराको सहता है ॥ १८ ॥

भावार्थ— जिस राष्ट्रमें गुरुवलीकी मानदानी होती है और उस कारण धर्मवली न होनेसे गुरु अकेला ही अस्त होकर श्रेष्ठकी भावना मनमें धारण करकेसोता है, उस राष्ट्रमें वी भी कल्पान नहीं करती और वैद भी कार्य करनेवाला नहीं होता ॥-१८ ॥

## छीकें पातिवत्यकी रक्षा

### खीचारिण्यकी रक्षा

खीचारिण्यकी रक्षा करनी चाहिये, जिस राष्ट्रमें खीचारिण्यकी रक्षा की जाती है और सब पुरुष खीके चारिण्यकी रक्षा करनेके लिये तत्पर रहते हैं उस राष्ट्रकी उन्नति होती है । परन्तु जिस राष्ट्रमें खीचारिण्यकी रक्षा नहीं होती, वह राष्ट्र पतित होता है । सारांससे इस सूक्तका यह उपदेश है ।

इस सूक्तमें ब्राह्मणकी वी क्षत्रियके द्वारा भर्गार्थ जानेसे राष्ट्रपर कितने अनर्थ गुरुते हैं, इसका वर्णन है । ' यर्णान्तां ब्राह्मणो गुरुः । ' अर्थात् सब वर्णोंको विद्यादान देनेवाला सबका अध्यापक अथवा ' गुरु ' ब्राह्मण है । इसलिये ब्राह्मणकी वी सबकी ' गुरुपत्नी ' होती है । जिस प्रकार ' ब्राह्मण ' सब पुरुषोंको ज्ञानोपदेन देता हुआ सर्वत्र प्रमाण करता है, उसी प्रकार ' ब्राह्मणी ' भी सब क्षत्रियोंको धर्मका उपदेश करती हुई प्रमाण करती है । गुरुवलीका यह कर्तव्य ही है । यह कर्तव्य करनेके लिये जब गुरुवनी चाहत प्रमाण करती है, तब उसके चारिण्यका रक्षण सब लोग करें । कोई भी उसको न रोके और न उसका किमी प्रकार अपमान करें ।

जो गुरुवलीका अपमान करनेका साहस करेंगे, वे अन्य क्षत्रियोंका अपमान करनेसे पीछे नहीं हटेंगे, वह भाव यहाँ है । वास्तवमें सभी क्षत्रियोंके चारिण्यकी रक्षा होनी चाहिये । क्योंकि इसी पर राष्ट्रका गौरव अवलंबित है । जिस राष्ट्रमें गुरुवलीका भी चारिण्य अथवा पातिवत्य मुग्धोंके अत्याचारके कारण मुरझित नहीं रहता, यहाँकी अन्य क्षत्रियोंकी बुद्धिसाक्षर वर्धन ही बचा होसकता है । इसलिये सब क्षत्रियोंके चारिण्यके उत्कर्षकी रक्षित ही इस सूक्तमें कहा है कि सब

जनता गुरुवलीका मान करें । यह सूक्त आकाशस्थ तारोंकी गतिपर रचा हुआ अलंकार है, इसका स्पष्टीकरण अब देखिये—

### बृहस्पति और तारा

आकाशमें बृहस्पति नामका एक सितारा है, जिसको ' गुरु ' भी कहते हैं । यह मसिद्ध सितारा है, जो रात्रिके समय दृशता है । आकाशस्थ अन्य नक्षत्रोंमें ' तारा अथवा तारका ' नामका एक नक्षत्र है, रूपकसे समझा जाता है कि यह ' गुरु ' की ' धर्मवनी ' है, अर्थात् बृहस्पतिकी पत्नी अथवा है । यहाँ धर्मवनी कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि यह बृहस्पति इस नक्षत्रमें बहुत देरतक और इसी पटुत ममीप रहता है । इसलिये इनकी भावसे पतिपत्नीकी कल्पना की है । बृहस्पतिकी ' मन्त्रप्रधानि ' भी दूसरा नाम वेदमें है । इसका अर्थ ' ज्ञानी गुरु ' होनेसे इसका वर्ण ब्राह्मण माना गया, अर्थात् इसकी धर्मवली होनेसे तारा भी ' ब्राह्मणी, गुरुवनी अथवा मन्त्रप्रधानी ' कहलाती है । इस प्रकार यहाँ ब्राह्मण परिवारकी कल्पना की गई है । यह बृहस्पति देवोंका गुरु है और जब आकाशमें देवोंकी गमना रात्रिके समय लगती है, तब समय यह देव गुरु उमसे विराजते हैं और मानो, देवोंको सुयोग्य सहाइ देते हैं ।

इसी प्रकार राजा सोम भी देवसमाजमें उपस्थित होये है । इस समय ये एक क्षत्रिय राजा माने गये हैं । ये क्षत्रिय राजा अपने राज्यधिकारके धर्ममें अनेक तारागणोंके संकेपित होते हैं अर्थात् अनेक क्षत्रियोंसे संबंध करते हैं । इस अर्थधारके कारण उनको क्षत्रिय ही कहा है । इस अर्थधारके कारण राजा सोम ( अन्द्रमा ) क्षीय होते जाने हैं और अमा

राज्याकी राजीमे तो इनकी हकूत बहुत खराब होती है। उस समय कुछ उपचारके करनेपर मुकदमामें कुछ सुध होने लगते हैं। ऐसी अवस्थामें गुलामकी ताराका दर्शन होता है और उसका दर्शन होते ही क्षयी राजाका मन चञ्चल हो जाता है। राजा इसी प्रकार जब अपने शासनाधिकारके कलम उन्मत्त होकर गुलामकी गौरव और आदर न करता हुआ उसका धर्षण करता है और इस प्रकार क्षीके पातिवत्यका नाश करनेके कारण जो पाप होता है, उस पापके कारण राज्यमें बड़ा क्षोभ उत्पन्न होता है और सब प्रजा क्रुद्ध हो जाती है। अहां गुलामकी इस प्रकार अपमान होता है, यहां अन्य क्षियोंके पातिवत्यका क्या होना होगा, ऐसा विचार करके अत्याचारी राजाका विरोध उपस्थित ज़रि और सदस्य देव करने लगते हैं। राजा अपने धर्ममें आकर विरोधक ज़रियों और देवोंकी दयातेका पाप करता है, इससे प्रजामें और अधिक क्षोभ उत्पन्न होता है। तबभ्रातृ राजा सोम देसता है कि उसकी प्रजा प्रतिकूल हो गई है और उसकी राजपते पदप्युत करनेका विचार करती है, इसपर प्रजाके अधिक दवानैके लिये असुर सेनाकी सहायता लेता है और विदेशी असुर सेनासे अपनी प्रजाकी दयानेकी चेष्टा करता है। इससे प्रजा और अधिक क्षुब्ध होती है और बड़ी लड़ाई छिन्ती है। दोनों औरका बहुत संहार होनेपर दोनों पक्षोंकी आपसमें कुछ सलाह होती है। इस संबंधमें अनुसार राजा सोम गुलामकी वापस करता है। उस समय वरण और मित्र साथ रहते हैं और अग्नि मार्गदर्शक होता है। इस प्रकार चन्द्रमार्ग करके एगकर इस ज़रि कर्मका फल उसको मिलता है।

इस समय सोम और ज़रिदे सगमसे छुपकी उत्पत्ति होती है। तारा अग्नितापसे छुद होकर फिर अपने घर पतुंचती है। इस प्रकारकी कथा बहुत पुराणमें है। इस विस्तृत कथाका कुछ मूल इस सूक्तमें दिखाई देता है। जिस प्रकार वृषकी कथा मेघ और सूर्य इसपर रूपकांकार मानकर रची है, उसी प्रकार चंद्रमा, ताराका, गुरु आदिके उपर यह बोधप्रद अर्थकार रखा है। वेदमें इस प्रकारके अनेक अर्थकार हैं और उनसे अनेक प्रकारका बोध प्राप्त होता है।

यहां भी यह बोध मिलता है कि कोई राजा अपने अधिकारके बदसे उन्मत्त होकर क्षियोंपर अत्याचार न करे, यदि करेगा, तो उसको परमेधरके राज्यमें बली प्रकार दण्ड मिलेगा, जैसा कि सोम राजाको उन्मत्त करके कलंकित होना पड़ा

था। उसका अपमान हुआ, कलंकित होना पड़ा, सेयी होना पड़ा, राजविद्रोह हुआ, राज्यमें बलवा हो गया और न जाने क्या क्या आपसियां आईं। यदि इतने समर्थ सोम राजाकी यह अवस्था हुई, तो उसके बहुत छोटे पातिव राजाकी क्या अवस्था होगी? और यदि राजाकी ऐसी दुर्दशा होगई तो कोई प्रजाजब यदि ऐसा हुकूम करेगा तो उसकी किलती दुर्दशा होगी, ऐसा विचार मनमें लाकर हरएक पुरुषके क्षीके पातिवत्यकी रक्षा करनी चाहिये। केवल गुलामकी ही पातिवत्यकी रक्षा यहां अभीष्ट नहीं है, प्रत्युत संपूर्ण क्षी-जातिके पातिवत्यकी रक्षाका यहां उपदेश है। पुरुरली यहां केवल उपलक्षण मात्र है।

जिस राज्यमें क्षियोंकी पातिवत्यरक्षा अच्छी प्रकार होती है और क्षीके धर उपर मुलपूर्वक भ्रमण करनेमें क्षीको किसी प्रकार भी अपमानकी संभावना नहीं होती, वह राज्य अत्यंत सुरक्षित होता है—

न दूताय प्रवेया तस्य पया

राष्ट्रे शुपितं क्षत्रियस्य ॥ (मं ३)

'वह क्षी दूतके द्वारा ले जाने योग्य नहीं होती, अर्थात् किसीका दूत इस प्रकारका भयानक कुकर्म करनेको जिस राज्यमें साहस नहीं कर सकता, वह क्षत्रियका राज्य सुरक्षित रहता है।' अर्थात् जिस राज्यमें क्षीके उपर अत्याचार होते हैं वह राज्य किसी सज्जनके रहनेके लिये योग्य नहीं होता है।

'जिस राज्यमें क्षियोंपर अत्याचार होते हैं उस राज्यमें सम्पत्ति भी होती है, प्राणी अकारणमें मरते हैं, धीर लोग आपसमें लड़ते मिलते हैं।' (मं. ७) इसलिये क्षियोंकी सुरक्षितता अवश्य होनी चाहिये।

क्षत्रिय, वैश्योंमें नियोगके कारण और यज्ञोंमें पुनर्विवाहके कारण एकके पश्चात् दूसरा इस प्रकार इस तक पतिव्योकी संख्या हो सकती है। परंतु ब्राह्मणोंके लिये तो न नियोगकी प्रथा है और ना ही पुनर्विवाहकी प्रथा उचित समझी जाती है, इसलिये ब्राह्मणोंका ब्राह्मणके साथ एकबार विवाह हो जाए तो उसका किसी भी कारण दूसरा पति नहीं हो सकता। क्योंकि ब्राह्मणोंको भोगमें फंसना नहीं चाहिये। हत्यादि विपय आश्रय मंथमें देखने योग्य है। वेध मंत्रोंमें छोपर अत्याचार करनेवाले राज्यकी जो दुर्दशा होती है उसका वर्णन है। इसलिये उनके अधिक विचारकी आवश्यकता नहीं है।

इस सूक्तमें कई प्रकारके बोध प्राप्त होते हैं। सबसे प्रथम देने योग्य बोध यह है कि राजाको अपना आचरण बहुत ही

विद्योप रक्षणा चाहिये। बहुत श्रियां करना और दूसरोंकी श्रियोंके साथ तुलना करना बहुत ही बुरा है। बहुपत्नी व्यवहार करनेसे सबसे पहिला जो कष्ट होता है वह मल्लचर्य नाम और बीर्यनाशके कारण क्षयरोग है। शरीरमें जबतक भरपूर बीर्य रहता है तबतक क्षयरोग हो ही नहीं सकता। बीर्य दोष उत्पन्न होनेसे क्षयरोग होता है और अन्तमें उससे मृत्यु निश्चित है। राजका आचार व्यवहार देखकर अन्य लोग उसी प्रकार आचार करते हैं, राजाओंके ऊपर यह भारी जिम्मेवारी है। राजाके विगड जानेसे राष्ट्रके लोग विगड गये हैं और इस प्रकार राष्ट्रका नाश होता है। मत बड़े लोगोंको अपने आचार व्यवहार धर्मोनुकूल ही करने

चाहिये। राजाके पाम जो अधिकार होता है उसका प्रभेदमें अपने अधिकारका दुरुपयोग करना राजाको योग्य नहीं है। प्रजासे कल्याणका उपयोग करनेके लिये राजां पाम अधिकार दिया होता है। इस अधिकारका उपयोग अपने स्वार्थ भोग भोगनेके लिये करनेसे ही राजा दोषी होता है। इसलिये राजाको उचित है कि वह सदा समझे कि मेरा निरीक्षण कलेवाला परमेश्वर है, इसलिये मुझे कोई अकार्य करना योग्य नहीं है। इस प्रकार विचार करते राजा अपना आचार व्यवहार सुधारे और अपने योग्य प्रबंधसे संपूर्ण राष्ट्रका उद्धार करे।

## काम

### कां. ९, सूक्त २

( मति - अपरां । देवता - काम । )

सपत्नहनमृषमं घृतेन कामं शिषामि हविषान्वयेन ।

नीचेः सपत्नान्ममं पादय त्वमभिष्टुतो महता वीर्येणि

॥ १ ॥

यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन्मे चमस्ति नाभिनन्दति ।

तदुष्यन्त्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोदुहं भिदेयम्

॥ २ ॥

अर्थ— ( सपत्नहनं अपमं कामं ) शत्रुको नाश करनेवाले बलवान् कामको मैं ( हविषा आन्वयेन घृतेन शिषामि ) इति वी भाषिये शिषित करता हूँ । ( महता वीर्येण अभिष्टुतः ) बड़े पराक्रमसे प्रशंसित होकर ( न्यं ) त् ( मम सपत्नान् नीचेः पादय ) मेरे शत्रुओंको नीचे गिरा दे ॥ १ ॥

( यत् मे मनसः न प्रियं ) जो मेरे मनको प्रिय नहीं है, ( यत् मे चक्षुषः प्रियं न ) जो मेरी आँसोंको प्रिय नहीं है, ( यत् मे चमस्ति ) जो मेरा तिरस्कार करता है और ( न अभिनन्दति ) मुझे आनन्द नहीं देता है, ( तत् तुष्यन्त्यं ) वह बुरा व्यस्र ( सपत्ने प्रतिमुञ्चामि ) शत्रु ऊपर भेजता हूँ ( अहं कामं स्तुत्या ) मैं कामकी स्तुति करके ( उत् भिदेयं ) उद्धत होता हूँ ॥ २ ॥

भाष्यार्थ— काम ( संकल्प ) बड़ा बलवान् है और शत्रुका नाश करनेवाला है, उसको प्रजासे शिषित करना चाहिये। बड़ बड़े वीर्यसे प्रशंसित होने पर शत्रुओंको नीचे गिराना है ॥ १ ॥

जो मेरे मन और अन्य इंद्रियोंको अप्रिय है, जो मुझे आनन्दित नहीं करता, जो मेरा तिरस्कार करता है, वह बुरा व्यस्र मेरे शत्रुकी ओर जावे। मैं इस संकल्पगणिक द्वारा उद्धत होता हूँ ॥ २ ॥

दुष्प्रस्य काम दुरितं च कामाप्रजस्तामस्वगतामर्षतिम् ।

उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन्गो अस्मभ्यंगहृणा चिकित्सात्

॥ ३ ॥

नुदस्त्रं कामं प्र पुंदस्य कामावतिं यन्तु मम ये सपत्नाः ।

तेषां नुत्तानामघमा तमांस्यग्ने वास्तूनि निर्देह त्वम्

॥ ४ ॥

सा वै कामं दुहिता धेनुर्हृष्यते यामाहुर्वाच क्रुर्यां विराजम् ।

तर्था सपत्नान्परि वृद्धिं ये मम पर्यंतान्प्राणः पञ्चो जीर्यं वृणक्तु

॥ ५ ॥

कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोर्वलेन सवितु सवेन ।

अग्नेर्होत्रेण प्र पुंदे सपत्नाहृन्मीव नावंमुद्रकेषु धीरः

॥ ६ ॥

अर्षधो वाजी मम कामं उग्रः कृणोतु महामसपत्नमेव ।

विर्षे देवा मम नाथं भवन्तु सर्वे देवा हवमा येन्तु म इमम्

॥ ७ ॥

अर्ष— हे ( उग्र काम ) शलवान् काम । २ ( ईशान तस्मिन् प्रतिमुञ्च ) सबका स्वामी है, अतः ( दुष्प्रस्य ) दुष्ट स्वाम, ( दुरितं च ) पाप और ( अप्रजस्ता ) सत्तान न होना, ( अ-स्त-गता ) निर्धन अवस्था, ( अर्षति ) आपत्ति इन सबको, उत्तर छोड़ कि ( य अस्मभ्य गहृणा चिकित्सात् ) जो हम सबको पापनय विपत्तिमें छानेका विचार करता है ॥ ३ ॥

हे काम ! ( नुदस्त्र ) उनको दूर कर, हे काम ! उनका ( प्रपुंदस्य ) हटा दे, ( ये मम सपत्ना ) जो मेरे शत्रु हैं वे ( अर्षति यन्तु ) आपत्तिको प्राप्त हों । हे अग्ने ! ( अघमा तमांसि नुत्ताना ) गार्ह भयकारमें भेजे हुए उन शत्रुओंके ( वास्तूनि त्व निर्देह ) धरोका दू जला दे ॥ ४ ॥

हे काम ! ( सा धेनु ते दुहिता उच्यते ) यह धेनु तेरी दुहिता नहीं जाती है, ( या पञ्च विराज याच जातु ) निराको करि लोग विशेष तेजस्वी वाणी कहते हैं । ( ये मम ) जो मेरे शत्रु हैं उन ( सपत्नान् तया परि वृद्धिं ) शत्रुओंको उससे दूर हटा द । ( एतान् ) इन शत्रुओंको ( प्राण पशय जीवन् परि वृणक्तु ) प्राण, पशु और जानु छोड़ देवे ॥ ५ ॥

( इय ) मेरे ( उदधेसु शशी धीर नाथ ) जलम धैरवान धीवर नौकाको चलाता है, उसी प्रकार ( कामस्य इन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञ ) काम, इन्द्र वरुण, राजा और ( विष्णो वलेन सवितु सवेन ) विष्णुक बल और सवितानी प्रणालस तथा ( अग्ने होत्रेण ) अग्नि हवनस में ( सपत्नान् प्रपुंदे ) शत्रुओंको दूर करता हू ॥ ६ ॥

( उग्र वाजी नाम ) प्रवासी शलवान् काम ( मम अध्यक्ष ) मेरा अधिपति है । यह ( महा असपत्न एव कृणोतु ) मुझे सत्तरहित करे । ( विर्षे देवा मम नाथ भवन्तु ) सब देव मेरे नाथ हों, ( सर्वे देवा मे इम हय आवन्तु ) सब देव मेरे इस हयक स्थानमें आवें ॥ ७ ॥

भाषार्थ— दुष्ट स्वाम, पाप, सत्तान न होना, चरित्र, आपत्ति आदि सब हमारे उन शत्रुओंको प्राप्त हों, जो कि हमें पापमूलक विपत्तिमें छानेका विचार करते हैं ॥ ३ ॥

काम हमारे शत्रुओंको दूर हटा देने, उन शत्रुओंको विपत्ति धरे और उग्र म शत्रु गार्ह भयकारमें भेजे, सब आदि उनक धरोकी चला देवे ॥ ४ ॥

सब करि लोक कहते हैं कि वाणी कामकी धुरी है । इस वाणीक द्वारा हमारे सब शत्रु दूर हों और उनको प्राण, पशु और जानु छोड़ देवे ॥ ५ ॥

जिस प्रकार अताथ समुद्रम नौकाको धावर लोग चलाते हैं, उसी प्रकार देवोंकी शक्तिसे मैं शत्रुओंको इस भयसागरमें प्रेरित करता हू ॥ ६ ॥

शलवान्, प्रवासी काम मरा अधिपति है । यह मुझे शत्रुहित करे, देव मेरे स्वामी हों, सब देव मेरे पशुमें आवें ॥ ७ ॥



इदमाज्यं धृतवर्जजुपाणाः कामज्येष्ठा इह मादयधर्मम् । कृष्यन्तो महामसपत्नमेव ॥ ८ ॥

इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा नीचैः सपत्नान्मम पादयाथः ।

तेषां पञ्चानामप्यथा तमांस्त्रे वास्तुनि अनुनिर्देह त्वम् ॥ ९ ॥

जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्त्रे पादयैनात् ।

निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे मा ते जीविषुः कतमन्वनाहः ॥ १० ॥

अर्धधीत्कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमकरन्मखमेषुतुम्

महां नमन्तां प्रदिशुश्चतस्रो महां पदुर्वीधुतमा वहन्तु ॥ ११ ॥

तेऽधराज्ञः प्र प्लवन्तां छिन्ना नीरिव घन्धनात् । न सार्थकप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥ १२ ॥

अर्थ— दे ( कामज्येष्ठाः ) कामको भेद माननेवाले सप देवो । ( इदं धृतवत् आज्यं जुपाणाः ) इस धृतवत् हवनका सेवन करते हुए ( इह मादयधर्मम् ) महा हर्षित हो जाओ और ( महां असपत्नं एव कृष्यन्तः ) मुझे शत्रुद्वित करे ॥ ८ ॥

दे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि ! हे काम ! तुम सब ( सरथं हि भूत्वा ) समान रथपर चढ़नेवाले होकर ( मम सपत्नान् नीचैः पादयाथः ) मेरे शत्रुओंको नीचे गिराओ । ( तेषां पञ्चानामप्यथा तमांसि पञ्चानां ) उस शत्रुओंके गाद बन्धकारमें पड़नेपर वे मरे ! ( त्वे वास्तुनि अनुनिर्देह ) तू उनके घरोंको जला दे ॥ ९ ॥

( ये मम सपत्नाः ) जो मेरे शत्रु हैं, उनका ( त्वं जहि ) तू नाश कर । तथा ( एनान् अन्धा तमांसि अप्य पादय ) इनको गहरे बन्धकारमें गिरा दे । वे ( सर्वे निरिन्द्रियाः अरसाः सन्तु ) सब इंद्रियहीन और रसहीन हों, ( ते कतमन्वन अहः मा जीविषुः ) वे एक भी दिन जीवित न रहें ॥ १० ॥

( मम ये सपत्नाः ) मेरे जो शत्रु हैं उनका ( कामः अर्धधीत् ) शस्त्रोंके बंध गिरा दे । तथा उनमें ( महां पदुर्वीधुतुं उरुं लोकमकरन्तु ) मुझे चढ़नेके शिष्ट विद्वत् स्थान दिया है । ( चतस्रः प्रदिशाः महां नमन्तां ) चारों दिशाओं में समुद्र बन्ध हों । ( पदुर्वीधुः महां धृते आरहन्तु ) तू भूमिके विभाग मेरे पाप धृत वे भारे ॥ ११ ॥

( घन्धनात् छिन्ना नीः इव ) बन्धनसे कटी हुई नीहाके समान ( ते अधराज्ञः प्र प्लवन्तां ) वे मारे चढ़ते मारे । ( सार्थकप्रणुत्तानां पुनः निवर्तनं न अस्ति ) चारोंसे भगाये शत्रुओंका फिर पास आना नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

भाषार्थ— काम जिनमें भेद है ऐसे सब देव इस धर्म काकर इस हवन द्वारा मानेदित हो और मुझे शत्रुद्वित करारें ॥ ८ ॥

हे इन्द्र, अग्नि और काम ! तुम सब मेरे शत्रुओंको नीचे गिरा दो । वे बन्धकारमें मारे और पञ्चान् अग्नि कर्मोंको जलावे ॥ ९ ॥

मेरे शत्रुओंका तू नाश कर । वे गाद बन्धकारमें गिर जायें । वे सब इंद्रियहीन और रसहीन बनें और एक दिन भी जीवित न रहें ॥ १० ॥

इस कामसे मेरे शत्रु दूर हो गये और मुझे बड़ा कार्यक्षेत्र प्राप्त हुआ । चारों दिशाओंमें रहनेवाले शीघ्र मेरे सामने मर हो चुके हैं और सब पृथ्वी मेरे अधिकारमें आ चुकी है ॥ ११ ॥

बन्धनसे रहित हुई नीहा जैसे महासागरमें निधर गये रथर भरकटी हैं, जैसे ही मेरे शत्रुओंकी आज्ञा लपटा हो गई है, जो अब कभी अपनी पूरे स्थितिमें नहीं आ सकते ॥ १२ ॥

अग्निर्वैश्व इन्द्रो यवः सोमो यवः । यवयावानो देवा यावयन्त्वेवम् ॥ १३ ॥	
असंवेणीरश्वरतु प्रणुत्तो द्वेष्यो मित्राणां परिवर्ग्यः स्वानाम् ।	
उत पृथिव्यामव स्पन्ति विद्युत् उग्रो वो देवः प्र मृणत्सपत्नान् ॥ १४ ॥	
च्युता चेष्यं पृहत्पच्युता च विद्युद्भिर्मति स्तनयितृंश्च सर्वान् ।	
उद्यसादित्यो द्रविणेन तेजसा नीचैः सपत्नान्नुदतां मे सहस्वान् ॥ १५ ॥	
यत्तं काम शर्म त्रिवरुणमुद्भु मय्य वर्म विततमनविष्याध्वं कृतम् ।	
तेन सपत्नान्परि वृद्धग्धि ये मम पपेनान्प्राणः पशुवो जीवनं वृणक्तु ॥ १६ ॥	
येन देवा असुरान्प्राणुदन्त येनेन्द्रो दस्युनघमं तमो निनाय ।	
तेन त्वं काम मम ये सपत्नान्स्तानस्माल्लोकात्प्र णुदस्व दूरम् ॥ १७ ॥	

अर्थ— (अग्निः यवः) अग्नि हयनेवाला है, (इन्द्रः यवः) इन्द्र हयनेवाला है और (सोमः यवः) सोम भी हयनेवाला है । (यवयावानः देवाः) हयनेवालेको भी हयनेवाले देव (पणं यावयन्तु) इस शत्रुको दूर करें ॥ १३ ॥

(प्रणुत्तः द्वेष्यः) भगवा हुआ शत्रु (असर्ववीरः) सर्ववीरोंसे रहित होकर (स्वानां मित्राणां परिवर्ग्यः) अपने मित्रोंके द्वारा भी त्यागा हुआ (चरतु) विचरे । (उत पृथिव्यां विद्युत्) अथस्थान्ति) और प्रकाश देनेवाली बिजलिया पृथिवीपर आयेगी । (यः उग्रः देवः) आपका यह प्रतापी देव (सपत्नान् प्रमृणत्) शत्रुओंका माग करे ॥ १४ ॥

(च्युता च अच्युता च इयं पृहती विद्युत्) विपलित अपरा अरिपलित हुई बड़ी विद्युत् (सर्वान् स्तनयितृन् च धिर्मति) सब गर्जना करनेवालोंको धारण करती है । (द्रविणेन तेजसा उग्रम् सहस्वान् आदित्यः) धन और तेजसे साथ उग्रको प्राप्त होनेवाला बलवान् स्यं (मे सपत्नान् नीचैः नुदतां) मेरे शत्रुओंको नीचोंको और भागे ॥ १५ ॥

हे काम ! (यत् ते त्रिवरुणं उद्भुम्) जो तेरा सोमों औरसे रक्षक वरुण शक्तिवाला (विततं ब्रह्म वर्म) कैलास हुआ जानका कवच (अनतिव्याध्यं कृतं) शस्त्रोंसे वेधनेके अयोग्य और (शर्म) सुखदायक है (तेन) उससे (ये मम) जो मेरे शत्रु हैं उन (सपत्नान् परिवृद्धग्धि) शत्रुओंको दूर कर । (पनान् प्राणः पशवः जीवनं परि वृणक्तु) इनको मार, पशु और आयु छोट देवे ॥ १६ ॥

(येन देवाः असुरान् प्राणुदन्त) जिससे देव असुरोंको दूर करते रहे, (येन वस्युन् इन्द्रः अधमं तमः निनाय) जिससे शत्रुओंको इन्द्रे गदरे अन्धकारमें डाल दिया, हे काम ! (तेन) उससे (मम ये सपत्नाः) मेरे जो शत्रु हैं (तान् सपत्नान्) उन शत्रुओंको (त्वं अस्मात् लोकात्) तू इस लोकसे (दूरं प्रणुदस्व) दूर भगा ॥ १७ ॥

भावार्थ— सब देव मेरी सहायता करें और मेरे शत्रुओंको भगा दें ॥ १३ ॥

हमारे पराक्रमसे भगवे हुए शत्रु अब पारो और मटक रहे हैं, न उनके पास कोई धीर है, न उनके पास कोई मित्र हैं, न उनके लिये कोई परिवार रहा है । सब देव मेरी सहायता करें और शत्रु मर हों ॥ १४ ॥

यह विद्युत् और स्यं अर्थात् इन्में जो देव हैं वह मेरे शत्रुओंको दूर भगा दें ॥ १५ ॥

इस कामका बड़ा रक्षक जानमय कवच है यह सब शत्रुओंका देनेवाला है । इसको मैं पहनता हूँ, जिससे शत्रुके साथ मेरा वेध नहीं कर सकेगे और सब शत्रु प्राण, पशु और आयुसे रहित हो जायेंगे ॥ १६ ॥

यथा देवा असुरान्प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यूनघ्न तमो यथावे ।	
तथा त्व काम मम ये सुपन्नास्तानस्मात्प्रलोकान् पुंस्व दुरम्	॥ १८ ॥
कामो जज्ञे प्रथमो नैन देवा आपुः पितरो न मर्याः ।	
तत्स्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्त्वस्मै ते काम नम इच्छामि	॥ १९ ॥
यावती चावापृथिवी वरिष्णा यावदापः सिष्यदुर्याधदुभिः ।	
तत्स्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्त्वस्मै ते काम नम इच्छामि	॥ २० ॥
यावतीदिशः प्रदिशो विपृचीर्यातीराशा अभिचक्षणा दिवः ।	
तत्स्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्त्वस्मै ते काम नम इच्छामि	॥ २१ ॥
यावतीभृङ्गा जतुः कुरुरवो यावतीर्विषा वृक्षसर्प्यो यभुवुः ।	
तत्स्त्वमसि ज्यायान्विश्वहा महांस्त्वस्मै ते काम नम इच्छामि	॥ २२ ॥

अर्थ— (यथा देवा असुरान् प्राणुदन्त) जिस रीतिल देवोंने असुरोंको हत्या (यथा इन्द्र दस्यून अधम तम यथावे) जिस प्रकार इन्द्रने शत्रुओंको गहरे मन्त्रकारमें डाला, (तथा त्व काम) उस प्रकार है काम 'तु (मम ये सपत्ना) मेरे ने शत्रु हैं (तान् अस्मात् प्रलोकान् दूर प्रणुदस्व) उनके इस लोकस दूर हटा दे ॥ १८ ॥ (काम प्रथम जज्ञे) काम सबसे पहिले उत्पन्न हुआ (देवा पत्न न आपु) देवोंने इसको प्राप्त नहीं किया और (पितर मर्या न) पितरोंको और मर्याको भा बह प्राप्त नहीं हुआ । (तत त्व ज्यायान् असि) मत तू श्रेष्ठ है और (विश्वहा महान्) सदा महान् है । हे काम ! (तस्मै ते इत् नम इच्छामि) उस गुणे मैं नमस्कार करता हू ॥ १९ ॥

(यावती वरिष्णा चावापृथिवी) जिसकी विस्तारसे पृथिवी और पृथिवी बढी है, (यावत् आप सिष्यदु) जहातक जब फैला हुआ है, (यावत् अति) जहातक अभि ऐसी हुई है, (तत त्व ज्यायान् असि) उससे भी तू बडा है और (विश्वहा महान्) सदा पडा है । हे काम ! (तस्मै ते इत् नम इच्छामि) उस गुणे मैं नमस्कार करता हू ॥ २० ॥

(यावती दिश प्रदिश विपृची) जहातक दिशाएं और उपदिशाएं फैली हुई हैं और (यावती दिव आभि चक्षणा आशा) जहातक गुणोक्ता प्रकाश फलनेवाली दिशाएं हैं, (तत त्वे) उनसे भी तू बडा और सदा महान् है, हे काम ! मैं उस गुणको नमस्कार करता हू ॥ २१ ॥

(यावती भृङ्गा जतुः कुरुरवो यथा) तथा अन्य काटनेवाले काटे और (वृक्षसर्प्यो यभुवु) वृक्षपर चढ़नेवाले सर्प हैं (तत त्वे) उनसे तू बडा और सदा श्रेष्ठ है, हे काम ! उभ गुणे मैं नमस्कार करता हू ॥ २२ ॥

भावार्थ— जिस शक्तिले देवोंने असुरोंका और इन्द्रने दस्युओंका पराभव किया, उस शक्तिल मैं अपने शत्रुओंका इस स्थानसे भगा दूंगा ॥ १८-१८ ॥

काम सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ । देव, पितर और मर्या उसका पश्चात् श्रेष्ठ हुए । मत काम सबसे श्रेष्ठ है । इस लिये मैं उसको नमन करता हू ॥ १९ ॥

जिसका पृथ्वीका विस्तार है, जहातक जब फैला हुआ है, जहातक प्रकाशका व्यापि है, दिशाएं जहातक फैली हुई हैं पशुपती जहातक दोबले हैं उन सबकी क्यासिज कामकी क्यापकता बडाकर है ॥ २०-२२ ॥

ज्यायांशिविपुतोऽसि तिष्ठतो ज्यायांस्तनुद्रादसि काम मन्यो ।

तत्स्त्वमसि ज्यायांशिविपुतो महांस्तस्मै ते काम नम इत्कुणोमि

॥ २३ ॥

न वै वातश्चन काममाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः ।

तत्स्त्वमसि ज्यायांशिविपुतो महांस्तस्मै ते काम नम इत्कुणोमि

॥ २४ ॥

यातेतं शिवास्तन्वः काम मद्रा यामिः सत्यं भवति यद्वृणीषे ।

तामिष्टमस्मौ अभिसंविंशस्त्रान्यत्र पापीरपं बेश्या धियः

॥ २५ ॥

अर्थ— हे काम ! हे ( मन्यो ) उल्काह ! तू ( निमित्ततः ज्यायान् ) पलक गारुडवासीसे बडा, ( तिष्ठतः ज्यायान् ) उडरनेवासीसे भी बडा और ( समुद्रात् असि ) समुद्रसे भी बडा है । ( तत त्वं० ) उनसे तू बडा और बडा भेष्ट है, हे काम ! उस तुझे मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥

( यागः य न कामं न आप्नोति ) वायु भी कामको नहीं प्राप्त कर सकता, ( न अग्निः, सूर्यः न उत चन्द्रमाः ) अग्नि, सूर्य और चन्द्र इनमेंसे भी कोई उसको प्राप्त नहीं कर सकता । ( ततः त्वं० ) उनसे तू बडा और बडा भेष्ट है, हे काम ! उस तुझे मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २४ ॥

हे काम ! ( याः ते दियः भद्राः तन्वः ) जो तेरे कल्याणकारी और हितकर शरीर हैं, ( यामि- ) जिनसे दू ( यत् सत्यं भवति ) जो सच्चा होता है उसका ( वृणीषे ) स्वीकार करता है । ( तामिः त्वं अस्मान् अभि सं विंशस्य ) उनसे तू हम सबमें प्रियेष्ट हो और ( पापीः धियः ) पाप बुद्धियोंको ( अन्यत्र अपवेशय ) दूर कर ॥ २५ ॥

भाषार्थ— भातें गृहनेवाले प्राणियोंसे कामकी शक्ति बढ़कर है, भिन्न पदार्थोंसे भी बढ़कर है, वृणीषे, आप, तेज, वायु और आकाशसे भी बडी है । सूर्य, चन्द्रसे भी बढ़कर है अर्थात् यह काम सबसे बढ़कर है ॥ २३-२४ ॥

अथ हे काम ! शुभ, भद्र और सत्य जो तेरे वह मेरे पास प्राप्त हो और पापबुद्धि मुझसे दूर चली जाय ॥ २५ ॥

## काम

### संकल्पशक्ति

इस शून्ये ' काम ' शब्द है यह भी संबंधके विषयका वाचक नहीं है, अविशु संकल्पशक्तिका वाचक है । यह काम सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ है ऐसा इस शून्यके निम्नलिखित मंत्रमें कहा है—

कामो जसे प्रथमः । ( मं १९ )

' काम सबसे पहिले प्रकट हुआ । ' यही बात वेदमें व्यक्त करी है—

कामस्तद्रे समदत्ताधि मनसो रेतः प्रथमं यदार्मत् । ( ऋ. १०१२९१० )

' भारतमें मरुका पीरे बनावेवाला काम सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ । इस प्रकार कामकी उत्पत्ति सबसे प्रथम करी है । उपनिषद्में भी देविके—

कामः संकल्पो विचिह्मिन्सा ध्रुवाऽध्रुवा धृतिरधृति इर्धोर्मीरित्येतस्वै मन एव ॥

( मं. उ. १५१३ )

काम एव यस्यायतने इदं लोको मृतो ज्योतिः०

य एषार्थे काममयः पुरुषः० । ( मं. उ. ३१५११ )

कामोऽकार्योऽप्राह करोमि, कामः कथोति, कामः

कर्ता, कामः कारयिता ॥ ( महागता ट. १८१२ )

' काम, संकल्प, विचिह्मिन्सा, ध्रुवा, अध्रुवा, धृति, अधृति, ऋ ( एजा ), धीः ( बुद्धि ), भीः ( भय ) यह सब मंत्रमें रहते हैं । काम सबका आधारस्थान है, उसका जेठ मंत्र है और इदं लोको मृतो ज्योतिः० । यह मनुष्य काममय है अर्थात् जिस प्रकारके इसका काम होते हैं वैसे वह बनता है । काम ही सबका कर्ता है, मैं कर्ता नहीं हूँ । कामं

“ प्रतापी, यत्नवान् काम मेरा अभ्यक्ष है यह मुझे शत्रु-रहित करे । ” अर्थात् यह काम किंदा सकल्प हरणक मनुष्य-का अधिष्ठाता है । अधिष्ठाता यह होता है कि जो सतत साध रहता हुआ निरीक्षण करता है । यही कामका कार्य है । यह मनुष्यके चालचलनका अधिष्ठाता होकर निरीक्षण करता है । यदि अधिष्ठाता शिक्षित हो, तो मन्त्री सहायता होती है और यदि बुरा हो तो हीन प्रवृत्ति करता है, बुरे मार्गसे ले जाता है, जिसका परिणाम खराब होता है । इमलिये प्रार्थना की है कि—

विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु ।

सर्वे देवा मम ह्यमापन्तु ॥ ( म ७ )

“ सब देव मेरे रक्षक बनें, सब देव मेरे पशुको स्वीकार करें । ” इस प्रकार देवोंके द्वारा मेरी सहायता होती रही, जो निःसन्देह मेरी कामना सुद्ध होगी और मेरी उन्नति होगी । अतः यह मेरी प्रार्थना सब देव मुझे और रक्षा करके मेरी रक्षा करें । “ काम-अपेक्षाः ” देवोंमें काम ही श्रेष्ठ है, सब देवोंमें यह काम देव सबसे श्रेष्ठ है । क्योंकि जगत् रचना करनेमें सब देव सहायता करते ही हैं, परन्तु परमात्माका काम-सकल्प-जगतक जग नहीं उठता, तबतक कोई अन्य देव रचनाके कार्यमें अपने भागको नहीं लगा सकते । यह कामका महत्त्व है । मनुष्यके व्यवहारमें भी देविये सबसे पहिले सकल्प होता है, उपश्रान्त इन्द्रियवापार होते हैं । इसीलिये सर्वत्र कामके-सकल्पके महत्त्वका वर्णन किया है । परमात्माका परमात्मामें तथा कामका अन्य देवोंके साथ संबंध होता है । यह देखनेसे ही सब देवोंमें काम श्रेष्ठ कैसे है यह ज्ञान सकते हैं—

परमात्मा	जीवात्मा
काम, सकल्प [ अधिष्ठाता ]	काम, सकल्प
महत्त्व	बुद्धि
अन्तःसा	मन
इन्द्र	चित्त
सूर्य	नेत्र
शत्रु	श्रावण
अग्नि	वाणी
जल	वीर्य

इस रीतिसे सब देवोंका अधिष्ठाता काम है । शरीरमें जो देव है वे विषय देवोंके सुख भंडा ही हैं, अतः दोनों स्थानोंमें देवोंका संबंध एक जैसा ही है । जैसा संकल्प होता है वैसे

अन्यान्य देव शरीरमें तथा जगत्में अनुपयुक्ततासे कार्य करते हैं । अपने शत्रु नाश पावें और जगत्में मेरी विजय होवे । यही सबकी भावना सर्वसाधारण होती है अतः कहा है—

अथर्षीत्कामो मम ये सप्तत्वाः ।

उर्यं लोकमकरमहामेषतुम् ।

महां नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो,

महां पटुर्वीर्यतमा पहन्तु ॥ ( म. ११ )

“ संकल्प ही शत्रुओंका नाश करता है, संकल्प ही बुद्धि करनेके लिए दिशुत कार्यक्षेत्र देता है । सकल्पसे पातों दिशाएँ मनुष्यके सामने नष्ट होती हैं और संकल्पसे ही सब भूतदेवोंसे श्रद्धा भ्रमभोग प्राप्त होते हैं । ” यदि किसीने सकल्प ही इस प्रकार नहीं किया तो उसका क्या होगा ? पालक विचारकी दृष्टिसे जगत्में दें, तो उनको स्पष्ट दिखाई देगा कि इस जगत्के व्यवहारमें सर्वत्र ‘ काम ’ की ही प्रेरणा हो रही है, हरणक कर्मरु भीटे काम होता है, यदि किसी स्थानपर काम न रहे तो कोई कार्य बनता नहीं । अतः इस मंत्रमें कहा है कि जो भी कुछ इस जगत्में बन रहा है कामकी प्रेरणासे ही बन रहा है ।

पूर्वोक्त कोटकमें दर्शाया है कि अग्नि, इन्द्र, सोम अपने-अपने देवसे सब कामकी प्रेरणासे कार्य कर रहे हैं, उनके प्रतिनिधि वाणी, मन और चित्त वे भी संकल्पसे ही अपने-अपने कार्यमें प्रेरित हो रहे हैं । इसी रीतिसे ( अग्निः यथा ) अग्नि शत्रु दूर करता है, अन्य देव भी शत्रुओंको दूर करते हैं, यह सब पूर्वोक्त रीतिसे ही समझना चाहिये ।

कामका कवच ।

यह काम एक ऐसा कवच पहनता है, कि जिससे शत्रुक भाषाएँ उसके ऊपर लगते ही नहीं, देविये—

यत्ने काम शर्म शिवरुधमुद्रुम् ब्रह्म

चर्म चित्ततमनतिव्याप्य रुतम् । ( म ११ )

“ यह कामका एक विशाल कवच है जो सीता केन्द्रोंमें उत्तम रक्षा करता है, इससे ( अन्-अतिव्यापि ) शत्रुक शर्मोका प्रहार अपने ऊपर नहीं लगता । यह ( ब्रह्म चर्म ) ज्ञानका कवच है ।

यह काम ( प्रथम-जड्धे ) सबसे पूर्व उत्पन्न हुआ, इसके बाद अन्य देव जाग उठे, अतः अन्य देव इसको मात कर नहीं सकते । जो हमारे पूर्व हो हमारे बर्ष हुए हों, उनको हम कदापि प्राप्त नहीं कर सकते । इसी प्रकार कामकी उत्पत्ति पहिले और अन्य देवोंकी बाद होनेसे अन्य देव

कामको प्राप्त नहीं कर सकते यह विस्तृत ठीक है । अतः कहा है—

कामो जसो प्रथमो निमं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः ।  
ततस्त्वमसि ज्यायान् विजहा महान् । ( म १९ )

“ काम सबसे पहिले उत्पन्न हुआ अतः इसको देव प्राप्त नहीं कर सकते और पितर अपना मर्त्य भी प्राप्त कर नहीं सकते, क्योंकि पितर और मर्त्य तो देवोंके पश्चात् उत्पन्न हुए हैं । इस कारण यह काम सबसे उच्च और समर्थ है, इसकी धेड़ता सदा सर्वदा स्थिर रहनेवाली है । अतः इसका सामर्थ्य सर्वतोपरि है । ”

शालो मंत्र २१ से २४ तक चार मन्त्रोंमें काम सबसे श्रेष्ठ है यही बात कही है । सत्यं पदाशेषे, स्थिरधरोत्से, अर्षोत् सभसे यह श्रेष्ठ है । पचमहाभूतोंसे, सब प्राणियोंसे,

सूर्य और चन्द्रमाले तथा सब मन्वोंसे, काम श्रेष्ठ और समर्थ है । अतः अन्तिम मन्त्रमें प्रार्थना यह है कि—

यास्ते शिवास्तन्य राम भद्रा  
याभिः सत्यं भवति यद् वृषीषे ।  
तामिष्ट्वमस्मिं जमि संविशस्व  
अभ्यय पापीत्य वेदाया धियः । ( म २५ )

“ कामके शंकर जो शुभ और कल्याणकारी भाग है, जिससे सब मनुषी सिद्धि होती है, वह शुभ भाग मेरे शंकर प्रविष्ट हो जाय और जो पापका भाग है, वह दूर हो । ” सकल्प पृष्ठ वही भारी शक्ति है, उससे पाप भी होगा और पुण्य भी । इस कारण मनुष्यको उचित है कि वह सदा निष्ठाकृत्य करे और पाप सकल्पसे दूर रहे । इस रीतिसे मनुष्य अपनी कामना शुभ कराके सदा उन्नतिके पथमें उन्नत जा सकता है ।

## कामाशिका शम्भु

कां. ३. सू. २१

( ऋषि - वसिष्ठ । देवता - भक्ति । )

ये अग्रयो अस्वन्तर्धे वृत्रे ये पुरुषे ये अश्मसु ।

य आविवेशोर्षधीर्षो वनस्पतीस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वितत् ॥ १ ॥

यः सोमं अन्वयो गोप्वन्तर्धे आविवेशो वर्यःसु यो मृगेषु ।

य आविवेशो द्विपदो यश्चतुष्पदुस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वितत् ॥ २ ॥

अर्थ— ( ये अग्रयः अश्म अन्तः ) जो अग्निवा ऊर्फ शंकर हैं, ( ये वृत्रे ) जो मेघमें और ( ये पुरुषे ) जो उदयमें हैं, तथा ( ये अश्मसु ) जो शिलाओंमें हैं और ( यः ओषधीः यः च वनस्पतीन् आरिवेशः ) जो क्षीपणियोंमें और वनस्पतियोंमें प्रविष्ट हैं ( तेभ्यः अग्निभ्यः एतद् हुतं अस्तु ) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे ॥ १ ॥

( यः सोमं अन्तः, यः गोपु अन्तः ) जो सोमके शंकर, जो गोमोके शंकर, ( यः वर्यः सु, यः मृगेषु आरिवेशः ) जो पक्षियोंमें और जो मृगोंमें प्रविष्ट हैं, ( यः द्विपदः यः चतुष्पदः आरिवेशः ) जो द्विपद और चतुष्पदोंमें प्रविष्ट हैं, ( तेभ्यः अग्निभ्यः एतद् हुतं अस्तु ) उन अग्निओंके लिये यह हवन होवे ॥ २ ॥

भार्यार्थ— जो अग्नि ऊन, मेघ, प्राणियों अथवा मनुष्यों, शिलाओं और क्षीपणिवनस्पतियोंमें हैं, उनको प्रसन्नताके लिये यह हवन है ॥ १ ॥

जो अग्नि सोम, मृगों, पक्षियों, मृगादि वस्तुओं तथा द्विपद चतुष्पदोंमें प्रविष्ट हुआ है उसके लिये यह हवन है ॥ २ ॥

य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदुःश्रमिः ।	
यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्	॥ ३ ॥
यो देवो विश्वाद्यमु काममाहुर्षं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः ।	
यो धीरः शक्रः परिभूरदाभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्	॥ ४ ॥
यं त्वा होतारं मनसांमि संविदुत्सर्षादश भौवनाः पञ्च मानवाः ।	
चर्षसे यश्चसे सनृतावते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्	॥ ५ ॥
उक्षात्राय वृक्षात्राय सोमपृष्टाय वेधसे । वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्	॥ ६ ॥
दिवं पृथिवीभन्वन्तरिक्षं ये विद्युत्तमनुसंचरन्ति ।	
ये दिक्ष्वंश्रुन्तये वाते अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्	॥ ७ ॥

अर्थ— (यः देवः विश्वदुःश्रमः उत वैश्वानरः) जो देव सबको उलानेवाला परंतु सबका घालक धपवा हितकारी और (इन्द्रेण सरथं याति) इन्द्रके साथ एक रथपर बैठकर चलता है तथा (यं पृतनासु सासहिं जोहवीमि) युद्धमें वित्त्य देनेवाला होनेके कारण जिसको मैं प्रार्थना करता हूँ (तेभ्यः०) उन अग्निपोंके लिये यह हवन होवे ॥ ३ ॥

(यः विश्वाद् देवः) जो विश्वका भक्षक देव है, (यं उ कामं आहुः) जिसको 'काम' नामसे पुकारते हैं, (यं दातारं प्रतिगृह्णन्तं अहुः) जिसको देनेवाला और लेनेवाला भी कहा जाता है, (यः धीरः शक्रः परिभूः अदाभ्यः) जो बुद्धिमान्, शक्तिमान्, अमण करनेवाला और न दबनेवाला है (तेभ्यः०) उन अग्निपोंके लिये यह हवन होवे ॥ ४ ॥

(चयौदश भौवनाः पञ्च मानवाः) तेरह भुवन और पाच मनुष्यजातियाँ (यं त्वा मनसा होतारं अमि संविदुः) नित्त बुझके मनसे होता अर्थात् दाता मानते है, (चर्षसे) तेजस्वी (सनृतावते) मरुत्प्राणी और (यशसे) यशस्वी युद्धे और (तेभ्यः०) उन अग्निपोंके लिये यह हवन होवे ॥ ५ ॥

(उक्षात्राय वृक्षात्राय) जो बैल और गौके लिये अन्न होता है और (सोमपृष्टाय) औषधियोंको पीठपर लेती है उस (वेधसे) जानीके लिये और (वैश्वानरज्येष्ठेभ्यः तेभ्यः०) सब मनुष्योंके हितकारी श्रेष्ठ उन अग्निपोंके लिये यह हवन होवे ॥ ६ ॥

(ये दिवं अन्तरिक्षं अनु, विद्युत्तं अनु संचरन्ति) जो सुशोक, अंतरिक्ष लोक और विद्युत्के भद्र भी अनुसृततासे संचर करती है, (ये दिक्षु अन्तः, ये वाते अन्तः) जो दिशामोंके अंदर और वायुके अंदर हैं (तेभ्यः अग्निभ्यः) उन अग्निपोंके लिये यह हवन होवे ॥ ७ ॥

भावार्थ— सबको जलाकर मम करनेवाला परंतु सबका संघालक जो यह देव इन्द्रके साथ रथपर बैठकर प्रमण करता है, जो युद्धमें वित्त्य प्राप्त करनेवाला है उस अग्निके लिये यह हवन है ॥ ३ ॥

जो अग्नि विश्वका भक्षक है और जिसको 'काम' कहते हैं, जो देने और लेनेवाला है, और जो बुद्धिमान्, शर्मण, सर्वज्ञ जानेवाला और न दबनेवाला है, उस अग्निके लिये यह हवन है ॥ ४ ॥

तेरह भुवनोंका प्रदेश और मनुष्योंकी प्राणण क्षत्रियादि पांच जातियाँ हसी अग्निकी मनसे दाता मानती हैं, तेजस्वी, सत्ववादीके प्राण, यशस्वी इस अग्निके लिये यह अर्पण है ॥ ५ ॥

जो बैल और गौके अन्न देती है, जो पीठकर औषधियोंको लावती है, जो सबका घालक या उपपादक है, उस सब मानवोंमें श्रेष्ठरूप अग्निके लिये यह अर्पण है ॥ ६ ॥

सुशोक, अन्तरिक्ष, विद्युत्, दिशामें, वायु भासिमें जो रहती है उस अग्निके लिये यह अर्पण है ॥ ७ ॥

हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मिश्रमग्निम् ।

विशान्देवानङ्गिरसो हवामह इमं क्रुवाद् अमयन्त्वग्निम् ॥ ८ ॥

शान्तो अग्निः क्रुवाच्छान्तः पुरुषोरेपणः । अयो यो विश्वदुष्पुस्तं क्रुवाद्मशीशमम् ॥ ९ ॥

ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उचानशीवरी । वातः पर्जन्य आदुमिस्ते क्रुवाद्मशीशमन् ॥ १० ॥

अर्थ— ( हिरण्यपाणिं सवितारं ) सुवर्णभूषण हाथमें धारण करनेवाले सविता, इन्द्र, बृहस्पति, वरुण, मिश्र, अग्नि, विश्वेदेव और अंगिरसोंकी ( हवामहे ) हम प्रार्थना करते हैं कि वे ( हम क्रुवाद् अग्निं शमयन्तु ) इस मांसभक्षक अग्निकी शान्त करें ॥ ८ ॥

( मज्जयाद् अग्निः शान्तः ) मांसमक्षक अग्नि शान्त हुई, ( पुरुषोरेपणः शान्तः ) मनुष्यात्मक अग्नि शान्त हुई ( अथ यः विश्वदुष्पुस्तः ) और जो सबको जलानेवाली अग्नि है ( तं क्रुवाद् अग्नीशमम् ) उस मांसमक्षक अग्निकी मीने शान्त किया है ॥ ९ ॥

( ये सोमपृष्ठाः पर्वताः ) जो वनस्पतियोंको पीठपर धारण करनेवाले पर्वत हैं, ( उचानशीवरीः आपः ) उपरको जानेवाले जो जल हैं, ( वातः पर्जन्यः ) वायु और पर्जन्य ( आत् अग्निः ) तथा जो अग्नि है ( ते ) वे सब ( क्रुवाद् अग्नीशमन् ) मांसभक्षक अग्निकी शान्त करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— सविता, इन्द्र, बृहस्पति, वरुण, मिश्र, अग्नि और अंगिरस आदि सब देवोंकी हम प्रार्थना करते हैं कि वे सब देव इस मांसमक्षक अग्निकी शान्त करें ॥ ८ ॥

यह मांसभक्षी पुरुषनाशक और सब जगत्को जलानेवाली अग्नि शान्त हुई है, मीने इसको शान्त किया है ॥ ९ ॥

सोमादि वनस्पतियोंसे युक्त पर्वत, ऊपरकी गलिते चलनेवाले जलप्रवाह, वायु और पर्जन्य तथा अग्नि ये सब देव मांसमक्षक अग्निकी शान्त करनेमें सहायता देते हैं ॥ १० ॥

## कामाग्निशा शमन

### कामाग्निशा स्वरूप

इस मूलमें कामाग्निशा शमन करनेका विधान है । कामको अग्निही उपना देकर अथवा अग्निकी शान्त करनेके वर्णनके बहाने कामको शान्त करनेका वर्णन इस मूलमें बड़ा ही मनोरंजक है । यह मूल ' बृहस्पतिशासन ' में लिखा गया है, सधमुष कामका शमन करना ही ' बृहस्पतिशा ' स्थापित करती है । यह सबसे बड़ा कठिन और कष्ट साध्य कार्य है । इस मूलमें जो अग्नि है वह ' क्रुवाद् ' अर्थात् कृपा मांस खानेवाला है । साधारण लोग समझते हैं कि इस मूलमें मुझे जलानेवाले अग्निशा वर्णन है, परन्तु यह मूल ठीक नहीं है । कामरूप अग्निशा वर्णन इस मूलमें है और यही कामरूप अग्नि बड़ा मनुष्यमक्षक है । जिसका अग्नि जलानी है उसमें सहस्रगुना यह काम जलावा है । इस मूल

से अग्निशा स्वरूप पहले हम लिखित करते हैं । इसका स्वरूप यजनेवाले जो अनेक शब्द इस मूलमें हैं वे इस प्रकार हैं—

१ यो देवो मिश्रयाद् यं उ कामं आहूः । ( मं ४ )—  
जो अग्निदेव सब जगत्को जलानेवाला है और अग्निको ' काम ' कहते हैं ।

इस मंत्र भागमें स्पष्ट कहा है कि इस मूलमें जो अग्नि है वह ' काम ' ही है । नाम निर्देश करनेके कारण इस विषय में किसीको संका करना भी अब उचित नहीं है । तथापि विश्वकी इतना ही ज्ञेय इस मूलमें मंत्र भाग भी अब देखते हैं—

२ क्रुवाद् अग्निः ( मं ९ )— मांसमक्षक अग्नि ।

३ पुरुषोरेपणाः अग्निः । ( मं ९ )— पुरुषका नाशक ( काम ) अग्नि ।



पंचम मंत्रमें 'असौदास सुयवोमिं रहनेवाले पंचजन इसको मनसे मानते हैं, दाता कदकर पूजते हैं' ऐसा कहा है। संपूर्ण जनता कामकी ही उपासना करती है यह बात इस मंत्रमें कही है। कई विरक्त संत मठना इस कामको अपने आशौल कदके परमात्मोपासक होते हैं, अन्य संसारी जन तो कामको ही अपने सर्वस्वका दाता मानते हैं। इस प्रकार इस कामने ही सब जगत्पर अपना अधिकार जमाया है। जनता सम्मती है कि (वर्चः) वैद, (यशः) यश और (सुनुते) सत्य आदि सब कामके प्रभावसे ही सफल और सुखल होते हैं। सब लोग जो संसारमें मग्न हैं, इसीकी प्रेरणासे चले हैं मानो इसीके वेगसे घूम रहे हैं। जो सारुख्य इसके वेगसे झुक होकर इस कामको, जीत लेता है वही श्रेष्ठ होता हुआ मुक्तिका अधिकारी होता है। इसके वेगसे छूट जाना ही मुक्ति है।

### इन्द्रकी रथ

तृतीय मंत्रमें कहा कि 'यह काम इन्द्रके रथपर बैठकर (इन्द्रेण सरथं याति) जाता है।' (मं. ३) यह देखना चाहिये कि इन्द्रका रथ कौनसा है? 'इन्द्र' नाम जीवन्-त्माका है और उसका रथ यह शरीर ही है। इस विषयमें उपनिषद्का वचन भी है—

आत्मानं रथिन् विद्धि शरीरं रथमेव तु ।  
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ॥

(कठ उ. ३।४)

'माया रथमें बैठनेवाला है, उसका रथ यह शरीर है और इंद्रियां उस रथके घोड़े हैं, जो विषयोंमें घूमते हैं।' इस धर्मसे इन्द्रके रथका पला रथ सकता है। इस उपनिषद्वाक्यके 'इन्द्रिय' पदका अर्थ 'इन्द्रकी शक्ति' है। हमारी इन्द्रियें इन्द्रकी शक्तियां ही हैं। अतः आत्मा ही इन्द्र है।

इस इन्द्र अर्थात् आत्मके शरीररूपी रथमें यह 'काम' बैठता है—

यः इन्द्रेण सरथं याति । (मं. ३)

'जो कामरूप अग्नि इन्द्रके रथपर बैठकर जाता है' इस वाक्यका अर्थ अब स्पष्ट हुआ ही होगा। इस शरीरमें जैसे जीवन्त्मा है अथवा इन्द्र है, उसी प्रकार काम भी है, दोनों इसकी चलनेवाले हैं। शक्य दृष्टिसे देखा जाय तो काम अर्थात् इच्छा ही इसको चला रही है। इस प्रकार इस शरीरमें कामकी स्थिति है।

कामरूपी यह अग्नि मण्डिपोंके शरीरमें कल रही है इसको

अधिक प्रज्वलित करना उचित नहीं, प्रत्युत इसको जड़ितक प्रियल हो सकता है, उतना प्रयत्न करके शांत करनेका ही उपाय करना चाहिये। इसको शांत करनेका उपाय अब देखिये—

### काम-शान्तिका उपाय

नवम मंत्रमें इस कामाग्निको शान्त करनेका विधान है—

शान्तो अग्निः कृत्याच्छान्तः पुरुषपरेष्वः ।

अथो यो विश्वदान्यस्तं कव्यादमशीशाम् ॥

(मं. ९)

'यह मांस भक्षक कामरूपी अग्नि शान्त हो गई है, यह मनुष्यकी नाशक कामरूपी अग्नि शान्त हो गई है, जो यह सबको जलानेवाली कामाग्नि है उसको मैंने शान्त किया है।' इस मन्त्रमें इस कामाग्निको मैंने शांत किया ऐसा कहा है, इस विधानसे शान्त करनेका कुछ उपाय यह निःसन्देह सिद्ध होता है। यदि एक मनुष्य इसको शान्त कर सकता है तो अन्य मनुष्य भी उसी मार्गसे चरकर अपने शरीरमें जलती रहनेवाली इस कामाग्निको शान्त कर सकते हैं। हरएकके शरीरमें यह कामाग्नि जलती है इसलिए हरएकको चाहिये कि यह प्रयत्न करके इसको शान्त करनेका उपाय करें और आत्मिक शान्ति प्राप्त करें। इसको शान्त करनेका उपाय अष्टम मंत्रके भागमें और दशम मंत्रमें कहा है—

'हिरण्यपाणि सचिता, इन्द्र, बृहस्पति, वरुण, मित्र, अग्नि, विश्वेदेव, आक्षिरस इका हम यज्ञ करते हैं, वे हम मांस भक्षक कामाग्निको शांत करें।' (मं. ८)

'सोमपृष्ठी मितपर उगती है वे पर्वत, ऊपर गमन करनेवाले अल, वायु, पर्वत और अग्नि वे इस मांस भक्षक कामाग्निको शान्त करें।' (मं. १०)

इन दो मंत्रोंमें जो मार्ग कहा है वह कामाग्नि शान्त करनेवाला है। ये मन्त्र उपाय बचानेके कारण मत्स्यमठ महाशयके हैं और इनका इसी कारण अधिक भजन करना चाहिये। इन दो मंत्रोंमें जो उपाय कहे हैं, उनका क्रम पूर्वक धिन्तन अब करते हैं—

१ सोमपृष्ठाः पर्वताः—जिन पर्वतोंपर सोमपृष्ठी अथवा अन्ध्याप शीपयिर्वा उगती हैं वे पर्वत कामाग्नि शान्त करनेमें सहायक होते हैं। इसमें पहली बात सो यह है कि उन पर्वतोंकी शान्त जलवायु कामको भजकते नहीं देती है। शीत प्रदेशकी अपेक्षा उष्ण प्रदेशमें कामाग्निकी ज्वालन शीघ्र और अधिक भक्षक उगती है। उष्ण देशके लोग भी इसी

कारण छोटी भावमें कामासिके उचित होते हैं। इस विषयमें दूसरी बात यह है कि सोम आदि शीतवर्षिकाधी औषधियां सेवन करनेमें भी कामासिकी उष्ण शक्त होती है। सोम-वर्षावाले पूर्वशित्तल हिमालयमें हैं, वहाँ ही विष्य औषधियां होती हैं। योगी लोग उनका सेवन करने विषयवीर्य और शीतवीर्य होते हैं। शीतली बात इसमें यह है कि ऐसी पहाडियोंमें प्रलोभन कम होते हैं, शरीर उन्ने अत्यधिक नहीं होते, इसलिये भी कामकी उच्छेत्ता चाहते हैं। यहाँ नहीं होती है। इत्यादि अनेक उदाहरण पहाडोंक साथ सम्बन्ध रखते हैं। ( सं १० )

२ उत्तानशायिनीः शाय.— ज्ञ भी कामासिका शसन करनेवाला है। शीत उष्ण स्थान, उष्णतामें तेरनेसे शरीर में समशीतोष्णता होती है जिससे कामकी उष्णता नष्ट होती है, शीत उष्णमें अल्प शरीरका स्थान करना, शिको कठिनता कहते हैं, मद्रार्थे मापनर लिये बड़ा लाभदायक है। गुह इन्द्रियके आसक्तमका प्रदेय शक्ति समय, या विष समय कामका उच्छेद हो उस समय जो देतेसे मद्रार्थे मापनमें बड़ी महापणा होती है। इस प्रकार विविध रीतियोंमें उष्ण सहायता कामासिकी शक्ति करनेमें कार्यमें होती है। ( सं १० )

३ पतन्म्याः— मेघ भर्षात् वृष्टिका जल इस विषयमें कामकारी है। वर्षामें खड़े होकर उस आकाशगंगां जलसे स्नान करना भी बड़ा उत्तम है। इसके शरीरकी उष्णता कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त वृष्टिकल पीनेसे भी शरीरके अन्दरसे जोर हट जाते हैं और कामकी शक्ति होनेमें सहायता होती है। ( सं १० )

४ अग्निः— आग, अग्नि यह वस्तु शरीरको अधिक उष्ण बनायेवाली है। जो कोमल प्रकृतिमें मनुष्य होते हैं यदि उनको अग्निसे साथ कार्य करनेका अवसर मिल जाए तो उनमें शरीरकी उष्णता बढ़नेसे उनका शरीर अधिक गर्म होजाया है और उससे कारण उनको वीर्यशून्यकी बाधा हो जाती है। इसलिये इस प्रकारकी अत्यधिक कोमलता शरीरसे हटानी चाहिये। अग्नि प्रयोगसे ही यह हट सकती है। होम एवं करते समय शरीरको अग्निसे तल्य लगता है, अन्य प्रकारसे भी शरीरको अग्निकी उष्णताकी भावत बालनी चाहिये, तिससे किष्पी समय आषाढ साथ काम करना पड़े, तो उस उष्णताको शरीर सह सहता। अग्नि उष्णताका हानिकारक परिवाम शरीरपर न होनेके लिये इस प्रकार शरीरको सहनशक्तिसे युक्त बनाता चाहिये। ( सं १० )

५ घातः— वायु भी इस विषयमें लाभदायक है। शुद्ध वायु सेवन तथा शुद्ध वायुमें धमन करनेसे यह लाभ है। प्राणायाम करना भी वायुसेवनकी एक लाभप्रद रीति है। प्राणायाम करनेसे वीर्यशून्य नष्ट होते हैं। प्राणायाम अम्भ्यागसे मनुष्य शरीर वीर्य शून्यता है। इस कारण वायुको कामासिका शक्त करनेवाला कहा है। जो अगममें वायु है वही शरीरमें प्राण है। ( सं १० )

६ सविता— सूर्य भी इस विषयमें बड़ा सहायक है। जो बात अग्नि विषयमें कही है, वही सूर्य विषयमें भी सत्य है। कोमल प्रकृतिमें मनुष्य सूर्यप्रकाशमें घुमने विरतनेमें वीर्यशून्य होजाते हैं, यह इस कारण होता है कि सूर्य प्रकाश सदन करनेकी शक्ति उनमें नहीं होती। यस्तु सूर्यका प्रकाश शरीर स्वास्त्वके लिये बड़ा लाभकारी है। सूर्य प्रकाशमें बड़ा जीवन है। पोषा पोषा सूर्य प्रकाशसे अपने शरीरको ठण्डे करनेसे शरीरकी सहनशक्ति बढ़ती है और शरीरमें अतृप्त जीवन रस संचारने लगता है, आरोग्य बढ जाता है और शरीरकी उष्णतासे कामकी उच्छेत्ता शरीरमें होनेकी सम्भाना कम होती है। इस प्रकारकी सहनशक्ति बढ़नेका प्रयत्न करना हो, तो प्रथम प्राण कालमें कोमल सूर्य प्रकाशमें धमन करना चाहिये और पश्चात् बड़े प्रकाशमें धमन करना चाहिये। यह सूर्यप्रकाशका बड़ा ही लाभदायक है। मंत्रों ' हिरण्यपाणिः सविता ' ये शब्द बड़ बलशक्तके सूर्यके ही वाचक हैं, सोनेके रंगके समान रंगवाले हिरण्यपाणि सूर्य मान और साथ ही होता है। ( सं. ८ )

७ घटपः— बरनका स्थान समुद्र है। इसलिये समुद्र-जल इस विषयमें कामकारी है ऐसा हम यहाँ समझ सकते हैं। इसमें जल प्रयोग भी लाभकरा है। ( सं. ८ )

८ मित्रः— सूर्य, इस विषयमें पूर्व स्थलमें कहा जाँते। यदि ' हिरण्यपाणिः सविता ' एवंकहा है तो उसके आरुके सूर्यका नाम मित्र है। पूर्वीक प्रकार यह भी लाभदायक है। मित्रकी प्रेम इच्छा उद्भूत होनेसे भी अर्थात् जगत्की ओर प्रेम पूर्ण मित्र बलिये देखनेसे भी बड़ा लाभ होना लाभ है। ( सं. ८ )

९ विभ्ये देवाः— अन्त्यान् देवताओंके विषयमें भी इसी प्रकार विचार करने जानना चाहिये और उनसे अपना लाभ लेना चाहिये।

१० वृहस्पतिः— यह शब्दका वेदना है। जानते भी कामासिका शक्त करनेमें सहायता मिल सकती है। वृहस्पति

नाम 'शुभ' का है। गुप्तो ज्ञान प्राप्त करके उस ज्ञानके यत्से अपनेको बचाना चाहिये अर्थात् कामाशिका संपन्न करना चाहिये। यहाँ जो ज्ञान आवश्यक है वह शरीर-शास्त्र, मानस-शास्त्र, अष्टांग-शास्त्र इत्यादिका ज्ञान है। साथ ही साथ भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग आदिका भी ज्ञान होना चाहिये।

( मं. ८ )

११ अद्भुतगिरसः— अगस्त्यकी विद्या जाननेवाले कवि। शरीरमें सर्वत्र संस्कार करनेवाला एक प्रकारका जीवन-रस होता है, उसकी विद्या जो जानते हैं, उनसे यह विद्या प्राप्त करके उस विद्या द्वारा कामाशिका शमन करना चाहिये। योग साधनसे इस विषयमें अनेक उपाय पड़े हैं, उनका भी यहाँ अनुसंधान करना चाहिये। ( मं. ८ )

१२ इन्द्रः— इन्द्र नाम जीवार्त्ता, राजा और परमात्माका है। इत सीनेका भी उपयोग कामाशिको शान्त करनेमें बहुत है। जीवार्त्ताका आग्निह-पत्र बढ़ाकर शुभसंस्कारोंके द्वारा अपने अंदरके काम विकारका शमन करना चाहिये। राजाको चाहिये कि यह अपने राज्यमें मन्त्रार्थ और संपन्नता शान्तिप्रद पढ़ाकर कामाशिको शान्त करनेके

लिए सबको प्रेरणा दे। राज्यमें अध्यात्मवर्ग, संरक्षक और अधिकारी वर्ग मन्त्रकारी रखकर राज्य चलानेका उपदेश वेदमें दिया है। यदि राज्यमें अध्यात्मवर्ग पूर्ण प्रकृष्टकारी होंगे और राज्यशासनके अन्त्य मोहदेदार भी उत्तम प्रकृष्टकारी होंगे तो उस राज्यका शान्तिप्रद भी प्रकृष्टपूर्णके लिये अनुकूल ही होगा और ऐसे राज्यमें रहनेवाले लोगोंके मन्त्रार्थ, संपन्नता कामाशिके शमनमें कोई विघ्न नहीं होगा। धन्य है ऐसा वैदिक राज्य कि जहाँ सब अधि-कारी-वर्ग और अध्यात्म-वर्ग मन्त्रकारी होते हों। इसके बाद इन्द्र शब्दका वास्तव अर्थ परमात्मा है। यह परमात्मा जो पूर्णसर्वकारका परम आदर्श है, इसकी भक्ति और उपासनासे कामाशिका शमन होता ही है। सब ऋषियुनि और योगी इसी परमात्म-भक्तिकी साधनासे मन-संपन्न द्वारा कामाशिका शमन करके अमर हो गये।

इस प्रकारके उपायोंका वर्णन इस सूत्रमें किया है। यह सूत्र अत्यन्त महत्त्वना है। इसका पाठ 'वृत्तच्छान्तिगण' में किया है। सत्सुभ यह सूत्र वृद्धी शक्ति करनेवाला ही है।

## कामरूपा काण्ड

कां. ३, सू. २५

( ऋषि-ऋषु । देवता- मित्रावरुणो, कामेभुः । )

उत्तुदस्त्वोत्तुदतु मा धृथाः शयने स्वे । इषुः कामस्य या भीमा तथा विध्यामि त्वा हृदि ॥ १ ॥

आधीर्पणां कामशल्यामिषुं संकल्पकुलमलाम् । तां सुसन्तां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि ॥ २ ॥

अर्थ— ( उत्तुदः त्वा उत्तुदतु ) दिलनेवाला काम तुझे दिलने। ( स्वे शयने मा धृथाः ) अपने शयनमें तू मत उठ। ( कामस्य या भीमा इषुः ) कामका जो भयानक बाण है ( तथा त्वा हृदि विध्यामि ) उससे तेरे हृदयको रीचता हूँ ॥ १ ॥

( आधी-पणां ) जिसमें मानसिक पीडास्वी पल लगे हुए हैं, ( काम-शल्यां ) जिसका जन्मभोग कामेच्छा है, भिन्नमें ( संकल्प-कुलमलां ) जिसकी उष्णी संकल्प है, ( तां ) उस ( इषुं ) बाणको ( सुसन्तां कृत्वा ) ठीक प्रकार लक्ष्यपर धरके ( कामः त्वा हृदि विध्यतु ) काम तेरे हृदयको रींचे ॥ २ ॥

भावार्थ— हे श्री ! सबको मर्षनेवाला काम तेरे अंग-करणको भी न मर्षे। कामका बाण तेरे हृदयका रींच न करे जिसमें विद दुर्दृष्ट तू सुखसे निद्रा लेनेमें भी असमर्थ हो ॥ १ ॥

इस कामके बाणको मानसिक पीडास्वी पल लगे हुए हैं, इसके बाणे कामविकाररूपी लोहेका शीशुण शल्य लगाया गया है, उसके पीछे मानकी संकल्परूपी उष्णी जोड़ दी है, इस प्रकारके बाणको मति रीच्य बनाकर काम तेरे हृदयका रींच न करे ॥ २ ॥

या प्लीडहानं शोषयति कापरपेपुः सुसनाता । प्राचीनेपक्षा व्योपि तपां विष्यामि त्वा हृदि ॥ ३ ॥  
 शुचा विद्धा व्योपिपु शुष्कास्यामि सर्ष मा । मुदनिमन्नुः केवली प्रियवादिन्नुव्रता ॥ ४ ॥  
 आवामि त्वार्जन्या परि मातुरथो पितुः । यथा मम कृतावसो मम चित्तमुपार्पति ॥ ५ ॥  
 व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्पतम् । अथैनामकृते कृत्वा मसैव कृणुतं वशे ॥ ६ ॥

अर्थ— ( सुखप्रता ) शोक हटायकर घबराया हुआ ( प्राचीनपक्षा वि-ओषा ) सीधे पक्षजला और विशेष जलानेवाला ( या कामस्य हृदु ग्रीहान शोषयति ) ये कामका बाण तिलीको सुखा देता है, ( तथा त्वा हृदि विष्यामि ) उससे मेरे हृदयको सँपता हूँ ॥ ३ ॥

( व्योपया ) विशेष दाह करनेवाले और ( शुचा ) शोक बढानेवाले बाणके द्वारा ( विद्धा ) विद या पीडित हुई हुई व ( शुष्कास्या ) सूखे सुदवाली होकर ( मा अभिसर्ष ) मेरी ओर चली जा । व ( मुदु ) कोमल, ( निमन्नु ) मोघरहित, ( प्रियवादिनी ) मीठा भाषण करनेवाली, ( अनुव्रता ) अनुकूल कर्म करनेवाली, ( केवली ) फल मेरी ही इच्छा करनेवाली हो ॥ ४ ॥

( त्वा आ-अजन्या ) तुझको वेगसे ( परि मातु अधो पितु ) माता और पिताके पाससे ( आ अजामि ) द्याता हूँ । ( यथा मम व्रतो अस् ) जिससे मेरे अनुकूल कर्मों व रह और ( मम चित्तं उपायति ) मेरे चित्तके अनुकूल चर ॥ ५ ॥

हे ( मित्रावरुणौ ) मित्र और वरुण ! तुम दोनों ( अस्पे ) इसक लिये ( हृद चित्तानि व्यस्पत ) हृदयके विचारोंको विशेष प्रकारसे प्रेरित करो ( अथ एना अत्रतु कृत्वा ) और इसको कर्महीन बनाकर ( मम एव यदो कृणुत ) मेरे ही वशमें करो ॥ ६ ॥

भावाय— यह कामका बाण सचूक होता है, क्योंकि इसपर मानसिक व्यथाके पर लगे हुए होते हैं और साथ ही यह विशेष सीधसे जलानेवाला भी होता है और यह तिलीको बिल्कुल सुखा देता है, इससे मैं तुझे सँपता हूँ ॥ ३ ॥

यह कामका बाण विशेष जलानेवाला, शोक बढानेवाला और सुखको सुखानेवाला है, हे श्री ! इससे बिंधी हुई व मेरे पास आ और कोमल, मोघरहित, मधुरभाषिणी, अनुकूल भाषण करनेवाली और फल सुझमें ही अनुरण होकर मेरे साथ रह ॥ ४ ॥

हे श्री ! माता और पिताके साथ करने मैं तुझे यहाँ लाया हूँ, हमलिय व मेरे अनुकूल कर्म करनेवाली और मेरे विषयोंके अनुकूल विचार करनेवाली बनकर यहाँ रह ॥ ५ ॥

हे मित्र और हे वरुण ! इस सीध हृदयके विचारोंमें विशेष प्रेरणा करा, जिससे मेरे अनुकूल होनेवाले कर्मके सिवाय दूसरे किसी कर्ममें इसका प्रेम न रहे, तथा यह धर्मवली मेरे ही वशमें रहे ॥ ६ ॥

## कामका वाण

### विरहपरिणामी अलंकार

' विरहपरिणामी अलंकार ' का उच्चम उदाहरण यह सूक्त है । ' विरह परिणाम ' का अर्थ है, कि जो कुछ बोला या किया जाय उसका उल्टा उसका परिणाम निकले । जैसे जानेवाले शम्भूकी राशयें कुछ हो और उसके अंदरका भाव कुछ और ही हो, उसको ' विरह परिणामी-अलंकार ' कहते हैं । इसक एक दो उदाहरण देखिये—

( १ ) ' हृदयका जलानवाली, धनका नाश करनेवाली, उडिषमें कलह उदयकर करनेवाली और शरीरको सुखानेवाली शरीर विभो । ' इस वाक्यमें यद्यपि शरीर विभो ऐसा कहा है तथापि शरीरके दुर्गुणोंका वर्णन करने स्पष्ट शब्दोंमें किया है कि उसे सुखानेवाली प्रकृति न पीनेकी ओर ही होती है ।

( २ ) ' जिससे शरीर पुष्ट होता है और यज्ञधर्म पात्रन होनेके कारण सारोप, बध और दीर्घजीवन नि संदेह प्राप्त

होता है, इस प्रकारका आसन प्राणायामादिका योगसाधन कभी भूलकर भी मत करो। 'इसमें यद्यपि योगसाधन करनेका स्वष्ट विषय है, तथापि सुननेवालेके मनमें योगसाधन भवदय करना चाहिये, यह भाव उत्पन्न होता है।

ये आधाके कान्धालंकार हैं, योग्य समयमें ये प्रयुक्त किये जाय तो इनका सुपरिणाम ही होता है। अब इस सूत्रका कथन देखिये—

'हे स्त्री' कामक बाणसे मैं तेरे हृदयका वेधना हूँ, इस कामके बाणसे 'मानसिक व्यथा' के सुदूर पंख उगे हुए हैं, इससे जो लोहेका अग्रभाग है वह 'मानसिक विकार' का कारण ही है, मन्त्रे 'कुसंकल्पे' की शकडीसे इस बाणको बनाया गया है, यह वधा 'जलनेवाला' है, इससे लगनेसे मुख सूख जाता है, फीहा सूख जाती है, हृदय जल जाता है, इस प्रकारके कामके विध्वंसक बाणसे मैं तेरा वेधन करता हूँ, इससे तू विद्व हो।'

इसमें यद्यपि 'कामक बाणसे विद्व हो' ऐसा कहा है, तथापि इस कामके बाणका स्वरूपका इतना भयंकर वर्णन किया है, कि इसको पहकर पड़नेवालेकी प्रवृत्ति 'इस कामके बाणसे अपना बचाव करने' की ओर ही होगी। इस सूत्रमें जो 'कामके बाण' का वर्णन किया है, वह इस प्रकार है—

### कामका बाण

१ उक्तुद्रः— म्था देनेवाला, शरीरको काट काट कर पीठा देनेवाला। (मं. १)

२ भीमा ह्युः— जिसका परिणाम भयंकर होता है ऐसा बाण। (मं. १)

३ आधी-पर्णा— इस बाणको मानसिक व्यथाके पख लगे हुए हैं। (मं. २)

४ काम-दात्या— स्वार्थकी प्रवृत्ति इच्छारूपी, भयवा कामविकार रूपी अन्न जिसमें लगा हुआ है। बाणका जो अग्रभागमें लोहेका शस्त्र होता है वह, यही कामविकार है। (मं. २)

५ सङ्घुत्प-कुत्सला— मनक कामविवेकक संकल्प रूपी लकड़ीसे यह बाण बनाया गया है। (मं. २)

६ मार्चान-यक्षा— इसमें जो मानसिक व्यथाके पख लगे हुए हैं वे ऐसे लगे हुए हैं कि इनके कारण यह बाण मीथी गतिसे भीर अतिवेगसे जाता है। (मं. ३)

७ शुचा (शुक्)— शोक उत्पन्न करनेवाला। (मं. ४)

८ ध्योपा (वि-ओपा)— विशेष रीतिसे जलनेवाला। (मं. ३, ४)

९ शुष्कास्या (शुष्क-आस्या)— मुखको सुखानेवाला, मुखको न्यान करनेवाला। (मं. ४)

१० श्रीहानं शोपयति— श्रीहाको सुखा देता है। शरीरमें श्रीहा रक्तकी वृद्धि करके शरीर स्वस्थ रखती है, ऐसे महत्वपूर्ण अवयवका नाम कामके बाणसे होजाता है। इतनी मारकता इस मन्त्रके बाणमें है। (मं. ३)

११ हृदि विध्वयति— इसका वेध हृदयमें होता है, इससे हृदय विदीर्ण होता जाता है, हृदोगर्भी उत्पत्ति कामके यदनेसे होती है। (मं. १-३)

कामके बाणका यह भयंकर वर्णन इन शब्दोंद्वारा इस सूत्रमें किया है। 'हे स्त्री! ऐसे भयंकर बाणसे मैं तेरा वेध करता हूँ।' ऐसा एक पुरुष अपनी धर्मपत्नीसे कहता है। पति भी जानता है कि जिस शस्त्रसे वेध करना है वह कामका शर इतना भयंकर विधातक है। इस बाणसे न केवल विद्व होनेवाला ही काट जाता है अपितु वेधन करनेवाला भी काट जाता है, अर्थात् यदि पतिने यह कामका शर अपनी धर्मपत्नीपर चलाया तो वह जैसे धर्मपत्नीको काटता है उसी प्रकार पतिको भी काटता है और पूर्वोक्त ग्यारह गुणपरिणाम उत्पन्न करता है।

जो कर्म करता है उसकी भवानक धारकताका अनुभव करनेके पश्चात् वह बर्न अधिक नहीं हो सकता, जितना आवश्यक है उतना ही होगा, कभी अधिक नहीं होगा।

### पतिपत्नीका एक मंत्र

इस सूत्रमें कही बात पति अपनी धर्मपत्नीसे कहता है। 'यह धर्मपत्नी अपने माता पिताके घरको छोड़कर पतिके घर पतिके साथ रहने आधी है।' (देवो मं. ५) धर्मपत्नी तरणी है, इस आयुमें मलका संयम करता यदा कतिन कार्य होता है। तरुण भोग भोगनेसे इच्छुक रहते हैं, परंतु यह काम देखा है कि—

समुद्र इव हि कामः । नैव हि कामस्यान्तोऽस्ति न समुद्रस्य ॥ वै. भा. २।२।५।६

कामः पशुः ॥ प्राणानि उ. ४

'समुद्रके समान काम है। क्योंकि जैसे समुद्रका अन्त नहीं होता, वैसे ही कामका भी अन्त नहीं होता।' तथा 'काम ही पशु है।'

यह काम भोग भोगनेसे कम चर्हीं होता, प्रसृत बचता ही जाता है। यह पशु होनेसे इसका उपासक भी पशुरूप होते हैं, जो इस कामरूपी पशुको अपने अक्षर बचने देते हैं, वे मांगो पशुभावको अपने अक्षर बचाते हैं। मचन करनेवालेका नाम मनुष्य होता है और मनकी मननशक्ति कामसे नष्ट हो जाती है। काम मनमें ही उत्पन्न होता है और बड़ा भक्षण हुआ यह मननशक्तिको ही नष्ट कर देता है। इसी कारण ताछणमें यदि मनके अक्षर काम बंद जाए तो यह मनुष्य विवेकभट होजाता है।

अथ अपने प्रसृत विषयको और आते है। धर्मपत्नी दूसरे पारसे लायी गई है। मावाको और पिताको अपने भाइको और जन्मद संघर्षियोंको इस खीने छोड़ दिया है और पतिको अपने उन और मनका स्वामी माना है। इस प्रकार खीका पतिके पास आकर रहना एक प्रकारसे पतिव्रतकी जिम्मेदारी बहालेवाला है। पतिकी यह अपना उत्तरदायित्व ध्यानमें रखना चाहिये।

उक्त प्रकार अपने माता पिताको छोड़कर खी यतिव्रत आनेपर भी यदि ताछणवास्तवक शरीरधर्मके अनुसार उसको शोच्य सुश्रुकी प्राप्ति न हुई, तो उसके दिलके अटक जानेकी भी सम्भावना है। पति क्षमदान आदि समय और ब्रह्मचर्य प्राप्त करने लगेगा और गृहस्थधर्म प्राप्त अपने स्त्रीविषयक कर्तव्यको न करेगा, तो खीके मनकी अधोगति की अवधिगत सम्भावना रहती है।

शान्तदम ब्रह्मचर्य आदि सब उत्तम है, मनुष्यत्वका विकास करनेवाला है, यह सब सत्य है, परंतु विवाहित हो जानेपर खीके मनोधर्मका भी विचार करना चाहिये। यह कर्तव्य ही है। खीने मातापिता छोड़नेका क्या स्वाम किया है। अतः पतिको अपनी पत्नीके हर सुखदुःख का ग्यल रखना चाहिये। गृहस्थधर्म भी एक महान् पक्ष है। यही उसका पक्ष है। ऐसा पतिने न किया तो यह खीकी असन्मार्गमें प्रवृत्त करनेका भागी बनेगा।

इस सूक्तमें जो पति अपनी धर्मपत्नीका हृदय कामक ममानक बालसे विद्ध करना चाहता है, वह इसी हेतुसे चाहता है। इसलिये इस कामके बाणकी भयानक विध्वंसक शक्तिका वर्णन करता हुआ पति खीसे कहता है कि ऐसे भयानक बाणसे मैं तेरे पितको अपने कर्तव्य पालन करनेक हेतुसे ही वैध करता हू। इस वर्णनको सुनकर खी भी समझे कि यह जो कामोत्तमका विचार मनमें उत्पन्न हुआ है,

यदि इस उपभोगके लिये मनको मुला छोड़ दिया जाय, तो कितनी भयानक क्षयवाता बन जावगी।

इस विचारसे उस खीके मनमें भी कामको शमन करने की ही लड़र उठ सकती है और यदि पतिने इस सूक्तके प्रतापे मार्गसे अपने खीके मनमें यह समयकी लहर बसायी, तो बेचमो जाकर दोनोंका कल्याण हो जाता है।

परंतु यदि पतिने उबरदस्तोसे खीको कामप्रवृत्तिले रोक रखा, तो उस खीके अक्षरक कामविषयक संकल्प बहुत बंध जावगा और प्रथमो उसका अध पानके विषयमें कोई संदेह ही नहीं रहेगा। ऐसा अध पान न हो इसलिये कतुगामी होने आदि परिमित गृहस्थधर्म पालन करनेके निषर्गोंको प्रवृत्ति हुई है। साथ ही साथ कामको मदानक विधात काताही विचार होना रहेगा, तो उससे बचनेकी शोर हरएक स्त्रीपुरषको प्रवृत्ति होगा। इसलिये पति स्वर्ण संघम करना चाहता है और अपनी धर्मपत्नीको अपने मनुकृत धर्माचरण करनेवाली भी बलासा चाहता है। यह करनेके लिये पति साथ सुविचारोंकी जाप्रति करता है और देवीकी प्रार्थना द्वारा भी वैनी शक्तिकी सहायता लेनेका इच्छुक रहता है। इसलिये यह समय मित्रावरण देवताओंकी प्रार्थना की गई है कि 'हे देवी! इस धर्मपत्नीको मेरे अनुकूल रहने और मेरे अनुकूल धर्माचरण करनेकी बुद्धि दीजिये। इस धर्मपत्नीके मनके विचारोंमें ऐसा परिवर्तन कीजिये कि यह दूसरा कोई विचार मनमें न लाकर मेरे अनुकूल ही धर्माचरण करती रहे, दूसरे किसी अनुचित कर्ममें अपना मन न दीराये।' ( म ६ )

पतिको अपनी धर्मपत्नीके विषयमें यह वक्षता धारण करना आवश्यक ही है। पतिको उचित है कि यह अपनी धर्मपत्नीकी सम्पुट रखता हुआ उसको समयके मार्गसे चलाने।

### धर्मपत्नीके गुण

- १ मृदु.— नाम स्त्रभाववाली, शांत स्वभाववाली। ( म ७ )
- २ निमग्न्यु.— श्लेष न करनेवाली, शान्तिले कार्य करनेवाली। ( म ४ )
- ३ प्रिययादिनी— मधुर भाषण करनेवाली। ( म ४ )
- ४ अनुव्रता— पतिक अनुकूल कर्म करनेवाली। ( म ४ )
- ५ ( मम ) धरो— पतिने पचने रहनेवाली, पतिकी धारामें रहनेवाली। ( म ६ )

६ केवलती-केवल पतिकी ही चनकर रहनेवाली।

( मं. ४ )

७ ( मम ) चित्तं उपायसि-पतिके चित्तके समान अपना चित्त बनानेवाली। ( मं. ५ )

८ अक्रतुः-पतिके विश्व कोई कर्म न करनेवाली।

( मं. ६ )

९ ( मम ) श्रतौ असि-पतिके उद्योगमें सहायता देनेवाली। ( मं. ५ )

ये शब्द धर्मपरमोंके कर्तव्य बता रहे हैं।

### शुद्ध्यधर्म

इस प्रकारकी अनुकूल कर्म करनेवाली धर्मपरमोंको पति

कहता है, कि ' हे स्त्री ! मैं तेरे हृदयको ऐसे भयंकर कामके बागसे बोधता हूँ । ' पति जानता है कि यह कामका बाग बड़ा घातक है, महाचर्ममें विप्र उत्पन्न करनेके कारण बड़ा हानिकारक है। धर्मपरमों पतिके अनुकूल चलनेवाली होनेके कारण वह भी जानती है कि यह कामका बाल तपस्यामें विप्र करनेवाला है। तथापि दोनों ' शुद्ध्यधर्म ' से संबद्ध हैं, इसलिये संतानोरपत्ति करनेके लिये बाधित हैं। अतः दोनों शुद्ध्यधर्मसे संबद्ध होते हैं। धर्मनियमानुकूल क्रतुगामी होकर धर्ममें वैशका चीत्ररूप पीर बालक उत्पन्न करते हैं और पश्चात् अपनी तपस्यामें लग जाते हैं।

## श्रीर पुत्रकी उत्पत्ति

कां. ३, सू. २३

( ऋषिः-महा । देवता-चन्द्रमाः, योनिः, धाराशुषिवी । )

येन वेदभूविथ नाशयामसि षण्वत् । इदं तद्वन्पुत्रं त्वदर्पं दूरे नि दंभसि ॥ १ ॥

आ ते योनिं गर्भं एतु पुमान्बार्णं इवेदुधिम् । आ वीरोऽन्नं जायतां पुत्रस्ते दर्शमासः ॥ २ ॥

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमान्तुं जायताम् । मवासि पुत्राणां माता ज्ञातानां जनयाश्च यान् ॥ ३ ॥

अर्थ—( येन वेदभूविथ ) जिस कारणसे तू वन्ध्या हुई है, ( तत् त्वत् नाशयामसि ) वह कारण तुझसे हम दूर करते हैं। ( तत् इदं ) यह यह वन्ध्यापन ( अन्वपत्र त्वत् दूरे ) दूसरी जगह तेरेसे दूर ( अप नि दंभसि ) हम लेजाते हैं ॥ १ ॥

( पुमान् गर्भः ते योनिं आ एतु ) पुरुष गर्भ तेरे गर्भाशयमें आजाने, ( बार्णः इदुधिं इय ) जैसा बाण हलीमें होता है। ( अप ते ) यहाँ तेरा ( दर्शमास्यः वीरः पुत्रः आजायतां ) इस माँहमें गर्भमें रहकर वीर पुत्र उत्पन्न हो ॥ २ ॥

( पुमांसं पुत्रं जनय ) पुरुष संतान उत्पन्न कर, ( तं अनु पुमान् जायतां ) उसके पीछे भी पुत्र ही उत्पन्न होवे। इस प्रकार तू ( पुत्राणां माता भवासि ) पुत्रोंकी माता हो, ( ज्ञातानां यान् च जनया ) जो पुत्र जनमें हैं और तिनको तू इसके बाद उत्पन्न करेगी ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे स्त्री ! जिस दोषके कारण मुझसे गर्भाशयमें गर्भधारण नहीं होती है और तू वन्ध्या बनी है, वह दोष मैं तेरे गर्भमें दूर करता हूँ और पूर्ण रीतिये वह दोष तुझसे दूर करता हूँ ॥ १ ॥

तेरे गर्भाशयमें पुरुष गर्भ उत्पन्न हो, वह गर्भ यहाँ इस मासमें मच्छी प्रकार पुत्र होता हुआ तससे उत्पन्न वीर पुत्र तुझे उत्पन्न होवे ॥ २ ॥

पुरुष संतान उत्पन्न कर। उसके पीछे दूसरा भी पुत्र ही होवे। इस प्रकार तू मनेक पुत्रोंकी माता हो ॥ ३ ॥

यानि मद्राणि वीजान्पृषभा जनयन्ति च । तैस्त्य पुत्र विन्दस्व सा श्रद्धधेतुका भव ॥ ४ ॥

कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भं एतु ते ।

विन्दस्व त्वं पुत्र नारि यस्तुभ्यु श्रमसुच्छमु तस्मै त्व भवं ॥ ५ ॥

यासां द्यौः पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं धीरुषां धृष्वं ।

तास्त्वा पुत्रविद्याय दैवीः प्रावन्त्वापधयः ॥ ६ ॥

अर्थ— (यानि च मद्राणि वीजानि) जो कल्याण कारण बीज हैं, जिनको (ऋषभमा जनयन्ति) ऋषभक कल्पतिया उत्पन्न करती हैं, (तै त्व पुत्र विन्दस्व) उनके द पुत्रको प्राप्त कर । (सा प्रसू) वैसी प्रसूत होनेवाली तू (धेतुका भव) गौके समान उत्तम माता हो ॥ ४ ॥

(ते प्राजापत्य कृणोमि) तुझे मैं प्रजापाली बनाता हूँ ; (गर्भं ते योनिं एतु) गर्भ लेरी यानिमें भावे । हे (नारि) ओ ' (त्व पुत्र विन्दस्व) तू पुत्रको प्राप्त कर । (य तुभ्यु श्रमसुच्छम्) जो तेरे लिये कल्याणकारी हो वे और (य त्व उ तस्व श भव) दू निश्चयसे उत्तम लिये कल्याणकारी हो ॥ ५ ॥

(यासां बीरुषा) किं औपधियोंका (द्यौ पिता) दुलोक पिता है, (पृथिवी माता) पृथ्वी माता है और (समुद्र मूल) समुद्र मूल (यभून्) हुआ है । (सा दैवी ओपधय) वे दिव्य औपधिया (पुत्रविद्याय) पुत्र प्राप्त करनेके लिये (त्वा प्र अयन्तु) तेरा विशेष रक्षण करें ॥ ६ ॥

भावार्थ— ऋषभक आदि औपधियोंके जो उत्तम बीज होते हैं, उनका तेजस पुत्र प्राणिके लिये तू कर और उत्तम वीर पुत्रोंको उपद्र कर ॥ ४ ॥

प्रभा उत्पन्न होनेका प्राजापत्य अस्कार मैं सुझाव करता हूँ, उससे तेरे गर्भाशयमें दुष्ट गर्भ उत्पन्न होने और दू पुत्र सतानको टारफ कर । वह पुत्र सरा कल्याण करे और तू उसका कल्याण कर ॥ ५ ॥

जो औपधिया पृथ्वीपर उत्पन्न होती हैं, जिनका पालन दिव्य शक्तिसे होता है और जो समुद्रसे उत्पन्न हुई हैं, उन दिव्य औपधियाका सेवन पुत्र प्राणिके लिये तू कर, उससे तेरे गर्भाशयका दोष दूर होगा और तेरे उत्तम सतान उपद्र होंगे ॥ ६ ॥

## वीर पुत्रकी उत्पत्ति

### वीर पुत्रका प्रसव

वैष्वा खीका वैष्णव दूर करक उसको उत्तम वीर पुत्र उत्पन्न होने योग्य 'जननी' बनाता इस सूक्तका साध्य है । पढ़ते तीन मंत्रोंमें मंगल विचारोंकी सूचना द्वारा आंतरिक परिवर्तन करनेका उपाय कदा है । यदि किसी स्त्री को पौव नमें मनसे दूरा दूर निश्चय हो जाये कि उत्तम वैष्णव दूर हो गया है, तो अदरका भी वैसे ही अनुकूल परिवर्तन होना भी समभव है । यदि दूर निश्चय कोई वैसा बड़ा दोष न हो, तो इस मानसिक विचार परिवर्तनसे भी भावदयक सिद्धि मिलनी समभव है ।

इस कार्यके लिये 'प्राजापत्य इष्टि' का प्रयोग पंचम मंत्रमें कदा है । ऋषभक आदि दिव्य औपधियोंका हवन

और उनके बीजोंका विधिपूर्वक भक्षण करनेका विधान चतुर्थ मंत्रमें है । ऋषभक औपधियांका एक भाग ही है ये औपधिया वीधे कदानेवालीं, शरीरको पुष्ट करनेवालीं और गर्भाशयके दोष दूर करके वडाका आरोग्य कदानेवालीं है । इन औपधियाका हवन करना, सेवन करना और आरोग्यपूर्ण विचार मनमें धारण करना ये तीन उपाय वैष्णव दूर करनेके लिये इस सूक्तन कहे हैं ।

वाक्य धर्मभावसे यह प्राजापत्य वल करे, वस्तुशेद बाहु तिरस खीको पितावे और प्रथम तीन मंत्रोंक आराध्यक विचार आशीर्वाद रूपसे कहे— 'हे द्यौ' तेरे अदर जो वैष्णवका दोष या, वह इस प्राजापत्य इष्टिसे दूर हो गया है भव तेरे गर्भाशयमें पुष्ट गर्भ उत्पन्न होगा, वही वह



वीर बालक दस मासवक पुष्ट होता रहेगा और पश्चात् योग्य समयमें उत्पन्न होगा। सब वृ मनेक पुत्रोंकी माता बनेगी। ( म. १-३ )

इस प्रकारके मन्-पूर्वक दिने हुए आग्नीर्विश्वे तथा उरु आग्नीर्वायुके अथवा निक्षपसे हवीया करनेसे शरीरके अन्दर भावदपक परिवर्तन हो जाता है। ' शिव सकल्पसे चिन्तना '

करनेकी रीति यह है। इस विषयके सूत्र अथर्ववेदमें मनेक है।

इस सूत्रमें ' ओषधयः ' शब्द बहुवचनान्त है, इससे अनुमान होता है कि इस सेवन विधिमें अनेक औषधियाँ जाती हैं। सुविश्व वैशोंको इस विषयकी खोज करनी चाहिये।

## गर्भधारण

कां. ५, सू. २५

( अग्नि- मदा । देवता- योनियमै, पृथिव्यादपो देवता । )

पर्वतादिवो योनेरङ्गादङ्गात्समाभृतम् । योषो गर्भस्य रेतोषाः सरौं पर्णमिवा दधत् ॥ १ ॥  
 दधेयं पृथिवी मृदी भूतानां गर्भमादधे । एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामर्षसे हुवे ॥ २ ॥  
 गर्भं धेहि सिनीयालि गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अश्विनोमा धत्तां पुष्करञ्जजा ॥ ३ ॥  
 गर्भं ते पित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः । गर्भं तु इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते ॥ ४ ॥  
 विष्णुयोनिं फल्पयतु स्वष्टा रूपाणि पिशतु । आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ ५ ॥  
 यद्देव राजा वरुणो यद्वा देवी सरस्वती । यदिन्द्रो बृहदा वेदु तद्गर्भकरणं पिब ॥ ६ ॥

अर्थ— ( पर्वतात् दिवः ) पर्वतसे लेकर हलोकपर्यन्त स्थित पदार्थोंके ( अंगात् अंगात् सं आभृत् ) मंग प्रत्यये इकट्ठा किया हुआ ( योनेः ) योनिके स्थानमें ( रेतोषाः शेष- ) वीर्यकी स्थापना करनेवाला पुष्पमित्रप ( सरौं पर्ण इय ) अल्पवाहनें पणको रखनेके समान ( गर्भस्य आदधत् ) गर्भका आधान करता है ॥ १ ॥

( यथा ह्यं मही पृथिवी ) जिस प्रकार यह पत्थी पृथिवी ( भूतानां गर्भं आदधे ) समस्त भूतोंके गर्भको धारण करती है, ( एवा ते गर्भं दधामि ) उसी प्रकार वेदा गर्भ में धारण करती हैं, ( तस्मै अर्षसे त्वां हुवे ) और उसकी रक्षाके लिये तुझे सुखती है ॥ २ ॥

दे ( सिनीयालि ) अल्प चन्द्रवाली रात्री देवी ! ( गर्भं धेहि ) गर्भको धारण करा । दे ( सरस्वति ) शाल-देवी ! ( गर्भं धेहि ) गर्भको धारण करा । ( उभौ पुष्करञ्जौ अश्विनौ ) दोनों कमलमाला धारण करनेवाले अश्विदेव ( ते गर्भं आधत्तां ) तेरे गर्भको धारण करावें ॥ ३ ॥

( मित्रावरुणौ ते गर्भं ) मित्र और वरुण तेरे गर्भको शुष्ट करें ( देयः बृहस्पतिः गर्भं ) देव बृहस्पति गर्भको धारण करावे । ( इन्द्रः च अग्निः च ते गर्भं ) इन्द्र और अग्नि तेरे गर्भको धारण करावें । ( धाता ते गर्भं दधातु ) धाता तेरे गर्भको धारण करावे ॥ ४ ॥

( विष्णुः योनिं फल्पयतु ) विष्णु योनिको समर्थ बनावे । ( त्वष्टा रूपाणि पिशतु ) स्वष्टा उस गर्भको लक्षण स्ववत्ता बनावे । ( प्रजापतिः आसिञ्चतु ) प्रजापति गर्भको सिंचे और ( धाता ते गर्भं दधातु ) धाता तेरे गर्भको धारण करावे ॥ ५ ॥

( यत् राजा वरुणः वेदु ) जो वरुण राजा जानता है, ( वा यत् देवी सरस्वती ) अथवा जो देवी सरस्वती जानती है, ( यत् बृहदा इन्द्र- वेदु ) जो बृहदा नास करनेवाला इन्द्र जानता है ( तत् गर्भं-करणं पिब ) यह गर्भको स्थिर करनेवाला यह दस पान कर ॥ ६ ॥

गर्मो अस्पोषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् । गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो ज्ये गर्भमेह धाः	॥ ७ ॥
अधि स्कन्द धीर्यस्य गर्भमा धेहि योन्वाम् । वृषांसि वृष्णवावन्प्रजायै त्वा नवामसि	॥ ८ ॥
वि जिहीष्व वाहृत्सामे गर्भस्ते योनिमा षण्णाम् । अदृष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयायिनम्	॥ ९ ॥
घातुः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्यां गवीन्योः । पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूर्तवे	॥ १० ॥
त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्यां गवीन्योः । पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूर्तवे	॥ ११ ॥
सर्वितुः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्यां गवीन्योः । पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूर्तवे	॥ १२ ॥
प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्यां गवीन्योः । पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूर्तवे	॥ १३ ॥

अर्थ— ( ओषधीनां गर्भः अस्ति ) द ओषधिबोका गर्भ है और ( वनस्पतीनां गर्भः अस्ति ) द वनस्पतियोंका गर्भ है, ( विश्वस्य भूतस्य गर्भः ) सब भूतमात्रका गर्भ है, हे अग्ने ! ( सोः इह गर्भं व्याधाः ) वह द यहाँ गर्भको धारण करा ॥ ७ ॥

( अधिस्कन्द ) उड़कर लडा हो, ( धीर्यस्य ) धीरका कर, ( योन्वाम् गर्भं आधेहि ) योनिमें गर्भकी स्थापना कर । हे ( वृष्णवावन् । वृषा असि ) शीशवार ! द बलवान् है । ( त्वा प्रजायै नयामसि ) तुझे केवल सन्तानके लिये ही के माते हैं ॥ ८ ॥

हे ( वाहृत्सामे ) वृहत्साम मानेवाली श्री ! द ( जिहीष्व ) विशेष प्रकार वैपार रह । ( ते योनि गर्भः आशया ) वेनी योनिमें गर्भ स्थिर होये । ( सोमपाः देवाः उभयायिनं पुत्रं ते अदु. ) सोमपान करनेवाले देवाने तुम दोनोंको रक्षा करनेवाले दुपको तुम्हें दिया है ॥ ९ ॥

हे ( घातुः ) घात ! और हे ( त्वष्टः ) रूप बनानेवाले देव ! हे ( सर्वितुः ) उत्पादक देव ! हे ( प्रजापते ) प्रजापालक देव ! ( अस्याः नार्याः गवीन्योः ) इस खीके दोनों गर्भधारक मादियोंके बीचमें ( श्रेष्ठेन रूपेण पुमांसं पुत्रं आधेहि ) उत्तम सुंदर रूपके साथ पुत्र्य सतानकी स्थापना कर और ( दशमे मासि सूर्तवे ) दसवें मासमें उत्पत्ति होनेके लिये उसे योग्य कर ॥ १०-१३ ॥

### गर्मकी सुरक्षितता

गर्मकी सुरक्षितताके लिये परमेश्वरकी तथा अन्यत्र देवताओंकी प्रार्थना इस सूत्रमें की गई है । इस प्रकारकी प्रार्थना करनेसे मानसशक्तिकी सामर्थ्य द्वारा बहुत लाभ होता है । इसके अतिरिक्त इस सूत्रमें गर्भविषयक अन्यत्र बहुतसी उपयुक्त बातें कही हैं, उसका धोराता विचार यही करना आवश्यक है ।

पृथ्वीके ऊपरके पर्यंतसे लेकर सुदोके पर्यंत अर्थात् इस धारापृथिवीके अन्दर मिलने पदार्थ हैं, उन सबके अंग प्रत्ययोंके अंग लेकेकर और उन सब अंगोंको विशेष शोचनासे इकट्ठा करके यह गर्भ बनाया गया है । यह प्रथम मद्रका कथन है । अर्थात् इस गर्भमें किस प्रकार सूर्य और चंद्रके अंग हैं, उसी प्रकार वायु और जलके अंग भी हैं और उसी हीविले औषधि वनस्पतियोंके भी अंग हैं । जो प्रकाशमें है

वही विषयमें है । अज्ञानका एक अंग ही विद है । इसी प्रकार पिताके अंग प्रकृतियोंका सब शीर्ष विन्दुमें आजा है और उसी शीर्ष विन्दुसे गर्भ घातण होता है, इसलिये गर्भमें पिताके अंग प्रसंगोंका सब आया हुआ होता है । इस प्रकार एक दृष्टिसे यह गर्भ सब प्रकाशका सत्यास है और दूसरी दृष्टिसे यह गर्भ पिताका सत्यास है । गर्भमें, माता, इतनी प्रकाश शक्तियां हैं, इतलिये गर्भकी विली गुराशा हो सके, उतनी करती चादिये और उसकी मिलनी उद्यति हो सके उतना यत्न करना चादिये ।

अत्र २ से ५ तक देवताओंकी प्रार्थना है कि सब देव इस गर्भकी रक्षाके लिये सहायका देवें । और जो देवताओंके अंग यहाँ हैं उनको अपनी शक्तिसे सुरक्षित रखे और बचावें । पाठक यहाँ स्मरण रखें कि एसा जो ऐश्वर्यवादी ही होती है, अनुपपन्न कार्य हतना ही है कि वह अगममें स्फाट न करे । जिस प्रकार बंद कमरेमें सदा रहनेसे सूर्यकी रक्षासे

मनुष्य दूर रहते हैं, उसी प्रकार अग्न्यान्व देवीकी रक्षासे मनुष्य अपनी अज्ञानताके कारण दूर रहता है। इसलिये मनुष्यको उचित है कि वह अपने आसके इन देवताओंके आशीर्ष करे। ऐसा करनेसे इसकी उत्तम रक्षा हो सकती है। गर्भकी भी सुरक्षितताके लिये गर्भिणी श्री शुद्ध वायुमें तथा पूर आदिमें अपने आसको रखेगी और सूर्यादि देवोंसे

जो रक्षा प्राप्त होती है उससे लाभ उठावेगी, तो अधिक लाभ हो सकता है।

गर्भ उत्तम रीतिसे बढकर दसवें मासमें माताके उदरसे बाहर आना चाहिये। यह समय उसकी पूर्ण वृद्धि है। यह बात दशम मंत्रमें कही है।

अन्य मंत्र गर्भाधान विषयक हैं वे सुविज्ञ पाठक सहज हीमें समझ सकते हैं।

## गर्भस्फारणम्

कां. ६, सू. १७

( अग्नि - अथर्व । देवता- गर्भदेहणं, पृथिवी । )

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे । एवा तै ध्रिपतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ १ ॥

यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान्वनस्पतीन् । एवा तै ध्रिपतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ २ ॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वताग्निरीन् । एवा तै ध्रिपतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ ३ ॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्टितं जगत् । एवा तै ध्रिपतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ ४ ॥

अर्थ— ( यथा इयं मही पृथिवी ) जिस प्रकार वह पदी पृथिवी ( भूतानां गर्भ आदधे ) भूलोंका गर्भ धारण करती है, ( एव ते गर्भः ) उसी प्रकार वेदा गर्भ ( सूतुं अनु सवितवे ध्रियतां ) सतानको अनुकूलतासे उपपन्न करनेके लिये स्थिर होते ॥ १ ॥

( यथा इयं मही पृथिवी ) जिस प्रकार यह पदी पृथिवी ( इमान् वनस्पतीन् दाधार ) इन वनस्पतियोंको धारण करती है। उसी प्रकार सतान उत्पन्न होनेके लिये वेदे अंदर गर्भ स्थिर होते ॥ २ ॥

जिस प्रकार यह पदी पृथिवी ( पर्वतान् निर्दिन् दाधार ) पर्वतों और पहाड़ोंको धारण करती है, उसी प्रकार वेदे अंदर यह गर्भ सुखसे प्रसूति होनेके लिये स्थिर रहे ॥ ३ ॥

जिस प्रकार यह पदी पृथिवी ( त्रिष्टितं जगत् ) विशिष्ट प्रकारसे रहनेवाले जगत्को धारण करती है, उसी प्रकार वेदे अंदर यह गर्भ सुर प्रसूतिके लिये स्थिर रहे ॥ ४ ॥

श्रीको अपने गर्भाधानमें गर्भ स्थिर रखनेकी इच्छा होती है, यह सफल करनेके लिये यह भातीवाद है।

## गर्भदोष-निवारण

कां. ८, सू. ६

( कवि - मातृनामा । देवता - मन्त्रोक्ता, मातृनामा, मङ्गलसाधि । )

यौ त्वं मातोन्ममार्जं जातायाः पतिवेदनौ । दुर्गामा तत्र भा गृध्रदुलिखं उत वत्सर्षः ॥ १ ॥

पलालानुपलालौ शकुं कोकं मलिम्बुधं पलीजकम् । आश्रेपं यन्निवाससुपृथ्वीश्रवं प्रमीलिनम् ॥ २ ॥

मा सं वृतो भोषं सृष ऊरु मावं सृषोऽन्तरा । कृषोम्पस्ये भेषजं यज दुर्गामिचातनम् ॥ ३ ॥

दुर्गामा च सुनामा चोभा संवृतमिच्छतः । अरायानपं हन्मः सुनामा स्त्रैर्गमिच्छताम् ॥ ४ ॥

यः कृष्णः केशयसुरं स्तम्बज उत तुण्डिकः । अरायानस्या मुष्काभ्यां संसोपं हन्मसि ॥ ५ ॥

अर्थ— (जाताया ते) उत्पन्न होते ही मेरे (यो पतिवेदनी) जो पतिको प्राप्त होनेवाले दोनों भाग मेरी (माता उन्ममार्जं) मातामे स्वच्छ किये थे (तत्र) उनमें (दुर्गामा, अलिख इत वत्सर्ष) दुर्गामा, अलिख तथा वत्सर्ष ये रोगहृत् (मा गृध्रत्) न पहुँचे ॥ १ ॥

(पलालानुपलालौ) मास और माससन्ध्या, (शकुं) हिसक, (कोक) कामसन्ध्या अथवा शीपसन्ध्या, (मलिम्बुधं पलीजकं) मलिन, पक्व रोग, (आश्रेपं) चिपकनवाले, (यन्निवाससु) स्पष्टीकर करनेवाले, (नक्षत्रश्रीय) रीछके समान गर्दन बनानेवाले, (प्रमीलिन) काले सूदनेवाले रोगोंको भे दूर करता हू ॥ २ ॥

(मा सं वृत) मत रहे, (मा उप सृष) पात मत जा, (ऊरु अन्तरा मा अय सृष) अर्थात्के बीचमें न रह। (अस्यै भेषजं कृषोमि) इसके लिये भोषज बनाया हू, यह भीषज (यज दुर्गामिचातन) घन नामक है इससे दुर्गामि हृत् दाले है ॥ ३ ॥

(दुर्गामा च सुनामा च उभौ) दुष्ट नामवाला और उत्तम नामवाला ये दोनों (सं वृत इच्छत) समझि करना चाहते हैं, उनमेंसे (अ-रायान् अप हन्म) निडुण्डिका हम तात करते हैं और जो (सुनामा) उत्तम नाम वाला है यह (स्त्रैर्गमिच्छता) स्त्रीजालिको हच्छा करे ॥ ४ ॥

(यः कृष्ण) जो काला (केसी असुर) बाहोंवाला असुर है, (स्तम्बज उत तुण्डिक) जो शरीर स्तम्भमें रहता है अथवा मुलमें रहता है, इन (अरायान्) दुष्टोंको (अस्या मुष्काभ्या) इस धीके दोनों प्रदेष्टे तथा (अस्य) कटिप्रदेशसे (अप हन्मि) हटा देता हू ॥ ५ ॥

भाष्यार्थ— कृष्ण उत्पन्न होते ही स्तम्भ तथा अन्यत्र रोग उत्पन्न करनेवाले हृत्ति न पहुँचे ॥ १ ॥

मांसमें उत्पन्न होनेवाले, हिसक, शीपदोष उत्पन्न करनेवाले, बाल संवेद करनेवाले, सुस्वप्ना बनानेवाले, गर्दनमें रोग उत्पन्न करनेवाले, बाँधोंमें सुस्ती लानेवाले रोगोंको भे दूर करता हू ॥ २ ॥

रोगग्रन्थु पात न रहे, प्रसवस्थानमें गर्भाशोकं सन्ध्या न जावे, इसको दूर करनेके किये यह भोषज बनाया हू, यह यज नामक भीषज इस दुष्ट चिमिको दूर करता है ॥ ३ ॥

दो प्रकारके कृमि होते हैं, एक दुष्ट और दूसरा हितकारी। दोनों पात भाते हैं, उनमें दुष्टको हटाते हैं और उत्तम को धी जातिके पात रखते हैं ॥ ४ ॥

काला, बाहोंवाला, प्राणपातक, मुष्कवाला, शरीरके स्तम्भमें रहनेवाला, पातकी, क्षीणता बनानेवाला हृत्ति है, उसको धीके भेषजसे हटा देते हैं ॥ ५ ॥

अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमृत रेरिदम् । अराषांश्चक्रिष्कणो वज्रः पिङ्गो अनीनश्च ॥ ६ ॥  
 यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितृव्यं च । वज्रस्तान्तस्तहतामितः ह्यीवरूपंस्तिरीटिनः ॥ ७ ॥  
 यस्त्वा स्वपन्तो स्तरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम् । ह्यापामिव प्र तान्सूर्यः परिक्रामअनीनश्च ॥ ८ ॥  
 यः कुणोति मृतवन्त्सामवेतो कामिमां स्त्रियम् । तमोपधे त्वं नाश्यास्याः कमलमाञ्जिवम् ॥ ९ ॥  
 ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनाः । कुसूला ये च कुक्षिलाः कंकुभाः कृत्वाः सिमाः  
 तानोपधे त्वं गन्धेन विपूचीनान्धि नाशय ॥ १० ॥

अर्थ—(अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं) मन्त्र देनेसे नाश करनेवाले, स्पर्श करनेवाले का नाश करनेवाले, (क्रव्यादं उत रेरिदं) मांस खानेवाले और हिंसक (श्वक्रिष्कणः अराषान्) कुत्तेके समान कष्ट देनेवाले, निःसाय करनेवाले रोगबीजोंको (पिङ्गः वज्रः अनीनश्च) पीला वज्र औषध नष्ट करता है ॥ ६ ॥

(भ्राता भूत्वा) भाई बनकर (पिता इव च) अथवा पिता बनकर, (त्या यः स्वप्ने निपद्यते) ठेरे पास जो स्वप्नमें जाता है, (ह्यीवरूपं तान् तिरीटिनः) ह्यीवरूप उन मृत करनेवाले रोगबीजोंको (इतः यजः सहतां) यहांसे वज्र औषध हटा देते ॥ ७ ॥

(स्वपन्तो त्या यः स्तरति) सोती हुई ठेरे पास जो जाता है, (यः जाग्रती त्वा दिप्सति) जो जागती हुई ठेरे पास भाकर कष्ट पहुंचाता है, (सूर्यः ह्यापामिव) सूर्य जैसे मन्त्रकारका नाश करता है, उसी प्रकार (परिक्रामन् अनीनश्च) भ्रमण करता हुआ उनका नाश करे ॥ ८ ॥

(यः इमां स्त्रियं) जो इन स्त्रियों (मृतवन्त्सामवेतो कामिमां) मरे बच्चोंवाली अथवा गर्भपात होनेवाली करता है, वे औषधे । (त्वं अस्याः तं नाशय) तू इसके उस रोगका नाश कर तथा (कमलं अजिवं) गर्भहारस्त्री कामको रोपद्रवित कर ॥ ९ ॥

(ये गर्दभनादिनाः) जो गधेके समान शब्द करनेवाले (सायं शालाः परिनृत्यन्ति) सायंकालके समय चारोंके चारों ओर नाचते हैं, (कुसूलाः कुक्षिलाः) सुरोंके समान अम भागवाले, बड़े पेटवाले, (कंकुभाः कृत्वाः सिमाः) बड़े भेदे, बुरा शब्द करनेवाले, छोटे रोगक्रिमि हैं, वे औषधे । (त्वं तान् गन्धेन) तू उनको अपने गंधको (विपूचीनान् विनाशय) फैलाकर नष्ट कर ॥ १० ॥

मायार्थ—कई क्रिमि सूचनेसे प्रापवात करते हैं, कई स्वप्नसे नाश करते हैं, कई मांसको खीन करते हैं, कई शब्द रीतिसे बात करते हैं, कई कष्ट देते हैं; उन सब रोगबीजोंको पीली वज्र औषधि हटा देती है ॥ ६ ॥

भाई अथवा पिताके रूपसे स्वप्नमें जो आते हैं, वे निर्विक हैं, परंतु पावक होते हैं, उनको इस वज्र औषधिसे हटाया जा सकता है ॥ ७ ॥

सोनेकी अवस्थामें अथवा जागनेकी अवस्थामें जो रोगबीज पास आते हैं, उनको सूर्य मन्त्रकारका नाश करनेके समान नष्ट करता है ॥ ८ ॥

बुरा शब्द करनेवाले, सभ मिठकर बड़ा आवाज करनेवाले, मुहमें काटने और दंश करनेके साधन रखनेवाले, बर्तों जो रोगबीज स्त्रीको मृतपत्नी अथवा गर्भपात करनेवाली बनाने हैं, उन रोगबीजोंका नाश कर और उस स्त्रीका गर्भपात पीतौत बना ॥ ९ ॥

गधेके समान बुरा शब्द करनेवाले मच्छर आदि जो सायंकालके समय घरके पास नाचते और गांठे रहते हैं, इनके मुहमें सुरोंके समान चुननेवाला शब्द रहता है, इनका पेट बड़ा और टेढामेढा होता है और इनके शब्दसे दुःख होता है, उन रोगक्रिमि मच्छर आदिकोंका अम रोपवाली औषधियोंको चारों ओर फैलाकर नाश करो ॥ १० ॥

ये कुकुन्धाः कुकूरभा कुर्त्तुर्द्विर्गानि विभ्रति ।

खलोषा इव प्रनृस्यन्तो बने ये कुर्वते घोषे तान्निवो नाशयामसि

॥ ११ ॥

ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः ।

अरायान्वस्तवासिनो दुर्गन्धील्लोहितस्यान्मकंकाशाशयामसि

॥ १२ ॥

य आत्मानमविभात्रमसं आधाय विभ्रति । स्त्रीणां शौणिप्रतोदिनं हन्द्र रक्षोसि नाशय

॥ १३ ॥

ये पूर्वं वृष्वोष्ठे यन्ति हस्ते शृङ्गाणि विभ्रतः ।

आपाकेष्ठाः प्रहासिनं स्तम्भे ये कुर्वते ज्योतिस्तान्निवो नाशयामसि

॥ १४ ॥

येषां पश्चात्प्रदानि पुराः पाष्णीः पुरो मुखं ।

खलजाः शकधूमजा उरुण्डा ये च मद्मटाः कुम्भमुष्का अयाशयः ।

तान्स्यां ब्रह्मणस्पते प्रतीयोधेन नाशय

॥ १५ ॥

अर्थ— ( ये कुकुन्धाः कुकूरभाः ) जो उरा शब्द करते हैं और घोषिते चमकते हैं और जो ( कुर्त्तुः ) दूर्शानि विभ्रति ) काटनेवाले दैव करनेके साधनोंको धारण करते हैं, ( ये घोषे कुर्वते ) जो शब्द करते हुए ( ख्लोषा इव बने प्रनृस्यन्तः ) ह्योर्षिके समान धर्मों नाचते हैं, ( तान् इतः नाशयामसि ) उनका यज्ञिते नाश करते हैं ॥ ११ ॥

( ये दिवः आपतन्तं ममुं सूर्यं न तितिक्षन्ते ) जो शुलोकसे आनेवाले इस सूर्यको सहन नहीं कर सकते, उन ( अरायान् वस्तवासिनः ) लखड़ीन करनेवाले, चर्ममें रहनेवाले ( दुर्गन्धीन् लोहितस्यान् ) दुर्गंधवाले, राक्षसक मुँहवाले, ( मककान् नाशयामसि ) मच्छलोंका यज्ञिते नाश करो ॥ १२ ॥

( यः आत्मानं अविभात्रं असे आधाय ) जो अपने आपको अत्यंत रूपसे कन्धेपर चढाकर ( विभ्रति ) घातण करता है, हे हन्द्र ! उन ( स्त्रीणां प्रतोदिनः रक्षोसि नाशय ) शिषोंके गर्भभागको पीटा देनेवाले रोग हनिषोंका नाश कर ॥ १३ ॥

( ये पूर्वं हस्ते शृङ्गाणि विभ्रतः ) जो पहिले अपने हाथमें सींगोंको लेकर ( वृष्यः यन्ति ) सीके पास पहुंचते हैं, ( ये आपाकेष्ठाः प्रहासिनः ) जो पाक स्थानमें रहते हैं और जो हँसते हैं, ( ये स्तम्भे ज्योतिः कुर्वते ) जो स्तम्भमें प्रकाश करते हैं, ( इतः तान् नाशयामसि ) यज्ञिते उनका नाश करते हैं ॥ १४ ॥

( येषां पश्चात्प्रदानि पुराः पाष्णीः पुरः ) एष्टिवरं जाते हैं और ( मुखं पुरः ) मुख भी जागे हैं, ( खलजाः शकधूमजाः ) खलमें उत्पन्न, गोबरके भूससे उत्पन्न, ( उरुण्डा ये च मद्मटाः ) जो बड़े मुँहवाले और कष्ट करनेवाले ( कुम्भमुष्काः अयाशयः ) बड़े कन्धेवाले गतिमान् होते हैं, हे महामन्त्र ! ( अस्याः तान् ) इस सीके उन रोगबीजोंको ( प्रतीयोधेन नाशय ) ज्ञानसे नष्ट कर ॥ १५ ॥

भावार्थ— नाचनेवाले रोगोत्पादक मच्छर आदि क्रिमियोंको यज्ञिते हटा दो ॥ ११ ॥

शुलोकसे प्रकाशनेवाले सूर्यके प्रकाशको जो सह नहीं सकते, दुर्गंधियुक्त चर्म आदि पदार्थोंमें जो रहते हैं, उन रक्त पीनेवाले मच्छलोंका हम नाश करते हैं ॥ १२ ॥

जो अपने आपको कन्धेके सहारे ऊपर ही ऊपर धारण करता है, वह रोगहनि शीके गर्भभागका रोग बहानेवाला है, उसका नाश कर ॥ १३ ॥

जो अपने पास सींग रखते हैं, पाकग्रहमें रहते हैं, जो चमकते हैं और शिषोंके पास जाकर रोग उत्पन्न करते हैं, उन रोगहनिषोंका यज्ञिते नाश करो ॥ १४ ॥

हमके पास पीठिकी ओर और एसी जागेकी ओर होती है, मुख भी जागेकी ओर होता है, जो गोबर आदिमें उत्पन्न होते हैं, ये बड़ा कष्ट देनेवाले रोगबीज यज्ञिते हटा दो ॥ १५ ॥

## गर्भदोष-निवारण

### प्रसूतिके दोष

प्रसूतिके समय कियोंको विविध रोग होते हैं, उसका कारण मलिनता है, अतः इस स्थानकी वरिष्ठता करके और कुछ औषधियोंका उपयोग करके कियोंके प्रसूतिके रुध दूर करने चाहिये, इस महत्त्वपूर्ण विषयका वर्णन इस सूक्तमें कहा है। इसका कवि 'मातृ-नामा' है अर्थात् यह माता ही है। माताओंके मनुमत्र सूत्रमरीचिके देसकर उनका संग्रह करके जो मनुभवधान प्राप्त हो सकता है, वह इस सूक्तमें है। इस सूक्तका विषय हस्ती सूक्ते ९ में मन्त्रमें कहा है—

यः स्त्रियं सृतवत्सं अवतोक्तं करोति ।

अस्याः तं मास्य, कर्मलं अक्षियं (छुरु) । ( मं. ९ )

" जिस रोगके कारण छीके बच्चे मरते हैं, अथवा जिस दोषसे छीका गर्भ पतनको प्राप्त होता है, उस छीका वह दोष दूर करना चाहिये और उसके गर्भाशयको निर्दोष बनाया चाहिये।" यह इस सूक्तका साध्य है। छीका गर्भपात न होने और बालबच्चे भी वीर्यायु हों। यह उपाय करना इस सूक्तका वाञ्छित विषय है। यह विषय सब स्त्रीनाटिका हित करनेवाला होनेके कारण बड़ा उपयोगी है। सब कुटुम्बी इससे लाभ उठा सकते हैं। इस सूक्तमें कहा है कि सूतिका-गृहमें कुछ रोगबीज होते हैं अथवा बाह्यसे घुसते हैं, उनका नाश करनेके लिये 'यज विंग' नामक औषधि है, देखिये—  
ये असः जातान् मारयन्ति, सूतिकाः अनुरोरते ।

स्त्रोभागान् पिद्मगः आञ्जतु ॥ ( मं. १९ )

" जो रोगबीज जन्मे हुए बच्चोंको मारते हैं, वे सूतिका गृहमें रहते हैं, वेही कियोंके भागोंमें पहुँचते हैं। उनको दूर करनेके लिये विंग नामक औषधि है।" इस विंग औषधिकी विचार हम भागे करेंगे, यहाँ इतना ही बतलाना है कि ये रोगबीज सूतिकागृहके गर्भोंके कारण उत्पन्न होते हैं। और इसके कारण गर्भपात होता है, गर्भपात होता है और बच्चे भी मर जाते हैं। प्रायः सूतिकागृहमें अज्ञानी लोग अन्धेरा रखते हैं, सूर्य प्रकाश यहाँ नहीं पहुँचता, अतः अन्धेरेके दोषसे ये रोगबीज यहाँ उत्पन्न होकर बढ़ते जाते हैं, वे सूर्य-प्रकाशमें नहीं रहते, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र देखिये—

ये स्यात् परिसर्पन्ति स्तूपेय श्वशुरादधि ।

यजः तेषां हृदये अधि निविध्यताम् ॥ ( मं. २५ )

'जिस प्रकार बहुत शत्रुसे दूर भागती है, उसी प्रकार ये रोगबीज सूर्यप्रकाशसे दूर भागते हैं। उन रोगकियोंके हृदयोंपर यज औषधि बसा धक्का पहुँचाती है।' यह उपाय उत्तम रीतिसे विचार करने योग्य है। बहुत अर्थात् स्तुपा शत्रुके पास नहीं चढ़ता, यह उसके सम्मुख भी खड़ी नहीं होती, शत्रुके आगे ही आगमें चली जाती है। उसी प्रकार ये रोगबीज सूर्यप्रकाशके सम्मुख रुधे नहीं रह सकते, सूर्यप्रकाशमें जीवित भी नहीं रह सकते, यहाँ सूर्य-प्रकाश पहुँचता है यहाँ ये नहीं रहते। अतः जहाँ नीरोगता करनेकी इच्छा हो, यहाँ सूर्यप्रकाश विपुल रखना चाहिये। यदि प्रसूतिगृहके रोगबीज नष्ट करनेकी इच्छा हो, जो यहाँ सूर्यप्रकाश पहुँचानेकी व्यवस्था करनी चाहिये।

यज औषधि इनके हृदयोंपर प्रदात करती है ऐसा यहाँ कहा है, इससे इनके हृदय हैं यह बात सिद्ध होती है। अर्थात् ये रोगबीज हृदयवाले होनेसे कृमिरूप हैं, ये निर्जीव नहीं हैं, वे कृमि वृत्तिक अन्धेरेमें बढ़ते हैं और सूर्यप्रकाशमें नाशको प्राप्त होते हैं, अतः इनसे बचनेका उपाय सूर्यप्रकाश ही है यह बात निश्चित है। परमेश्वरने सूर्यप्रकाश एक ऐसी औषधि दी है कि जिससे अनेक रोग दूर होते हैं और मनुष्य नीरोग और वीर्यायु हो सकता है। इसलिये कहा है—

अप्रजास्त्यं मार्तवत्सं रोदं अर्धं आययं प्रातमुञ्ज ।

( मं. २६ )

'संजान न होना, पैदा होनेके बाद बच्चेका मर जाना, उस कारण रोने पीठनेका संभव होना, पापाचरणमें प्रवृत्ति होना इत्यादि बातेंसे मनुष्यको मुक्त होना चाहिये।' अर्थात् मनुष्यको ऐसा प्रबंध करना चाहिये कि धर्ममें संतति पैदा होवे, उत्पन्न हुए बच्चे न मरें, दीर्घकालक जीवित रहें, मनुष्यपर कुटुम्बियोंकी मृत्युके कारण रोने पीठनेका अवसर न आवे, सब कुटुम्बी भावसे कालक्रमण करते रहें और किसीकी प्रवृत्ति पापकी ओर न होवे। यह साध्य करनेके लिये विपुल सूर्यप्रकाशमें रहनेकी अर्थात् भावश्यकता है। इसका कार्यकारणभाव यह है कि सूर्य प्रकाशसे नीरोगता होती है, रोगबीज दूर होते हैं, नीरोग होनेसे छत्री दुष्ट और वीर्यवान् होता है। औषुत्पत्तिके छत्री वीर्यवान् और अशुत्पुष्ट होनेसे ऐसे शत्रुओंमें पवित्रत्वनीयते होनेवाला गर्भाशय उत्पन्न होता है, वह स्थिर होता है, संतान नीरोग, बलवान् और

मुच्यते होती है, दीर्घजीवी होती है, अर्थात् ऐसी स्त्रियों होनेसे अपत्यपुत्रके कारण होनेवाली रोगेरीयके सम्भावना नहीं होती। प्रसूतिगृहका आरोग्य रखनेसे ऐसे बनेक लाभ होते हैं और प्रसूतिगृहका आरोग्य सूर्यप्रकाशसे स्थिर हो सकता है, अतः कहा है—

य स्वपत्नीं जाग्रतीं दिप्सति । ( ४ )

सूर्यं जनीनशात् ॥ ( म ८ )

' जो रोगबीज सोती हुई या जागती हुई स्त्रीके शरीरमें जाकर उसको कष्ट देता है, उस रोगबीजका नाश सूर्य करता है। ' सूर्यप्रकाशसे ये सब रोगबीज दूर होते हैं, रोगग्रन्थ भी सूर्यप्रकाशसे दूर इरते हैं, यह बात जात्रका चिकित्साशास्त्र भी कहता है। इसी सूर्यप्रकाशका महत्व निम्नलिखित मंत्रमें विशेष रीतिसे कहा है—

ये सूर्यं न तितिक्षन्ते तान् नारायामसि । ( मं १२ )

' जो सूर्यको नहीं सह सकते उन रोगग्रन्थियोंका नाश हम करते हैं। ' यहाँ कहा है कि ये रोगग्रन्थ सूर्यप्रकाशको सह नहीं सकते। अचकारमें ही ये उत्पन्न होते, बढ़ते और रोगीरवधि करते हैं। जो सूर्यप्रकाशको सह नहीं सकते, वे सूर्यप्रकाशसे ही नष्ट होते हैं। सूत्रिकागृहका आरोग्य इस प्रकार सूर्य प्रकाशसे सहजहीमें प्राप्त हो सकता है अतः कहा है—

य गर्भं प्रतिगृह्णात् जातं वा मारयति ।

तं पिंगं हृदयाविद्यं कृणोतु । ( मं १८ )

' जो रोगग्रन्थि गर्भका नाश करता है, जन्मे हुए बच्चेका नाश करता है, उसका विंगल्यगर्भका सूर्य ( अथवा पीली भोजपि) हृदयमें वेध करके नाश करे। ' यहाँ ' पिंगं हृदयके दोनों अर्थ होने समर्थ हैं। सूर्य भी ( विंगल ) पीत पण होता है और वह वनस्पति भी वैसी ही पीली होती है। जो रोगग्रन्थि पूर्वोक्त प्रकार प्रसूतिगृहमें अंधेरीमें और मलिन स्थानमें उत्पन्न होते हैं, वे इस प्रकार नाश करते हैं—

ये जाम मांसं खादन्ति, ये पौषधेयं च कृषि ।

केशवा गर्भान् खादन्ति तान् इत नारायामसि । ( मं २३ )

' ये रोगग्रन्थ शरीरका कच्चा ही मांस खाते हैं, पेटी गर्भोंकी खाते हैं, अतः उनका नाश करना उचित है। जब ये रोगग्रन्थि शरीरमें घुसते हैं तब जहाँ वे जाते हैं और बढ़ाकर रक्त और मांस खाकर मनुष्यको क्षीण करते हैं और ये गर्भमें पहुंचकर गर्भको भी सुला देते हैं, इसलिये

सूर्यप्रकाशकी शरण जानना आवश्यक योग्य है। अतः कहा है—

पिंगं जायमानं रक्ष, पुर्णमासं त्रिय मा क्रु ।

आण्डाद् गर्भान् मा वृन्त,

इत किमीदिनं याधस्य ॥ ( म २६ )

विंगल्यने सूर्य ( अथवा भोजपि ) जन्मे हुए बालककी रक्षा करता है, स्त्री या पुत्रको रोगका भयसर नहीं देता, गर्भोंको रोगग्रन्थि दबा नहीं सकते, और ये जो भूखे किमि हैं उनको सूर्यप्रकाश ही बूर दबा देता है। ' ये सूर्यप्रकाशसे लाभ होते हैं। इस मंत्रमें इन रोगग्रन्थियोंका नाम ' किमी दिव् ' और ' आण्डाद् ' कहा है। किमीदिव्का अर्थ ( किं इदानीं ) अथ क्या खायें, भव क्या खायें, देखा करनेवाले से वृत्ति होते हैं अर्थात् ये सदा भूखे ही रहते हैं। कभी इनको भूख धाम्त नहीं होती, इनको अनुकूल पदार्थ खानेके लिए मिलने पर वे बहुत सख्यारमें बढ़ते हैं और अधिक लाटकी इच्छा करते हैं। इसी प्रकार ये ( आण्डाद् ) अण्डमें स्थित दीर्घको खाजाते हैं और मनुष्यको निर्वाय बना देते हैं, इसलिये इनका हमका होनेसे मनुष्य बच्चाओंमें मर जाता है, पण्डु यदि यह मनुष्य सूर्यप्रकाशसे नीरोस बननेका यत्न करेगा, तो इसकी भ्रूणमृत्यु नहीं होगी।

ये रोगबीज प्रसूतिगृहमें स्त्रीके शरीरपर हमला करते हैं और उसके शरीरमें रोग उत्पन्न करते हैं। रोग उत्पन्न होने के पश्चात् उसके निवारणका उपाय करनेकी अपेक्षा रोग न होनेका यत्न करना अधिक लाभकारी है, इसलिये कहा है—

जाताया दुर्णामा अलिशं यत्सप मा गृधत् ।

( मं १ )

' बालकके जन्मते ही दुर्णामा, अलिश और यत्सप ये रोगबीज स्त्रीपर हमला करनेकी इच्छा न करें। ' प्रसूति गृहमें ये रोगग्रन्थि होते हैं और स्त्रीपर हमला करते हैं। अतः ऐसा प्रबंध करना चाहिये कि, ये वृत्ति प्रसूतिगृहमें उत्पन्न न हों और यदि उत्पन्न भी हो जाय तो स्त्रीके शरीर पर हमला न करें और असाधधानीके कारण हमला कर भी दें तो भी रोग उत्पन्न करनेमें समर्थ न हों। प्रसूतिगृहमें यज्ञ नामक भोजपि रखनेसे अथवा सूर्यकिरण बढ़ा पहुंचाने से यह बात सिद्ध हो सकती है। अतः कहा है—

यज्ञं दुर्णामचारानं । ( मं १ )

' यज्ञ भोजपि इस दुर्णाम नामक रोगबीजको दूर करने वाली होती है। ' इस वनस्पतिको प्रसूतिगृहमें रखनेसे यहाँ का आरोग्य स्थिर रह सकता है। सब वृत्ति रोग उत्पन्न



करते हैं, ऐसी बात नहीं है, इन कृमियोंमें दो प्रकारके कृमि हैं, उनमेंसे एक शच्छे है और दूसरे डूरे, इस विदयमें निम्नलिखित मंत्र देखने योग्य है

दुर्णामा च सुनामा च उभौ संवृतं इच्छतः ।

अरायात् अप ह्यम् । सुनामा स्त्रिणं इच्छताम् ॥  
( मं. ४ )

'दो प्रकारके ये कृमि हैं, एक (सुनामा) उत्तम नाम-वाला कर्मात् जो शरीरमें शिवकारी है और दूसरा (दुःनामा) दुष्ट नामवाला, जिससे शरीरमें रोग उत्पन्न होते हैं । ये दोनों शरीरपर आक्रमण करना चाहते हैं । इनमें जो (अ-रायात्) कृपण, अनुदार अथवा दुष्ट होते हैं उनका नाम इन करते हैं और जो उत्तम हैं वे छोटे पास पहुंचें ।' कर्मात् उत्तम कृमि मनुष्यके लिये शिवकारक हैं, परन्तु जो रोगजन्य हैं वे ही घातक हैं, अतः ऐसा प्रवचन होना चाहिये कि ये पात्रक रोगजन्य परां किसीको कष्ट न पहुंचा सकें । ये कृमि किस रूपके होते हैं, इसका वर्णन निम्नलिखित मन्त्रमें कहा है—

द्वयास्यात् चतुरस्रात् पञ्चपदात् अंगुरेः ।

अभिसर्षतः परिवृतात् वृन्तात्परिपाहि ।

( मं. २२ )

'इन कृमियोंके दो मुख, चार भाँसों और पाँच पाँव होते हैं । इनकी अंगुलियाँ नहीं होती । ये हमला करते हैं और संवृतकिते रहते हैं, इनसे बचना चाहिये ।' यह इन कृमियोंका वर्णन है, इसके साथ निम्नलिखित वर्णन और देखिये—

येषां प्रपदानि पश्चात्, पार्ष्वां मुखानि च पुरः ।

एतज्जाः शरुभूमजाः उदग्धाः

मर्मटाः कुम्भमुष्काः अयाशवः

अस्याः तान् प्रतियोधेन नाशय । ( मं. १५ )

'इनके पाँच पीठकी ओर तथा एकी ओर मुख बाएँकी ओर होता है ।' इन कृमियोंका वर्णन करनेवाले शब्द इस मंत्रमें 'खलजाः, शरुभूमजाः, उदग्धाः, मर्मटाः, कुम्भ-मुष्का, अयाशवः' ये हैं, इनमें 'शरुभूमजः' शब्दका अर्थ 'शोबरके धुँवसे उत्पन्न' है, अन्य शब्दोंके अर्थ अभी तक विशेष विचार करने योग्य स्पष्ट नहीं हुए हैं । इस सूत्रमें ऐसे और भी बहुतसे शब्द हैं कि जिनका अर्थ स्पष्ट झुलटा नहीं है । ये कृमि कियोंके शरीरोंमें रोग उत्पन्न करते हैं, इस विषयमें कहा है—

ये हस्ते भृंगाणि विधतः यच्चः यन्ति ।

ये स्तम्भे ज्योतिः कुर्वते ।

ये आ-वाके-ष्ठः महासिनः नाशयामसि ।

( गं. १४ )

"जो हाथोंमें अपनी संतोंको धारण करते हैं और स्तंभके पास पहुंचते हैं, जो चमकते हैं और पात्रकालोंमें निवास करते हैं, उनका नाश करते हैं ।" ऐसे कृमि कियोंके शरीरमें घुसते हैं और वहाँ विविध रोग उत्पन्न करते हैं, अतः इनका नाश करना योग्य है । इस वर्णनमें 'स्तंभे ज्योतिः करेका' क्या अर्थ है इसका ज्ञान नहीं होता । इसको भी खोज होनी चाहिये । इस सूत्रमें रोगभृंगाणिके दो शब्द कहे हैं, एक सूक्ष्म और दूसरे बड़े । पशुतिक सूक्ष्मकियोंका वर्णन हुआ अब बड़े मच्छर जैसे कृमियोंका वर्णन देखिये—

मच्छरोंका शापन

गर्दभनादिनः कुसुलाः कुशिलाः कयमाः क्रिमाः ।

सार्यं शालाः परितृस्यन्ति, तान् गन्धेन नाशय ॥

( मं. १० )

"गंधे जैसा शब्द कलेशाले, जिनके पास चुमानेके लिये सुई जैसे द्विविधर होते हैं, जिनका पेट घना होता है, जो सार्य-कालके समय घरके पास भाषते हैं, इनका शब्दसे नाश कर । यह वर्णन प्रायः मच्छरों अथवा मच्छर जैसे कीड़ोंका वर्णन है । वे शब्द करते हैं, सार्यकालको इनका शब्द सुनाई देता है, इनके कान्नेके ठेक बड़े तीक्ष्ण होते हैं । इनका नाश करनेके लिये उदग्धवाले अथवा सुगन्धवाले पदार्थ जलाने चाहिये । घरमें धूप जलानेसे मच्छर नष्ट हो जाते हैं, यह शायदा भी अनुभव है । इसी प्रकार उदग्धवाले पदार्थ भी जलानेसे इन कीड़ोंको हृदाया ना सकता है । इन्हींका वर्णन निम्नलिखित मन्त्रोंमें है—

मच्छरोंके शूल

कुसुन्धाः कुकूरमाः कृतीः कृतीनि विधति ।

ये योषे कुर्वतः धमे प्रनृत्यतः

तान् नाशयामसि । ( मं. ११ )

"(कृतीः) कान्नेवाले (कृतीनि) दंत करनेके साधन अपने पास धारण करते हैं । ये शब्द करते हैं और अद्वलमें नाच करते हैं, ऐसे कृमियोंका इस नाश करते हैं ।" यह वर्णन भी पूर्वके समावही मच्छरोंके मुँहोंमें लोकाळीके साधन होते हैं, उनका नाम यहाँ 'कृती' दिया है और कान्नेके

कारण ही इनको ' कृती ' अर्थात् काटनेवाला कहा है । ये ग्वरादिको बढाते हैं इसलिये उग्रगन्धवाले पदार्थ खटाकर इनका नाश करना उचित है । इस मन्त्रमें और पूर्व मन्त्रमें कई ऐसे शब्द हैं कि जिनका अर्थ स्पष्ट नहीं ज्ञात होता । ये शब्द खोतके योग्य हैं । तथा और देखिये—

### मच्छरोंके स्थान

अरायान् घस्तथासिनः दुर्गन्धीन् लोहितास्यान्  
मककान् नाशयामसि ॥ ( मं. १२ )

“ ये कृमि बल अर्थात् घर्म आदिरर रहते हैं, इनसे दुर्गन्ध आती है, इनके मुख लाल होते हैं, इन मशकोंका अर्थात् मच्छरोंका नाश करते हैं । ” इस मन्त्रमें ' मकक ' शब्द बहुत छरके मच्छरोंका शाब्द है । ' बल ' शब्दके निश्चित अर्थको भी खोज करनी आवश्यक है । इन कृमियोंको यहाँ ' अराय ' कहा है । इस शब्दका अर्थ ' न देनेवाला ' है । ये कृमि आरोग्यको नहीं देते, खूनको नहीं देते, आयुष्यको नहीं देते तथा शरीरको शोभाको और बलको भी नहीं देते । क्योंकि इनसे अनेक रोग होते हैं और उस कारण इनका नाश क्षय होता है । इन रोगकृमियोंके कुछ रक्षण निम्नलिखित शब्दोद्गाता प्रकट होते हैं, यतः ये शब्द ब्रह्म देखिये, द्वितीयमन्त्रमें निम्नलिखित रोगजन्तुओंके नाम हैं—

### रोगकृमियोंके नाम

१ पलाल-अनुपलालौ— मांस जिनके शिपु अनुकूल है, मांस रससे जो बढते हैं, मांस खाकर जिनकी पुष्टि होती है ।

२ शकुं— हिसक, जो नाश करते हैं ।

३ कौकः— कामको बढाकर दीर्घबाध करनेवाले ।

४ मलिनमुकुत्— मलिनतासे बढनेवाले, मलिनतामें उत्पन्न होनेवाले ।

५ पत्नीजकः— पतिव रोगको उत्पन्न करनेवाले ।

६ वाशेषः— कित्तिके साथ रहनेवाले ।

७ प्रमीलिन— सुखी खानेवाले ।

इस मंत्रके अन्य शब्द ' यमिघात्सम्, प्राक्षर्णीय ' के खोज करने योग्य हैं, क्योंकि इनका अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ है । प्रथम मंत्रमें निम्नलिखित शब्द हैं—

८ कृष्णः— काले रंगवाले । किंवा क्रींचनेवाले ।

९ केदी— शालोंवाले मयवा कम्बुवाले ।

१० अ-सुरः— प्राणपात करनेवाले ।

११ तुण्डिकः— छोटे मुखवाले ।

१२ अ-रायः— आरोग्यपादि न देनेवाले ।

इस पन्चम मंत्रमें ' स्तयज ' शब्द है, इसका अर्थ सम-समें नहीं आता है । मतः यह खोतकी अपेक्षा रखता है । यह मंत्रमें निम्नलिखित शब्द हैं—

१३ अनुजिघ्रः— स्तूपसे शरीरमें प्रवेश करनेवाले, नासिका द्वारा शरीरमें प्रवेश करनेवाले, केशमेंमें जो शते हैं ।

१४ प्रमृशन्— स्वर्ध करनेवाले, स्वर्धसे प्राप्त होनेवाले, स्वर्धशून्य रहनेके बीच ।

१५ कल्प्यादः— मांस खानेवाले, शरीरका रक्त और मांस खानेवाले ।

१६ रेरेरिज्— हिसक, घातक, नाशक ।

१७ श्वकिण्डी— कुत्तेके समान पीसा करनेवाले ।

इसी प्रकार अन्य मंत्रोंमें जो शब्द हैं, उनका भी यहाँ विचार करेंगे तो उनसे इन रोगकृमियोंका ज्ञान हो सकता है ।

इन सब रोगबीजोंको ' पिंग वज ' दूर करता है । इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखने योग्य है—

### पिंग वज

परिमृष्टं धारयतु, हितं मा भवपादि ।

उग्रौ भेषजौ गर्भं रक्षताम् ॥ ( मं. २० )

पवीनसात् तंगस्यार् छायकार्य

नद्रायात् किमीदिनः ।

प्रजाये फ्ले पिंगः परिपातु ॥ ( मं. २१ )

' गर्भाशयमें आधान किया हुआ गर्भ उग्रम रीतिसे धारण किया जाये, गर्भाशयमें स्थित गर्भ पतनको न प्राप्त हो, यह दोनों वीज लौघर्षवा उसकी रक्षा करें । इन रोगबीजोंसे उग्रम संतान होनेके लिये पिंग वजस्ववित्से गर्भाशयकी रक्षा होवे । '

इसीमें मंत्रके रोगबीजवाचक शब्द बड़े दुर्बोध हैं तथा इस सूत्रमें कहे ' पिंग वज ' वजस्ववित्का भी कुछ पता नहीं चहता कि यह वजस्ववित् कौनसी है । वैदिक मंत्रोंमें इसका नाम नहीं है । मतः इसकी खोज शोभी कठिन है । श्री. साधनाचार्यजीने अपने अथर्वभाष्यमें इस सूत्रपर भाष्य करते हुए इसका अर्थ ' श्वेतसर्प ' किया है, अर्थात् ' सफेद सर्पों ', सशभ है, यही ' पिंग वज ' का अर्थ हो, इसके गुण वैदिकमंत्रोंमें निम्नलिखित प्रकार दिये हैं—

## पिंशवजके गुण

तिक्तः तीक्ष्णोष्णः घातकफघ्नः उष्णः कृमिकुष्ठघ्नः ।

सितासितभेदेन द्विधा । ( राग, )

गृह्णो घातशूलनुत् । गुल्मफण्डूकुष्ठप्रणापहः ।

वातरक्तप्रहापहः । त्वग्दीपशमनो विषभूतप्रणापहः ।

सर्पपतैलगुणाः- वातकफपिकारणं कृमिकुष्ठघ्नं चक्षुष्यम् ।

। 'सर्सां तिक्त, तीक्ष्ण, उष्ण, घात और कफको हटाने-वादी, कृमि और कुष्ठरोगको दूर करनेवादी है। शूल और कांजी ऐसे इसके दो भेद हैं। यह कड़ू, उष्ण, वातशूलका नाश करनेवादी, गुल्म, कण्डू, कुष्ठ, प्रतका नाश करनेवादी

है। यह रक्तदोषको दूर करनेवादी, त्वचाके दोषको दूर करनेवादी, विषसे उत्पन्न घणको हटानेवादी है। सर्सांके वैदके गुण ये हैं- वात और कफके विकारको दूर करता है, कृमि और कुष्ठका नाश करता है और शांतिके लिये हितकर है ।'

इस वर्णनमें सर्सांका गुण कृमिनाशक, कुष्ठनाशक दिया है, जो पूर्वोक्त सूक्तके उपदेशके साथ संगत है, अतः बहुत संभव है कि यही अर्थ 'पिंश वज' का हो। इसकी विशेष खोज शक्यतः आवश्यक है। वस्तुतः यह साथ सूक्त ही विशेष जोड़ करने योग्य है, क्योंकि इसके कड़े शब्द और कड़े वाक्य दुबोच हैं और आधुनिक कोशोंसे इनका अर्थ करनेके लिये कोई विशेष सहायता नहीं मिलती है ।

## पुंसवन

कां. ६, सू. ११

( ऋषिः- मत्स्यपति । देवता- रेतः, अम्बोक्तदेवता । )

शमीमंश्वरथ आरूढस्वयं पुंसवनं कृतम् । तद्वै पुत्रस्य वेदनं तस्त्रीष्वामं रामसि ॥ १ ॥

पुंसि वै रेतो भवति तस्त्रियामनु पिच्यते । तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापतिरब्रवीत् ॥ २ ॥

प्रजापतिरनुमतिः सिनीवालयुर्चाकल्पत् । स्त्रीपुंयमनुयत्र दधत्पुमांसमु दधद्विह ॥ ३ ॥

अर्थ— ( अश्व-रथः ) अश्वथ वृक्ष ( शमी आरूढः ) शमी वृक्षपर जहाँ चढ़ा होता है ( तत्र पुंसवनं कृतं ) वहाँ पुंसवन किया जाता है । उससे ( पुत्रस्य वेदनं ) पुत्र-प्राप्ति निश्चित है । ( तत् स्त्रीषु आभरामसि ) वह स्त्रियोंमें हम भर देते हैं ॥ १ ॥

( पुंसि वै रेतः भवति ) पुरुषमें निश्चयसे बीज होता है ( तत् स्त्रियां अनुपिच्यते ) वह स्त्रियोंमें सींचा जाता है, ( तत् वै पुत्रस्य वेदनं ) वह पुत्र प्राप्तिका साधन है, ( तत् प्रजापतिः अब्रवीत् ) वह प्रजापतिने कहा है ॥ २ ॥

( प्रजापतिः अनुमतिः ) प्रजापालक विना अनुकूल मति धारण करे और ( सिनी-वाली यचीकल्पत् ) गर्भ-वती स्त्री समर्थ होवे, ऐसा होनेपर ( पुमांसं उ इह दधत् ) पुत्र गर्भ ही यहाँ धारण होता है, ( अन्वयः स्त्रीपुंयं दधत् ) अन्य परिस्थितिमें स्त्रीगर्भ धारण होता है ॥ ३ ॥

## पुंसवन

## निश्चयसे पुत्रकी उत्पात्ति

निश्चयसे पुत्रकी उत्पात्ति होनेके लिये एक उपाय इस सूक्तमें कहा है, उस औषधि प्रयोगका उपाय यह है—

शमी, अश्वत्थ आरूढः तत्र पुंसवनं कृतम् ।

तद्वै पुत्रस्य वेदनं, तत् स्त्रीष्वामयमसि ॥ ( सं. १ )

' ( १ ) शमी वृक्षपर उगा और चढ़ा हुआ पीरलका वृक्ष होता है, वह पीरल पुत्ररूप गर्भकी धारणा करनेवाला होता है। अर्थात् इसकी औषध बनाकर यदि स्त्री सेवन करेगी तो वह स्त्री पुत्र उत्पन्न करनेवाली बनेगी । ( २ ) यह पीरल निश्चयसे पुत्र उत्पन्न करनेवाला है, ( ३ ) इसके सेवनसे

विश्रमसे पुत्र उत्पन्न होता है, ( ४ ) पुत्र उत्पत्तिसे लिये इस पीपलके औषधको शिवोंको देना चाहिये ।

शर्मोंके वृक्षपर उभे पीपल वृक्षके पन्धरका पूर्ण करके मधुके साथ सेवन किया जाने अथवा अथ वृध आदिद्वारा सेवन किया जाये । इसके सेवनसे स्त्रीका गर्भाशय पुरुष गर्भ बनानेमें समर्थ होता है । जिस स्त्रीकी कटकियां ही होती हैं, उस स्त्रीकी वह औषध देनेसे उसके गर्भाशयमें परिवर्तन होकर, पुरुष गर्भ उत्पन्न करनेकी शक्ति तत्तमें प्राप्त होती है ।

### पुंसवन और स्तूपय

पुत्र उत्पन्न होनेका 'पुंसवन' और लड़की उत्पन्न होनेका नाम 'स्तूपय' है । ये दोनों नाम इस सूक्तमें प्रयुक्त हुए हैं । जो पुरुष संतान निश्चयसे चाहते हैं वे इस औषधीका उपयोग करें । इस मंत्रके रूप अर्घ्यसे और भी एक आशय स्पष्ट होता है, वह देखने योग्य है—

१ अश्विनः— अश्वका अर्थ पत्नी है । मासीकरणका अर्थ पुरुषको पुरुषराशितसे युक्त करना है । अश्व शब्दका अर्थ यहाँ घोड़ेके समान पुरुषधर्मसे युक्त और समर्थ पुरुष । (अश्व) घोड़ेके समान जो (स्थ, स्थः) रहता है ऐसा कहना पुण्य ।

२ शर्मा— मावकी वृत्तियां उगलने व देनेवाली स्त्री, गर्भाव धर्मात्पुरुष गृहस्थाधर्म नियमोंका पालन करनेवाली स्त्री । ऐसे स्त्रीपुरुषोंके सम्बन्धसे निश्चित पुत्र संतान होती है । इस स्त्रीपुरुष-सम्बन्धमें वीर्यका बल अधिक होने और रक्तकी न्यूनता रहनेका विधान किया है । इसी कारण निश्चयसे पुत्र संतान होती है । अर्थात् पुरुष अधिक बलशाली हुआ उसे पुरुषसंतान और स्त्री बलशालिनी हुई, तो स्त्रीसंतान होती

है । यहाँ बलका अर्थ पुरुषवीर्य और स्त्रीरक्तका भाव लेना योग्य है ।

द्वितीय मंत्र गर्भावधान परक है और स्पष्ट है । तृतीय मंत्रमें फिर स्त्रैवर्षसे कुछ विशेष आशय कहा है । वह अब देखिये—

१ प्रजापतिः— अपने संतानोंका उत्तम रीतिसे पालन करनेमें समर्थ गृहस्थी पुरुष ।

२ अनुमतिः— परस्पर अनुकूल प्रेमपूर्ण भाव रखनेवाले स्त्री या पुरुष ।

ये सिनीघाटी— सिनका अर्थ है अन्नकटा, उसके एक बल यशनेवाली स्त्री सिनीघाटी है । जिस प्रकार शूद्रपशुकी शक्तिमें अन्नकी कटाये बढती हैं, वही प्रकार जिस स्त्रीके गर्भाशयमें गर्भकी कटाये बढती हैं । उसे सिनीघाटी कहते हैं ।

ये शब्द बड़े विश्वरणीय हैं । सन्तान उत्पन्न वही करे कि जो उनके पालन पोषणका भार सदन करनेमें समर्थ हो । सन्तानोत्पत्ति करना है तो स्त्रीपुरुष परस्पर अनुकूल संगति रखें, तभी समाजगुणवत्ता पुत्र होगा । उनमें विशेष होगा जो संतान भी विद्वत् गुणधर्मवाली होगी । शर्मवती स्त्री समझे स्त्री मेरे अन्दर चंद्रमा जैसा अपनी कटामें बढनेवाला गर्भ है और उसके सुवृद्धिका प्रबंध करना मेरा कर्तव्य है । इस प्रकार व्यवस्था होनेसे पुत्र सन्तान होती है । इसके विपरीत अवस्था होनेसे स्त्री सन्तान होती है अथवा गर्भरक्त सन्तान होगी ।

अर्थात् पुरुष वीर्यकी न्यूनता, स्त्री रक्तकी अधिकता, पुरुष और स्त्रीके मनोवृत्तियोंमें विशेष इत्थानि कारणसे स्त्री सन्तान और रत्नीर्यकी समानतासे गर्भरक्त सन्तान होती है ।

## सुख-प्रसूति-सूक्त

कां. १, सू. ११

( कविः— अर्घवा । देवता— परादयो, नामा देवताः । )

वर्षट् ते पूषन्नसिन्नुतावर्षमः होतां कृणोतु धेधाः ।

सिद्धतां नार्पृतप्रजाता वि पवीणि जिहतां सूता उ

॥ १ ॥

अर्थ— हे (पूषन्) पोषक ईश्वर ! (ते वर्षट्) तेरे लिये हम स्वर्गको अर्पित करते हैं । (नसिन्नु सूता) इस प्रयत्नके कार्यमें (अर्घमा होता धेधाः) आर्य मनवाला राजा विपत्ता ईश्वर सहायता (कृणोतु) करे । (अनुप्रजाता) नियमपरक शक्तियोंके जन्म देनेवाली (मारी) स्त्री (सिद्धतां) इच्छतासे रहे । क्या अपने (पर्वणि) शर्मोंको (सूतये उ) सुखप्रसूतिके लिये (विजिहतां) पीले करे ॥ १ ॥

भाषार्थ— हे सबके पोषण करनेवाले उगरीश ! तेरे लिये हम स्वर्गको अर्पित करते हैं । इस प्रसूतिके समय पर शक्तियोंके निर्माण हुआ हमारा सहायक बन । यह स्त्री भी सुखतासे रहे और इस समय अपने शर्मोंको पीला करे ॥ १ ॥

चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उव । देवा गर्भे समैरयन् तं व्युपुंयन्तु सूतवे	॥ २ ॥
सूपा व्युपुंयंतु वि योनिं हापयामसि । अथवा सूपणे त्वमव त्वं विष्कले मृज	॥ ३ ॥
नेवं मांसं न पीवसि नेवं मज्जस्राहृतम् ।	
अवेतु पृश्नि श्रेवलं शुने जरायुचत्वेऽने जरायुं पद्यताम्	॥ ४ ॥
वि तै भिनश्चि मेहंनं वि योनिं वि गर्भानिके ।	
वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणावं जरायुं पद्यताम्	॥ ५ ॥
यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणाः ।	
एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पतावं जरायुं पद्यताम्	॥ ६ ॥

अर्थ— (दिवः) आकाशकी (उत) तथा (भूम्याः) मृगिकी (चतस्रःप्रदिशः) चारों दिशाओंमें रहनेवाले (देवाः) देवोंने (गर्भे समैरयन्) इस गर्भको बनाया, इसलिये वे ही (सूतवे) उसकी सुतप्रसूतिके लिये (तं वि व्युपुंयन्तु) उसको प्रकट करें, उसको बाहर निकालें ॥ २ ॥

(सूपा) उतम संतान उत्पन्न करनेवाली माता (व्युपुंयंतु) अपने भंगोंकी सुला करें । इन (योनिं) योनिको (विहापयामसि) खोलेते हैं । हे (सूपणे) प्रसूत होनेवाली स्त्री ! (त्वं) तू भी (अथवा) भद्रसे प्रेरणा कर और हे (विष्कले) धीर स्त्री ! (त्वं) तू (अवयुज) बालकको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥

(न इव मांसं) न तो मांसमें, (न पीवसि) न चर्बीमें और (न इव मज्जसु) न तो मज्जामें वह (आहृतं) लिखा हुआ है । (पृश्नि श्रेवलं) नरम सेवारके समान (जरायु) जेली (शुने अत्तवे) उसके खानेके लिये (अवेतु) नीचे आवे, (जरायु) जेली (अपद्यताम्) नीचे गिर जावे ॥ ४ ॥

(ते मेहंनं) वेरे गर्भके मार्गको, (योनिं) योनिको तथा (पक्षीनिके) दोनों नारियोंको (वि वि वि भिनश्चि) विशेष रीतिसे सुना करा है । (मातरं पुत्रं च) माता और पुत्रको (वि) भक्षण करा है तथा (कुमारं जरायुणा वि) बच्चेको जेलीसे भक्षण करा है । (जरायु) जेली (अपद्यताम्) नीचे गिर जावे ॥ ५ ॥

जैसे वायु, जैसे मन और जैसे पक्षी (पतन्ति) पड़ते हैं, (एव) इसी प्रकार हे (दशमास्य) दस माहियेवाले गर्भे ! तू (जरायुणा साकं) जेलीके साथ (पत्र) नीचे आ तथा (जरायु अपद्यताम्) जेली नीचे गिर जावे ॥ ६ ॥

भाषार्थ— आकाश और भूमिकी चारों दिशाओंमें रहनेवाले सूर्यादि सन्पूर्ण देवोंने इस गर्भको बनाया है और वे ही इस समय अपनी सहायतासे इसकी सुतप्रसूत गर्भस्थानसे बाहर लावे ॥ २ ॥

श्री अथ अपने भंग सुते करें, सहाय करनेवाली चार्द योनिको खोले । हे स्त्री ! तू भी मतसे भद्रसे प्रेरणा कर और सुलसे बालकको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥

वह गर्भ मांस, चर्बी या मज्जामें धिक्का नहीं होता । वह पानीमें पापरोर रहनेवाले नरम सेवारके समान अति कोमल पैरीमें लिपटा हुआ होता है, वह सब पैरीकी पैरी एकदम बाहर आवे और वह बालके साथ जेली पुत्रोंको खानेके लिये ही जावे ॥ ४ ॥

योनि, गर्भस्थान और रिपटी नारियोंको हीला किया जावे, प्रसूति होते ही मातासे बच्चा भक्षण किया जावे और बच्चेसे जेली माल समेत भक्षण की जावे । माल समेत सब जेली पूर्णतःसे बाहर निकल जावे ॥ ५ ॥

किस प्रकार मन वेगसे विपयोंमें गिरता है, जैसे वायु और पक्षी वेगसे आकाशमें पड़ते हैं उसी प्रकार दसवें माहमें गर्भ जेलीके साथ गर्भस्थानसे बाहर जावे और जेली आदि सब नीचे अर्थात् माताके गर्भस्थानमें उसका योधा भी भाग बचसिद्ध न रहे ॥ ६ ॥

## सुख-प्रसूति-सूक्त

### प्रसूति प्रकरण

इस सूक्तसे नया प्रकरण प्रारंभ हुआ है। यह प्रकरण विशेषतः स्त्रियोंके लिये और सामान्यतः सुखके लिये विशेष लाभकारी है। स्त्रियोंको प्रसूतिके समय जो कष्ट सहने पड़ते हैं उनका कुछ निवारण ही जानती हैं। प्रसूतिके समय शून्य कष्ट होना प्रयत्नसे साध्य है। गर्भधारणसे लेकर प्रसूतिके समयतक अथवा गर्भधारणसे भी पूर्व समयमें भी जो नियम पालन करने योग्य होते हैं, उनका योग्य रीतिसे पालन करनेसे प्रसूतिके बहुतसे कष्ट दूर होने योग्य हैं। इस विषयमें आगे बहुत उपदेश देनेवाला है। यहाँ इस सूक्तमें जितना विषय आया है, उसको सब यहाँ देखिये—

### ईशमक्ति

परमेश्वरी भक्ति ही मनुष्यको दुःखोंसे पार कर सकती है। गृहस्थी स्त्रीपुरुष यदि परमेश्वरके उत्तम भक्त होंगे तो उस परिवारकी स्त्रियोंको प्रसूतिके कष्ट न होंगे, यह बतानेके लिये इस सूक्तके प्रथम मंत्रके पूर्वार्धमें ही सबसे पहिले ईश्वरकी मानसपूजाका वर्णन किया है।

‘यपद्’ शब्द ‘स्वाहा’ अर्धमें अर्धात् ‘आमरासर्वा’ के अर्धमें प्रयुक्त होता है। (हे पूषन् ! ते यपद्) हे ईश्वर ! दे दे लिये हम अपने आपको समर्पित कर रहे हैं। तू ही (अये-मा) श्रेष्ठ सगणोंका मान करनेवाला अर्थात् शिक्तार्थ है, तू ही (येधाः) सब जगत्का रचयिता और निर्माता है और तू ही (होता) सब सुखोंका दाता है। इसलिये हम तेरे आग्रहसे रहते हैं और तेरे लिये ही पूर्णतया समर्पित होते हैं।

यहाँ पूर्व सूक्तमें वर्णन किये ईश्वरके गुण अनुसंधानसे देने योग्य है। ‘सद्यस्यै देवताभ्यो भक्ति देनेवाला एक ईश्वर है और उसका शासन ही सर्वोपरि है।’ इत्यादि मात्र जो पूर्व सूक्तमें कहे हैं, यहाँ देखिये। ‘सबसे समर्थ मनु ईश्वर मेरा सहायकारी है, और मैं उसकी गोदमें हूँ’ इत्यादि भक्तिके भाव जिसके हृदयमें अङ्गिम प्रेमके साथ रहते हैं, वह मनुष्य विशेष शक्तिसे और भारीगले सुख होता है और प्रायः ऐसा मनुष्य तथा मानदम रहता है।

काम विकारका संयम करनेके लिये परमेश्वर भक्ति ही एक दिव्य औपधि है। कामविकारका नियमन हुआ तो स्त्रियोंके प्रसूतिके दुःख तीनों तीव्र कम हो जाएंगे, क्योंकि कामकी भक्ति होनेसे ही स्त्रियाँ अलग बनती हैं और नया

प्राणिके कारण प्रसूतिके कष्ट अधिक होते हैं तथा प्रसूतिके पश्चात्कें क्षयादि रोग भी कष्ट देते हैं। इसलिये काम-भोगका नियमन करनेकी आवश्यकता उपदेश हरएक स्त्रीपुरुषको यहाँ अवश्य ध्यानमें रचना चाहिये।

### देवोका गर्भमें विकास

सूर्यादि देवता अथवा-अपना अंश गर्भमें रहते हैं, सब देवताभोगका श्रेष्ठारहार गर्भमें होनेसे पश्चात् आत्मा उसमें आता है। इत्यादि विषय वेदमें स्थान स्थानपर आया है। [ इस विषयमें स्वाध्यायमंडल द्वारा प्रकाशित ‘मन्त्रचर्च’ पुस्तकमें ‘देवोका श्रेष्ठारहार’ शीर्षक विस्तृत लेख अवश्य पढ़िये। यहाँ विविध वेदमंत्रोंद्वारा यह विषय स्पष्ट कर दिया गया है। ] साध्य, गर्भमें अंशरूपसे अनेक देवता रहते हैं और उनका संकेत बाह्य देवताओंके साथ है। भूमि और आकाशकी चारों दिशाओंमें रहनेवाले सब देवता गर्भमें अंशरूपसे सदा गए हैं, मानो उनका संमेलन (समैरयन्) ही गर्भमें हुआ है और उनका अधिष्ठाता आत्मा भी उसी गर्भमें है। यह रविविधास गर्भ धारण करनेवाली माताका होना चाहिये। अर्थात् जो गर्भ अपने अंदर है वह अपने केवल कामोपभोगका ही फल नहीं है, अतः उसमें विशेष महत्वपूर्ण भागमत्तिका और दैवीमत्तिका सम्बन्ध है। ऐसा भाव गर्भवती स्त्रीमें स्थिर रहनेसे गर्भवतीका स्वास्थ्य तथा गर्भका पोषण भी उत्तम होता है। गर्भाधानके समयमें भी देवताओंका आह्वान किया जाता है। गर्भावधि काम-विकारके पोषणके लिये नहीं है अतः उच्च शक्तियोंकी धारणाके लिये ही है। अतः। गर्भिणी स्त्री अपने गर्भके विषयमें इतना उच्च भाव मनमें धारण करे और समझे कि जिन देवताओंके अंश गर्भमें एकट्टे हुए हैं वे ही देवता गर्भका पोषण और सुख-प्रसूतिमें अवश्य सहायता देंगे। अर्थात् इस प्रकार देवता-भोगी सहायता और दरमासाहा आधार मुझे है इत्यादि मुझे कोई कष्ट नहीं होगा, यह रविविधास उसमें होना चाहिये।

### गर्भवती स्त्री

पूर्वकें भाव गर्भवती अपने अंदर रहतायें धारण करे। नव गर्भवती स्त्री अपना गृहस्थाश्रमसे रहनेवाली स्त्री जिन शक्तियों विचार करे—

१ नारी— जो धर्मशीलने ( नृपाति ) चरती है अर्थात् यम नियमोंसे अथवा आचार्य करती है, तथा ( नर ) पुरुषके साथ रहती है, वह नारी कहलाती है। अर्थात् विशेष गृहस्थ-

धर्मोंके विषयोंका पालन करनेका भाव इस शब्दसे सूचित होता है । ( सं. १ )

२ ऋत+प्रजाता- ( ऋत ) सत्यनियमानुसूल ( प्रजाता ) प्रजनन कर्मसे युक्त । अर्थात् गर्भ-धारण, गर्भ-दोषण और प्रसूति आदि सब कर्म जिसके सत्य धर्मनियमोंके अनुसूल होते हैं । ऋतुगामी होना, गर्भ धारणके पश्चात् तीन वर्षके उपरान्त अथवा बालक दूध पीना छोड़ दे उपश्चात् ऋतु-गामी होना इत्यादि सब नियमोंका पालन करनेवाली स्त्री सुखसे प्रसूत होती है । ( सं. १ )

३ न्यूया, सूयणा- जिस स्त्रीको प्रसूतिके कुछ शर्तों होने, अर्थात् जो सुखसे प्रसूत होती है । स्त्रियोंको योग्य नियमोंके पालन द्वारा यह गुण अपनेमें लाना चाहिये । ( सं. ३ )

४ दिग्गस्ता- शीत स्त्री अर्थात् धैर्यवती स्त्री । स्त्रियोंको अपने अंदर धैर्य बढ़ाना आवश्यक है । कष्टोंसे घबराना नहीं चाहिये । धैर्यसे उनको सहना चाहिये । ( सं. ३ )

गर्भवती स्त्रियोंको इन शर्मों द्वारा प्राप्त होनेवाला बोध अपने अंदर धारण करना उचित है, क्योंकि सुखप्रसूतिके लिये इन गुणोंकी आवश्यकता है ।

### गर्भ

इस सूत्रमें गर्भका नाम " ददा-मास्य " आया है । इसका अर्थ " दस मासकी मातृबाला " ऐसा है । यह शब्द परिपूर्ण गर्भका समय बता रहा है । इससे महिनेमें प्रसूतिका ठीक समय है । दसवें महिनेसे पूर्व जो प्रसूति होती है, वह गर्भकी अथवा अश्वस्योमें होनेके कारण मातृके कुछ बढ़ती है । योग्य समयके पूर्व होनेवाले गर्भपात और गर्भस्राव ये सब मातृके कुछ बढ़ानेवाले हैं और ये सब दुःख गृहस्थाश्रमी स्त्रियोंको विषमसाहित सर्वांगसे ही होते हैं । जो गृहस्थाश्रमी स्त्रीपुरुष योग्य नियमोंका पालन करते हैं, उनकी स्त्रियोंको सुखसे प्रसूति होती है ।

### सुख-प्रसूतिके लिये आदेश

- १ स्त्री परमेश्वरकी भक्ति करे । ( सं. १ )
- २ अपने गर्भमें देवताओंका अंशवतार है ऐसे भाव मनमें धारण करे । ( सं. २ )
- ३ ( सिद्धतां ) दृढ़तासे अपना व्यवहार करे । ( सं. १ )
- ४ प्रसूतिके समय ( पयसि विजिह्तां ) अपने अङ्गोंको दौटा करे । ( सं. १ )

५ ( सूया व्यूषोत्तु ) सुखाप्रसूति चाहनेवाली स्त्री अपने अङ्गोंको दौटा अथवा झुटा करे अर्थात् सरत न बनाने । ( सं. ३ )

६ ( सूयणे ! त्वं श्रयय ) सुख-प्रसूति चाहनेवाली स्त्री मन्त्री इच्छा-शक्तिसे भी अंदरसे प्रेरणा करे तथा मनसे प्रसूतिके अङ्गोंको प्रेरित करे । यह प्रेरणा स्वयं उस स्त्रीको ही अंदरसे करनी चाहिये । ( सं. ३ )

### घाईकी सहायता

१ प्रसूतिके समय घाईकी सहायता आवश्यक होती है । यह घाई भी प्रसूत होनेवाली स्त्रीको उक्त सूचनाएं देती रहे और धीरज देती रहे । " परमेश्वर तेरा सहायक है और सब देव तेरे गर्भमें हैं अतः उनको भी सहायता तुझे मिलेगी । " इत्यादि वाक्योंसे उसका धीरज बढ़ाये ।

२ आवश्यकता होनेपर योनिस्थान उचित रीतिसे झुटा करे । ( सं. ३ )

३ जेहिके अंदर गर्भ होता है । गर्भके साथ जेही नाल आदि सब बाहर आताय और कोई उसका पदार्थ मातृके गर्भाशयमें न रह जाय इस विषयमें घाई दृढ़तासे अपना कार्य करे । उस पदार्थके अंदर रहनेसे बहुतही दुःखका होना संभव है । ( सं. ४ )

४ प्रसूतिके समय गर्भमार्ग, योनि और पिछले अवयव सुखे करने चाहिये । उनको यथायोग्य रीतिसे दौटा करे, ताकि प्रसूति सुखसे होवे । ( सं. ५ )

५ प्रसूति होते ही मातृके पासतेपुत्रको सहज करके उसपरके जेहिका वेधन हटाकर जो अवश्य कार्य करना हो यह सब योग्य रीतिसे करे । ( सं. ५ )

### सूचना

यह विषय शारीरशास्त्रका है, केवल पौरुषिकता नहीं है । इस सूत्रके शर्मोंका अर्थ भी शारीरशास्त्रके प्रसूति प्रकारके अनुसूल ही समझना उचित है । इसलिये जो वैद्य या दास्य हैं, जिन्होंने सुख-प्रसूतिशास्त्रका विचार किया है, तथा जिन स्त्रियोंको इस शास्त्रके ज्ञानके साथ अच्छा अनुभव भी है, उनको इस सूत्रका अधिक विचार करना चाहिये । ये ही इस सूत्रके " सिद्धतां विजिह्तां, व्यूषोत्तु " आदि शर्मोंको ठीक प्रकार समझते हैं और ये ही इस सूत्रकी ठीक व्याख्या कर सकते हैं ।

## रक्तस्राविक बन्द करना

कां. १, सू. १७

( कृपि— प्रज्ञा । देवता— योवितः भगन्वध । )

अमूर्या यन्ति योपितो हिरा लोहितवाससः । अत्रार्तर इव जामयस्तिष्ठन्तु हृतवर्चसः ॥ १ ॥  
 तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे । कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिद्रुमनिर्मुही ॥ २ ॥  
 शतस्य घमनीनां सहस्रस्य हिराणाम् । अस्थुरिन्मध्यमा इमाः माकमन्ता अरंसत ॥ ३ ॥  
 परि वः सिकतावती धनुर्वृद्धस्यक्रिभोत् । तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ४ ॥

अर्थ— ( इव ) जिस प्रकार ( अ-भ्रातरः ) बिना भार्दके ( हृत-वर्चसः ) निस्तेज बनी ( जामयः ) रहिने उड़ जाती हैं उसी प्रकार ( अमूः याः ) यह जो ( लोहित-वाससः ) रक्त-काष्ठ रूपके पदनी हुई ( योपितः ) खिना हैं मर्याद काल रंगका लून से जानेवाली ( हिराः ) धमनिवां शरीरमें हैं वे ( तिष्ठन्तु ) उड़ जाय मर्याद चलना बंद करें ॥ १ ॥

( अवरे तिष्ठ ) दे भीचिकी नाडी । १ एक । ( परे तिष्ठ ) दे उपरवाली नाडी । २ भी एक ( उत मध्यमे ) और बीचवाली ( त्वं तिष्ठ ) तू भी एक ज्ञा । ( कनिष्ठिका च तिष्ठति ) छोटी नाडी भी एकही है तथा ( घमनिः इव तिष्ठात् ) बनी नाडी भी एक जाये ॥ २ ॥

( घमनीनां शतस्य ) सैकड़ो धमनिकों और ( हिराणां सहस्रस्य ) हजारों नाडियोंके बीचमे ( इमाः मध्यमाः अस्थुः ) वे मध्यम नाडियां एक गई हैं । ( साकं ) साथ साथ ( अन्ताः ) अंत भाग भी ( अरंसत ) ठीक हो गय हैं ॥ ३ ॥

( वृहती धनुः ) बड़े धनुष्यके ( वः परे अकर्मिन् ) तुमपर इमला किया है, मत- ( सिकतावतीः तिष्ठत ) रेतवाली शयवा शर्करावाली बनकर उड़ जा, तिलसे ( क ) सुख ( सु हल्यत ) प्राप्त करोगी ॥ ४ ॥

भावार्थ— शरीरमे हाठ रंगका रक्त शरीरभस्मे पहुंचानेवाली धमनियां हैं । जब कहीं धाव लग्य जाये तब उनकी गति रोक देने चाहिये, जिस प्रकार दुर्भाग्यको प्राप्त हुई भाई रहित बहिनोंकी गति रोक जाती है ॥ १ ॥

नीचवाली, उपरवाली तथा बीचवाली छोटी और बड़ी सब नाडियोंको बंद कर देना चाहिये ॥ २ ॥

सैकड़ों और हजारों नाडियोंसे आवश्यक नाडियां ही बंद की जावें अर्थात् उनके फटे हुए अंतिम भाग टोक किये जावें ॥ ३ ॥

यदि मनुष्यके बड़े भागसे धमनिपोंपर हमला होनेके कारण नाडियां फट गई हैं, इनका नर्कराने साथ संभव करनेमे शीघ्र धामोप्य प्राप्त हो सकता है ॥ ४ ॥

## रक्तस्राव बंद करना

घाव और रक्तस्राव

शरीर क्षाद्यदिते घाव होनेपर घावके उपरकी और नीचकी नाडियोंको बांध देनेसे रक्तका स्राव बंद हो जाता है । घाव देखकर ही निश्चय करना चाहिये, कि कौनसे भागपर बंद लगाना चाहिये । यदि रक्तस्राव हस्त प्रकार बंद किया जाय तो शीघ्रसे शीघ्र धामोप्य प्राप्त हो सकता है, अन्यथा रक्त

षट्क धार्य होनेके कारण मनुष्य मर भी सकता है । इस-किये इस विषयमें सावधानता रखनी चाहिये ।

“ सिकतावती ” मर्याद रेतवाली शयवा शर्करावाली धमनी करनेसे रक्तस्राव बंद होया है । प्राकिक मिथीका बातोक पूर्ण लगानेसे स्राव बंद हो सकता है, यह कथन विचार करने योग्य है ।



व्याघ्रेऽङ्घ्र्यजनिष्ट वीरो नद्यत्रजा जायमानः सुवीरः ।

स मा वधीत्पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम्

॥ ३ ॥

अर्थ— ( व्याघ्रे ऋषिः ) ऋ दिनमें ( वीरः अजनिष्ट ) वीर पुत्र उत्पन्न हुआ है, ( नद्यत्र-जाः जायमानः सुवीरः ) योग्य नक्षत्रके समय उत्पन्न हुआ यह उत्तम वीर है। ( सः वर्धमानः पितरं मा वधीत् ) वह बढ़ता हुआ पिताको न मारे, ( जनित्रीं मातरं च मा प्रमिनीत् ) उरवादक माताको भी दुःख न दे ॥ ३ ॥

भावार्थ— किसी ऋषिष्ट समयमें भी यह रडका उत्पन्न क्यों न हुआ हो, यह उत्पन्न होनेके बाद उत्तम वीर बने और बढ़ता हुआ अपने माता पिताको कोई श्रेय न पहुँचावे ॥ ३ ॥

## संतानका सुरः

कां. ७, सू. १११

( ऋषिः— मरुतः । देवता— वृषभः । )

इन्द्रस्य कुक्षिरसि सोमधानं आत्मा देवानामुत मानुषाणाम् ।

इह प्रजा जनय यासते आसु या अन्यत्रेह तासते रमन्ताम्

॥ १ ॥

अर्थ— इ ( इन्द्रस्य कुक्षिः असि ) इन्द्रका पेट है, इ ( सोम-धानः ) सोमका धारक है। इ ( देवानां मानुषाणां आत्मा ) देवों और मनुष्योंकी आत्मा है। ( इह प्रजाः जनय ) यहाँ संतान उत्पन्न कर। ( याः ते आसु ) जो तेरी प्रजाएँ इन भूमियोंमें निवास करती हैं ( याः अन्यत्र ) और जो दूसरे स्थानमें निवास करती हैं। ( ते ताः रमन्ताम् ) वे तेरी प्रजाएँ सुखते रहें ॥ १ ॥

मनुष्य इन्द्र अर्थात् इन्द्रियोंको ऋषि देनेवाले आत्माका भोग-संग्रह करनेका मानो पेट ही है, इस पेटमें सोमादि वनस्पतिका संग्रह किया जाये, अर्थात् शाकाहार किया जाये। मांसाहार सर्वथा निषिद्ध है। ऐसा परिशुद्ध मनुष्य इस संसारमें उत्तम संतान उत्पन्न करे, प्रजा अपने देशमें रहे या परदेशमें रहे, वह कहीं भी रहे। जहाँ रहे वहाँ भावेंरसे रहे। सुख और ऐश्वर्य भोगे, सुखपूर्वक रहे।

## घरके दो बालक

कां. ७, सू. ८१

( ऋषिः— अथर्वः । देवता— सार्वभौमः । )

पूर्वापरं चरतो मापयेतौ शिशू क्रीडन्तौ परिं पातोऽर्णवम् ।

विश्वान्यो सुबना विचष्टे क्रतुरन्यो विदधंज्जापसे नयः

॥ १ ॥

अर्थ— ( पतौ शिशू क्रीडन्तौ ) वे दो बालक अर्थात् सूयं और अन्द्र, खेलते हुए ( मापया पूर्वापरं चरतः ) जगिने जागे पीछे चलते हैं। और ( अर्णव परि यातः ) समुद्रतक भ्रमण करते हुए पहुँचते हैं। ( अन्यः विश्वा सुबना विचष्टे ) उनमेंसे एक सब भुचमोंको प्रकाशित करता है और ( अन्यः क्रतून् विदधन् नयः जापसे ) दूसरा मनुष्योंकी बलाग हुआ गया गया बनता है ॥ १ ॥

भावार्थ— इन पारमें दो बालक हैं, वे दोनों एक दूसरेके पीछे अपनी जगिसे ही खेलते हैं। खेलते हुए समुद्रतक पहुँचते हैं, उनमेंसे एक सब जगत्को प्रकाशित करता है और दूसरा मनुष्योंकी बलाग हुआ गया भी चारोंतर मनीन करील बनता है ॥ १ ॥

नवोनवो भवसि जायमानोऽङ्गा केतुठपसमिष्यग्रम् ।

माग देवेभ्यो वि दधास्यापन्न चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः

॥ २ ॥

सोमस्यांशो यथा पतेऽनूनो नाम वा असि । अनून दर्श मा कृधि प्रजया च धनेन च

॥ ३ ॥

दर्शोऽसि दर्शनीयऽसि समग्रोऽसि समन्तः ।

समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरथैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन

॥ ४ ॥

योऽस्मान्द्वेष्टि यं वप द्विष्मस्तस्य त्व प्राणेना प्यायस्य ।

आ युयं प्याधिषीमहि गोभिरथैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन

॥ ५ ॥

यं देवा अशुभाप्याययन्ति यमक्षिणुमथिता मक्षयन्ति ।

तेनास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिरा प्याययन्तु भुवनस्य गोपाः

॥ ६ ॥

अर्थ—(जायमान नव नव भवसि) प्रकट होता हुआ नया नया होता है। एक (अङ्गा केतु) दिनोंको बतानेवाला है वह (उपसा अन्न पयि) उप कालक बाद प्रकट होता है। (आयन् देवेभ्य भाग विदधासि) वह भाग हुआ देवोंके लिये विभाग समर्पण करता है। यथा (चन्द्रम दीर्घ आयु प्र तिरसे) हे चन्द्रमा! तू दीर्घ आयु अर्पण करता है ॥ २ ॥

हे (युवा पते, सोमस्य अंश) युद्धोक्त स्वामी! हे सोमके अंश! (अनून नाम वै असि) तू अनून अर्थात् महान् पतवाला है। हे (दर्श) दर्शनीय! (मा प्रजया धनेन च अनून कृधि) मुझे प्रजा और धनसे परिपूर्ण कर ॥ ३ ॥

(दर्श असि) तू दर्शनीय है, तू (दर्शत असि) दर्शनक लिये योग्य हो। तू (स अन्त समग्र असि) सब अन्तोंसे समग्र हो। (गोभि अथै प्रजया पशुभि गृहै धनेन) गौ, घोड़े, सतान, पशु, घर और धनसे मैं (समन्त समग्र भूयास) अन्ततक परिपूर्ण होऊ ॥ ४ ॥

(य अस्मान् द्वेष्टि) जो हम सबसे द्वेष करता है (य वप द्विष्म) और जिससे हम सब द्वेष करते हैं, (तस्य प्राणेना आप्यायस्य) उसक प्राणसे तू बध जा, (गोभि, अथै, प्रजया, पशुभि, गृहै, धनेन यथ आप्याशिर्षीमहि) गौ, घोड़े, सतान, पशु, घर और धनसे हम सबें ॥ ५ ॥

(य अशु देवा आप्याययन्ति) जिस सोमको देव बडावे हैं, (य अक्षिता अक्षिता मक्षयन्ति) जिस अक्षितानीको अक्षिनासी खाते हैं, (तेन) उस सोमस (अस्मान्) हम सबको (भुवनस्य गोपा इन्द्रः परुण बृहस्पति) भुवनक रक्षक इन्द्र, परुण, बृहस्पति ये देव (आप्याययन्तु) बडावें ॥ ६ ॥

भाष्यार्थ— इनमेंसे एक पितृक समग्रका चिन्ह है जो उप कालक अन्तिम समग्रमें प्रकट होता है और सब देवोंको योग्य विभाग समर्पण करता है। जो दूरत बालक है वह स्वयं बारबार नवीन नवीन बनता है और सबको दीर्घ आयु देता है ॥ २ ॥

हे युद्धोक्त स्वामी! सोमक अंश! तू पूर्ण और दर्शनीय हो, अतः मुझे सतान और धनसे परिपूर्ण बना ॥ ३ ॥

तू दर्शनीय और अत्यन्त परिपूर्ण है, मैं भी गाव घोड़े आदि पशु सतान, घर, धन आदिसे पूर्ण बनूँगा ॥ ४ ॥

जो कुछ हमसे द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं उसक प्राणका तू हरण कर और हम धनादिसे परिपूर्ण बनें ॥ ५ ॥

जिस सोमको देव बडाते और भक्षण करते हैं उससे हम पुष्ट हों, जिसभुवनक रक्षक देव हमारी रक्षक हों ॥ ६ ॥



अदितिः अमथं वपस्वायं उन्दन्तु वचंषा । चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुस्वायु चक्षसे ॥ २ ॥

येनार्वपत्सविता धुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।

तेन ब्रह्मणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानुपमस्तु प्रजावान् ॥ ३ ॥

अर्थ— ( अदितिः अमथु वपतु ) अदिति बालोंका वपन करे, ( आपः वचंषा उन्दन्तु ) जल तेजके साथ बालोंको गीला करे । ( दीर्घायुस्वायु चक्षसे ) दीर्घायु और उन्नत दृष्टिके लिये ( प्रजापतिः चिकित्सतु ) प्रजापालक इसकी चिकित्सा करे ॥ २ ॥

( विद्वान् सविता ) शानी सविता ( येन धुरेण ) जिस धुरेसे ( धरुणस्य राज्ञः सोमस्य अयवत् ) अथ राजा सोमका वपन करता रहा, हे ( ब्रह्मणः ) ब्रह्मणो ! ( तेन अस्य हृदं वपत ) उससे इसका यह सिर मूंडो ( अयं गोमान्, अश्ववान्, प्रजावान्, अस्तु ) यह गौबोंवाला, घोडोंवाला और सन्तानवाला होने ॥ ३ ॥

बालोंका वपन करना अर्थात् हजामत बनवाना हो तो पहिले उन्म जलसे बालोंको अच्छी प्रकार भीगोना चाहिये । भीगानेवाला विशेष कपालसे बाल भीगवै । बहारा छानेवाला निर्दोष उस्तुरा छाने, उसको लीझ करे । जिसने कपालसे राजके सिरका वपन करते हैं, उसकी ही सावधानीसे बालकका भी सिर मुण्डाया जाय । किसी प्रकार अत्यावधानी न हो । जिसका वपन करना हो उसकी बाहु घडे और दण्ड उन्नत हो ऐसी रीतिले वपन करना चाहिये । वैद्य उखरे और अस्की परीक्षा करे जिसकी हजामत होनी है उसकी भी परीक्षा करे । वपनके समय मनका भार ऐसा रखे कि जिसकी हजामत की जा रही है वह दीर्घायु, स्वस्थ, धीरों और घोडोंका पालनेवाला तथा उन्नत संतानसे युक्त हो । इसके विपरीत भाव मनमें न रहे ।

## मेखला बंधन

कां. ६, सू. १३३

( ऋषिः— भगवतः । देवता— मेखला । )

य इमां देवो मेखलामावबन्ध यः संननाह य उं नो युयोज ।

यस्यं देवस्यं प्रथिया चरामः स पारमिच्छात्स स उं नो वि मुञ्चात् ॥ १ ॥

आहुतास्पमिहुतु श्रथीणामस्यायूधम् । पूर्वां व्रतस्य प्राश्नुती वीरुथी भव मेखले ॥ २ ॥

अर्थ— ( यः देवः इमां मेखलां आवबन्ध ) जिस आचार्य देवने इस मेखलाको मेरे शरीरपर बांधा है, ( यः संननाह ) जो हमें तैयार रखता है और ( यः उ नः युयोज ) जो हमें कार्यमें लगाता है । ( यस्य देवस्य प्रथिया चरामः ) जिस आचार्य देवके आशीर्वादसे हम व्यवहार करते हैं, ( सः पारि इच्छात् ) वह हमारे दुःखसे पार हँसि करे और ( सः उ नः विमुञ्चात् ) वही हमें बंधनसे छुडाने ॥ १ ॥

हे मेखले ! ( आहुता अभिहुता अस्ति ) तू सब प्रकारसे प्रशंसित है । तू ( श्रथीणां आयुधं अस्ति ) ऋषियोंका आयुध है । तू ( व्रतस्य पूर्वां प्राश्नुती ) किसी व्रतके पूर्व बांधी जाती है । तू ( वीरुथी भव ) शत्रुके वीरोंको माननेवाली हो ॥ २ ॥

भाष्यार्थ— कुछ शिष्यकी कमरमें मेखला बांधता है और उसको ताकमें बानेके लिये, मानो, तैयार करता है । ऐसे मुहंठे आशीर्वादके साथ जो शिष्य व्यवहार करते हैं वे संपूर्ण दुःखसे पार होते हैं और अन्तमें मुक्ति भी प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

मेखलाकी सब प्रशंसा करते हैं, यह मेखला ऋषियोंका शत्रु है । द्राएक कार्य करनेके पूर्व कमर बांधकर तैयार होनेकी विज्ञा इससे मिलती है । इस प्रकार करिबह होकर कार्य करनेसे सब शत्रु दूर होजाते हैं ॥ २ ॥

मृत्योरहं प्रकृच्छारी पदस्मि निर्वाचन्भूतात्पुरुषं यमाय ।

उमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयेनं मेखलया सिन्वामि ॥ ३ ॥

श्रद्धायां दुहित्वा तपसोऽर्घिं ज्ञाता स्वसु ऋषीणां भूतकृता बभूव ।

सा नो मेखले प्रतिमा धेहि मेधामयो नो धेहि तप इन्द्रियं च ॥ ४ ॥

या त्वा पूर्वं भूतकृत ऋषयः परिबेधिये । सा त्वं परिं प्वजस्व मां दीर्घायुस्वार्य मेखले ॥ ५ ॥

अर्थ— (यत् अह मृत्योः प्रकृच्छारी अस्मि) जिस कारण मैं मृत्युको समर्पित हुआ ब्रह्मचारी हूँ, उस कारण मैं (भूतात् पुरुषं यमाय निर्वाचन्) मनुष्य प्राणियोंमें एक पुरुषको मृत्युके लिये मांगता हूँ और (त अह) उस पुरुषको मैं (ब्रह्मणा तपसा श्रमेण) ज्ञान, तप और परिश्रम करनेकी शक्तिके साथ (एनं अनया मेखलया सिन्वामि) इस मेखलासे बांधता हूँ ॥ ३ ॥

यह मेखला (श्रद्धायां दुहिता) श्रद्धाकी दुहिता, (तपस अधिजाता) तपसे उत्पन्न हुई, (भूतकृता ऋषीणां स्वरा बभूव) भूतोंको बनानेवाले ऋषियोंकी भगिनी है। हे मेखले ! (सा) वह तू (न मतिं मेधा अधेहि) हमें उत्तम बुद्धि और धारणाशक्ति दे (अथो तप इन्द्रियं च न धेहि) और तपशक्ति और उत्तम इंद्रियां हमें प्रदान कर ॥ ४ ॥

हे मेखले ! (या त्वा पूर्वं भूतकृत ऋषयः परिबेधिये) जिस दुष्टको पूर्वकालके भूतोंको बनानेवाले ऋषि बाधते रहे (सा त्वं दीर्घायुस्वार्य मा परिप्वजस्व) वह तू दीर्घायुके लिये मुझे आश्लिष्य दे ॥ ५ ॥

भावार्थ— मेखला बांधनेका अर्थ कटिवद्ध होना है। विशेष कार्यके लिये मेखला बंधन करनेसे, मानो, वह मृत्युको स्वीकार करनेके लिये ही सिद्ध होता है। तप मद्यचारी मृत्युको स्वीकार करनेके लिये ही तैयार होते हैं। इतना ही नहीं अपितु वे मनुष्योंमेंसे कई मनुष्योंको इस प्रकार मृत्यु स्वीकार करनेके लिये तैयार करते हैं। ज्ञान, तप, परिश्रम और कटिवद्धता इन गुणोंसे वे युक्त होते हैं ॥ ३ ॥

मेखला अज्ञाने बाधी जाती है। उससे तप करनेकी श्रुति होती है। श्रेष्ठ ऋषियोंसे यह कटिवधनका मार्गम हुआ है। यह कटिवधन समको उत्तम बुद्धि, धारणाशक्ति, इन्द्रियशक्ति और तप देते ॥ ४ ॥

ऋषियोग इस मेखलाको बाधते हैं, अतः यह मेखला हमें दीर्घायु देते ॥ ५ ॥

## मेखला बंधन

### कटिवद्धता

मेखलाबंधन 'कटिवद्धता' का सूत्रक है। हरवृत्त कार्यके लिये कटिवद्ध होना आवश्यक होता है, अन्यथा वह कार्य बन नहीं सकता। भाषाओं भी कहते हैं कि कमर करके वह मनुष्य इस कार्यको करते लगा है, अर्थात् कार्य ठीक करने के लिये कमर कसनेकी आवश्यकता है। ऋषियोग तथा ब्रह्मचारीगण मेखला बंधन करते थे इसका अर्थ यही है कि वे कमर कसकर धर्मकार्य करनेके लिये सदा तैयार रहते थे। इसी कारण वे यश प्राप्त करते थे।

साधारण कार्य करनेमें कोई विशेष धर नहीं होता है, परंतु कई ऐसे महान् कार्य होते हैं कि उनका करनेसे प्राण जानेकी भी सम्भावना होती है। वैशाहित, राष्ट्रहित या चात्रि हित करने आदिके महान् कार्योंमें कई मनुष्योंकी शपन सर्वस्वकी आहुति भी देनी होती है, इस कार्यके लिये गुण शिष्योंको तैयार करना है—

इमा मेखलां आययन्ध, सननाह, नः युयोज ।

( म १ )

' इमारे गुस्ने यह मेखला हमपर बाधी, उसने हमें

तैयार किया और हमें सत्कार्यमें लगाया ' यह गुरुका कार्य है और यही विद्या सीखनेका हेतु है। विद्या पढ़कर गृह-चारीगण जनपदोत्थार करनेके कार्यके लिये सिद्ध हो जायें और अपने आपको उस कार्यमें उत्तरदाके साथ लगा दें। पाठशालामें पढ़ानेवाले गुरु भी ऐसे हों, कि जो अपने विद्यार्थियोंको इस ढंगसे तैयार करें और राष्ट्रीय विद्यापीठकी पढाई भी ऐसी होनी चाहिये कि, जिसमें पढ़े हुए विद्यार्थी जनहितके कार्य करनेके लिये सदा तैयार हों, सदा कटिबद्ध हों। जो शिष्य इस प्रकार अपने गुरुजीका आशीर्वाद लेकर कार्य करते हैं, उनका वेला पार हो जाता है—

यस्य प्रशिक्षा चरामः, स पारं इच्छात्,  
स नः विमुञ्जात् । ( मं. १ )

“ जिस गुरुके आशीर्वादको प्राप्त करके हम कार्य करते हैं, वह हमें दुःखसे पार करता है और चपनेसे मुक्त भी करता है। ” ऐसे गुरु और ऐसे शिष्य जहाँ होंगे उस देशका सौभाग्य हमेशा ऊँची अवस्थामें रहेगा। इसमें सन्देह नहीं है।

वह मेखला इस प्रकार कटिबद्धताकी सूचना देती है इसीलिये सब लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। हरएक कार्यके प्रारंभ करनेके पूर्व इसी कारण मेखला बांधी जाती है और इसी कारण इससे अनुका बल कम होता है।

विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य करनेके समय सर्वस्वनाशका भी भय होता है, मृत्युका भी भय होता है। यदि इस भयकी कल्पना न होगी तो वैसा समय आनेपर मनुष्य दर जायगा

और पीठि हटेगा। ऐसा न हो इसलिये प्रारंभसे ही इस विद्यार्थीको यह शिक्षा दी जाती है कि—

अहं सृत्योः ब्रह्मचारी अस्मि । ( मं. ३ )

“ मैं सृत्युको समर्पित हुआ ब्रह्मचारी हूँ। ” ब्रह्मचारी समझता है कि मैंने सृत्युको ही आर्तिगत दिया है। सृत्युको ही स्वीकार किया है। जब कोई मनुष्य आर्तिवले सृत्युका प्रतिष्ठा बनाता है, तब और कौनसी अवस्था है कि जिसमें उसको दर लगे? जिसने आर्तिवले सृत्युको स्वीकार कर लिया, उसका सब दर भिट गया, क्योंकि सबसे बड़े भारी डरका उसने मुकाबला किया है। गृहचारीको इस प्रकारकी शिक्षा मिलनी चाहिये। इस प्रकारका निदर बना ब्रह्मचारी भी—

भूतात् यमाथ पुराणं निर्याचन् । ( मं. ३ )

“ जलवासे सृत्युके लिये एक पुरुषकी पाचना करता है। ” अर्थात् वह ब्रह्मचारी जैसे स्वयं निर्भय होकर कार्य करता है, उसी प्रकार अन्य मनुष्यको भी निर्भय बनाता है, वे निर्भय बने हुए मनुष्य—

ब्रह्मणा, तपसा, भ्रमेण, मेखलाया । ( मं. ३ )

“ ज्ञान, तप अर्थात् शीतोष्ण सहन करनेकी शक्ति, परिश्रम करनेका बल और मेखलाबंधन अर्थात् कटिबद्ध होनेका गुण ” इनसे युक्त होते हैं और जो इनसे युक्त होते हैं वे सबसे धैर्य होते हैं।

मेखलाबंधनसे मति, धारणाशुद्धि, शीतोष्णसहन करनेका सामर्थ्य और सुदृढ इन्द्रियकी प्राप्ति होती है, तथा दीर्घायु भी प्राप्त होती है। इस प्रकार मेखलाका महत्व है।

## कामको कष्टसे भेजो

कां. ६, सू. १३०

( कृषि - अध्यायिका । देवता - सर । )

रथजिता राधजितेयीनामस्मरतामयं स्मरः । देवः प्र हिंशुत स्मरमसी मामनुं शोचतु ॥ १ ॥

असी मे स्मरतादिति मियो मे स्मरतादिति । देवः प्र हिंशुत स्मरमसी मामनुं शोचतु ॥ २ ॥

अर्थ— ( रथजिता राधजितेयीनां अस्मरसा ) रथसे शीतनेवाली और रथसे जीती गई अन्धकारको ( अयं स्मरः ) यह काम है। हे देवो ! ( स्मरं प्रहिंशुत ) इस कामको दूर करो, ( असी मां अनुशोचतु ) यह मेरा शोक करे ॥ १ ॥

( असी मे स्मरतात् इति ) यह मुझे स्मरण करे, ( मियो मे स्मरतात् इति ) मेरा मित्र मुझे स्मरण करे। हे देवो ! ( स्मरं प्रहिंशुत ) इस कामको दूर कर। ( असी मां अनुशोचतु ) यह मेरा शोक करे ॥ २ ॥

येथा मम स्मरादसौ नामुप्याई कदा चन । देवाः प्र हिंशुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ ३ ॥  
उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय । अग्न उन्मादया त्वमसौ माननु शोचतु ॥ ४ ॥

अर्थ— (यथा असौ मम स्मरात्) जिस प्रकार यह मेरा स्मरण करे, उस प्रकार (अमुप्य अहं कदाचन न) उसका मैं कदापि स्मरण न करूँ, हे देवो ! (स्मरं०) इस कामको दूर करो, वह मेरा शोक करे ॥ ३ ॥

हे मरुतो ! (उन्मादयत) उन्मत्त करो । (अन्तरिक्ष ! उन्मादय) हे अन्तरिक्ष ! उन्मत्त कर । हे अग्ने ! (त्वं उन्मादय) तू भी उन्माद उत्पन्न कर । (असौ मां अनुशोचतु) यह मेरा शोक करे ॥ ४ ॥

### कामको लौटा दो

इसका अर्थ स्पष्ट है । किसीके विषयमें सनसै काम उत्पन्न हो जाय, तो उसको जिसके कारण वह काम उत्पन्न हुआ हो उसके पास वापस करना चाहिये । अपने भयमें उसके स्थान देना नहीं चाहिये । जिस अवस्थामें दूसरे लोग-स्त्री या पुत्र्य-कामके कारण उन्मत्त, प्रमत्त और बेहोशते हो जाते हैं, वैसी अवस्था प्राप्त करनेपर भी कामका असर अपने मनपर नहीं होने देना चाहिये । इस प्रकार अपना मन काम विकारसे दूर रखना चाहिये ।

## कामको वापस मेजो

कां. ६, सू. १३१

( अर्थः— अयवांशिरा । देवता- स्मर । )

नि शीर्षो नि पंचत आष्योद्भे नि तिरामि ते । देवाः प्र हिंशुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ १ ॥  
अनुमतेऽनिरुदं मन्वस्वाकृते समिदं नमः । देवाः प्र हिंशुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ २ ॥  
यद्वावसि त्रिमोजनं पञ्चयोजनमाश्विनम् । ततस्त्वं पुनरायसि पुत्राणां नो अतः पिता ॥ ३ ॥

अर्थ— (ते आष्यः शीर्षतः पञ्चतः) वेही अधोपे स्तिरसे और पाँचसे ( नि नि नि तिरामि) हय देवा ह । हे ( देवाः) देवो ! (स्मरं प्रहिंशुत) कालको दूर करो, (असौ मां अनुशोचतु) यह काम मेरे कारण शोक करे ॥ १ ॥

हे (अनुमते) अनुमति ! (इदं अनुमन्यस्व) इसको दू अनुकूल मान । हे (आकृते) सकल ! हे (इदं नमः सं) यह मेरा वनन स्वीकार कर । हे देवो ! कामको दूर करो और वह मेरे कारण शोक करे ॥ २ ॥

(यत् त्रियोजनं चायसि) जो तीन योजन दीउता है, अथवा (आश्विनं पञ्चयोजनं) घोड़ेपरसे पाँच योजन जाना है, (ततः त्वं पुनः वायसि) वहाँसे दू पुन आता है (नः पुत्राणां पिता अतः) हम पुत्रोंका तू पिता है ॥ ३ ॥

यह सूक्त भी पूर्व सूक्तके समान ही कामविकारको दूर करनेकी सूचना देता है । कामविकारको दूर करना चाहिये । जिस किसीके विषयमें काम विकार उत्पन्न हुआ हो, वह चाहे शोक करता रहे, या तप्यता रहे परतु स्वयं उस कामके वनामें नहीं होना चाहिये ।

तृतीय मंत्रका अर्थ यह है कि चाहे कितना भी दूर-दूरसे बहुत दूर-कामकाजके लिये घरके मनुष्य क्यों न जावे, उनको अपने घर अवश्य ही वापस जाना चाहिये और घरके बाह्यबच्चोंका पालन करना चाहिये । अर्थात् अपने घरमें भाकर सोना चाहिये । बाहर दूसरेके घरमें सोना उचित नहीं । इस मंत्रका अर्थ प्रकरणानुसृत समझना चाहिये, अर्थात् घरमें सोनेसे कामवलाकी सभावना कम होती है ।

## कामको धर्मस्य भेदो

कां. ६, सू. १३२

( ऋषिः- ऋषीन्द्रिराः । देवता- सारः । )

यं देवाः स्मरमसिञ्चन्त्स्वन्तः शोशुचानं महाध्या । तं तै तपामि वर्हणस्य धर्मणा ॥ १ ॥

यं विश्वे देवाः स्मरमसिञ्चन्त्स्वन्तः शोशुचानं महाध्या । तं तै तपामि वर्हणस्य धर्मणा ॥ २ ॥

यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चन्त्स्वन्तः शोशुचानं महाध्या । तं तै तपामि वर्हणस्य धर्मणा ॥ ३ ॥

यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चन्त्स्वन्तः शोशुचानं महाध्या । तं तै तपामि वर्हणस्य धर्मणा ॥ ४ ॥

यं मित्रावरुणौ स्मरमसिञ्चन्त्स्वन्तः शोशुचानं महाध्या । तं तै तपामि वर्हणस्य धर्मणा ॥ ५ ॥

अर्थ— (देवाः, विश्वेदेवाः, इन्द्राणी, इन्द्राणी, मित्रावरुणौ) देव, सब देव, इन्द्रसहित, इन्द्र और भूमि तथा मित्र और वरुण ये सब देव (यं शोशुचानं स्मरं) जिस शोक करनेवाले कामको (आध्या सह) व्यवहारिके साथ (अप्सु अन्तः अस्मिञ्चन्) जलके प्रतिनिधिमूल धर्ममें सींचते हैं, (वरुणस्य धर्मणा) वरुण नामक जल देवके धर्मसे (तं तै तपामि) वेरे उस कामको तथातः हैं। अर्थात् उस तापसे वह तप्त होकर दूर होने और हमें कभी न सतावे ॥ १-५ ॥

सब देवोंने, शरीरिके अंदर रहनेवाले रेतमें कामको रणा है। वहां रहना हुआ यह काम मनुष्योंको सतावा है और विविध कष्ट देता है। यह काम जो उस रेतके स्थानमें रहता है उसके साथ (आध्या सह) अनेक भाषियों अर्थात् मानसिक व्यवहार रहती है। काम जहां होता है वहां मानसिक कष्ट बहुत होते हैं। इसका सिलसिला ऐसा है—

सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२ ॥

क्रोधाद्भवति भ्रमोदः संमोहात्स्मृतिविध्वनः ।

स्मृतिध्वंसाद् बुद्धिभारो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३ ॥ (म. गी. २)

“ विषयोंके संगसे काम उत्पन्न होता है, कामसे क्रोध, क्रोधसे मोह, मोहसे भ्रम, भ्रमसे बुद्धिभार और बुद्धिभारसे सर्वस्वनाश होता है । ”

इस प्रकार कामके साथ नाम जुड़ा हुआ है। अतः उसको दूर करना चाहिये। जितना धर्मानुकूल काम हो उतना ही देना चाहिये। धर्मविरुद्ध कामको छोड़ देना चाहिये। इसलिये कहा है कि कामके साथ अनेक विपत्तियां जुड़ी हुई हैं और विपत्तियोंसे मनुष्य (शोशुचानं) शोकाकुल हो जाता है। यह काम सबको शोकसागरमें डालनेवाला है। (इष्टं प्राप्तुं दो अर्थ है, तेजस्वी होना और शोकयुक्त होना।) ये दोनों इसके कर्म हैं। स्वयं तेजस्वी शीघ्रता हुआ सबको शोकमें डाल देता है। इसलिये मन संयमसे उसको अपना या सुखाना चाहिये, जिससे वह दूर हो और कष्ट न दे सके।

## कंकणका धारण

कां. ६, सू. ८१

( ऋषिः— भर्षा । देवता— शक्ति, लक्ष्मी । )

यन्तासि यच्छसि हस्तावप रक्षांसि सेधसि । प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो अभूदुपम् ॥ १ ॥

परिहस्त वि धारय योसि गर्भोय धातवे । मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा ममपापमे ॥ २ ॥

यं परिहस्तमविमर्यादितिः पुत्रकाम्या । त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद्यथा पुत्रं जनादिति ॥ ३ ॥

अर्थ— (यन्ता अस्ति) तू नियामक है, (हस्तौ यच्छसि) दोनों हाथोंका तू नियमन करता है और उनसे (रक्षांसि सेधांसि) विकारियोंको हटाता है । (अपं परिहस्तः) यह कंकण (प्रजां धनं च गृह्णानः) प्रजा और धनका ग्रहण करनेवाला (अभूत्) है ॥ १ ॥

हे (परिहस्त) कंकण ! (गर्भोय धातवे) गर्भको धारण करनेके लिये (योसि विधारय) योनिसे धारण कर । हे (मर्यादे) मर्यादे ! (पुत्रं आधेहि) पुत्रको धारण कर । (तं त्वं आगमे आगमय) उसको तू आगमनके समय बाहर आनेके लिये प्रेरणा कर ॥ २ ॥

(पुत्रकाम्या अदितिः) पुत्रको इच्छा करनेवाली अदितिने (यं परिहस्तं अविभः) जिस कंकणको धारण किया था, उस कंकणको (यथा पुत्रं जनात् इति) जिससे पुत्रकी उत्पत्ति हो इसलिये (त्वष्टा तं अस्य भाषणात्) रक्षाने इस स्त्रीको पढ़नाया है ॥ ३ ॥

भाषार्थ— कंकण नियममें रखता है, उसे हाथोंमें पहननेसे हाथोंका नियमन होता है और जिस वृत्त होते हैं । इसलिये इसको संतानका धारण करनेवाला कहते हैं । तथा यह धनका भी धारक है ॥ १ ॥

गर्भधारणके योग्य गर्भाशयकी आवश्यकता यह बनता है । इसके धारण करनेसे गर्भधारण होता है और योग्य समयमें प्रसूति भी होती है ॥ २ ॥

पुत्रको इच्छा करनेवाली अदितिने इसको प्रथम धारण किया था । कारीगर इसका निर्माण करे और पुत्रोत्पत्ति होनेकी इच्छासे शिवोंके दोनों हाथोंमें कंकण धारण करावे ॥ ३ ॥

### कंकणधारण

१. शिवों हाथोंमें कंकण धारण करती है । इसका संकेत गर्भाशय ठीक रहने, उत्तम संतान उत्पन्न होने और सुखसे प्रसूति होनेके साथ है । मैत्र लोग इसका विचार शरीरशास्त्रकी दृष्टिसे करें और निम्नय करें कि, किस प्रकारका कंकण कौनसी स्त्रीको किस विधिसे धारण करना चाहिये । यह शास्त्रदृष्टिसे विचारने योग्य बात है ।



## मातापिताकी सेवा करे

कां ६, सू. १२०

( अग्नि - कौशिक । देवता- मन्त्रोक्ता । )

यदुन्तरिक्षं पृथिवीमुत चां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम ।  
अयं तस्माद्गार्हपत्यो नो अदिरुदिरंयाति सुकृतस्य लोकम् ॥ १ ॥

भूमिर्नातादितिर्नो अनिग्रं भ्रातान्तरिक्षप्रभिशंस्त्या नः ।  
घोर्नः पिता पित्र्याच्छं भंवाति जामिमुत्वा मावं परित्ति लोकात् ॥ २ ॥

यत्रां सुहादैः सुकृतो मर्दन्ति विहाय रोगं तन्वशूः स्वायाः ।  
अश्रोणा अश्रुन्दुताः स्वयं तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥ ३ ॥

अर्थ— ( या अन्तरिक्षं पृथिवी उत चां ) यदि हम अन्तरिक्ष, पृथिवी और पुण्यलोक तथा ( यत् मातरं पितरं वा जिहिंसिम ) यदि हम माता और पिताकी ईसा करे, ( अयं गार्हपत्य, अग्निः ) यह हमारा गार्हपत्य अग्नि ( नः तस्मात् इत् सुकृतस्य लोकं उन्नयाति ) हमें उस पापसे उठाकर पुण्यलोकमें पहुँचाये ॥ १ ॥

( अदितिः भूमिः माता नः जनित्रं ) भूतल मातृभूमि हमारी जननी है । ( अन्तरिक्षं भ्राता ) अन्तरिक्ष हमारा भाई है और ( घोः नः पिता ) सुलोक हमारा पिता है । यह ( जामिमुत्वा नः ) भंवाति ) विपत्तिले हमें बचाकर कल्याणशायी होवे । ( जामि क्र्यात् पित्र्यात् लोकात् ) संबंधीको माह कर विद्वलोकसे ( मा अवपत्ति ) मत गिर ॥ २ ॥

( यत्र सुहादैः सुकृतः ) जहाँ उत्तम हृदयवाले पुण्यकर्ता पुरुष ( स्वायाः तन्वः रोगं विहाय ) अपने शरीरसे रोगको दूर करके ( मर्दन्ति ) भान्दित होते हैं, ( अश्रुः अश्रोणाः अश्रुताः ) अंगोंसे अश्रुत और अश्रुतिल होकर ( तत्र स्वयं पितरौ च पुत्रान् पश्येम ) उस स्वयं पितरों और पुत्रोंको देखे ॥ ३ ॥

भाषार्थ— हम गार्हपत्य जगत्से हम कहीं भी हो, यदि हम यहाँ अपने मातापिताको कष्ट पहुँचाएँ, तो तेजस्वी देव हमें उस पापसे मुक्त करे और पुण्यलोकमें जाने योग्य परिणाम हमें पचावे ॥ १ ॥

हमारी माता यह भूमि है और हमारा पिता यह सुलोक है, अन्तरिक्ष हमारा भाई है । इस प्रकार जगत्से हमारा संबंध है । यह सब जगत् हमारा कल्याण करे और हमें विपत्तिले बचावे । कोई देला संबंधी न होने कि जितने कारण हों विद्वलोकमें गिरना पड़े ॥ २ ॥

यहाँ शारीरिक रोग नहीं होते और जहा हृदयपर उत्तम भावसे पुण्य करनेवाले लोग भान्दसे रहते हैं, वहा हम पदुषों और मुदर अंगोंसे रहें और अपने पितरों और पुत्रोंको देखें ॥ ३ ॥

कोई अनुप्य अपने मातापिताको किसी प्रकारका कष्ट न देवे । मातापिताको कष्ट देनेवाले गिरते हैं । परंतु जो मातापिताको मुक्त देता है वह ऐमें भेद लोकमें पहुँचता है कि जहा कभी रोग नहीं होते और जति स्वस्थ रहता है । इतलिये इनको मुक्त देवे ।

## धन और सद्बुद्धि की प्रार्थना

कां. ७, सू. १७

( अग्नि - भृगु । देवता - धाता, सविता, मन्त्रोक्ता । )

धाता दधातु नो र्षिभीशानो जगत्स्पतिः । स नः पूर्णेन यच्छतु ॥ १ ॥

धाता दधातु द्वाशुपे प्राचीं जीवातुमक्षिताम् । वपं देवस्य घीमहि सुमतिं विशराधसः ॥ २ ॥

धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय द्वाशुपे दुरोगे ।  
तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥ ३ ॥

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः ।  
त्वष्टा विश्वुः प्रजया संस्त्राणो यज्ञमानाय द्रविणं दधातु ॥ ४ ॥

अर्थ— ( धाता जगतः पतिः ईशानः ) धारणकर्ता, अग्निका स्वामी, ईश्वर ( नः र्षि दधातु ) हमें धन देवे । ( सः नः पूर्णेन यच्छतु ) वह हमें पूर्ण रीतिसे देवे ॥ १ ॥

( धाता द्वाशुपे ) धारणकर्ता ईश्वर दातार के लिये ( वार्या अक्षितां जीवातुं दधातु ) प्राप्त करने योग्य अक्षय जीवन्मक्षि देवे । ( वपं विश्वराधसः देवस्य सुमतिं ) हम संपूर्ण धनके स्वामी ईश्वरकी सुमतिका ( घीमहि ) ध्यान करते हैं ॥ २ ॥

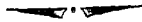
( धाता प्रजाकामाय द्वाशुपे ) धारक ईश्वर प्रजाकी इच्छा करनेवाले दाशुपे के लिये ( दुरोगे विश्वा वार्या ) उसके घरमें संपूर्ण कर्णवीर्य पदार्थोंकी ( दधातु ) देवे । ( विश्वे देवा ) सब देव, ( सजोषाः अदितिः ) भीतिबुक्त मर्मत ईवीराक्षि, तथा ( देवाः ) अन्य शानी ( तस्मै अमृतं सं व्ययन्तु ) उसके लिये अमृत पदार्थ करें ॥ ३ ॥

( धाता रातिः सविता ) धारक, दाता, उत्पादक, ( निधिपतिः अग्निः ) निधिका धारक, प्रजापति, प्रजासंरक्षक देव ( नः इदं जुषन्तां ) हमें यह देवे । तथा ( प्रजया संस्त्राणो त्वष्टा विश्वुः ) प्रजाके साथ आनन्दमें रहनेवाला सृजन पदार्थोंके बनानेवाला व्यापक देव ( यज्ञमानाय द्रविणं दधातु ) यज्ञकर्ताको धन देवे ॥ ४ ॥

भावार्थ— अग्निका धारण और धारण करनेवाला ईश्वर हमें पूर्ण रीतिसे विपुल धन देवे ॥ १ ॥  
वह हमें दीर्घ जीवनकी प्राप्ति देवे । हम उसकी सुमतिका ध्यान करते हैं ॥ २ ॥  
संतानकी इच्छा करनेवाले दाशुपे उसके घरमें-अमृतके धरमें-रहने योग्य सब पदार्थ प्राप्त हों । सब देव दाशुपेकी आभारकी प्राप्ति करायें ॥ ३ ॥

सब अग्निका धारक, धनदाता, संपूर्ण निधिका उत्पादक, संसाररूपी अज्ञानका रक्षक, सभका धारक, एक प्रजातत्वरूप देव है, वह हमें सब प्रकारका मुल देवे । सब सृष्टिमें सृष्टम पदार्थोंका निर्माता, व्यापक देव अणुतकको बनादि पदार्थ देवे ॥ ४ ॥

यह प्रार्थना सुबोध है, अतः इसके स्मृतीकरणकी कोई आवश्यकता नहीं है ।



## गृह-निसर्ग

कां. ३, सू. १२

( ऋषि- मरुत । देवता- शाला, वास्तोष्पति । )

इदं ध्रुवां नि मिनामि शालां क्षेमं तिष्ठति घृतमुक्षमाणा ।	
तां त्वां शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम	॥ १ ॥
इदं ध्रुवा प्रथिं तिष्ठ शालेऽम्बावती गोमती सुनृतवती ।	
ऊर्जस्वती घृतवती पर्यस्वत्युच्छ्रयस्व महते सोमगाय	॥ २ ॥
घरुष्पति शाले बृहच्छन्दाः पूर्तिधान्या ।	
आ त्वां वत्सो गमेदा कुमार आ घेनयः सायमास्पन्दमानाः	॥ ३ ॥
इमां शालां सविता वायुर्इन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् ।	
उधन्तुद्रा मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु	॥ ४ ॥

अर्थ— (इह एव ध्रुवां शालां निमिनोमि) इसी स्थानपर सुख शालाको बनाता हूँ। यह शाला (घृत उक्ष-  
माणा क्षेमं तिष्ठति) भी सौख्यी हुई हमारे कल्याणके लिये स्थिर रहे। हे (शाले) पर! (तां त्वां सर्वावीराः  
अरिष्टवीराः सुवीराः उप सचरेम) तेरे पारो ओर हम सब वीर विनष्ट न होते हुए उत्तम पराक्रमी बनकर फिरते  
रहें ॥ १ ॥

हे शाले! हे (अम्बावती गोमती सुनृतवती) पोहोचारी, गौर्जस्वती और मधुर भावनेवाली होकर (इह  
एव ध्रुवा प्रथिं तिष्ठ) यहीं स्थिर रह। तथा (ऊर्जस्वती घृतवती पर्यस्वती) अक्षवाली, धीवाली और वृषवाली  
होकर (महते सोमगाय उच्छ्रयस्व) बड़े सोमगायके लिये उन्धी बनकर खड़ी रह ॥ २ ॥

हे शाले! (घृत्-छन्दाः पूर्तिधान्या) बड़े छन्दवाली और पवित्र धान्यवाली तथा (घरुष्पति) धान्यदि  
का भण्डार धान्य करनेवाली रहे। (त्वां वत्सः कुमार आ घेनयः) तेरे भद्र बट्टा और बालक भावे।  
(आस्पन्दमाना घेनयः सायं आ) इदानी हुई गीधे सायकालके समय भाजवें ॥ ३ ॥

(इमां शालां) इस शालाका सविता, वायु, इन्द्र और बृहस्पति (प्रजानन् नि मिनोति) जगता हुआ  
निर्माण करे। (मरुतः उद्रा घृतेन उधन्तु) मरुत् गण जलसे और धीसे सौख्य, तथा (भगः राजा न. कृषिं नि  
तनोतु) भाग्यवाद राजा हमारे लिये कृषिको बनावे ॥ ४ ॥

भाषार्थ— इस उत्तम स्थानपर मैं उत्तम और सुख घर बनाता हूँ, जिसमें भी यदि शाले पीनेके पदार्थ बहुत  
रहें और जो सब प्रकारके स्वास्थ्य साधनोंसे परिपूर्ण हो। हम सब प्रकारके सौख्यपूर्णताके गुणोंसे युक्त होकर और किसी  
मरुत कष्टोंके प्राप्त न होते हुए इस घरके पारो ओर घूमा करें ॥ १ ॥

इस घरमें पोढ़े, गौ, बैल आदि पशु बहुत हों, यह घर उत्तम मंडि भावनेसे युक्त हो, भब, धी, वृष आदि साध वेप  
इसमें बहुत हों और इसमें रहनेवालोंको बड़े सोभाग्यकी प्राप्ति हो ॥ २ ॥

इस घरमें धान्यदिका बड़ा भण्डार हो, उस भण्डारमें सुदृ और पवित्र धान्य भरा रहे। ऐसे घरमें बालक और  
बट्टे घूमते रहें और सायकालमें भाजनेसे भाग्यी हुई गीधे भाजें ॥ ३ ॥

इस शालाके निर्माणमें सविता, वायु, इन्द्र और बृहस्पति ये देव सहायता दें। मरुत् गण इस घरमें विपुल धी देनेमें  
सहायक हों तथा राजा भाग कृषि बनातेमें सहायता देवे ॥ ४ ॥

मानस्य परितः शरणा स्योना देवी देवेभिर्निर्मितास्तत्रे ।

वृषं वसाना सुमना असुस्त्वमपासम्भ्यं सहवीरं रपि दाः

॥ ५ ॥

श्रुतेन स्यूणाभि रोह वंशोप्रो विराज्जपं वृद्धस्व श्रुत् ।

मा तै रिपञ्जुपसत्तारो गृहाणां शस्त्रे श्वं जीवेम श्रुदुः सर्ववीराः

॥ ६ ॥

एमां कुमारस्तर्षा आ वरसो जगता सह । एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दुष्टाः क्लृयैरगुः

॥ ७ ॥

युणै नारि प्र मेर कुम्भमेतं घृतस्य धारांमृतेन संमृताम् ।

इमां पातूनमृतेना समङ्गधीष्टापूर्वमभि रक्षात्वेनाम्

॥ ८ ॥

इमां आपः प्र मराम्ययुक्त्वा यंक्षमनाशनी । गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सुहाग्निना

॥ ९ ॥

अर्थ— हे ( मानस्य परितः ) समानकी रक्षक ! तू ( शरणा स्योना देवी ) अन्दर आश्रय करने योग्य, सुखदायक, दिव्य प्रकाशमान देवी तू ( देवेभिः अतो निर्मिता अस्ति ) देवीं द्वारा पहले बनायी हुई है। ( वृषं वसाना एवं सुमनाः असः ) पासको पहले हुए तू वक्ष्य मन्ववाणी हो ( अथ अपासम्भ्यं सहवीरं रपि दाः ) नीर हम सबके लिये पीतेसे युक्त धन दे ॥ ५ ॥

हे ( वंश ) बांस ! तू ( श्रुतेन स्यूणां अधिरोह ) अपने सीधेपनसे अपने आश्रयपर षट् और ( उमः विराजन् शश्रुत् अपवृद्धय ) उम बनकर प्रकाशता हुआ शशुर्भोंको हटा दे। ( ते गृहाणां उपसत्तारः मा रिपन् ) तेरे परोके आश्रयसे रहनेवाले हिंसित न होंगे। हे शत्रु ! हम ( सर्ववीराः शतं शरदः जीवेम ) सब पीतेसे युक्त होकर ती वर्ष जीते रहें ॥ ६ ॥

( इमां कुमारः आ ) इस शालाके पास बालक भाये, ( तदणः आ ) तप्य उदय भाये, ( जगता सह घत्सः आ ) घटने वालेके साथ बछटा भी भाये। ( इमां परिस्रुतः कुम्भः ) इसका पास मधुर रससे भरा हुआ घटा ( वृष्टाः क्लृयीः आ अगुः ) दहीके क्लृयोंके साथ भागाये ॥ ७ ॥

हे ( नारि ) श्री ! ( एतं पूर्णं कुम्भं ) इस पूर्ण भरे घटको तथा ( अमृतेन संभृतां घृतस्य धारां ) अमृतसे भरी हुई पीकी धाराको ( प्रमर ) अपनी मकार भर कर ला। ( पातून अमृतेन सं भङ्गिष्ये ) पीनेवालोंको अमृतम अपनी प्रकार भर दे। ( इष्टापूर्त एनां अभिरक्षति ) यह भीर अन्नदान इन शालाकी रक्षा करे ॥ ८ ॥

( इमाः यक्षमनाशनी अयदमाः आपः ) ये रोगनाशक नीर स्वयं शयनदित अल ( प्र यदमरामि ) मैं भर लाता हूँ। ( अमृतेन अग्निना सह ) अमृत अभिष्ट साथ ( गृहानु उप प्र सीदामि ) पीतेसे आकर बैटता हूँ ॥ ९ ॥

भाषार्थ— धारें अन्दर निगल करने योग्य, सुखदायक है, यह एक समानका साथन भी है। पहले यह देवीं द्वारा बनाया गया था। पासके छपरते भी यह बनता है। ऐसे परसे हमारा मन शुभ सकलव्ययान् होने और हमें पीतेसे युक्त धन प्राप्त हो ॥ ५ ॥

सीधे स्तंभ पर सीधे बांस रते जावें और इस रीतिसे निरोधियोंको दूर किया जाये। परोके आश्रयसे रहनेवाले मनुष्य दु ही, कठी या विनष्ट न हों। हमसे रहनेवाले सब भीर होकर ती वर्षतक जीवित रहें ॥ ६ ॥

हम घटके पास बालक, तप्य भादि सब भाये। बछटे और मन्थ परसे पशु पक्षी भी घूमे रहें। इस धारें घटदर भीठे रससे भरे हुए घटे तथा दहीसे भरे हुए घटे बहुत हों ॥ ७ ॥

कियां इन घटोंको भर कर हाथे और पीके घटे भी बहुत हाथे और पीने वालोंको यह दूध, दही, पी मारि सब रस, भरकर पीनायें। क्योंकि इनका दान ही परको रक्षा करता है ॥ ८ ॥

भार्ये पीनेके लिये ऐसा उल लाया जाये कि जो रोगनाशक नीर आश्रयपर्यक हो। धारें अग्नि भी हो शिष्ट पात्र आकर लोग पीकरा निवारण करके जानेव प्राप्त करें ॥ ९ ॥

## गृह-निर्माण

### घरकी बनावट

जो गृहस्थी हैं उसको घर बनाकर रहना आवश्यक है, फिर वह घर घाससे बना हुई (तुणं घसामा । सं. ५) शोषणके समान हो अथवा बटा हो। घर किसी भी प्रकारका हो, परंतु गृहस्थीके लिये वह अवश्य चाहिये, नहीं तो गृहस्थका " गृह-स्थ-यन " ही नहीं सिद्ध होगा।

### घर बनाने योग्य स्थान

घरके लिये स्थान भी योग्य होना चाहिये, रमणीय होना चाहिये और आरोग्यकारक होना चाहिये, इस विषयमें इस सूत्रमें निम्नलिखित निर्देश देखने योग्य हैं—

१ क्षेमे ( सं. १ ) = सुरक्षित, शांति देनेवाला, सुख-कारक, आरोग्यदायक, निर्भय, ऐसा स्थान घरके लिये हो।

२ ध्रुवा ( सं. १, २ ) = स्थिर, सुख, जहां धुनिपाद स्थिर और पद हो सकती है।

इस प्रकारकी भूमिपर घर बनाना चाहिये और वह घर अपने सामर्थ्यके अनुसार सुख, ( ध्रुवा ) स्थिर और मजबूत बनाना चाहिये, ताकि वारंवार बरतकी मरम्मत करनेका भय उठाना न पड़े।

### घर कैसे बनाया जाये ?

घरके बनने जहां तक हो सके वहां तक विछलीं घनाये जावे। " गृहत्-छंदाः ( सं. ३ ) " अर्थात् षडे षडे छ-वाटे कमरोंसे युक्त घर हो। घरमें संकुचित स्थान न हो क्योंकि छोटे छोटे कमरोंमें रहनेवालोंके विचार भी संकुचित बनने जाते हैं। इसलिये अपनी आर्थिक शक्तके अनुसार जहां तक विस्तीर्ण घनाया संभव हो वहां तक प्रशस्त घर बनाया जावे, जहां बहुत इष्टमित्र भवित्थि भादि ( शरणा । सं. ५ ) भावे और ( स्पेना । सं. ५ ) विधान से सके।

### समानका स्थान

घर गृहस्थीके लिये बड़ा समानका ( शाला मानस्य पत्नी । सं. ५ ) स्थान है, अपना निम्ना घर होनेसे वह एक परिवाराका स्थान होताया है। इष्टमित्रोंको सुख पहुंचानेका वह एक बड़ा स्थान होता है। इसलिये पूर्वोक्त प्रकार घर बनाना चाहिये। घर बनते ही घरमें अन्वयान् साधन इकट्ठे करने चाहिये, इस विषयमें निम्नलिखित संकेत विचार करने योग्य हैं—

१ अश्वघावती ( सं. २ )— घरमें घोड़े हों, अर्थात् गृहस्थीके पास घोड़े, खोदियां हों। यह शौचका साधन है।

२ गोमती ( सं. २ )— घरमें गौर्धे हों। यह दुधिका साधन है, गौसे दूध मिलवा है जिसको पीकर मनुष्य पुष्ट होते हैं। बेलेंसे ऐसी होती है। घेनुयः आस्पन्दमानाः स्वार्यं वा ( सं. ३ )— सार्वकालके समय गौमें आनंदसे नाचती हुई घरमें भावे।

३ पयस्यती ( सं. २ )— घरमें बहुत दूध हो।

४ धृतवती ( सं. २ )— घरमें विपुल धी हो।

५ धृतं उक्षमाणा ( सं. १ )— धी देनेवाला, अर्थात् भवित्थि भादिके लिये विपुल धी देनेवाला घर हो। घरके लोग अन्नदानमें क्यूसी न करें।

६ ऊर्जस्यती ( सं. २ )— घरमें बहुत मज हो, आन-पानके पदार्थ विपुल हों।

७ धरुषी ( सं. ३ )— जिसमें धान्यादिका बड़ा भंडार हो, जिसमें सग्रहस्थान हो और वहां सब प्रकारके पदार्थ उत्तम अवस्थामें मिलें।

८ पूतिधान्या ( सं. ६ )— घरमें पवित्र धान्य हो, जो रोगादि उत्पन्न करनेवाला न हो, उत्तम अवस्थामें हर एक प्रकारके पदार्थ हों, जिन्हें खानेसे शरीरकी पुष्टि और मनका समाधान हो। घरमें धान्य खानेके समय वह केवल सस्ता मिलना है इसलिये खाना न जाय, परंतु खानेके समय देना जाय कि यह पवित्र, शुद्ध, नीरोग और शोषक है वा नहीं।

९ परिश्रुतः कुम्भः ( सं. ७ )— मधुर ग्राहसे भरा हुआ पटा मथवा बनेक षडे घरमें सदा रहें।

१० दृग्ः कालदीः ( सं. ७ )— दृष्टि परिपूर्ण भरे हुए कला घरमें हों।

११ धृतस्य कुम्भम् ( सं. ८ )— उत्तम धीसे भरे हुए पट घरमें हों।

१२ अयद्मा यश्मनराशनीः आपः ( सं. ९ )— नीरोग और रोग दूर करनेवाले शुद्ध जल धरोंमें भरकर घरमें रखा जावे।

इत्यादि ग्रन्थों द्वारा इस सूत्रमें घरका वर्णन किया है। इन शब्दोंके मननसे जाना जा सकता है कि घरमें कैसी व्यवस्था रखनी चाहिये और घर कैसा घन धान्यसंपन्न बनाना चाहिये। तथा—

१ घसः भागमेत् ( मं ३, ७ )— घरमें बठे सेठे रहें, घरक घस बठे नाथे रहें ।

२ घुमार. आ गमेत् ( मं ३, ७ )— घरमें और बाहर बाधबधे, कुमार और कुमारीकाम् मानसे सेर बूट करते रहें ।

३ तरणः आ गमेत् ( मं ७ )— युवा, तरण पुरुष और तरणियां घरमें और बाहर भ्रमण करै ।

### प्रसन्नताका स्थान

अर्थात् घर देखा हो कि जिसमें बाधबधे सेठे रहें और तरण तथा भ्रमणान्य प्राप्तवाले छी पुरुष अपने अपने कार्यों मानदसे दृष्टचित्त हों। सब्धे सुखपर आश्रय दीखे और घरका प्रत्येक मनुष्य प्रसन्नताकी स्थिति दिखाने देवे। हरएक मनुष्य ऐसा कहे कि—

गृहान् उप प्रसीदामि । ( मं २ )

“ मैं प्रपन्न करके अपने घरको प्रसन्नताका स्मगीय स्थान बनाऊंगा । ” यदि घरका प्रत्येक मनुष्य अपने घरको “ प्रसन्नताका स्थान ” बनानेका प्रयत्न करे सो सचमुच वह घर प्रसन्नताका केन्द्र शब्दभूषण बन जायगा ।

अपने प्रयत्नसे अपने घरको “ प्रसन्नताका स्थान ” बनाना है, यह कार्य दूसरेपर सौंपा नहीं जा सकता, यह जो हरएकको ही करना चाहिये। घरको प्रसन्नताका स्थान बनानेके लिये ऊपर लिखे हुए साधन इकट्ठे सो करने ही चाहिये परंतु वेबल इतनेसे ही यह प्रसन्नता नहीं आयेगी कि जो वेदको अभीष्ट है, इसलिये वेदने और भी निर्देश दिये हैं, देखिये—

१ स्तुतावती ( मं २ )— घरमें सम्पत्तिका उच्चा भाषण हो, वेमर्त्यक पाठलाप होता हो, सभी उन्नतिको तत्त्व भाषण हो। छल, कपट, घोसा आदिके भाषण न हो ।

२ सुमना ( मं ५ )— उत्तम मनसे उत्तम स्वर-द्वार करनेवाले मनुष्य घरमें कार्य करे ।

घरको संगलभय बनानेके लिये जैसे खानपानर भण्डे परार्थ घरमें बहुत चाहिये उसी प्रकार घरके स्त्रीपुरुषोंके अन्न करण भी भेद विचारोंसे कुछ होने चाहिये। सभी को घर प्रसन्नताका स्थान बन सकता है। घरमें धन वीर्य हो बहुत हो पर घरवालोंके मन एही और कपटी हुए जो उस घरको घर कोई नहीं कहेगा, वह जो एक दुःखका स्थान होगा। दीन कालमें तथा वृष्टिके दिनोंमें सर्वां बहुत होती हैं, इसलिये शीतके निराश्रयके लिये घरमें भोगी शरणी चाहिये जिससे शीतसे प्रसन्न मनुष्य आनंद प्राप्त कर सके।

दूसरी बात यह है कि ‘ अमृत भोगि ’ ( मं ९ ) जो परमेश्वर है उसकी उपासनाका एक स्थान घरमें बनना चाहिये, उदां अग्निहोत्र द्वारा भग्युपासनासे लेकर ध्यान-धारणा द्वारा परमात्मोपसनाजक तय प्रकारकी उपासना करके मनुष्य घरम मानवको प्राप्त करे। जिन घरमें ऐसी उपासना होती है वही घर सचमुच ‘ प्रसन्नताका केन्द्र ’ हो सकता है।

महते सौभगाय उच्छ्रयस्य । ( मं २ )

‘ बड़े सुभमंगलकी प्राप्तिके लिये यह घर बनाया जावे । ’ अर्थात् यह घर इस प्रकारसे बड़ा सौभाग्य प्राप्त करे। जिस घरमें पुरोहित प्रकार शैतानोंका व्यवस्था रहेगी वहाँ बड़ा सुभमंगल निवास करेगा इसमें कोई संदेह ही नहीं है।

### वीरतासे युक्त घन

सौभाग्य प्राप्तिके अदर “ भग ” अर्थात् घन कमाल भी संमिलित है। पस्तु धन कमालक पक्षत् उसकी रक्षा करनेकी शक्ति चाहिये और उसका शत्रुओंको दूर करनेके लिये शीघ्र, धैर्य, वीर्य आदि गुण भी चाहिये। अन्वया कमाया हुआ धन दूसरे लोग छूट लेंगे। इसलिये इस सृष्टने सावधानीकी सूचना दी है—

अस्मभ्यं सहवीरं रयि दा. । ( मं ५ )

“ हमारे लिये वीरतासे युक्त धन दे । ” धन प्राप्त हो और साथ साथ उसके सम्भालनेके लिये आवश्यक वीरता भी प्राप्त हो। हमारा घर वीरताके वायुमंडलसे युक्त हो—

१ सर्ववीर. सुर्वीर अरिष्टवीर उप सपरम ॥

( मं १ )

२ दाते जिविम शरदः सर्ववीराम ॥ ( मं ६ )

‘ हम सब प्रकारसे वीर, उत्तम वीर, नागको व प्राप्त होनेवाले वीर, ती सर्प जीवित रहकर धर्मकी रक्षा करनेके लिये सैवार रहनेवाले वीर होकर अपने अपने घरोंमें संघार करे । ’ ये मंत्र स्पष्ट शब्दों द्वारा बूट रहे हैं कि घरोंका वायु-मंडल ‘ वीरताका वायुमंडल ’ होना चाहिये। वीरताका विचारलक वहाँ जाता नहीं चाहिये। धर्मके पुरुष धर्मवीर हों और जिनका वीरान्नाए हों, ऐसे ही पुरुषोंसे जो संघर्ष होते वे ‘ कुमार वीर ’ ही होने इससे क्या संदेह है ? इसीलिये वेदमें पुत्रका नाम ‘ वीर ’ आया है ।

### अतिथि सत्कार

ऐसे संगलभय वीरतासे युक्त घरमें रहनेवाले धर्मवीर पुरुष अतिथि सत्कार करते ही। इस विषयमें बड़ा है—

पूर्णे नारि प्र भर कुम्भमेत धृतस्य धाराममूलेन  
समृताम् । इमा पातूनमूलेना नमद्धीष्टापूतंमभि  
रक्षान्तेनाम् ॥ ( म ८ )

‘ गृहपत्नी भक्तिविधियोंको परोक्षरूपे लिखे दीक्षा घटा लाये, मयुररससे भटा घटा लाये और पीनेपाखोंको जितना चाहिये उतना पिनाये, कक्षी न करे । इस प्रकारका अन्न दान करना ही धरती रक्षा करता है । ’

भक्तिविधिसकारमें अन्नदान अथवा अन्य पदार्थोंका दान सुखे हापसे देना चाहिये, उसमें कक्षी करना योग्य नहीं है । क्योंकि दान ही धरका संरक्षण करता है । जिस धरमें भक्तिविधियोंका सकार होता है, उस धरका भटा बढ़ता जाता है ।

यहां भक्तिविधियोंके लिये अन्न परोसनेका कार्य करना धर्मोंका कार्य लिखा है । यहाँ पर्दा नहीं है । पर्वेवाले धर्मोंमें भक्तिविधियों भोजन देनेका कार्य या तो नौकर करता है अथवा धरका मालिक करता है । यह भक्तिविधिसंस्कारकी धर्मैतिक प्रथा है । भक्तिविधिलिये भोजन खानेवाले भादि गृहपत्नीको देना चाहिये यह वेदका आदेश यहाँ है ।

### देवों द्वारा निर्मित धर

धर देवोंने प्रारंभमें बनाया, इस विषयमें यह निम्नलिखित मंत्र देसना चाहिये—

धारणा स्योना देवी ( शाला ) देवेभिर्निर्मिता  
स्यग्रे तुण वसताना सुमता ॥ ( म ५ )

‘ अर्ध आश्रय करने योग्य, सुखदायक, गामके उपर थाका, परंतु उत्तम विचारोंसे युक्त दिव्य धर प्रारंभमें देवोंन बनाया । ’ दिव्य वीर सुरोंके द्वारा ओ पहला धर निर्मित

हुआ वह देता था । यद्यपि इसपर बालका उपर धर तपानि उत्तर अर्ध उत्तम विचार होते थे, अर्ध जानेसे भारतम मिलता था और सुख भी होता था । इसका तात्पर्य यही है कि धर उपरका ही क्यो न हो, परंतु वह दिव्य विचारोंका दिव्य धर होना चाहिये वह भूर विचारका ‘ राक्षसमयम ’ नहीं होना चाहिये । ‘ देवोंका धर ’ धरसे नहीं होता है, प्रयुक्त धरकी शांति और प्रसन्नतासे होता है ।

### देवोंकी सहायता

धर ऐसे स्थानमें बनाया जाये कि जहाँ सूर्य, चंद्र, वायु, इन्द्र भादि देवोंसे सहायक शक्ति विपुल प्रमाणमें प्राप्त होती रहे—

इमां शालां स्वविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि  
मिनोतु प्रजानम् । उस्तन्तुता मरुतो धृतेन  
भगो नो राजा नि हृषि वनोतु ॥ ( म ४ )

‘ सूर्य, वायु, इन्द्र, बृहस्पति जानते हुए इस धरकी सहायता कर । महत् लाभक यतीनी वायु अर्धसे सहायता करें और भग राजा हृषि वनोतु सहायक हो । ’

धरके लिये सूर्य प्रकाश विपुल मिले, शुद्ध वायु मिले, इन्द्र हृषि द्वारा सहायता करे, शक्ति करनेवाले वायु योग्य शक्तिसे सहायता करें और हृषिका देव भूमिसे कृषिकी योग्य उत्पत्ति करते द्वारा सहायक हो । धर ऐसे स्थानमें अथवा देवमें बनाना चाहिये कि जहाँ सूर्यादि देवताओं द्वारा योग्य शक्तिधियोंकी सहायता अच्छी प्रकार मिल जाय, भूमि उब परू हो, वायु निर्दोष हो, अन्न आयोग्यदायक और पाथक हो, इस प्रकारक उत्तम देवमें गृहका निर्माण करना चाहिये ।

## गृह-निर्माण

कां. १, सू. ३

( अग्नि - भुव्यन्त्रि । देवता - शाला । )

उपमितां प्रतिमितामधो परिमितामूत । शालाया विश्ववाराया नृदानि वि चृतामसि ॥ १ ॥

अर्थ— ( विश्ववाराया शालायाः उपमिता ) सब मयके निवारक धरके स्तंभों, ( प्रतिमितां ) स्तंभोंके पोतों ( अथो उत परिमितां ) और उत्तम पेशवों ( नृदानि वि चृतामसि ) धर्मियोंकी हम पावते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ— बहुत कष्टोंका दूर करनेके लिए धर बनाया जाता है । उस धरके स्तंभों, मधुरोंकी एवस्थियों, इष्टियोंकी तथा उपरकी धर्मियोंकी हम उत्तम स्थिति सफल जोड़ देते हैं ॥ १ ॥

यत्ते नृद्वे विश्ववारे पाशो ग्रन्थिश्च यः कृतः । बृहस्पतिरिवाहं बलं याचा वि संसयामि तत् ॥ २ ॥  
 आ ययाम सं बंधं ग्रन्थीर्धकार ते दृढान् । परंपि विद्वान्छस्तेवन्द्रेण चृतामसि ॥ ३ ॥  
 चंदानां ते नहंनानां प्राणाहस्य तृणस्य च । पश्चानां विश्ववारे ते नृद्वानि वि चृतामसि ॥ ४ ॥  
 संदुशानां पलदानां परिष्वङ्गस्य च । इदं मानस्य पत्न्यां नृद्वानि वि चृतामसि ॥ ५ ॥  
 यानि तेऽन्तः शिक्पान्यानेषु रण्यापि कम् ।  
 प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नीं नु उद्धिता तन्वेमिव ॥ ६ ॥  
 हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदनं । सदां देवानामसि देवि शाले ॥ ७ ॥

अर्थ— हे ( विश्व-वारे ) सब हु खोंका निवारण करनेवाले पर ! ( यत् ते नृद्वे ) जो तेरा बन्धव है, ( आ ययाम सं बंधं ) जो पाश और ग्रंथियां हैं, ( बृहस्पतिः याचा बलं इव ) बृहस्पति अपनी वाणीके द्वारा जैसे तपु-सैन्यका नाश करता है, उसीप्रकार ( तत् रिषंसयामि ) उनको मैं लोला हू ॥ २ ॥

( आययाम ) हकटा किया, ( सं बंधं ) जोड़ दिया और ( ते दृढान् ग्रंथान् चयार ) ठेरे बांधोंको सुलभ कर दिया है । ( परंपि विद्वान् शस्ता इव ) जोशोंको जानकर काटनेवालेके समान ( इन्द्रेण विचृतामसि ) इन्द्रकी सहायतासे हम बांध देते हैं ॥ ३ ॥

हे ( विश्व-वारे ) सब कष्टोंके निवारण करनेवाले पर ! ( ते चंदानां नहंनानां ) ठेरे बासों और बंधनों तथा ( प्राणाहस्य तृणस्य च ) जोशों और पासको तथा ( ते पश्चानां नृद्वानि ) ठेरे दोनों ओरके बंधनोंको ( वि चृतामसि ) मैं बांधता हू ॥ ४ ॥

( मानस्य पत्न्याः ) प्रमाण देनेवालेके द्वारा पालित हुए परे ( संदुशानां पलदानां ) कैचिकोंके और पटा-योरे ( च परिष्वङ्गस्य ) तथा गिलासस्थानके ( इदं नृद्वानि विचृतामसि ) इस प्रकारके बंधनोंको मैं बांधता हू ॥ ५ ॥

( यानि ते अन्तः शिक्पान्यानि ) जो ठेरे अन्दर छिक्के ( रण्यापि कं आनेषु ) रमणीयताके लिए सुलभे बांधे गए हैं, ( ते तानि प्रचृतामसि ) ठेरेसे उनको हम बांधते हैं । त् ( मानस्य पत्नी ) प्रमाण देनेवालेके द्वारा पालित होने-वाली ( उद्धिता ) ऊपर उठाया हुई ( नः तन्वे शिवा भव ) हमारे शरीरके लिए कल्याणकारिणी हो ॥ ६ ॥

हे ( शाले देवि ) गृहस्त्री देवते ! त् ( हविर्धानं ) हविष्य कणका स्थान, ( अग्निशालं ) अग्निशाला भवया पशुशाला, ( पत्नीनां सदनं ) शिक्केके रहनेका स्थान, ( सदनः ) रहनेका स्थान और ( देवानां सदाः ) देवताओंका स्थान ( अस्ति ) है ॥ ७ ॥

भावार्थ— जो बंधन और ग्रंथियां तथा जो और पाश पहिले बांधे थे, उनको मैं भंग होता करता हू । जिस प्रकार शानी अपनी वाणीसे शत्रुसैन्यको डीला बना देता है ॥ २ ॥

पहिले सब सामान हकटा किया, उसको यथास्थान जोड़ दिया, उनमें जोड़ बदे मजदूर निये । जोरनेके स्थानोंको यथायोग्य रीतिसे काटनेवाले समान ही कटा और सबको प्रयुक्तक साथ बांधा है ॥ ३ ॥

परके बांधों, बंधनों, जोशोंके स्थान, पास और दोनों ओरके बंधनोंको योग्य रीतिसे मैं मजदूर बांध देता हू ॥ ४ ॥ प्रमाणसे बांधे हुए इस परब कैचिकों, पटाहूयों और मानविक स्थानोंके सब बंधनोंको मैं अच्छी प्रकार बांधता हू ॥ ५ ॥

परके अन्दर जो छिक्के हैं, तिनपर सुलभ देनेवाले पदार्थ भरकर रखे हुए हैं उनको हम उतम रीतिसे बांध देते हैं । इस प्रकार बनाई यह उक्त शाला हमारे शरीरोंको सुलभ देनेवाली हो ॥ ६ ॥

परके अन्दर धान्यका स्थान, हवनका कमाटा, शिक्केके रहनेका स्थान, शम्भ्य मनुष्योंके लिए रहनेका स्थान और देवोंके लिए स्थान होते ॥ ७ ॥



अधुमोपशं विततं सहस्राक्षं विपुवति । अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि ॥ ८ ॥  
 यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासिं मिता त्वम् । उभौ मानस्य पत्नितौ जीवतां जरदृष्टी ॥ ९ ॥  
 अमुत्रैतन्मा गच्छताद् दृष्टा नृद्धा परिष्कृता । यस्यास्ते विचृतामस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ॥ १० ॥  
 यस्त्वा शाले निमिमाय संजमार वनस्पतीन् । प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ ११ ॥  
 नपस्तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृष्णः । नमोऽप्रये प्रचरति पुरुषाय च ते नमः ॥ १२ ॥  
 गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो चच्छालायां विजायते । विजावति प्रजावति वि ते पाशोश्चृतामसि ॥ १३ ॥

अर्थ— ( विपुवति ओपशं ) आकाश रेखापर आनुरूप रूप हुआ हुआ और ( विततं सहस्राक्षं अधुं ) कैला हुआ हजारों छिद्रोंवाला जाल ( अवनद्धं अभिहितं ) बंधा और तना हुआ है उसे हम ( ब्रह्मणा वि चृतामसि ) जानते पापते हैं ॥ ८ ॥

हे ( मानस्य पत्नि शाले ) प्रमाण देनेवाले द्वारा पालित घर ! ( यः त्वा प्रतिगृह्णाति ) जो तुझे केता है, ( येन च त्वं मिता असि ) जिसने तुझे माता है, ( उभौ तौ ) दोनों ने ( जरदृष्टी जीवतां ) बृद्धावरपातक जीवित रहे ॥ ९ ॥

( यस्याः ते ) जिस तेरे ( अंगं अंगं पदः पदः ) प्रत्येक भाग और प्रत्येक जोड़को ( विचृतामसि ) हमने मज-दूत बनाया है, यह दृ ( अमुत्र दृष्टा नृद्धा परिष्कृता ) वहाँ सुख, यही हुई और सुखिद होकर ( परं भागच्छतात् ) हमसे पास आ ॥ १० ॥

हे शाले ! ( यः त्वा निमिमाय ) जिसने तुझे बनाया और जिसने ( वनस्पतीन् संजमार ) वृक्षोंको फाटकर जमाया है, हे शाले ! ( परमेष्ठी प्रजापति ) परमेष्ठी प्रजापतिने ( त्वा प्रजायै चक्रे ) तुझे मजाके लिए निर्माण किया है ॥ ११ ॥

( तस्मै दात्रे नमः ) उस कारनेवालेको नमस्कार । ( शालापतये नमः कृष्णः ) शालाके स्वामीको नमस्कार करते हैं । ( नमः प्रचरते अप्रये ) चलनेवाले कातिके लिए नमस्कार और ( ते पुरुषाय च नमः ) तेरे पुरुषके लिए नमस्कार है ॥ १२ ॥

( यद् शालायां विजायते ) जो शालाये होते हैं उन ( गोभ्यः अभ्येभ्यः नमः ) गौओं और घोड़ोंके लिए नमस्कार । हे ( विजावति प्रजावति ) उत्पादक और सतानहुक घर ! ( ते पाशान् वि चृतामसि ) तेरे पाशोंको हम बांधते हैं ॥ १३ ॥

भाषार्थ— ऊपरके भागमें भूचमके समान दिखाई देनेवाला, हजार सुंदर छिद्रोंवाला कैला हुआ जाल हम उत्तम रीतिले पैदाकर और तानकर बांधते हैं ॥ ८ ॥

यद् प्रमाणसे बंधा हुआ घर है, जिसने इसका भाव लिया और जिसने यह बनाया वे दोनों दीर्घकालक जीवित रहे ॥ ९ ॥

इस घरका प्रत्येक भाग और हरएक पुर्जा अच्छी प्रकार सुख बनाया गया है, इस प्रकार सुख बना हुआ यह घर हमसे भावीन होवे ॥ १० ॥

प्रजाका पालन करनेकी इच्छा करनेवाले, उच्च स्थानमें स्थिर रहनेवाले बड़े कारीगरने इस प्रमाणसे बनाया और उस कार्यके लिये अनेक वृक्षोंको काटा है ॥ ११ ॥

वृक्षोंको फाटनेवाले, घरका रखण करनेवाले, अतिको भन्दर रखनेवाले तथा अन्य मनुष्योंके लिये मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १२ ॥

घरमें बाणक होनेवाले तब घोड़े और गौओंके लिये मैं नमस्कार करता हूँ । इस घरको सुख बनाता हूँ ॥ १३ ॥

अग्निमन्तश्छादुगसि पुरुषान्पशुभिः सह । विजावति प्रजावति वि ते पाशाश्रुतामसि ॥ १४ ॥

अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद्भ्रूचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम् ।

यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत्कृण्वेऽहमुदरं शेषधिभ्यः । तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥ १५ ॥

ऊर्जस्वती परस्वती पृथिव्यां निमित्ता मिता । विश्वान्नं विधत्ती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥ १६ ॥

सृष्टैरावृता पलदान्वसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशनी ।

मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्मती ॥ १७ ॥

इदस्य ते वि चतृताम्यपिनद्धमपोर्णुयन् । वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर्षुं वजतु ॥ १८ ॥

अर्थ— ( पशुभिः सह पुरुषान् ) पशुओंके साथ मनुष्योंको और ( शर्ति ) अग्निसे ( अन्तः छादयति ) अन्दर-ग्रह रखती है । ये ( विजावति प्रजावति ) उत्पन्नकर और सन्तानयुक्त घर । वेरे पाशोंको हम बांधते हैं ॥ १४ ॥

( द्यां च पृथिवीं च अन्तरा ) पृथ्वी और पृथिवीके मध्यमें ( यत् कृण्वे ) जो विरह्य करकाश है, ( तेन ते इमां शालां प्रति गृह्णामि ) उससे तेरे इस घरको मैं स्वीकार करता हूँ । ( यत् अन्तरिक्षं रजसः विमानं ) जो अन्तरिक्षकोका बीचमें परिमाण है, ( तत् अहं शेषधिभ्यः उदरं कृण्वे ) उसे मैं खानोंके लिए उदर जैसा बनाता हूँ । ( तेन तस्मै शालां प्रति गृह्णामि ) उससे उसके लिए मैं इस घरको स्वीकार करता हूँ ॥ १५ ॥

हे शाले ! ( ऊर्जस्वती परस्वती ) अशुक्ल और शरपलयुक्त तेरा ( पृथिव्या निमित्ता मिता ) पृथ्वीपर माघ डेकर निर्माण किया गया । ( विश्वान्नं विधत्ती ) सब प्रकारके भक्षको धारण करनेवाली तू ( प्रतिगृह्णतः मा हिंसीः ) देनेवालेका नाश न कर ॥ १६ ॥

( सृष्टैः आवृता ) घाससे आच्छादित, ( पलदान्वसाना ) चटाईयोंसे ढकी हुई ( मिता शाला ) माघे हुई शाला ( रात्री इव ) रात्रीके समान ( जागतः निवेशनी ) जगतको आश्रय देनेवाली तू ( पद्मती हस्तिनी इव ) उत्तम पांखवाली हथिनीके समान ( पद्मती पृथिव्यां तिष्ठसि ) उत्तम हस्तोंवाली होकर पृथ्वीपर स्थिर है ॥ १७ ॥

( ते इदस्य अपिनद्धं ) तेरी चटाईसे बंध हुएको ( अपउर्णुयन् ) आच्छादित करता हुआ ( विचृतामि ) मैं बांधता हूँ । ( वरुणेन समुब्जितां ) बरुण द्वारा जलसे सीधी बनायी गई शालाको ( मित्रः प्रातः षुं वजतु ) सूर्य सचेरे सीधी बना देये ॥ १८ ॥

भावार्थ— इस घरके अन्दर मनुष्य, पशु और अग्नि रहते हैं, अतः इस सन्तानयुक्त और उत्पन्न करने वालोंको मैं सुख करता हूँ ॥ १४ ॥

पृथ्वी और पशुओंके जो अन्तर है उसमें इस घरका निर्माण हुआ है । इसके मध्यभागमें मैं धनसंग्रह करनेका स्थान बनाता हूँ । इस अज्ञानके स्थानके साथ जो घर होगा उसीको मैं लूंगा ॥ १५ ॥

घरमें सब प्रकारका अन्न, रसगानका साधन, अन्न आदि सदा उपस्थित हो । घर प्रमाणसे बनाया जाये । सब प्रकारका मत्त उसमें तिष्ठ हो । यह घर कमी कितौका नाश नहीं कर सकता ॥ १६ ॥

इस घरपर घासका छप्पर है, चारों ओर चटाईयोंका घेद्यन है, सब स्थान प्रमाणसे बनाये गए हैं, इस प्रकारका यह घर सुख हस्तोंपर उसी प्रकार सुरक्षित रहता है, जिस प्रकार हथिनी अपने चार पांखोंपर सुरक्षित रहती है ॥ १७ ॥

यह स्थान पहिले चटाईसे आच्छादित था, उसीको अब मैं सुख बनाता हूँ । रात्रीके समय इस घरको चन्द्र और दिनके समय सूर्य सरलताका मार्ग दिखाते हैं ॥ १८ ॥

नक्षत्राणां शालां निर्मितां कविभिर्निर्मितां मिताम् । इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सद् ॥ १९ ॥  
 कुलायेऽधि कुलायं कोशे कोशः समुञ्जितः । तत्र मतो वि जायते यस्माद्विर्षं प्रजायते ॥ २० ॥  
 या द्विपक्षा चतुष्पक्षा पदपक्षा या निर्मायते ।  
 अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमधिर्मर्भे इवा ज्ञये ॥ २१ ॥  
 प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् । अमिर्षीन्तरापश्चरुस्यं प्रथमा द्वाः ॥ २२ ॥  
 इमा आपः प्र भराम्यक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः । गृहानुष प्र सीदाम्यमृतेन मुहाग्निनां ॥ २३ ॥  
 मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्मारी लघुर्भव । वधुर्भव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ॥ २४ ॥

अर्थ— ( ब्रह्मणा निर्मितां शालां ) शालीके द्वारा निर्माण की हुई शालाकी और ( कविभिः मितां निर्मितां ) कवियों द्वारा प्रमाणसे रखी हुई ( शालां ) शालाकी ( अमृता इन्द्राग्नी रक्षतां ) अमर इन्द्र और अग्नि रक्षा करें । यह ( सोम्यं सद्ः ) सोम-वन्दनविधियों-का घर है ॥ १९ ॥

( कुलाये अधि कुलायं ) कोशकेपर कोशका और ( कोशे कोशः समुञ्जितः ) कोशपर कोश सीधा रखा हुआ है । ( तत्र मतं विजायते ) वहां मत्स्य उत्पन्न होता है । ( यस्मात् विर्षं प्रजायते ) जिससे सब उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

( या द्विपक्षा ) जो दो पक्षवाली ( या चतुष्पक्षा पदपक्षा निर्मायते ) और जो चार तथा छ. पक्षोंवाली बनानी जाती है, ( अष्टापक्षां दशपक्षां ) भाग पक्षों तथा दशपक्षोंवाली ( मानस्य पत्नीं शालां ) प्रमाणसे मायनेवाले के द्वारा पाठित शाळाका ( गर्भे अग्निः इय ) गृहस्थानमें स्थित अग्निके समान मैं ( आशये ) आश्रय लेता हूँ ॥ २१ ॥

हे शाले ! ( प्रतीचीनः ) पश्चिमकी ओर मुख करनेवाला मैं ( प्रतीचीं अहिंसतीं त्वा प्रैमि ) पश्चिमभिमुख लकी और न हिंसा करनेवाली तुझ शालाके पास आता हूँ । ( अग्निः आपः च अन्तः ) अग्नि और जल अन्दर हैं जो ( ज्ञतस्य प्रथमा द्वाः ) यज्ञके पहिले द्वार हैं ॥ २२ ॥

( इमाः जयक्ष्माः यक्ष्मनाशनीः आपः ) ये रोगरहित, रोगनाशक जल ( भरामसि ) शालामें भरता हूँ । ( अमृतेन अग्निना सह ) जल और अग्निके साथ ( गृहानुष प्र सीदामि ) घरमें प्रति मैं आता हूँ ॥ २३ ॥

हे शाले ! ( नः पाशं मा प्रतिमुचः ) हमपर पास न छोड़, ( गुरुः भारः, लघुः भय ) बड़े भारको हलका करनेवाली हो । ( वधुर्भव ) बच्चे समान ( त्वा यत्र कामं भरामसि ) तुझे इच्छाके अनुसार नर देते हैं ॥ २४ ॥

भावार्थ— शाली और कविोंने इस घरकी रचना प्रमाणमें की है । इसकी रक्षा इन्द्र और अग्नि करें । यह घर शान्ति देनेवाला हो ॥ १९ ॥

कोशकेपर कोशका अथवा कोशपर कोश रखनेके समान यहाँ पहिले मजलेपर दूसरा मजला बनाया है । इसमें मनुष्य का जन्म होता है, इसीसे सबकी उत्पत्ति होती है ॥ २० ॥

यह घर दो, चार, छ, भाग या दश पक्षवाला होता है, जैसे पेटमें गर्भ सुरक्षित रहता है उसी प्रकार मैं, इसके आश्रयमें रहता हुआ सुरक्षित रहता हूँ ॥ २१ ॥

घरके पश्चिमकी ओर मुख करने परमें मनुष्य प्रवेश करे । घरमें अग्नि और जल सदा रखा जाये । ये ही दो पदार्थ गृहस्थाश्रमके यज्ञको सिद्ध करनेवाले हैं । इस प्रकारका घर सदा सुख देनेवाला होगा ॥ २२ ॥

जहाँ रोग दूर करनेवाला पानी हो, वहाँसे उसे घरमें भरना चाहिये । घरमें जल और अग्नि सदा रहने चाहिये । ऐसे घरमें मनुष्य निवास करे ॥ २३ ॥

इस प्रकारके घरमें रहनेसे संसारका बड़ा भार बहुत हलका होगा । जिस प्रकार कुन्वधूका संरक्षण और पोषण लोग करते हैं, उसी प्रकार ऐसे घरकी रक्षा करनी चाहिये और इस घरमें उत्तमोत्तम पदार्थ लाकर रखने चाहिये ॥ २४ ॥

प्राच्यां दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ २५ ॥
दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ २६ ॥
प्रतीच्यां दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ २७ ॥
उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ २८ ॥
ध्रुवायां दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ २९ ॥
ऊर्ध्वायां दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ ३० ॥
दिशोदिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहोभ्यः	॥ ३१ ॥

अर्थ— ( शालायाः प्राच्याः दक्षिणायाः ) घरकी पूर्व और पश्चिम ( प्रतीच्याः उदीच्याः ) पश्चिम और उत्तर ( ध्रुवायाः ऊर्ध्वायाः ) ध्रुव और ऊर्ध्व ( दिशोदिशः ) दिश और अपदिशाभेक ( महिम्ने नमः ) महिमाके लिये नमस्कार हो, तथा ( स्वाहोभ्यः देवेभ्यः स्वाहा ) उत्तम वर्जन करने योग्य देवोंके लिये ( स्वाहा=सु+आह ) उत्तम प्रशंसा कहते हैं ॥ २५-३१ ॥

घरकी चारों दिशाओं और उपदिशाओंमें जो सुंदर दरवांजी महिमा हो, उसको सत्कारपूर्वक प्रसन्नता बढ़ानी चाहिये। उत्तम प्रशंसनीय पृथ्वी, भाप, भूमि, वायु, चन्द्र, सूर्य, आदि देवोंकी प्रसन्नता इस प्रकार रहे, ऐसा भाषार स्पष्टदात करता चाहिये ॥ २५-३१ ॥

## गृह-निर्माण

### घरकी प्रसन्नता

गृहनिर्माण करनेका और उसको आनंदित, प्रसन्न तथा उत्तम स्वास्थ्यसंपन्न रखनेका उपदेश इस सूक्तिमें है। पर उत्तम प्रमाणसे निर्माण किया जावे उसके स्वयं, ऊपरकी लकड़ियां, छप्परका लकड़ीका सामान सब सुंदर तथा सुसम्बन्धित होवे और सब जोड़ अच्छे प्रकार मजबूत किये जावें। किसी स्थानपर कमजोरी न रहे। क्योंकि सब घरवालोंका स्वास्थ्य घरकी सुरक्षितता पर निर्भर है। ऐसा सुंदर और मजबूत घर रहनेवालोंके कष्टोंको दूर कर सकता है, परंतु कमजोर और अस्वस्थ तथा वैकल्याणसे बनाया गया घर रहनेवालोंका सब नाश करता, इसका भी पता नहीं होता।

बहु ई और अन्य कारीगर ऐसे लगाने जावें कि जो संधि-स्थानोंको ( परस्पर विद्वान् शास्त्रा ) अच्छी प्रकार बाँटने और जोड़नेकी कला जाननेवाले हों। बाँस, लकड़ियां, घास, चट्टानों आदि जो भी सामान घरमें रखनेका अवकाश प्राप्त होनासे हो वह सब उत्तम, निर्दोष और सुसम्बन्धित रखना जावे।

गृहनिर्माण करनेकी विद्या जाननेवालेको 'मानसति' कहते हैं। वह परके प्रमाणसे लक्षा तैयार करता है और उसी प्रमाणसे भूमिपर रचना करवाता है। इससे विदुः प्रमाणोंसे मन्त्रानुक्त जो घर होता है वह सुखदायी होता है। 'मानसति' ( ईतिविपर ) को 'सुखदा' भी कहते हैं क्योंकि यह सूक्ति सबको प्रसन्न है। इस 'मानसति' द्वारा बनाये जानेके कारण इस ग्राहकी 'मान-पानी' कहते हैं।

घरमें छिँक टींगे हों और उनपर घृतदुग्धादि पदार्थ लगे जायं। पदार्थ रखनेसे पदार्थ क्षीणियों और चूरोमें बचने दें। और इस कारण आरोग्य देनेवाले होते हैं।

पर ( उद्धित ) ऊँचे स्थानपर भीरू कंचा हो। नीचे न हों क्योंकि ऊँचे घरमें गुरुवायु जाती है जो मनुष्योंको भीरोग बना देती है। अथः कहा है कि—

उद्धिता गाला तन्ये ई भयति । ( मं. १ )

'कंचा पर गरीरके त्रिदुःखकारक होता है।' ऐसा भीरु घर नहीं होता। घरमें अवायव्य करनेका स्थान, स्थान

स्नान करनेके योग्य कमरा, भोजनशाला, स्त्रियोंके लिए स्थान, अतिथियों और धावाओंके रहनेका स्थान, धार्मिकके समूह स्थान ऐसे अलग अलग कमरे हों। घरकी छतपर सुन्दर कपडा ताना जाये, जिससे कमरेकी शोभा बढती है। घरमें रहनेवाले देखा करें, कि घरका निर्माण करनेवाला " मानपति " ( इतिविवर ) और बनानेवाले कारीगर दीर्घ आयुष्क जीवित रहें। यह धमी हो सकता है, जब उसमें रहनेवाले सुखपूर्क रहें। अतः घर बनानेवाले धीमे कुशलता-पूर्वक गृहनिर्माणका कार्य करें और घरमें रहनेवालोंको सुख हो, इस विचारसे घर बनावें। केवल वेतनके लिए बनाया जाय तो यह बात नहीं बनेगी। यह तो एक परस्पर प्रेमका विचार है। इसी विचारसे ग्रामके कारीगर और गृहके स्वामी इनमें परस्पर हितकी बुद्धि जाग्रत रहेगी।

पृथक् काटनेवाले, विविध लकड़ियां बनानेवाले, अन्य गृहोपयोगी सामान संभ्रूत करनेवाले, जोड़नेवाले और घरमें रहनेवाले इन सबकी सहकारितासे घरका निर्माण होता है, अतः ग्राममें इनकी सहकारिता होनी चाहिये और एकका हित दूसरेको करना चाहिये, घरका स्वामी धनवान् और प्रतिष्ठित भले ही क्यों न हो, परंतु जिस समय वह लकड़ी काटनेवालेको मिले, वह ( तस्मै दाधे नमः ) उस लकड़ी काटनेवालेको नमस्कार करे, वह लकड़ी काटनेवाला निर्धन ही क्यों न हो, परंतु वह घरके माटिकसे मिले तो वह ( दातान्पतये नमः ) घरके स्वामीको नमस्कार करे। इस प्रकार ये लोग परस्पर सन्मान करें, एक दूसरेका शत्रु करें। कोई किराँका निराश्र न करे।

घरगत शत्रु दूरता चाहिये कि घरका स्वामी अपने घोडा, गीघे, बैल आदि पशुओंका भी उत्तम प्रकार शत्रु शरकार करे। इस प्रकार जहाँ सबका सत्कार होता है ऐसे घरमें रहनेवाले मनुष्य उत्तम ध्यानन्दका अनुभव करेंगे, इसमें संदेह ही क्या हो सकता है ?

घर देना बनाया जाये कि जो पीछे भागकर सुंदर दिखाई देवे। घरके आसपासकी शोभा सुधादिबोले सुंदर दिखाई देवे और प्रचलते अष्टि सौंदर्य बनाया जाये। परं मज्जमें अत्यंत सुश्रित स्थानमें घन, जैत्र आदि रत्नका स्थान- सजानेका कमरा-बनाना जाये। ( दोनधिभ्यः उदरं ) अतः मनुष्यके प्रतिमें घेद धीर्घमें होता है, अति सुश्रित स्थानपर होता है, जमी प्रकार यहाँ घरके मज्जमें पशुके कमरा बनाया जाये। घरमें धान्यके स्थानमें सब प्रकार ( ऊर्जः ) धान्य, ( विध्यासं ) अन्नकी सामग्री

संभ्रूत की जाये, ( पयः ) जल, देय पदार्थ, रसपलक साधन घरमें भरपूर हों ऐसा घर सब रहनेवाले पारिवारिक जनोंको सुख देता है।

घरके स्तंभ ऐसे षडधान् हों जैसे हथिनिके पांव होते हैं, क्योंकि इन्हींपर घरका छपर आदि रहता है। दूसरी मंडिक बनानी हो तो एकके ऊपर दूसरी बनायी जावे, जैसे ( कुल्लाये अग्नि कुल्लायं ) घोडा एकपर दूसरा धराने है और ( कोशे कोशः ) एक कोश पर दूसरा कोश रखा जाय है। मंडिकका स्थान मज्जत हो, नहीं तो ऊपरके भागसे निष्कल स्थान दृश्यजायगा। ऐसे उत्तम घरमें मनुष्यका जन्म होवे। सभी प्राणियोंके लिए ऐसे स्थान बनाने जायें। पत्नी भी प्रसूतिके पूर्व उत्तम पोसले निर्माण करते हैं, पशु भी सुरक्षित स्थान देखते हैं, यह देखकर मनुष्योंको अपने घरमें प्रसूतिके लिए उत्तम स्थान बनाने चाहिये।

घरमें दो, चार, छ, आठ, दस कमरे अथवा थोके घराने जा सकते हैं। भद्र रहनेवाले मनुष्योंकी संख्याके अनुसार तथा उस घरमें होनेवाले कार्योंके अनुसार घर छोटा या बड़ा होना चाहिये।

अग्निर्वांतराप्रश्नार्तस्य प्रथमा दाः। ( मं. २२ )

" घरमें अग्नि और जल अवश्य रहे, क्योंकि इन्हींसे सब प्रकारके यज्ञ होते हैं।" कोई अतिथि आया तो उसको अन्नपरिहारके लिए कमसे कम जलपान दिया जावे और शीतनिवारणके लिए आगके स्थानसे पाँच ठसको दिय्याया जावे। ये दो पदार्थ गरीबसे गरीब और धनीसे धनी मनुष्य के घरमें अवश्य रहें और इनसे आदरातिथ्य होवे। मनु-रगृष्टिमें भी कहा है कि—

एषानि भूमिद्वयं वापचतुर्थी च सृता।

एतान्यपि सतां गेहे नोकिञ्चन्ते कदाचन।

( मनु. ११०१ )

" दोऊके लिए प्याई, भूमि, जल और मीठा भारतीय घर बाँधे अतिथिके आदरन लिए सज्जनेके घरमें कमी न्यून नहीं होती।" यहाँ उदक है। वेदके ऊपरके मंत्रमें एक पीनेके लिए और भाग सेकनेके लिए प्रत्येक घरमें अवश्य रहे देना कहा है। अतिथिके समादरके ये प्रकार स्थानसे देखने योग्य है। घरमें जल रक्षता हो तो उत्तम निर्दोष रत्नक चाहिये इस विषयमें सूचना यह है—

अयदमा यदमनादानीः व्यापः शभरायि।

शृहान् उपप्रसदायि। ( मं. १३ )

‘ मैं घरमें ऐसा जड़ भरता हूँ कि जो स्वयं रोय उलझ करनेवाला न हो भीर जो रोगोंको दूर करनेवाला हो । इस रीतिसे मैं घरकी प्रसन्नता बढ़ाता हूँ । ’ हरएक गृहस्त्री ऐसा ही कहे और अपने घरकी अधिकसे अधिक प्रसन्नता करनेका यत्न करे । ( धर्तू इत्य ) जैसे स्त्रीकी रक्षा की जाती है, वसी प्रकार गृहकी भी रक्षा करनी योग्य है । यहाँ बच्ची प्रसन्नता रखना, उसको हठधुल रखना, सुरक्षित रखना आदि बातें जानने योग्य हैं और इस दृष्टिकोसे घरकी सुरक्षितताकी बातें भी जानी जाती हैं । शाका ( घर ) भी एक कुलधु

है ऐसा मानकर उसकी सुरक्षितता और शोभाके बढानेके लिए प्रयत्न करना चाहिये । ऐसा करनेसे ही ( मुदाः भारः लघुः ) संसारका बडा भारी बोझ बहुत हलका हो जाता है ।

वहाँ ऐसे बंगले कुछबहुत समान परकी सुस्पष्टता की जाती है, यहाँ परके चारों ओरकी दिशा भीर उपदिशाएँ प्रसन्न होती हैं और यहाँ देवताओंके निवासके योग्य स्थान बनता है और परकी मदिमा बढ जाती है ।

हरएक गृहस्त्री अपने घरकी मदिमा इस प्रकार बढ़ाये और अपना घर देवताओंके निवासके योग्य करे और अपने विरपरवा संसारका बोझ हलका करे ।

## घरकी शोभा

कां. ६, सू. १०६

( कर्म - प्रमोचन । देवता - दूर्वाशाका । )

आर्येते वे परायणे दूर्वा रोहनु पुष्पिणीः । उत्सो वा तत्र जायता ह्रदो वा पुण्डरीकान् ॥ १ ॥

अप्रामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् । मध्ये ह्रदस्य नो गृहाः पराचीना मुखां कृधि ॥ २ ॥

हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि । शीतह्रदा हि नो सुवोऽपिष्कणोतु मेघम् ॥ ३ ॥

अर्थ— ( ते भायने परायणे ) ते घरके भागे और पीछे ( पुष्पिणीः दूर्वाः रोहनु ) पृष्ठेति पुष्प दूर्वा कास बने, ( तत्र वा उत्सः जायता ) और वहाँ एक हीद हो, ( वा पुण्डरीकान् ह्रदः ) अथवा वहाँ कमलोंवाला तालाब बने ॥ १ ॥

( इदं अपां न्ययनं ) यह जलोंका प्रवाहस्थान होये, ( समुद्रस्य निवेशनं ) समुद्रके समीपका स्थान हो, ( ह्रदस्य मध्ये नः गृहाः ) तालाबके बीचमें हमारे घर हों, ( मुखाः पराचीना कृधि ) घरके द्वार परस्पर विपुल दिशामें कर ॥ २ ॥

हे शाले ! ( त्वा हिमस्य जरायुणा ) तुझे शीतके आश्रणसे ( परि व्ययामसि ) चेरते है । ( नः शीतह्रदाः मुखाः ) हमारे लिये शीतल जलवाले तालाब बहुत हों, और हमारे लिये ( अग्निः मेघोऽपिष्कणोतु ) अग्नि शीत निवारणका उपाय करे ॥ ३ ॥

भाषार्थ— घरके भागे और पीछे दूर्वाका उद्यान हो, उसमें बहुत प्रकारके वृक्ष उत्पन्न हों, वहाँ पानीका हीद हो व कमलोंवाला तालाब हो ॥ १ ॥

घरके बाग जलके प्रवाह पछें, घरका स्थान समुद्रके किनारेपर हो अथवा तालाबके मध्यमें हो और परके दारवाले वा विहङ्गिणी आगने सामने हों ॥ २ ॥

घरके चारों ओर जड़ हो, शीत जलके हीद हों और यदि वहाँ अग्नि हो तो शीतनिवारणके लिये घरमें अग्नि जलानेका स्थान हो ॥ ३ ॥

घरके आसपासकी शोभा कैसी हो, यह इस सूक्तके उत्तम रीतिसे बताया है । घरके चारों ओर बाग हो, कमलोंके भद्रवृ तालाब हो, जलकी नदों बँई, उद्यान उत्तम हो और चारों ओर हमनीय शोभा बने । ऐसा सुस्पष्ट बाँई आसपासका स्थान होना चाहिये । घरके द्वार और विहङ्गिणी सामने सामने हो, जिससे घरमें शुद्ध वायु दिना रोहटोकेके आ सके । घरमें अग्नि जड़नी रहे । शीत लगने पर घरके बागे अग्निके दान साकर शीतनिवारणका उपाय करे ।

## रमणीय घर

कां. ७, सू. ६०

( (ऋषिः- प्रजा । देवता- गृहा, वास्तोष्पतिः । )

ऊर्जे विभ्रद्सुवनिः सुमेधा अपोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।

गृहानैर्मि सुमना चन्दमानो रमध्वं मा विमीतु मत् ॥ १ ॥

इमे गृहा मयोमुख ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः । पूर्णा वामेन तिष्ठन्तुस्ते नो जानन्त्वापतः ॥ २ ॥

येषामध्येति प्रवसन्त्येषु सौमनसो बहुः । गृहानुषं ह्यामहे ते नो जानन्त्वापतः ॥ ३ ॥

उपहृता भूरिधनाः सत्तापः स्वादुसंमुदः । अक्षुष्या अन्तुष्या स्तु गृहा मास्मद्विमीतन ॥ ४ ॥

उपहृता इह गाव उपहृता अजावर्यः । अथो अरस्य क्रीलाल उपहृतो गृहेषु नः ॥ ५ ॥

अर्थ— ( ऊर्जे विभ्रद्सुवनिः ) अक्षको धारण करनेवाला, धनका धन करनेवाला, ( सुमेधाः ) उत्तम बुद्धिमान् ( अपोरेण मित्रियेण चक्षुषा सुमनाः ) शान्त और मित्रकी दृष्टि धारण करनेके कारण उत्तम मनवाला होकर तथा ( चन्दमानः ) सब श्रेष्ठ पुरषोंको नमन करना हुआ, मैं ( गृहान् पामि ) अपने घरके पास प्राप्त होता हूँ । यहाँ सुम ( रमध्वं ) मानन्दसे रहने, ( मत् मा विमीत ) मुझसे मत दरो ॥ १ ॥

( इमे गृहाः ) ये हमारे घर ( मयो-मुखः ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ) सुखदायी, बलदायक धान्यसे युक्त और दूधसे युक्त हैं । ये ( वामेन पूर्णाः तिष्ठन्तः ) सुखसे परिपूर्ण हैं, ( ते आपतः नः जानन्तु ) ये जानेवाले हम सबको जानें ॥ २ ॥

( प्रवसन् येषां अध्येति ) अन्दर रहना हुआ जिनके विषयमें जानता है, कि ( येषु यमुः सौमनसः ) जिनमें बहुत सुख है, ऐसे ( गृहान् उपहृतामहे ) घरोंके प्रति हम इष्ट मित्रोंको इराते हैं, ( ते नः आपतः जानन्तु ) ये जानेवाले हम सबको जानें ॥ ३ ॥

( भूरिधनाः स्वादुसंमुदः सत्तापः उपहृताः ) बहुत धनवाले, भीष्टेनसे मानन्दिता होनेवाले अनेक मित्र बुलाये गए हैं । हे ( गृहाः ) घरों ! तुम ( अक्षुष्याः अन्तुष्याः स्तु ) क्षुधावाले और तृप्तवाले न हो, तथा ( अस्मत् मा विमीतन ) हमसे मत दरो ॥ ४ ॥

( इह गावः उपहृताः ) यहाँ गौयें इछाई गई तथा ( अज-अथयः उपहृताः ) बकरियाँ और भेड़ें भी छाई गई ( अथो अरस्य क्रीलालः ) और मरुका सत्यभाग भी ( नः गृहेषु उपहृताः ) हमारे घरमें लाया गया है ॥ ५ ॥

भाषार्थ— मैं स्वयं उत्तम भक्त, विपुल धन, श्रेष्ठ बुद्धि और मित्रकी दृष्टिको धारण करके उत्तम विचारोंके साथ पूजनीयोंका सत्कार करता हुआ घरमें प्रवेश करता हूँ, सब लोग यहाँ मानन्दसे रहें और किसी प्रकार यहाँ मेरेसे दूर उत्पन्न न हो ॥ १ ॥

इन घरोंमें हमें सुख मिले, धन प्राप्त हो, और सब मानन्दसे रहें ॥ २ ॥

इन घरोंमें रह कर हमें सुखका अनुभव हो, हम यहाँ इष्टमित्रोंको बुलावें और सब मानन्दसे रहें ॥ ३ ॥

बहुत धनी, मानन्दपूर्तिवाले बहुत मित्र घरमें बुलाये गए हैं, उनको यहाँ जितना चाहे उतना खानपान प्राप्त हो, यहाँ सबकी विपुलता रहे और कोई भूखा प्यासा न रहे ॥ ४ ॥

हमारे घरमें गौयें, बकरियाँ और भेड़ें रहें, सब प्रकारका सत्कारका भक्त रहे, किसी प्रकारकी भ्रूणता न रहे ॥ ५ ॥

सुसुतवन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः । अनुष्या अनुष्या स्त गृह्णा मास्मद्विमीतन ॥ ६ ॥  
इहैव स्त मानुं गातु विश्वा रूपाणि पुष्यत । ऐष्यामि मद्देणा सह भूयांसो भवता मया ॥ ७ ॥

अर्थ— हे (गृह्णाः) घते ! तुम (सुसुता-वन्तः सुभगाः) सशयुक्त और उत्तम भाग्यवाले, (इरावन्तः हसा-मुदाः) भद्रवान् और हास्य विनोद युक्त तथा (अनुष्याः अनुष्याः) धुंधा और वृषाके मयसे रहित (स्त) होते । (असत् मा विमीतन) हमसे मत्त करो ॥ ६ ॥

(इह पय स्त) यहीं रहे, (मा अनु गात) हमसे दूर मत जाओ, (विश्वा रूपाणि पुष्यत) विविध रूपवाले प्राणियोंको पुष्ट करो, (मद्देण सह आ ऐष्यामि) कल्याणके साथ मैं तुम्हें प्राप्त होता हूँ । (मया भूयांसः भवत) मेरे साथ बहुत हो जाओ ॥ ७ ॥

भाषार्थ— धर परमें राख, माभ्य, मद्य, मानन्द, हास्य और खान और पालकी विपुलता रहे ॥ ६ ॥  
पर सुख हों, अस्थिर न हों, परमें सबका उत्तम पोषण होता रहे । कल्याण और सुख सबको प्राप्त हो और हमारी वृद्धि होती रहे ॥ ७ ॥

रमणीय धर कैसा होना चाहिये, यह विषय इस सूत्रमें सुबोध रीतिसे कहा है । धरमें प्रेम रहे, द्वेष न रहे, सब लोग आनन्दते रहें, परस्पर भय न हो, वहाँ धनधान्यकी सुख समृद्धि हो, गोरस विपुल हो, किसी प्रकार सुखभोगकी मूलता न हो । इष्टमित्र भावें, आनन्द करें, कोई कामी भूखा न रहे, भक्षण सबबाह्य हो, हरपक्ष हृष्टपुष्ट हो, कोई किसी कारण पीड़ित न हो । इस प्रकारके धर होने चाहिये । यही गृहस्थाश्रम है ।

## मन्त्र

कां. ७, सू. ८२

( कथिः— शौनकः (संपत्कामः) । देवता— भूमिः । )

अनुष्यन्ति सुष्टुतिं गव्यमाजिमुस्मानुं मद्रा द्रविणानि घत्त ।  
इमं यद्धं नंपत्त देवतां नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ताम् ॥ १ ॥  
मयि प्रजां गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्षेना वलेन । मयि प्रजां मय्यापुर्दधामि स्वाहा मय्यमिम् ॥ २ ॥

अर्थ— (सु-ष्टुतिं गव्यं आजि अभ्यर्चत) उत्तम स्तुति करने योग्य गौ संबंधी प्रणतिकी तीमत्का आदर करो । (अस्मानु मद्रा द्रविणानि घत्त) हममें कल्याणकारी धन प्राप्त करामो । (नः इमं यद्धं देवता मयत्) हमारे इस पक्षके देवताओंके पक्षुषांको । (घृतस्य धाराः मधुमत् पवन्तां) घीकी धाराएं मधुरताके साथ बहें ॥ १ ॥

(अमे मयि क्षत्रेण वर्षेना वलेन सह अग्निं गृह्णामि) रहिले मैं अपने अन्दर क्षत्रतीर्थ, ज्ञानके देव और बलके साथ रहनेवाले अग्निको ग्रहण करता हूँ । (मयि प्रजां) अपने अन्दर प्रजाको, (मयि आयुः) अपने अन्दर आयुको, (मयि अग्निं) अपने अन्दर अग्निको (दधामि) पालन करता हूँ, (स्वाहा) यह ठीक कहा है ॥ २ ॥

भाषार्थ— गौओंको उन्नतिका विचार करो, क्योंकि यही उत्तम प्रांसाके योग्य कार्य है । घीकी मीठी धाराएं विपुल हों अर्थात् धरमें धी विपुल हो, कल्याण करनेवाला विपुल धन प्राप्त करे और इत सबका विनिबोग प्रभुकी संगृष्टि के लिए पक्षमें किया जावे ॥ १ ॥

मेरे अन्दर शौर्य, ज्ञान, बल, शक्ति, आयु आदि स्थिर रहे ॥ २ ॥



इहैवाग्ने अग्निं धारया सृष्टिं मा स्वा नि क्रुन्पूर्वचिचा निकारिणः ।

क्षुत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्षतां ते अनिष्टृतः

॥ ३ ॥

अनुवृत्तिरुपसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।

अनु सूर्यं उपसो अनु रदमीन्नु धावापृथिवी आ विवेश

॥ ४ ॥

प्रत्यग्विहृषसामग्रमख्यत्प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।

प्रति सूर्यस्य पुरुषा च रदमीन्प्रति धावापृथिवी आ ततान

॥ ५ ॥

घृतं तै अग्ने दिव्ये सधस्यै घृतेन त्वां मनुद्घा सधिन्ये ।

घृतं तै दुधीर्नदप्यं आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुहतां गावो अग्ने

॥ ६ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! ( इह एव सूर्ये अग्निधारय ) यहाँ ही धनको प्राप्त कराओ । ( पूर्वचिचाः निकारिणः स्वा मा निक्रुन् ) पूर्वकाउसे मन उगानेवाले अपकारी लोग तेरे संग्रहधर्म अपकार न करें । हे अग्ने ! ( क्षुत्रेण तुभ्यं सुयमं अस्तु ) शास्त्र बतसे तेरे लिये उत्तम नियमन होवे । ( उपसत्ता अनिष्टृतः वर्षतां ) तेरा सेवक बहिहित होना हुआ बडे ॥ ३ ॥

( अग्निः उपसां अग्रं अनु अख्यत् ) अग्नि-सूर्य-उप कार्योंके अग्रभागमें प्रकाश करता है । ( प्रथमः जातवेदाः अहानि अनु अख्यत् ) पहिला जातवेद-सूर्य-दिनोंको प्रकाशित करता है । वही ( सूर्यः अनु ) सूर्य अनुकूलताके साथ ( उपसः अनु ) उप कार्योंके अनुकूल, ( रदमीन् अनु ) किणोंके अनुकूल, ( धावापृथिवी अनु आ विवेश ) सुलोक और पृथ्वीलोकके बीचमें अनुकूलताके साथ ब्याप्त होता है ॥ ४ ॥

( अग्निः उपसां अग्रं प्रति अख्यत् ) अग्नि-सूर्य-उपकारोंके अग्रभागमें प्रकाशता है । ( प्रथमः जातवेदाः अहानि प्रति अख्यत् ) पहिला जातवेद-सूर्य-दिनोंको प्रकाशित करता है । ( सूर्यस्य रदमीन् पुरुषा प्रति ) सूर्यकी किणोंको विशेष प्रकार प्रकाशित कराहै । तथा ( धावापृथिवी प्रति आ ततान ) धावापृथिवीको ठसने फैलाया है ॥५॥  
हे अग्ने ! ( ते घृतं दिव्ये सधस्ये ) तेरा घृत दिव्य स्थातमें है । ( मनुः त्वां घृतेन अथ सं इन्धे ) मनुष्य तुझे घीसे आत प्रशस्तित करता है । ( नदप्यः देवीः ते घृतं आवहन्तु ) न गिरानेवाली दिव्य शक्तियाँ तेरे घृतको ले आएँ । हे अग्ने ! ( गायः तुभ्यं घृतं दुहतां ) गौंसे तेरे लिये घीको देंगे ॥ ६ ॥

मायार्थ— मुझे धन प्राप्त हो । अपकारी लोग अपकार न कर सकें । द्युत्रोउसे सर्वत्र नियमब्यवस्था उत्तम रहे । प्रभुका भक्तसेवक-पृथिवीको प्राप्त होने ॥ ३ ॥

सूर्य उपाके पञ्चाशत् प्रकट होता है और दिग्में प्रकाश करता है । वह प्रकाशसे सुलोक और पृथ्वीके बीचमें ब्याप्त होता है ॥ ४-५ ॥

मनुष्य घीसे अग्निमें यजन करे, क्योंकि घीही उत्तम दिव्य स्थानमें रहनेवाला है । गौंसे हवनके लिये उत्तम भी तैयार करें ॥ ६ ॥

इस सूक्तमें गोरक्षाकी महत्ताका वर्णन है । साथ ही गौंके घृतके हवनका भी महत्त्व इसमें बताया है । घृतके हवनसे रोगोंके दूर होनेकी बात इससे पूर्व ( अथर्ववेद ७११ ) कही है । अथ. रोग दूर होनेके बाद दीर्घ आयु, बल, तेजस्विता, ज्ञान, धन आदिका प्राप्त होना संभव है ।

कां. ४, सू. २१

( कवि - महा । देवता - गाय । )

आ गावो अग्मन्तु भद्रमकन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।

प्रजावतीः पुरुषा इह स्पुनिन्द्राय पूर्वोरुषसो दुहानाः

॥ १ ॥

इन्द्रो यज्वने गृणते च शिश्रुत उपेददाति न स्वं भुषायति ।

भूयोभूयो रयिषिदस्य वर्षेपशभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम्

॥ २ ॥

न ता नदन्ति न दभाति तस्केरो नासांमामित्रो व्यधिरा दधर्षति ।

देवांश्च याभिर्पज्वे ददाति च ज्योगिताभिः सचते गोपतिः सह

॥ ३ ॥

न ता अर्वा रेणुककाटोऽक्षुते न संस्कृतवमुप यन्ति ता अभि ।

उरुगायमर्षे तस्य ता अनु गावो मर्तस्य चरन्ति यज्वनः

॥ ४ ॥

अर्थ— ( गायः आ अग्मन् ) गौवें आगई हें और ( उत भद्र अक्रन् ) उन्हे कल्याण किया है । ( गोष्ठे सदिन्तु ) वे गोठालमें बैठें और ( अस्मे रणयन् ) हमें सुख दें । ( इह प्रजावतीः पुरुषा स्युः ) यहाँ वे उत्तम पशुसँसुक्त और बहुत रूपवाली हो ( इन्द्राय उपसः पूर्वाः दुहानाः ) और परमेस्वरके यजनके लिये उपकालके पूर्व दूध देनेवाली होवें ॥ १ ॥

( इन्द्रः यज्वने गृणते च शिश्रुते ) ईश्वर यज्ञकर्ता और सद्गुणदेन कर्ताके सख शान देता है । वह ( इत् उप ददाति ) निश्चयपूर्वक धनादि देता है ( स्वं न भुषायति ) और अपनेको नहीं छिपाता । ( अस्य रयि भूयोः भूयोः इत् वधयत् ) इसके धनको अधिकधिक बढ़ाता है और ( देवयुं अभिन्ने खिल्ये निदधाति ) देवध प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवालेको अपनेसे अभिन्न और स्थिर स्थानमें धारण करता है ॥ २ ॥

( ताः न नदन्ति ) वह पशुकी गौवें नद नहीं होती, ( तस्करः न दभाति ) चोर उनके दबाता नहीं, ( असां व्यधिरः न आ दधर्षति ) प्यथा देनेवाला तपु हनपर अत्याधिकार नहीं करता, ( यामिः देवात् यजते ) जिनसे वेवोंका यज्ञ किया जाता है और ( ददाति च ) दान दिया जाता है ( गोपतिः ताभिः सह ज्योष् इत् सचते ) गोपालक उनके साथ चिरकालक रहता है ॥ ३ ॥

( रेणुक-काटः अर्वा ताः न अक्षुते ) पांशुसे भूखि उपायेवाला घोषा हन गौवोंकी चोयता प्राप्त नहीं कर सकता । ( ताः संस्कृतमं न अभि उप यन्ति ) वे गौवें पाकादि संस्कार करनेवालेके पास भी नहीं आती । ( ताः गायः ) वे गौवें ( तस्य यज्वनः मर्तस्य ) उस यज्ञकर्ता मनुष्यकी ( उरुगायं अमर्षं अनु विचरन्ति ) यदी प्रसन्ननीय निर्ममतामें विचरती हैं ॥ ४ ॥

भाष्यार्थ— गौवें हमारे परमें आगई हें और उन्हे हमारा कल्याण किया है । ये गौवें इस गोठालमें बैठें और हमारा भलेदु बधावें । ये गौवें यहाँ बहुत पशुसँसुक्त और अनेक रूपवाली होकर ईश्वरके यज्ञके लिये प्रातःकाल दूध देनेवाली होवें ॥ १ ॥

ईश्वर साकर्मकर्ता और सद्गुणदेन दाताको उत्तम ज्ञान देता है और धनादि भी देता है तथा उसके सम्मुख अपने भागको मन्त्र करता है । यह ईश्वर इस उपासकके धनकी वृद्धि करता है और देवत्वकी इच्छा करनेवाले भागको अपने ही मंत्रके स्थित स्थानमें धारण करता है ॥ २ ॥

इन गौवोंका नाश नहीं होता, चोर उनके नहीं चुराता और न इनको कोई कष्ट ही देता है । इसके दूधसे ईश्वरका यज्ञ किया जाता है । इस प्रकार गौबोंका पालनकर्ता गौभिक्षे साथ चिरकाल चरनेमें रहता है ॥ ३ ॥

जुर्मिले घोड़ेकी भी गायकी चोयता प्राप्त नहीं होती । ये गौवें अन्न पकानेवालेकी पाकशालामें नहीं आती । ये गौवें परमात्मकी निर्भय रक्षामें विचरती हैं ॥ ४ ॥

गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद्गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।  
 इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि ह्वा मनसा चिदिन्द्रम् ॥ ५ ॥  
 ययं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कणुया सुप्रतीकम् ।  
 भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वयं उच्यते समासु ॥ ६ ॥  
 प्रजावतीः सुयवसे रुग्न्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।  
 मा व स्तेन ईशत माघशंसः परिं वो रुद्रस्य हविवृणक्तु ॥ ७ ॥

अर्थ— (गायः भगः) गौं घन हैं, (गावः इन्द्रः) गौं प्रभु हैं, (गायः प्रथमस्य सोमस्य भक्षः) गौं घे पदिते सोमसका भक्ष हैं (मे इच्छात्) यह मैं जानवा हूँ। (इमा या गावः) ये जो गौं हैं। दे (जनाः) लोगो ! (सः इन्द्रः) वही इन्द्र है। (हवा मनसा चित् इन्द्र इच्छामि) हृदयसे और मनसे निश्चयपूर्वक मैं इन्द्रको प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ ॥ ५ ॥

हे (गावः) गौओ ! (ययं कृशं चित् मेदयथा) इस दुर्बलको भी पुष्ट करती हो, (अ-श्रीरं चित् सुप्रतीकं कृणुथ) निस्तेजको भी सुंदर बनाती हो। हे (भद्रवाचः) उत्तम शब्दवाली गौओ ! (गृहं भद्रं कृणुथ) परको कल्याणरूप बनाती हो, इसलिये (समासु वः बृहद्वो वयः उच्यते) समासोंमें तुम्हारा वधा वस गाया जाया है ॥ ६ ॥

(प्रजावतीः) उत्तम शब्दवाली (सु-यवसे रुग्न्तीः) उत्तम घासके लिये भ्रमण करनेवाली, (सु-प्रपाणे शुद्धाः अपः पिबन्तीः) उत्तम जल स्थानमें शुद्धजल पीनेवाली गौओं ! (स्तेनः अघदांसः वः मा ईशत) चोर और पानी तुमपर अधिकार न करे। (वः रुद्रस्य हेतिः परिवृणक्तु) तुम्हारी रक्षा हृदयके शत्रुसे पारों ओरसे इतने ॥ ७ ॥

भाषार्थ— गौं ही मनुष्यके धन, बल और उत्तम भक्ष हैं। इसलिये मैं सदा गौओंकी उन्नति हृदय और मनसे चाहता हूँ ॥ ५ ॥

अत्यंत दुर्बल मनुष्यको गौं अपने दूधसे पुष्ट बनाती हैं। निस्तेज पांडुरोगीको सुंदर तेजस्वी करती हैं। गौओंका शब्द वधा आत्माहादकारक होता है। ये गौं हमारे परको कल्याणका स्थान बनाती हैं, इसीलिये समासोंमें गौओंके वधाका वर्णन किया जाया है ॥ ६ ॥

गौं उत्तम बलमेंसे युक्त हैं, वे उत्तम घास खाये, शुद्ध स्थानका पवित्र जल पीये। कोई पानी या चोर उनका स्वामी न बने और वे सबैदा सुरक्षित रहें ॥ ७ ॥

## गौ

### गौका सुंदर काव्य

यह सूक्त गौका अत्यंत सुंदर काव्य है। इतना उत्तम वर्णन बहुत ही थोड़े स्थानपर मिलेगा। गौका महत्त्व इस काव्यमें अति उत्तम शब्दों द्वारा बताया है। जो लोग गौका यह काव्य पढ़ेंगे, वे गौका महत्त्व जान सकेंगे हैं। गौ परकी शोभा, कुटुंबका आरोग्य, बल और पराक्रम तथा परिवारका धन है, यह इस सूक्तमें स्पष्ट शब्दों द्वारा बताया है।

### गौ परकी शोभा है

इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखिये—

(१) गायः भद्रं अकन्त् । (सं. १)

(२) गायः ! भद्रं गृहं कृणुथ । (मं. ६)

'गौं परकी कल्याणका स्थान बनाती हैं।' अर्थात् कित्त परमें गौं रहती हैं, यह कल्याणका धाम होता है।

## पुष्टि देनेवाली गौ

मनुष्यकी पुष्टि यशनेवाली गौ है, इसलिये हरएक घरमें गौका निवास होना चाहिये। इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र-भाग देखिये—

- ( १ ) गावः अस्मे रणायन् । ( मं. १ )  
 ( २ ) गावः । सूर्यं ह्यर्वां चित् मेदयथ । ( मं. १ )  
 अग्नीरं चित् सुमतीं कृणुथ । ( मं. १ )

‘ गौवें हमें रमणीय बनाती हैं । इस मनुष्यको गौवें पुष्ट यगती है । निरुतेजको खेतन करती है । ’ इसीलिये घरमें गौ रखनी चाहिये और हरएकको उस गौ माताका दूध पीना चाहिये । तथा उसकी उत्तम सेवा करनी चाहिये । हरएक गृहस्त्रीका यह भावश्यक कर्तव्य है ।

## गौ ही धन, बल और भद्र है

मनुष्यको धन, बल और भद्र गौ ही देती है । सब यश गौसे प्राप्त होता है, इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्रभाग देखिये—

- ( १ ) गावः भगः । गावः इन्द्रः ।  
 गावः सोमस्य भक्षः ।  
 इमा याः गावः स इन्द्रः । ( मं. ५ )

‘ गौवें धन है, गौवें ही इन्द्र ( बलके देवता ) हैं, गौवें ही ( दूध देनेके कारण ) भद्र है । जो गौवें हैं वही इन्द्र है । ’ गौवेंको ‘ धन ’ कहा ही जाता है । महाताष्ट्रीं गौका नाम ‘ धन ’ है, यह धन अन्नका ही अपभ्रंश रूप है । धनका देवता वेदमें भग है, यह गौके रूपमें हमारे पास आया है । जो छोटी गौको अपने घरमें रखता नहीं देखे, वे मानो, धनकी ही अपने घरसे बाहर निकाल देते हैं ।

‘ इन्द्र ’ देवता बल, पराक्रम और विजयका है । वही गौके रूपमें हमारे घरमें आता है । जो कोई अपने घरमें गौका पालन नहीं करता, वह मानो, बल, पराक्रम और विजयको ही दूर करता है ।

अन्नका देवता ‘ सोम ’ है । वही गौके रूपमें हमारे पास आता है । गौ स्वयं दूध देती है जिससे दही, छाउ, मक्खन, गी आदि अन्नरूप पदार्थ बनते हैं । बेलने बालसे अन्न उपजता होता है । इस प्रकार गौ हमारे अन्नका प्रबंध करती है । ऐसी उपयोगी गौको जो लोग अपने घर नहीं पाउते वे, मानो, अन्नको ही दूर करते हैं । इस प्रकार गौके पास

नले धन, बल और भद्र प्राप्त होता है और गौको न पालनेसे दारिद्र्य, पशुहीनत्व और योग्य अन्नका अभाव होता है । यदि बछवा, धनवा, यशस्वी और प्रयोगी होनेकी इच्छा है, तो गौको पालना चाहिये और गौका दूध प्रतिदिन पीना चाहिये ।

## यज्ञके लिये गौ

परमेश्वरकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ और यज्ञकी पूर्णताके लिये गौ होती है । वैदिकधर्ममें जो कुछ किया जाता है वह परमात्माके नामसे और यज्ञके नामसे ही किया जाता है । सब कर्मका अन्तिम फल मनुष्यकी उन्नति ही है, परंतु उसका सब प्रयत्न ‘ यज्ञ ’ के नामसे होता है । गौका दूध तो मनुष्य ही पीते हैं, परंतु घरमें गौका पालन यज्ञकी पूर्णताके लिये किया जाता है, अपना घेठ भरनेके लिये नहीं । यह त्यागकी शिक्षा वैदिकधर्ममें इस प्रकार दी गयी है । मयम मंत्रमें ‘ उपाके पूर्व गौ दूध देती है और उस दूधसे इन्द्रके लिए यज्ञ किया जाता है, ’ ऐसा जो कहा है इसका श्रेष्ठ यज्ञ है । यज्ञका शेष दूध दूध, आदि मनुष्य पीते हैं । परंतु वह भोगके हेतुसे नहीं पीते, अपितु ‘ ईश्वरका प्रसाद ’ मानकर पीते हैं । गौ परमेश्वरके यज्ञके लिये है, उसका प्रसाद रूप दूध पीया जाता है । इतने विधासले और भक्तिसे यदि दूध लिया जाय, तो यह निःसन्देह अमृत लाभकारी होगा ।

इस यज्ञसे ‘ देव भी मनुष्यके लिये धन, यश, शान आदि देता है और अपने पासके स्थिर धाममें उसको रखता है । ’  
 ( मं. २ )

यह द्वितीय मंत्रका कथन है । यज्ञक भावस्य सप्त कर्म करनेसे यह लाभ होता स्वाभाविक है । श्रुतीय मंत्रका कथन है कि ‘ यज्ञके लिये गौ होती है, इसलिये उसका नाग नष्ट होना, रोग उसको कष्ट नहीं देना, और उसको पुराता नहीं, शत्रु उसको तताता नहीं, ऐसी सुखित अरण्यां गौवें यज्ञमानके पास रहती हैं, यद्यमान देवोंकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ करता है और उसीसे उसका पास गौवेंकी सहाय बढ़ जाती है । ’ अर्थात् मंत्रमें भी गौवें महत्त्वका ही वर्णन किया है । ‘ घोडा गौ जैसे मनुष्यके लिये उपयोगी नहीं है, गौवें वाक्सत्कार करनेवालेके पास कभी नहीं जाती, ये गौवें यज्ञमानकी विस्तृत इशामें रहती हैं और जानकर रिचाराता हैं । ’ यह सब वर्णन, गौका अपने लिये उपयोगी होता है, दही बनाता रहता है ।

## अध्वय्य गौ

ऐसी उपभोगी गौ है, इसलिये यह अध्वय्य होगी ही चाहिये। इस विषयमें शंका नहीं हो सकती। इस ऋषभ मंत्रमें वही बात विशेष स्पष्टतापूर्वक कही है। देखिये—

तस्य यज्वनः मर्तस्य उरुगायं अध्वर्यं ताः गावः  
अनु विचरन्ति । ( मं. ४ )

‘उस याजक मनुष्यके बहुत प्रशंसनीय निर्भयतामें वे गौयें विचरती हैं।’ अर्थात् यज्ञकर्ता यजमानके पास गौयें निर्भयतासे रहती हैं, वहाँ उनको किसी भी प्रकार कोई पीडा दे नहीं सकता। गौयेंकि लिये यदि कोई अत्यन्त निर्भय स्थाप हो सकता है, तो वह यजमानका घर ही है। यह वर्णन देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि ‘यजमान गौको काटकर उसके मांसका हवन करता है’ यह कथना मिथ्या है। गोमेधमें भी गोमांससे हवनका कोई संबंध नहीं है, इस विषयमें इसी मंत्रका तृतीय चरण देखने योग्य है—

ताः गावः संस्क्रुतं न अभि उपपन्ति । ( मं. ४ )

‘वे गौयें मांससंस्कार करनेवालेके पास नहीं जातीं।’

अर्थात् गौके मांसका पाकसंस्कार कोई नहीं करता। यहाँ ‘संस्क्रुतत्र’ शब्द है। ‘संस्क्रुतः’ का अर्थ है शक्की प्रकार ‘काटनेवाला’ यहाँ ‘कृद्’ धातुका अर्थ काटना है। काटे हुए मांसको पकानेवाला जो होता है, उसका नाम ‘संस्क्रुतत्र’ है। जो पशुको काटते हैं और जो पशुको पकाते हैं उनके पास कभी गौ नहीं पहुँचती। अर्थात् गौके मांसका यज्ञमें या यज्ञमें कहीं भी संस्कार नहीं होता है। गोमांसके हवनका तथा गोमांसके भक्षणका यहाँ पूर्ण निषेध है। गौयें यजमानकी विस्तृत रक्षामें रहती हैं, इसलिये यज्ञमें गोमेध, गोमांस हवन अथवा गोमांससंस्कार भी संभवनीय नहीं है। इस मंत्रसे हतवी स्पष्टतासे गोमांस-संस्कारका निषेध किया है कि इसको देखनेके पश्चात् कोई यह नहीं कह सकता कि वेदके गोमेधसे गोमांस हवनका संबंध है।

## उत्तम घास और पवित्र जलपान

यजमान यज्ञके लिये गौकी रक्षा करता है इसलिये वह उनके पालनका बड़ा प्रबंध करता है। यह प्रबंध किम

प्रकार किया जाय, इस विषयमें अग्रिम मंत्र देखने योग्य है—

( गावः ) सुप्रयसे यशन्तीः ।

सुप्रपाणे शुद्धा जपः पियन्तीः ॥ ( मं. ४ )

‘गौयें उत्तम घास खावें और उत्तम जलपानमें शुद्ध जल पीवें।’ शुद्ध घास खाने और शुद्ध जल पीनेसे गौकी उत्तम रक्षा होती है। इस प्रकार गौकी रक्षा करें और गौके दूधसे सब हृद्युष्ट, बलिष्ठ, यशस्वी, वेतस्वी, प्रतापी और दीर्घायु हो।

## गौकी पालना

गौका पालन कैसे करना चाहिये, इस विषयका उत्तम उपदेश भी इन ही मंत्रोंसे हमें मिलता है। ‘उत्तम स्थानका शुद्ध जल गौको पिलाना चाहिये’ यह वेदकी आज्ञा है। शुद्ध जल हो और वह उत्तम स्थानका हो। गौ जो खाती है और जो पीती है उसका परिणाम आठ दस मण्डोंमें उसके दूधपर होता है, यह विषय है। जलका भी यह विषय है कि वह स्थानके गुणदोष अपने साथ ले जाता है। हिमालयके पहाड़ोंसे खानेवाला जल दूध खानेवाला होता है, कई स्थानोंका कण्ड करनेवाला और कई स्थानोंका मर उत्पन्न करनेवाला होता है। इस कारण गौको अच्छे आरोग्यपूर्ण स्थानका शुद्ध जल ही पिलाना चाहिये, जिससे दूधमें अच्छे अच्छे गुण आयें और उस दूध पीनेवालोंको अधिकसे अधिक लाभ प्राप्त होवे।

घास भी अच्छी भूमिकी होगी चाहिये और (सु-धवस्) उत्तम जी जादिकी होगी चाहिये। जुरे स्थानकी जुरे प्रकारसे उत्पन्न हुई नहीं होगी चाहिये। कई लोग गौको ऐसी डुरी चीजें खिलाते हैं कि, उससे अनेक दोषोंसे युक्त दूध उत्पन्न होता है। गौयें मनुष्यके शौच आदिको भी खाती हैं। यह सब दोष उत्पन्न करनेवाला है। उत्तम घास और शुद्ध जल खा पीकर गौसे जो दूध उत्पन्न होगा, वही आरोग्यवर्धक होगा।

## धृश्वर गाय

कां. १२, सू. ४

(कवि - कर्मण । देवता - वशा।)

ददामीत्येव श्रूयादनु चैनामधृत्तत । वशां ब्रह्मभ्यो याचञ्जस्तत्प्रजापदपत्यवत् ॥ १ ॥

प्रजया स वि क्रीणीति पशुभिर्धोषं दस्यति । य अपुंषेभ्यो याचञ्जो देवाना गां न दित्सति ॥ २ ॥

कूटर्वास्य स धीर्विन्ते श्लोणयां काटमर्दति । वण्डयां दहन्ते गृहाः काणयां दीयते स्वम् ॥ ३ ॥

विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्रो विन्दति गोपतिम् । तथा वशायाः संविद्य दुरदभा श्रुत्यसौ ॥ ४ ॥

पदोरेस्या अधिष्ठानाद्विह्विन्दुर्नाम विन्दति । अनामनारस धीर्विन्ते या सुरेणोपजिप्रति ॥ ५ ॥

यो अस्याः फर्णावास्कुनोत्या स दुषेषु वृथते । लक्ष्मं कुर्वे इति मन्यते कर्नीषाः कुणुते स्वम् ॥ ६ ॥

अर्थ— (ददामि इति पद्य श्रूयात्) देवा इत्येता इी कवे । च पना अनु अभुत्तत) और इत्ये विषयमे भनुकृत भाव रते । (याचञ्जय प्रजाम्य पना वशा) मागनेवाते प्राणगोशो यः गी दये, (तत् प्रजापद अपत्यवत्) यह दाव प्रजा और संतान देनेवाला हो ॥ १ ॥

(या याचञ्जय आपयेभ्य देवाना गा न दित्सति) जो मागनेवाते कविपुत्राको देवांकी गी नहीं देता, (स प्रजया विप्रीणीति) यह भयने प्रजाको ही बेचना है, और (पशुभि च उपदस्यति) पशुभोंके साथ मागको माह होता है ॥ २ ॥

(कूटया अस्य स धीर्विन्ते) विना लींगक पशुमे भी इस दानारित मनुष्यक लोग मारे पावन और (श्लोणया काट अर्दति) लगी लक्ष्मीके द्वारा भी शेरम इसक लोग गिराये पावने । (वण्डया गृहा दहन्ते) बिकक गोले इमके घर जलाये शंभवे और (काणया स दीयते) एक भावसे हीन गी द्वारा इसका धन नष्ट किया जावगा ॥ ३ ॥

(विलोहित शक्य अधिष्ठानात् गोपतिं विन्दति) रजःवर गावरक स्थानम गीक कंज्य स्वामीका बकवला है । (तथा वशाया संविद्य) पैसी गीका नाम है (हि दुरदभा उच्यते) इसी कारण यह रजस कनक जिये कनि है, ऐसा कहा जाता है ॥ ४ ॥

(अस्या पदो अधिष्ठानात्) इस गीक पाव रजसक स्थानम (विह्विन्दु नाम जायते) विह्विन्दु नामक राग होता है । (या सुरेणोपजिप्रति) पितका सुखसे मूर्खी हो वे (अनामनान्त् मर्दीर्यते) न जानते हुए ही क्षीण होकर मर हाते हैं ॥ ५ ॥

(य अस्या फर्णा आस्कुनोति) य इस गीक मागका दुस देता है, (स दुषेषु आवृष्यते) यह माना देवोंपर आवाग करता है, जो गावण (लक्ष्मं कुर्वे इति मन्यते) विद्ध करता इत्ये मागता है, वह (स्य कर्नीष कुणुते) भयना धन म्यून करता है ॥ ६ ॥

भाषार्थ— हरएक गुरुकी कथना मनुष्य 'दान देता हूँ' वसा ही सदा कह । दानक विषयम तथा गीक विषयम मनमे मनुकृत भाव धारण करे । शानी मनुष्योंका गीकाका दान करनेमे दानका माग्य बढता है ॥ १ ॥

जो गीका दान विनालाक मागनेपर भी नहीं करता, उसका कट प्राप्त हाते हैं ॥ २ ॥

जहासे भयका सभय नहीं वशासे उसको भय प्राप्त हाते हैं ॥ ३ ॥

गीक गावणसे रजःवर उरएक हाकर यह कर्तुस माणिकका मान करता है । अथात् उस अनेक व्याधियां मर्णाई है । यह गीक विषयमे सदा आदर रखना चाहिये । इफकि गीका मपमान क्षमा नहीं किया जाता ॥ ४ ॥

गीक पावक स्थानमे विह्विन्दु नामक राग पैडता है । जिन गाव मूर्खी है उस वह हाका दे और वह मरगा दे वना गीक कालीपर विद्ध करनेस जो गीको वेदना हाती है, उसम गीक स्वामीका धन कम होजा है ॥ ६ ॥

यदस्याः कस्मै चिद्भोगाय बालान्कथितप्रकृतवति । ततः किशोरा त्रिपन्ते वत्साश्च घातुंको वृषः ॥७॥  
 यदस्या गोपती सत्या लोम ध्वाहृष्टो अर्जाहिदत् । ततः कुमारा त्रिपन्ते यश्मो विन्दत्यनामनात् ॥८॥  
 यदस्याः पल्पूलनं शकृद्वासी समस्वति । ततोऽपरूपं जायते तस्माद्व्येष्यदेनसः ॥ ९ ॥  
 जायमानामि जाषते देवान्सत्राक्षणान्वशा । तस्माद्ब्रह्म्यो देवेषा उदाहुः स्वस्य गोपनम् ॥१०॥  
 य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा । ब्रह्मज्येयं तदनुगुण्य एनां निप्रियायते ॥ ११ ॥  
 य आप्येभ्यो याच्यो देवानां गां न दित्सति । आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्वये ॥ १२ ॥  
 यो अस्य स्याद्दशभोगो अन्यामिच्छेत् तर्हि सः । हिस्ते अदत्ता पुरुषं याचित्वा च न दित्सति ॥१३॥

अर्थ— (यत् कश्चित् कस्मैचित् भोगाय) जो किसी भोगविशेषके लिये (अस्याः बालान् प्रकृतवति) इस गौके बालोको काटा है, उससे (ततः किशोराः त्रिपन्ते) उससे बालक मरते हैं तथा (वृषः वत्सान् च घातुः) भेदिना बच्चोंका घात करता है ॥ ७ ॥

(यत् अस्याः सत्याः गोपतो) यदि इसके साथ गोरक्षकंठ रहते हुए भी यदि (ध्वाहृष्टः लोम अर्जाहिदत्) कौवा चालोंको मोचे, तो (ततः कुमाराः त्रिपन्ते) उससे बच्चे मर जाते हैं और (अनामनात् यश्म विन्दति) सङ्गरीसे क्षयरोग पकड़ लेता है ॥ ८ ॥

(यत् अस्याः पल्पूलनं शकृद्) इस गौका मूत्र और गोबर (दासी समस्वति) नीकाली फेंके, तो (ततः तस्मात् पनसः अ-अपेपत्) उस पापसे न हृदयके कारण वह (अप रूपं जायते) विकृत होता है ॥ ९ ॥

(जायमाना वशा स-ब्राह्मणान् देवान् अभिजायते) उत्पन्न होते ही गौ ब्राह्मणोंके साथ देवोंके लिये होती है । (तस्मात् एषा ब्रह्म्यः देवा) इसलिये वह गौ ब्राह्मणोंको देने चाहिये । (तत् स्वस्य गोपनं आहुः) वह अपनी सुरक्षितता है देसा कहते हैं ॥ १० ॥

(ये एनां वनिं आयन्ति) जो ब्राह्मण इस गौको मांगने आते हैं (तेषां देवकृता वशा) उनके लिये ही यह गौ देवोंके बनाई है । (यः एनां नि प्रियायते) जो इसको अपनी प्रिय है करने अपने ही पास रखता है, अपना दान नहीं देता, (तत् ब्रह्मज्येयं अन्वयन्) वह उसका हृत् ब्राह्मणोंपर अत्याचार जैसा ही है ॥ ११ ॥

(यः याच्योऽप्येभ्यः) जो मांगनेवाले ऋषिपुत्रोंको (देवानां गां न दित्सति) देवोंकी गौ नहीं देता, (सः ब्राह्मणानां मन्वये) वह ब्राह्मणोंके लिये (देवेषु आनुष्यते) देवोंके आवाज करता है ॥ १२ ॥

(यो अस्य वशाभोगो स्यात्) जो इस गौका उपभोग लेता है, (सः तर्हि अन्यां इच्छेत्) वह तो दूसरी गौसे प्राप्त करे । (अदत्ता पुरुषं हिस्ते) दान न दी हुई गौ उस पुरुषकी हिंसा करती है, कि (याचित्वा च न दित्सति) जो याचना करनेपर भी नहीं देता ॥ १३ ॥

भाषार्थ— यदि कोई मनुष्य अपनी सजावटके लिये गौके बाल काटेगा, तो उसके बालबच्चे मर जायेंगे ॥ ७ ॥

यदि गौके गौके रक्षकाली करनेपर भी गौको कौवा कड़ देवे, तो उस गौके बच्चे मर जायेंगे ॥ ८ ॥

यदि गौके परिचारिका गौका मूत्र और गोबर इधर उधर फेंक देवे, तो उस पापसे उसका रूप विकृत जायगा ॥९॥  
 गौ जो उत्पन्न होती है वह ब्राह्मणोंके लिये ही उत्पन्न होती है । इसीलिये उसका दान ब्राह्मणोंको देना उचित है । उससे दावाकी ही रक्षा होती है ॥ १० ॥

ब्राह्मणके याचना करनेके लिये भागेपर उसको गौ प्रदान न करना, उसपर अत्याचार करनेके समान है । क्योंकि देवोंके द्वारा ही उसके लिये वह बनाई हुई होती है ॥ ११ ॥

वह जो मांगनेपर भी ब्राह्मणोंकी गौ नहीं देता, वह मानो देवोंपर ही आवाज करता है । उससे उत्तर ब्राह्मणोंका बोध और देवोंका सहाय होता है ॥ १२ ॥

यदि गौसे किसीको लाभ होता हो, तो दूसरी गौसे वह प्राप्त करे । क्योंकि जो गौको मांगनेपर भी नहीं देता, वह गौ ही उसकी नाशक बनती है ॥ १३ ॥

यथा श्रेयधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वराह । समेतदुच्छायन्ति यस्मिन्कक्षिथ जायते ॥ १४ ॥  
 समेतदुच्छायन्ति यदृशां ब्राह्मणा अभि । यथैतानुन्यस्मिन् जिनीयादेवास्थां निरोधनम् ॥ १५ ॥  
 चरेद्वेवा त्रैहापणादविज्ञातगदा सती । वृशां च विद्याभारद ब्राह्मणास्तर्होष्याः ॥ १६ ॥  
 य एनामकेशामाह देवानां निहितं निधिम् । उभौ तस्मै मवाश्रयो परिक्रम्येयुमस्वता ॥ १७ ॥  
 यो अस्या ऊधो न वेदायो अस्या स्तनानुत । उभयैतैवास्मै दुहे दातुं चेदशकडशाम् ॥ १८ ॥  
 दुरदुभैतमा यथि पाचितां च न दिस्तति । नास्मि कामाः समुष्यन्ते यामदंशा चिकीर्षति ॥ १९ ॥  
 देवा वृशामपाचनुमुत्तं कृत्वा ब्राह्मणम् । तेषां सर्वेषामददुद्वेष्टं न्येति मानुषः ॥ २० ॥

अर्थ— ( यथा श्रेयधिः निहितः ) जैसे वराह सुरक्षित होता है, ( तथा ब्राह्मणानां वराह ) वैसी ही ब्राह्मणोंकी यह गौ है । ( यस्मिन् कक्षिन् च जायते ) जहां कहीं जन्म हुई हो ( एतं अच्छ आयन्ति ) उसके पास वे ब्राह्मण पहुंचते ही हैं ॥ १४ ॥

( यत् ब्राह्मणाः वराहं अभि ) यदि ब्राह्मण गौके पास आते हैं तो ( एतत् स्वं अच्छ आयन्ति ) वे अपने घरके पास ही आते हैं । ( अस्याः निरोधनं ) इस गौको प्रतिबंध करना मानो ( यथा एतान् अन्यस्मिन् जिनीयात् ) इनको दूसरे अर्थमें कष्ट देना ही है ॥ १५ ॥

( अविज्ञात-गदा सती आ त्रैहापणात् चरेत् एव ) अज्ञात नामधारी गौ तीन वर्ष होनेतक मालाके साथ पूजे । दे नरत् । ( यशां विद्यात्, तर्हि ब्राह्मणाः पश्याः ) गौ देने योग्य होनेपर उसके जिंवे ब्राह्मण डूँडे जायें ॥ १६ ॥

( यः देवानां निहितं निधिं एतां अवशां आह ) देवोंके निहित सताने रूप इस गौको न देने योग्य कहे, ( भयानायां परिक्रम्य इतुं वस्यतः ) उसे भय और शर्ष दोनों धरकर बल मारते हैं ॥ १७ ॥

( यः अस्याः ऊधो अयो उत अस्याः स्तनान् न देत् ) जो इसके दुग्धाशयको और इसके स्तनोंको नहीं जानता, ( चेत दातुं अशकत् ) वह यदि दान देनेमें समर्थ हुआ तो ( उभायेन अस्मै दुहे ) वह गौ उसे उभय दोनोंसे दूध देती है ॥ १८ ॥

( पाचितां न दिस्तति ) मांगनेपर भी ब्राह्मणको जो नहीं दी जाती, वह गौ ( दुः-अदमना एतां आशये ) बरा होनेमें कठिन होकर इसके साथ रहती है । ( अस्मै कामाः न समुष्यन्ते ) इसके मनोरथ लागू नहीं होते ( यां अदत्त्वा चिकीर्षति ) जिसे दान न करके कमाला चाहता है ॥ १९ ॥

( ब्राह्मणं मुत्तं कृत्वा ) ब्राह्मणको मुत्त बना कर ( देयाः वराहं अयाचन् ) देव गौकी काचना करते हैं । ( अदत्त्वा मानुषः ) न देनेवाला मनुष्य ( तेषां सर्वेषां हेडं नि पति ) उन सबके रोषको प्राप्त करता है ॥ २० ॥

भाष्यार्थ— यह गौ ब्राह्मणोंकी ही है जैसे सुरक्षित सताना होना है वैसी ही यह है । कहीं कियोंके पास भी जन्म हुई हो जिसकी यह होनी वे ब्राह्मण उसे मांगते आँवेंगे ॥ १४ ॥

ब्राह्मण जिस गौको मांगते हैं वह उनकी ही होती है । अतः उनको उस गौका दान न करना अपराध है ॥ १५ ॥ तीन वर्षतक गौको उसका स्वामी पाके, यद्यत् कोई मांगने न चाहे तो सुयोग्य ब्राह्मणों तीस करे और उसे देवे ॥ १६ ॥

गौ देवोंका सताना है । जो उसे नहीं दान करता, उसका नाम भय और शर्ष करते हैं ॥ १७ ॥

जो गौको दान करता है उसको दूध आदि पचांत मिलता है ॥ १८ ॥

जो मांगनेपर भी गौका दान ब्राह्मणोंको नहीं करता, उसके घरमें गौ बरतमें नहीं रहती । गौ न देनेवालेकी कामना मूल नहीं होती ॥ १९ ॥

ब्राह्मणके मुत्तसे ही देव मांगते हैं । अतः दान न देनेवाला मनुष्य देवोंके रोषको अपने ऊपर देना दे ॥ २० ॥



हेई पशुनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद्ब्रह्माम् । देवानां निहितं भागं मर्त्यभेन्नितिप्रियायते ॥२१॥  
 यदुन्ये श्रुतं याचैपुर्माह्वणा गोपति वशाम् । अथैनां देवा अमुवन्नेवं हं विदुषो वशा ॥२२॥  
 य एवं चिदुपेऽदुपवाधान्वेभ्यो ददद्ब्रह्माम् । दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥२३॥  
 देवा वशामयाचन्पस्मिन्मग्ने अजायत । तामेतां विद्याचारदः सह देवैरुदाजत ॥२४॥  
 अनुपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् । ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥२५॥  
 अर्मापोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च । तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्ववा वृधतेऽददत् ॥२६॥  
 यावद्दस्या गोपतिर्नोपमृणुयादृचः स्वयम् । चरद्दस्य तावद्रोषु नास्यं श्रुत्वा गृहे वसेत् ॥२७॥

अर्थ—( मर्त्यः देवानां निहितं भागं निप्रियायते चेत् ) मनुष्य देवोंका निहित भाग अपने पास यदि रखेगा और ( ब्राह्मणेभ्यः वशां भवद्त् ) ब्राह्मणोंको गौ न देगा तो ( पशुनां हेई नि पति ) पशुओंके कोषको भी मास होगा है ॥ २१ ॥

( यत् गोपतिं शतं अन्ये वशां याचेयुः ) यदि गौके स्वामीके पास दूसरे सौ जाकर गौको मांगे, ( अथ एनां देवाः एवं अनुवन् ) इस विषयमें देवोंने देखा कहा है कि ( विदुषः वशा ह ) विद्वान्की ही गौ है ॥ २२ ॥

( यः एवं चिदुपे अदत्त्या ) जो इस तरह विद्वान्को गौ न देकर ( अन्येभ्यः वशां ददत् ) दूसरे भवि-  
 तानोंको गौ देवे, ( तस्मा अधिष्ठाने सह देवता पृथ्वी दुर्गा ) उसके लिये उसके स्थानमें तब देवताओंके साथ पृथ्वी दु खरावी होती है ॥ २३ ॥

( पस्मिन् अग्ने अजायत ) जिसमें गौ पीहले हुई, ( देवाः वशां अयाचन् ) देवोंने उसीके पास गौकी याचना की । ( नारदः विधात् ) नारद समझे कि ( तां एतां देवैः सह उदाजत ) उस गौकी देवोंके साथ उदाजित होती है ॥ २४ ॥

( ब्राह्मणैः याचितां एनां नि प्रियायते ) ब्राह्मणोंके द्वारा याचना होनेपर भी जो उसको प्रिय समझकर अपने पास रखता है वह ( वशा पुरुषं अनपत्यं अणुपत्यं कृणोति ) गौ उस मनुष्यको सतानहीन और अल्पपशुवाला करती है ॥ २५ ॥

( अग्नी-सोमाभ्यां मित्राय वरुणाय कामाय तेभ्यः ) अग्नि, सोम, मित्र, वरुण और काम इनके लिये ही ( ब्राह्मणाः याचन्ति ) ब्राह्मण गौकी याचना करते हैं, अथ ( अददत् तेपु आष्टुधते ) न देनेवाला उन देवोंपर आपात करता है ॥ २६ ॥

( याचत् अस्याः गोपतिः ) जबतक इस गौका स्वामी ( स्वयं भ्रातः न उपमृणुयात् ) स्वयं प्रयापं नहीं सुनेगा, ( तारत् अस्य गोषु चरेत् ) जबतक इसकी गौदीमें गौ चरा करे, परतु ( श्रुत्वा अस्य गृहे न वसेत् ) सुननेके पश्चात् वह गौ उसके घरमें न रहे ॥ २७ ॥

भावार्थ— कोई मनुष्य इस देवोंके भागको ब्राह्मणोंको दान न देगा, जो पशुओंके कोषको मास होगा ॥ २१ ॥

गौके स्वामीके पास सैकड़ों याचक गौके लिये बायें ही भी देवोंकी आज्ञा है कि विद्वान् ब्राह्मणोंको ही गौ देनी चाहिये ॥ २२ ॥

जो विद्वान् ब्राह्मणोंको गौ न देकर दूसरोंको देता है, उसको बडे कष्ट मास होते हैं ॥ २३ ॥

जहां गौ उलपन्न होती है, मज्जो वहीं देव उसकी याचना करते हैं और देवोंको गाय देनेसे सबकी उन्नति होती है ॥ २४ ॥  
 ब्राह्मणोंकी याचना पर भी जो मनुष्य गौका दान नहीं करता, उसके सतान नहीं होती और उसके पास पशु भी कम होजाते हैं ॥ २५ ॥

ब्राह्मण जो गौकी याचना करते हैं, वे केवल अग्नि भादि देवताओंके लिये ही याचना करते हैं, अपने लिये नहीं, अथ. उनको न देना देवताओंका अपमान करना है ॥ २६ ॥

जबतक गौका स्वामी यश या मर्मघोष नहीं सुनता, तबतक उसके पास गौ रहे । मर्मघोष सुननेके पश्चात् उसके घरमें गौ न रहे ॥ २७ ॥

यो अस्या ऋचं उपश्रुत्याथ गोशचीचरत् । आयुश्च तस्य भूर्ति च देवा वृषन्ति हीडिता ॥२८॥  
 वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः । आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥२९॥  
 आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति । अथो ह ब्रह्मभ्यो वृञ्चा याञ्चयाथ कृणुते मनः ॥३०॥  
 मनसा सं संल्पयति तद्देवो अपि गच्छति । ततो ह ब्रह्माणो वशाभुपप्रयन्ति याचितुम् ॥३१॥  
 स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः । दानेन राज्ञभ्यो वशायां मातुर्हेड न गच्छति ॥३२॥  
 वशा माता राज्ञस्य तथा संभृतमग्रयः । तस्या आहुरनर्षणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥३३॥

अर्थ— (य अस्या [गोपति] ऋच उपश्रुत्याथ) जो इस गौका स्वामी ऋचाय हुनकर (अथ गोषु शचीचरत्) भी गौजानं ही चरने गौको चराया करता है, (देवा हीडिता तस्य आयु च भूर्ति च वृषन्ति) देव मोहित होकर उसको आहु और सपत्तिको विनष्ट करते हैं ॥ २८ ॥

(वशा बहुधा चरन्ती देवाना निधि निहित) गौ बहुत स्थानोंमें भ्रमण करती हुई देवोंका सुरक्षित खजाना ही है। (यदा स्थाम जिघांसति) जब वह रहनेके स्थानके पास जाना चाहती है, तब (रूपाणि आविष्कृणुष्व) अनेक रूप प्रकट करती है ॥ २९ ॥

(यदा स्थाम जिघांसति) जब रहनेके स्थानके पास जाना चाहती है, तब (आत्मानं आविष्कृणुते) अपने आपको प्रकट करती है। (अथो ह ब्रह्मभ्य याञ्चयाथ मन कृणुते) ब्रह्मणोंकी पाचनाके लिये वह गौ अपनी मन करती है ॥ ३० ॥

वह गौ (मनसा सं संल्पयति) मनसे संकल्प करती है, (तद् देवान् अपि गच्छति) वह संकल्प देवोंके पास पहुंचा दे, (तत ह ब्रह्माण वशा याचितु उप प्रयन्ति) उसके पश्चात् ही ब्रह्मण गौको पाचना करनेके लिये आते हैं ॥ ३१ ॥

(पितृभ्य स्वधाकारेण) पितरोंके लिये स्वधाकारसे, (देवताभ्य यज्ञेन) देवताओंके लिये यज्ञसे, तथा (दानेन) दानसे (राज्ञभ्य वशाया मातु हेड न गच्छति) क्षत्रिय गौ माताका शोध प्राप्त नहीं करण ॥ ३२ ॥

(यदा राज्ञस्य माता) गौ क्षत्रियकी माता है, (तथा अग्रश स भूत) देसा पहिलेसे ही हुना है। (यद् ब्रह्मभ्य प्रदीयते) जो गौ ब्रह्मणोंके लिये दी जाती है (तस्या अनर्षण आहु) उसका वह दान नहीं कहलाता (क्योंकि वह गौ ब्रह्मणकी ही होती है) ॥ ३३ ॥

भावार्थ— मन्त्रोप हुननेके पश्चात् भी यदि गौका स्वामी गौ अपने घरमें रखता है तो उसके ऊपर देव कोष करते हैं ॥ २८ ॥

गौ यह देवोंका सुरक्षित खजाना है। जब वह अपने स्थानपर जाना चाहती है तब वह अनेक भाव प्रकट करती है ॥ २९ ॥

जब वह गौ अपने स्थानके पास जाना चाहती है, तब अपने भावको प्रकट करती है अर्थात् उसकी ब्रह्मण पाचना करें देसा भाव मनमें लाती है ॥ ३० ॥

गौ जो संकल्प मनमें लाती है, वह संकल्प देवोंके पास पहुंचा दे, देव ब्रह्मणोंको प्रेरणा देते हैं और ब्रह्मण गौको मातानेके लिये आते हैं ॥ ३१ ॥

स्वधाकारसे पितरोंकी वृत्ति, यज्ञसे देवोंकी सजुष्टता और दानसे ब्रह्मणोंकी वृत्ति होती है, इसलिये गौका दान कर जेसे उसकी माताका शोध क्षत्रियपर नहीं होता है ॥ ३२ ॥

गौ क्षत्रियकी माता कही जाती है, इसका ब्रह्मणोंको मदान करना दान नहीं है, क्योंकि वह ब्रह्मणोंकी ही होती है ॥ ३३ ॥

२४ (अर्थ भा ३ गृ हिन्दी)

यथाज्यं प्रगृहीतमालम्बेत्सुचो अप्रये । एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्र्य आ वृश्चतेऽर्ददत् ॥३४॥  
 पुरोडाशवत्सा सुदुषा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति । सामै सर्वाङ्कामान्वशा प्रदुषे दुहे ॥३५॥  
 सर्वाङ्कामान्प्रमराज्ये वशा प्रदुषे दुहे । अथाहुर्नारिकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥३६॥  
 प्रवीपमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा । वेहतं गा मन्यमानो मृत्योः पार्श्वेषु वध्यताम् ॥३७॥  
 यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् । अर्धस्य पुत्रान्पौत्राथ याचयते वृहस्पतिः ॥३८॥  
 महदुषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि । अथो ह गोपतये वशादुषे विपं दुहे ॥३९॥  
 प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रद्वीपते । अथो वशापास्तस्त्रियं यद्वेवशा हविः स्यात् ॥४०॥

अर्थ— ( यथा अग्रये प्रगृहीतं जाज्यं सुचः आलुपेत् ) जैसे अग्नि के लिये धिया हुआ गी सुचासे गिरता है, ( एवा यशां ब्रह्मभ्यः अर्ददत् ) ऐसे ही गी ब्राह्मणोंको न देनेवाला ( अग्रये वायुधत् ) अग्नि के लिये अग्रप्राथी होगा है ॥ ३४ ॥

( पुरोडाशवत्सा सुदुषा लोके अस्मै उपतिष्ठति ) अक्षरूपी वशा जिसके पास है, ऐसी उपाय दूय देनेवाली गी परलोकमें इस दावाके पास बाकर खड़ी होती है । ( सर यशा अस्मै प्रदुषे सर्वाङ्कामान्व दुहे ) वह गी इस दावाके लिये सब कामनाएं पूर करती है ॥ ३५ ॥

( यशा यमराज्ये प्रदुषे सर्वाङ्कामान्व दुहे ) गी यमराज्यके दावाके लिये सब कामनाएं देती है, ( अथ याचितं निरुन्धानस्य नारिकं लोकं आहुः ) और याचना करनेपर भी न देनेवालेके लिए नरक सोच है, ऐसा कहते हैं ॥ ३६ ॥

( प्रवीपमाना यशा गोपतये क्रुद्धा चरति ) सन्तान उत्पन्न करनेवाली गी अपने स्वामीके लिये क्रुद्ध होकर विचरती है । यह कहती है कि ( मा वेहतं मन्यमानः मृत्योः पार्श्वेषु वध्यतां ) मुझे गर्भपातनी कहनेवाला मृत्युके पार्श्वसे बाधा जावे ॥ ३७ ॥

( यः यशां वेहतं मन्यमानः ) जो गौको गर्भ गिरानेवाली मानकर ( अमा च यशां पचते ) घरमें गौको पकाता है ( अस्य पुत्रान् पौत्रान् अपि वृहस्पतिः याचयते ) इसके पुत्रों और पौत्रोंसे वृहस्पति भीख मंगवाता है ॥ ३८ ॥

( गोषु यशा गी चरन्ती अपि ) गौओंमें गी चली हुई भी ( एवा महत् अवतपति ) पर कषा ताप देती है । ( अथो अर्ददुषे गोपतये विपं दुहे ) मानो दान न करनेवाले गौके स्वामीके लिये यह निय देती है ॥ ३९ ॥

( यद् ब्रह्मभ्यः प्रद्वीपते ) जो ब्राह्मणोंके लिये दी जाती है, वह ( पशूनां प्रियं भवति ) पशुओंके लिए भी हितकारिणी होती है ( अथो ) और ( यत् देवता हविः स्यात् ) जो देवोंके लिये हवि दी जाती है ( यशायाः तत् प्रियं ) यह गौके लिये भी प्रिय होती है ॥ ४० ॥

भावार्थ— जैसे सुचासे भी अग्निमें गिरता है, ऐसे ही गौका दान न करनेवाला गिरता है ॥ ३४ ॥

दानमें दी हुई गौ दावाकी परलोकमें हरएक प्रकारकी कामना सफल करती है ॥ ३५ ॥

गौदान करनेवालेकी समस्त कामनाएं यमराज्यमें सफल होती हैं, परंतु दान न देनेवालेको तो नरक ही प्राप्त होगा ॥ ३६ ॥

गौका जन्मान करनेवालेको गी क्रुद्ध होकर ताप देती है, कि वह मृत्युके पार्श्वसे बाधा जावे ॥ ३७ ॥

जो गौको मंत्र्या मानकर उसे अपने घरमें पकाता है, उसके पुत्र-पौत्रोंसे ईश्वर भीख मंगवाता है ॥ ३८ ॥

जो गौका दान नहीं करता उसके लिये उसकी गी विप दुर्ती है ॥ ३९ ॥

गौका दान करनेसे पशुओंका हित होता है, गौओंका हित होता है । क्योंकि गौसे दूधपदार्थ देवताओंके लिये निकले हैं ॥ ४० ॥

या वृक्षा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य । तासां विलिप्तं भीमामुदाकृत नारदः ॥४१॥

तां देवा अमीमांसन्त बधेयाश्मनुष्येति । ताम्रवीन्नारद एषा वृक्षानां वृक्षतमेति ॥४२॥

कति नु वृक्षा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजा । तास्तां पृच्छामि विद्वांस कस्या नार्शीयाद्ब्राह्मणः ॥४३॥

विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वृशा । तस्या नार्शीयाद्ब्राह्मणो य आशसेत् भूर्वाप् ॥४४॥

नमस्ते अस्तु नारदानुषु विदुषे वृशा । कृतमासां भीमहन्ता यामदन्वा परामवेत् ॥४५॥

विलिप्ती या बृहस्पतेऽर्थो सूतवशा वृशा । तस्या नार्शीयाद्ब्राह्मणो य आशसेत् भूर्वाप् ॥४६॥

त्रीणि वै वंशाज्जातानि विलिप्ती सूतवशा वृशा । ताः प्रयच्छेद् ब्रह्मभ्यः सोऽनाम्रस्कः प्रजापतौ ॥४७॥

अर्थ— (या धरा देवा ) जिन गौवोंको देवताजने ( यज्ञात् उदेत्य उदकल्पयन् ) गणसे आकर सकलित किया या (तासां भीमा विलिप्तं नारद उदाकृत ) उनमें यद्य और अधिक वीवाली गौको नारदने प्रकट किया ॥४१॥

( ता देवा अमीमांसन्त ) उस विषयमें देवोंने विचार किया, ( धरा इय अयथा ) यह गौ अपने घरमें रखने योग्य नहीं है । ( नारद ता अग्रवीत् ) नारदने उसके विषयमें कहा कि ( एषा वंशानां वंशतमा इति ) यह गौवोंमें अधिक बंध होनेवाली है ॥ ४२ ॥

हे नारद ! ( या त्व मनुष्यजा वेत्थ ) जिनको तू मनुष्योंमें उत्पन्न हुई समझता है वे ( कति नु वृशा ) गौवें कितनी भली हैं । ( त्या विद्वांस पृच्छामि ) तुम विद्वांसों में पूछता हू कि ( ज्ञाह्यण कस्या न अशीयात् ) ब्राह्मणोंपर अधिक किस यापका दूष न पीवे ? ॥ ४३ ॥

हे बृहस्पते ! ( विलिप्त्या या च सूतवशा वृशा ) अधिक धी देनेवाली गौ है, जो खाके ही बधमें जाती है, और जो सबके बधमें जाती है ( तस्या अग्रहण न अशीयात् ) ऐसी यापका दूष अग्रहण न पीवे, ( य भूत्या आशसेत् ) जो देवर्ष चाहता है ॥ ४४ ॥

हे नारद ! ( ते नम अस्तु ) तेरे लिये नमस्कार हो । ( अनुषु विदुषे वृशा ) अनुकूलतासे विद्वांसों को प्रदान करने चाहिये । ( आसा कृता ममितमा ) इनमें कौनसी बरी है ( या अन्वा परामवेत् ) जिसका दान न करनेसे परामव होगा ? ॥ ४५ ॥

हे बृहस्पते ! ( या विलिप्ती अथो सूतवशा वृशा ) जो अधिक धी देनेवाली और गणसे बधमें जानेवाली और सबके बधमें रहनेवाली गौ है, ( तस्या अग्रहण न अशीयात् ) उसका अग्रहण अन्न न खावे ( य भूत्या आशसेत् ) यदि वह देवर्षसम्पत्तिकी इच्छा करता है ॥ ४६ ॥

( त्रीणि वै वंशाज्जातानि विलिप्ती सूतवशा वृशा ) गौकी तीन जातियाँ हैं— एक धी देनेवाली, दूसरी नौकरके बधमें रहनेवाली और तीसरी सबके बधमें रहनेवाली, ( ता य ब्रह्मभ्य प्रयच्छेत् ) उन्हें जो ब्राह्मणोंको देगा, ( स प्रजापतौ अनाम्रस्कः ) वह प्रजापतिके पास निरवराधी होगा है ॥ ४७ ॥

भावार्थ— यज्ञसे आकर सब देवताजने मिलकर गौकी रचना की, उनमें जो अधिक धी देनेवाली है उसकी योग्यता विशेष है ॥ ४१ ॥

बुधने निश्चय किया कि वह स्वामीने बधमें रहने योग्य नहीं है, क्योंकि वह उत्कृष्ट गौ है, अतः वह दानके योग्य है ॥ ४२ ॥

मनुष्योंके पास जो गौर्ष होती हैं उनमेंसे कौनसी गौका अन्न अग्रहण स्वामी न खावे ? ॥ ४३ ॥

निश्चय यह हुआ कि अधिक धी देनेवाली, सर्वदा बधमें रहनेवाली और नौकरके बधमें रहनेवाली, ये तीन गौवें दानके योग्य हैं, अतः इनका अन्न अग्रहण स्वामी न खावे ॥ ४४ ॥

जिन गौका दान न करनेसे अधिक हानिकी सम्भावना है, वह कौनसी गौ है ? ॥ ४५ ॥

गौजाकी तीन जातियाँ हैं, एक अधिक धी देनेवाली, दूसरी सबके बधमें रहनेवाली और तीसरी नौकरके द्वारा बधमें होनेवाली ये तीन प्रकारकी गौवें हैं जिनका अन्न गौका स्वामी न खावे । स्वामी ने गौएं ब्राह्मणको दान देवे, जिससे वह निर्वाप होगा है ॥ ४६-४७ ॥

एतद्धो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः । वृक्षां चेदेनं याचैयुर्या भीमार्ददुषो गृहे	॥४८॥
देवा वृशां पर्यवदुन्न नोऽदादिति हीडिताः । एताभिर्गृग्भिर्भेदं तस्माद्दे स पराभवत्	॥४९॥
उवैनो भेदो नादंदाहृशामिन्द्रेण याचितः । तस्मात्तं देवा आगसोऽवृथन्नहमुत्तरे	॥५०॥
ये वृशाया अदानाय वदन्ति परिराविणः । इन्द्रस्य मन्थवे जाल्मा आ वृथन्ते अचिस्था	॥५१॥
ये गोपतिं परानीयायाहुर्मा दंदा इति । रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परिं युन्त्याचिरया	॥५२॥
यदि हुतां यद्यहुतामुमा च पचते वृशाम् । देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिहो लोकाभिर्नैच्छति	॥५३॥

अर्थ— हे ब्राह्मणों ! (याचितः मन्वीत) याचना करनेपर गौका स्वामी कहे कि (एतत् वः हविः) यह आपकी हवि है (एते वृशां येत् याचेयुः) अब इससे गौकी याचना की जाती है (पर दी नहीं जाती), तब (या भीमा अददुषः गृहे) यह भयंकर होकर अदाताके घरमें रहती है ॥ ४८ ॥

(नः न अदात् इति हीडिताः देवाः) हमें इसने दिया नहीं इस कारण क्रोधित हुए देव (वृशां) गौसे (एताभिः अग्निभिः भेदं पर्यवदन्) इन मंत्रोंके द्वारा भेदके विषयमें कहने लगे (तस्मात् दे सः पराभवत्) इस कारणसे उसका पराभव हुआ ॥ ४९ ॥

(उत एनां वृशां इन्द्रेण याचितः भेदः) और इस गौको इन्द्रकी याचना करनेपर भी भेदने (न अददात्) नहीं दिया (तस्मात् आगसः देवाः तं अहमुत्तरे अवृथन्) उस पापके कारण वैशेनि उसे सुदमें काट डाला ॥ ५० ॥

(ये परिराविणः वृशायाः अदानाय वदन्ति) जो दुष्ट लोग गौका दान न करनेके लिए कहते, वे (जाल्माः अचिस्था इन्द्रस्य मन्थवे आवृथन्ते) हुए मनुष्य मतिहीनताके कारण इन्द्रके क्रोधके लिये काटे जाते हैं ॥ ५१ ॥

(ये गोपतिं परानीय) जो गौके स्वामीको दूर के जाकर (अथ अहुः मा दः इति) कहते हैं कि मत दान कर, (ते अचिस्था रुद्रस्य अस्तां हेतिं परि यन्ति) वे न समझते हुए रुद्रके फेंके हुए हथियारको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

(यदि हुतां यदि अहुतां) यदि हवन की गईं अथवा न की गईं (वृशां अमा च पचते) गौको अपने घरमें जो पकाता है, यह (स ब्राह्मणान् देवान् कृत्वा) ब्राह्मणों और देवोंका अपराधो बनकर (जिहोः) कूटिल होकर (लोकात् निरैच्छति) इस लोकसे गिरता है ॥ ५३ ॥

भावार्थ— मांगनेपर गौका स्वामी कहे कि 'हे ब्राह्मणों! यह आपका लज है।' मांगनेपर भी जो न देवे उसके घरमें यह गौ भयंकर हानि करनेवाली होती है ॥ ४८ ॥

गौका दान न करनेसे देव क्रोधित होकर उसके घरमें भेद करते हैं और इस कारण उसका पराभव होता है ॥ ४९ ॥

गौकी याचना करनेपर भी जो नहीं देता, उसके राज्यमें भेद उत्पन्न होकर सुदमें उसका पराभव होता है ॥ ५० ॥

जो गौके दान न करनेके विषयमें उपदेश करते हैं उनका भी इन्द्रके क्रोधसे नाश होता है ॥ ५१ ॥

जो लोग गौके स्वामीको दूर के जाकर गौ दान न करनेका उपदेश देते हैं, उनका नाश रुद्रके हाथसे होता है ॥ ५२ ॥

जो गौके लजको घरमें पकाते हैं उनपर देवों और ब्राह्मणोंका क्रोध होता है और वे गिरते हैं ॥ ५३ ॥

## कशक्ती गाय

कां. १०, सू. १०

( कवि - कवय । देवता - वना । )

नमस्ते जायमानायै जातायां उत ते नमः । बालैभ्यः शुक्रेभ्यो रूपायारूपे ते नमः ॥१॥

यो विद्यात्सप्त प्रवतः सप्त विद्यात्परावतः । शिरो यज्ञस्य यो विद्यात्स वृशां प्रति गृह्णीयात् ॥२॥

वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः । शिरो यज्ञस्याह वेदु सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥३॥

यया धीर्यया पृथिवी ययापो गुणिता इमाः । वृशां सहस्रधारा ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥४॥

श्वतं कंसाः श्वतं दोग्धारः श्वतं गोस्तारो अर्धं पृष्ठे अस्याः ।

ये देवास्तस्या प्राणन्ति ते वृशां विदुरेकधा ॥५॥

यज्ञपदीराश्रीरा स्त्रधामाणा महीलुका । वृशा पर्जन्यपत्नी देवो अप्येति ब्रह्मणा ॥६॥

अनु त्वामिः प्राविशदनु सोमो वश्रे त्वा । ऊर्ध्वस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वश्रे ॥७॥

अर्थ— हे ( अर्धे ) हवन करनेक कयोम गी ! ( ते जायमानायै नम ) उत्तम होनेवाली तुझे नमस्कार है । ( उत जातायै ते नम ) उत्पन्न हुई तुझको नमस्कार है । ( ते बालैभ्यः शुक्रेभ्यः रूपाय नम ) तेरे बालों, सुत्रों और रूपक लिये नमस्कार है ॥ १ ॥

( य सप्त प्रवत विद्यात् ) जा सात प्रवाद-जीवनप्रवाद जानता है ( य च सप्त परावत विद्यात् ) और जा सात भन्तरोको-स्वनाको-जानता है, तथा यो ( यज्ञस्य शिर विद्यात् ) यज्ञका शिर जानता है, यही ( यया प्रति गृह्णीयात् ) वना गौको स्तीकार करे ॥ २ ॥

( अह सप्त प्रवत वेद ) मैं सात जीवनप्रवादको-याणको-जानता हू, ( सप्त परावत वेद ) सात स्वनाका-द्विप स्वनाको-भी जानता हू । ( यज्ञस्य शिर च अह वेद ) यज्ञका शिर भी-यज्ञका मुरप साथ भी जानता हू । ( अस्या विचक्षण सोम च वेद ) इसमें विशेष चमकनेवाले सोमको भी मैं जानता हू ॥ ३ ॥

( यया धीः पृथिवी इमा आप च गुणिता ) जिसने तुलोक, पृथिवी और सब जगहोंकी सुरक्षा की है, उस ( सहस्रधारा वशा ) उस हजारो अमृतधारा देनेवाली वना गौको ( ब्रह्मणा अन्ध्र वदामसि ) पानडारा उत्तम रीतिले प्रदर्शित करते हैं, उसकी प्रशंसा करते हैं ॥ ४ ॥

( अस्या अधिपृष्ठे ) इसकी रथा करनेक लिये इसकी पीठपर ( शत दोग्धार शत कंसा ) सौ मनुष्य वृष बोधनेवाले, सौ उत्तम पात्रोकी लहर, साथ साथ ( शत गोस्तार ) सौ टाक रथक भी इस गौक साथ चलते हैं । ( ये देवा तस्या प्राणन्ति ) जो देव उस गौके जीवित रहते हैं ( ते परावत वशा विदु ) ये एकमतसे गौका महत्त्व यथा वत् जानते हैं ॥ ५ ॥

( यज्ञपदी आश्रीरा ) यज्ञमें जिसको स्थान प्राप्त हुआ है, जा वृष देती है, ( स्वधामाणा महीलुका ) भद्ररूप प्राणको धारण करनेवाली होनेके कारण इस पृथ्वीपर जो प्रसिद्ध है । यद् ( पर्जन्यपत्नी वशा ) वृष्टि द्वारा पार भादि उत्पन्न होनेसे जिसका पालनपोषण होता है, वह गौ ( ब्रह्मणा देवान् अप्येति ) भद्ररूप करने देवोको प्राप्त करती है ॥ ६ ॥

हे ( वश्रे ) गौ ! ( त्वा अग्नि अनु-प्राविशत् ) तुझे अग्नि प्राप्त हुई है, ( सोम अनु ) सोम भी प्राप्त हुआ है । हे ( भद्रे ) कव्याण करनेवाली गौ ! ( ते ऊर्ध्व पर्जन्य ) तेरा दूधस्थान पाल्प ही है । हे वना गौ ! ( ते स्तना विद्युत ) तेरे स्तन विद्युत् हैं । इस तरह अन्धादि देवताओंकी शक्तियां देते भद्रे हैं ॥ ७ ॥

अपस्त्वं धुंक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे । तृतीयं राष्ट्रं धुंक्षेऽर्धं क्षीरं वशे त्वम्	॥८॥
यदादित्यैर्ह्ययमानोपातिष्ठ क्रतावरि । इन्द्रः सहस्रं पात्रान्तसोमं त्वापाययद्वशे	॥९॥
यदनुचीन्द्रमैरात्वं ऋषभोऽह्वयत् । तस्मात्ति वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धोऽहरद्वशे	॥१०॥
यत्तं क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद्वशे । इदं तदुच नाकास्त्रेषु पात्रेषु रक्षति	॥११॥
त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यहरद्वशा । अथर्वा यशे दीक्षितो वर्हिष्यास्ते हिरण्यये	॥१२॥
सं हि सोमेनागतं समु सर्वेण पद्वता । वशा समुद्रमभ्यघ्राद्वृष्वैः कृलिभिः सह	॥१३॥
सं हि वातेनागतं समु सर्वैः पतत्रिभिः । वशा समुद्रे प्रानृत्यद्वचः सामानि विभ्रती	॥१४॥
सं हि सूर्येणागतं समु सर्वेण चक्षुषा । वशा समुद्रमसर्वख्यद्वद्रा ज्योतीषि विभ्रती	॥१५॥
अभिवृता हिरण्येन यदतिष्ठ क्रतावरि । अथः समुद्रे भूत्वाभ्यस्कन्दद्वशे त्वा	॥१६॥

अर्थ— हे ( वशे ) वशा गौ ! ( त्वं प्रथमः अपः धुंक्षे ) तू सबसे प्रथम जलको दुहती-देती है, ( अपरा उर्वरा ) पश्चात् उवश्राक भूमिक समान धान्य देती है । ( तृतीयं राष्ट्रं धुंक्षे ) तीसरे राष्ट्रीय भक्ति देती है, ( त्वं अर्धं क्षीरं ) तू अर्ध और क्षीर-दूध-देती है ॥ ८ ॥

हे ( वशे ) गौ ! हे ( क्रतावरि ) वृषरूपी अन्न देनेवाली गौ ! ( यत् आदित्यैः ह्ययमाना ) जब दू आदित्यों द्वारा भक्ति प्राप्त करती हुई ( उपातिष्ठः ), समीप जाती है, तब ( इन्द्रः सहस्रं पात्रान् ) इन्द्र हजारों बर्तनोंको लेकर ( त्वा सोमं अपाययत् ) तुझे सोमरस पिलाता है ॥ ९ ॥

हे ( वशे ) गौ ! ( यत् अनुचीः इन्द्रं प्येः ) जब तू अनुकूलतासे इन्द्रको प्राप्त हुई, ( त्या ऋषभः आत् वद्वयत् ) तब तुझे ऋषभ स्तोमसे पुकारते शगा । हे वशा गौ ! ( तस्मात् क्रुद्धः वृत्रहा ) इस कारण प्रोथित हुए इन्द्रने ( ते पयः क्षीरं अहरत् ) तेरा दूध और अन्न हर लिया ॥ १० ॥

हे वशा गौ ! ( यत् क्रुद्धः धनपतिः ) जब प्रोथित हुआ धनपति ( ते क्षीरं अहरत् ) तेरा दूध लेता है, तब समझो कि ( इदं तत् अथ ) यह वह आज ( नाकः त्रिषु पात्रेषु रक्षति ) स्वर्गधाम ही सोमके रूपसे तीन बर्तनोंमें रक्षता है ॥ ११ ॥

( यश दीक्षितः अधर्वा ) यश दीक्षार्थके लिये हुए ( अधर्ववेदी ) यज्ञकर्ता ( हिरण्यये वर्हिषि आस्ते ) सुवर्णमय आसनपर बैठा है, ( सं ) उसके पास ( त्रिषु पात्रेषु सोमं ) तीनों बर्तनोंमें रखा सोम ( वशा देयी अहरत् ) देवी वशा गौ से जाती है, दूध रूपसे पहुंचा देती है ॥ १२ ॥

( वशा सोमेन सं आगत ) गौ सोम औपवीर्धके प्राप्त हुई और ( सर्वेण पद्वता सं उ ) सब पांशुबालों-मनुष्योंको भी प्राप्त हुई । ( वशा कृलिभिः गंधर्वाः सह ) यह गौ कण्ड करनेवाले गंधर्वाके साथ ( समुद्रं मध्यघ्रात् ) समुद्रपर अधिष्ठान करती रही । अर्थात् समुद्रपर भी गौका मान बैसा ही है, वैसा मानधर्मि है ॥ १३ ॥

( वशा क्रचः सामानि विभ्रती ) गौ यज्ञके क्रचा और सामोंको धारण करती हुई ( घातेन सं आगत ) वाहुले सम्यक्त हुई, ( सर्वैः पतत्रिभिः हि सं ) सब पशुबालोंसे मिलकर ( समुद्रे प्रानृत्यत् ) समुद्रपर नाचने लगी । इस तरह गौका समाप्त सर्वत्र होता है ॥ १४ ॥

( वशा सूर्येण सं आगत ) गौ सूर्यसे मिली, ( सर्वेण चक्षुषा सं उ ) सब आँखबालोंसे मिली । ( भद्रा वशा ज्योतीषि विभ्रती ) कल्याणकारीणी गौ अनेक तेजोंका धारण करती हुई ( समुद्रं अत्यख्यत् ) समुद्रके परे देखने लगी । दूरतक उसकी प्रविष्टा हुई है ॥ १५ ॥

हे ( क्रतावरि ) हे भक्तको देनेवाली गौ ! ( हिरण्येन अभिवृता यत् अतिष्ठः ) सुवर्णामृषगंसि युक्त होकर जब दू लगी हुई, हे ( वशे ) गौ ! ( त्वा अथि समुद्रः अथः भूत्वा अस्पन्दत् ) तेरे पास समुद्र अथ धनकर साथ, यह तेरा महत्व है ॥ १६ ॥

तद्भद्रा। समगच्छन्त वशा देवृषयो स्वधा । अर्थयो यत्र दीक्षितो बृहिस्यास्तं हिरण्यये ॥१७॥

वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव । वशायां यत्र आपुंधं ततश्चित्तमजायत ॥१८॥

ऊर्ध्वो विन्दुरुदचरज्ज्राणः ककुदादधि । ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत ॥१९॥

अस्नस्ते गाथां अमवन्नृष्णिर्हाम्यो वलं वशे । पाजस्यज्जिज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रदमयस्तवं ॥२०॥

ईर्माभ्यामर्थनं जातं सविथभ्यां च वशे तवं । आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥२१॥

यदुदरं वरुणस्यानुप्राविंशथा वशे । ततस्त्वा ब्रह्मोर्देह्यत्स हि नेधमवेत्तवं ॥२२॥

सर्वे गर्मादयेपन्त जायमानादसूस्वाः ।

ससूध हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः क्लृप्ताः स ह्यस्या वन्धुः ॥२३॥

युध एकः संजति यो अस्या एक इदृशी । तरांसि यज्ञा अभवन्तरांसां चक्षुरमवदृशा ॥२४॥

वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णादृशा सूर्येणधारयत् । वशापामन्तरंविशदोदुनो ब्रह्मणा सह ॥२५॥

अर्थ— (यत्र दीक्षितः अथवा) यत्र किञ्च यज्ञमे दीक्षित मयमेवेति (हिरण्यये यज्ञिषि अस्ते) सुवर्णमय आसनपर वैरा वशं (भद्राः समगच्छन्त) भद्र पुरुष इच्छे ह्यु भोर वहां (वशा देवी अथो स्वधा) दान देनेवाली गौ स्वयं अन्नरूपमें उपरिपत हुई ॥ १७ ॥

(राजन्यस्य वशा माता) क्षत्रिकी माता गौ है, हे (स्वधे) जब! (तव माता यशा) तैसी भी माता गौ ही है। (वशाया आपुंधं जज्ञे) गौसे शक उत्पन्न हुआ है और (ततः चित्तं अजायत) उससे चित्त बना है। अर्थात् गौसे बल और बुद्धि दोनों पैदा होते हैं ॥ १८ ॥

(ब्रह्मणः ककुदादधि) ब्रह्मके उच्च भागसे (विन्दुः ऊर्ध्वः उदचरत्) एक बंद ऊपर चल गया, हे (परो) गौ! (ततः त्वं जज्ञिषे) उससे तू उत्पन्न हुई है। और (ततः होता अजायत) उससे ही प्रजात् शोवा जनकता-उत्पन्न हुआ। अर्थात् गौमें ब्रह्मताकि अधिक है, क्योंकि वह पहिले हुई है ॥ १९ ॥

हे (परो) गौ! (ते आत्मः गाथाः अमवन्) तेरे मुखसे गाथाएं बर्गी, (उष्णिग्हाभ्यः वलं) तेरे गर्दनके भागसे बल उत्पन्न हुआ है, (पाजस्यात् यज्ञा जज्ञे) तेरे दुग्धातसे यज्ञ हुआ, और (तव) तेरे (स्तनेभ्यः रदमयः) स्तनोंसे किरने हुई हैं। इस तरह गौसे यह सब उत्पन्न हुआ है, इतनी गौकी महिमा है ॥ २० ॥

(तव ईर्माभ्यां) तेरे बाहुओंसे तथा (सविथभ्यां) शयन जातं) यंगोसे गणि पैदा हुईं। हे (परो) गौ! तेरे (आन्त्रेभ्यः अत्राः) आंतोंसे अनेक पदार्थ और (उदरात् वीरुधः) पेटसे वनसशिषा उत्पन्न हुई हैं ॥ २१ ॥

हे (परो) गौ! (यत् वरुणस्य उदरं) जब परणके उदरमें तू (अनु प्रविशथा) प्रविष्ट हुई, (ततः ब्रह्मा त्वा उत् अदृषत्) तब ब्रह्मने तुझे डुलाया। (सः हि तव नेत्रं अवेत्) वह तेरा नेत्र जानता है। अर्थात् गौका महान् ज्ञानी ही जानता है ॥ २२ ॥

(असूस्वः जायमानात्) अन्नमें अन्नमर्थ गौकी (गर्मात् सर्वं अयेपन्त) गर्भस्थितिसे सब कणने लगते हैं। (तां आहुः वशा ससूध इति) उसीको कहते हैं कि यह गौ प्रसवके लिये अन्नमर्थ है। (सः हि ब्रह्मभिः अस्याः वन्धुः क्लृप्तः) वही ब्रह्मोंने इसका यधु माना है ॥ २३ ॥

(या अस्याः इत् एकः घशी) जो इस गौकी अंशका ही वशमे कर लेना है। (एकः युधः संजति) वही एक सोदा श्वयसाको उत्पन्न करता है। (यशाः तरांसि अमवन्) यज्ञ पार करनेवाले हैं, और (तरांसां चक्षुः यशा अमवन्) पार होनेवालोंकी आंखें गौ हैं। गौकी सहायतासे सब लोग दुःखोंसे पार होते हैं ॥ २४ ॥

(वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णात्) वशा गौने यज्ञको स्वीकार किया, (वशा सूर्ये अधारयत्) वशा गौने सूर्य धारण किया। (वशायां अन्ता औदनः अविशत्) गौने जब प्रविष्ट है और वह (ब्रह्मणा सह) जानके साथ प्रविष्ट हुआ है। गौके आघातसे यज्ञ, अन्न और ज्ञान सुरक्षित रहते हैं ॥ २५ ॥



वृक्षामेवामृतमाहुर्वृक्षा मृत्युमुपासते । वृषेदं सर्वमभवद्देवा मनुष्याश्च असुराः । पितर ऋषयः ॥२६॥  
 य एवं विधात्स वृक्षां प्रति मृद्धीयात् । तथा हि यज्ञा सर्वपाहुहे द्रात्रेऽनपस्फुरन् ॥२७॥  
 तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीधत्यासनि । तासां या मध्ये राजति सा वृक्षा दुष्प्रतिग्रहा ॥२८॥  
 चतुर्धा रेतो अभवद्दशायाः । आपस्तुरीपममृतं तुरीयं युञ्जस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥२९॥  
 वृशा घृथिशा पृथिवी वृशा विष्णुः प्रजापतिः । वृशायां दुग्धमपिवन्त्साध्या वसंवश्च ये ॥३०॥  
 वृशायां दुग्धं पीत्वा साध्या वसंवश्च ये । ते वै अन्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥३१॥  
 सोममेनामेकं दुहे घृतमेकं उपासते । य एवं विदुषे वृक्षां द्रुदुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥३२॥  
 ब्राह्मणेभ्यो वृशां दत्त्वा सर्वाहोकास्तमश्नुते । ऋतं अस्मिन्मापितुमपि ब्रह्माथो तपः ॥३३॥  
 वृशां देवा उप जीवन्ति वृशां मनुष्या उत । वृषेदं सर्वमभवद्वाग्वस्तूर्यो विपश्यति ॥३४॥

अर्थ—(देवाः वृशां अमृतं आहुः) देव गौको भगवत् कहते हैं, (वृशां मृत्युं उपासते) गौकी मृत्यु समस्तका उपासना करते हैं । (वृशा इदं सर्वं अभवत्) गौ ही यह सब है, सर्वात् (देवाः मनुष्याः असुराः पितर ऋषयः) देव, मनुष्य, असुर, पितर और ऋषि ये वनाके ही रूप हैं ॥ २६ ॥

(यः एवं विधात्) जो यह तत्त्वज्ञान जानता है, (सः वृशां प्रतिमृद्धीयात्) वह वना गौका दान लेवे । तथा वृशा गौके दाताको (वृक्षः सर्वपात् अनपस्फुरन् दुहे) वृक्ष सब प्रकारसे सफळ होकर विचलित न होता हुआ सुयोग्य फल प्रदान करता है ॥ २७ ॥

(वरुणस्य आसनि अन्तः जिह्वाः) वरुणके मुखमें तीन जिह्वाएँ (दीधति) भ्रमकती हैं । (तासां मध्ये या राजति) उनके बीचमें जो विशेष चमकती है, (सा वृशा) वह वना गौ ही है, अतः उसे (दुष्प्रतिग्रहा) दुर्गममें स्वीकार करना कठिन है ॥ २८ ॥

(वृशायाः रेतः चतुर्धा अभवत्) वृशा गौका बीर्य चार प्रकारसे विभक्त हुआ है । (आपः तुरीयं) आप चतुर्थ भाग है, (अमृतं तुरीयं) असुर सब चौथा भाग है, (यज्ञः तुरीयं) यज्ञ चौथा भाग है और (पशवः तुरीयं) पशु चौथा भाग है । यह सब वृशाका चतुर्धा बीर्य है ॥ २९ ॥

(वृशा घृथः) वना घी है, (वृशा पृथिवी) वृशा ही पृथिवी है; (वृशा प्रजापति विष्णुः) वृशा ही प्रजापति-रूप विष्णु है । (ये साध्याः वसवः च) जो साध्य और वसु हैं, वे (वृशायाः दुग्धं अपिवन्) वृशा गौका दूध पीते हैं ॥ ३० ॥

(ये साध्याः वसवः च) जो साध्य और वसु हैं वे (वृशायाः दुग्धं पीत्वा) वृशा गौका दूध पीकर (ते वै अन्नस्य विष्टपि) वे स्वर्गके स्थानमें (अस्याः पयः उपासते) इसके दूधकी प्राप्ति करते हैं ॥ ३१ ॥

(एनां सोमं पके दुहे) इससे सोमका कर्हंभीन दोहन किया है, (एके घृते उपासते) कई इससे घृतकी प्राप्ति करते हैं । (एवं विदुषे वृक्षां द्रुदुः) जो इस प्रकारसे विद्रात्को गौ प्रदान करते हैं, (ते दिवः शिद्विं गताः) वे स्वर्गमें जाते हैं ॥ ३२ ॥

(ब्राह्मणेभ्यः वृशां दत्त्वा) ब्राह्मणोंको वृशा गौ देकर (सर्वान् लोकान् स अश्नुते) सब लोकोंको प्राप्त करते हैं । (अस्य ऋतं ब्रह्म अथो तपः हि आप्तितम्) इसमें ऋत, ज्ञान, तप आश्रित होते हैं ॥ ३३ ॥

(देवाः वृशां उपजीवन्ति) देवता वृशा गौपर जीवित रहते हैं (उत मनुष्याः वृशां) और मनुष्य भी वृशा गौपर ही जीवित रहते हैं । (यावात् सूर्यः विपश्यति) जहाँतक सूर्यका प्रकाश पहुँचता है (वृशा इदं सर्वं अभवत्) वृशा गौ ही यह सब है ॥ ३४ ॥

## वशावर्ती गाय

### गाय

वशम सूक्ष्म भी पैसा ही गौका वर्णन है। गौका दान लेनेका अधिकारी कौन है, इस विषयमें द्वितीय मंत्रकी सूचना अत्यंत महत्वकी है। जो पशुका ताप जानता है, वही गौका दान लेवे। गौ अपने भोगके लिये लेनी नहीं है, परन्तु पशुके लिये लेनी है, यह जो जानता है, वही दान लेवे और उसीको दान दिया जावे। ( मं. १-३ )

इस सूक्ष्ममें गौका नाम वशा है। वशा गौ वह है कि जो सुलसे दुही जाती है। दूसरी 'सूक्ष्मता' है, अर्थात् जो नीकरके वशमें रहती है। अन्य गौमें वशमें नहीं रहती। वशा गौ सबसे उत्तम है, क्योंकि वह न मारती है, न छलें लगानी है और हर समय दूध देती है।

संपूर्ण पृथ्वी, तथा अणु इन सबकी रक्षा यह गौ करती है। सहस्र धाराभरते दूध देकर यह गौ हरपकका संरक्षण करती है। ( मं. ४ )

### गौका उत्सव

जो उत्तमसे उत्तम गौ होती है, उसका महोत्सव करते हैं। गौ आगे चलायी जाती है, उसके पीछे सौ मनुष्य पाश लेकर चलते हैं, सौ मनुष्य होइन करनेवाले चलते हैं, सौ मनुष्य उसकी रक्षा करनेवाले गोपने रूपमें चलते हैं; गौके पीछे इस तरह ३०० मनुष्य बड़े भारनदले चलते हैं। ( मं. ५ ) प्राग्जनादे ज्ञते हैं और नगर भरमें इसका यह उत्सव मनाया जाता है। यह द्वारा गौके दूधसे सबका जीवन उत्तम रीतिसे होता है, इसलिये उत्तम गौका यह धार्मिक उत्सव किया जाता है।

गौको 'वसुपदी' अर्थात् पशुका माधार कहा जाता है, क्योंकि इसके दूध और पशुसे पशु होता है, परन्तुसे पासकी उत्पत्ति होकर इस गौकी रक्षा होती है। ( मं. ६ ) सोमवर्ती

गौ खाती है और उसका परिणाम दूधपर होता है, यह दूध पीनेसे मनुष्योंमें भी सोमका पशु प्राप्त होता है। दूध, दही, घृत दो गौके वर्णन ही हैं, परंतु बैलसे ऐसी होती है, जिससे सब शक्य रक्षा होती है, इस तरह गौ ही सबकी रक्षा करती है। ( मं. ७-१० )

गौ क्षत्रियको माता है, नश्वकी भी वही माता है ( मं. १० ), मश्वकी विशेष बलवत्तर शक्तिसे गौकी उत्पत्ति हुई है ( मं. ११ ), गौके बलवत्को विशेष बल प्राप्त होता है, उससे सब शिष्टका पालन होता है। गौ पशु गौका स्व है। ( मं. २०-२५ )

गौ सपूतको धारण करती है, जो मृत्युके मार्गपर होते हैं वे गौकी उपालना करके दीर्घजीवी होते हैं। गौ ही सब कुछ बनी है; देव, मानव, असुर, रितर और अग्नि गौके दूधसे ही पुष्ट होते हैं ( मं. २१ )। इस तरहका सब ज्ञान जो जानता है वही वशा गौका दान लेवे। ( मं. २० )

( मं. २० ) वरुण शत्रुकी गिद्धा जैसे बड़ी वैशखिनी होती है, कोई शत्रुका विरोध नहीं कर सकता, उसी तरह वशा गौका प्रतिग्रह कठिन होता है। अज्ञानी मनुष्य उसका दान नहीं ले सकता ( मं. २१ )। विद्यामाका धीरे धार वस्तु-कोमें विभक्त हुआ, उसमें एक वशने रूपमें पशु हुआ है। अन्य तीन भाग बल, जल और पशुके रूपमें प्रकट हुए हैं।

सायव वसु आदि देव वशाका दूध पीकर ही सिद्धिको प्राप्त हुए। वशा गौ ही पृथ्वीपर भूमि, सौ और मगारत्तिका कार्य कर रही है ( मं. ३०-३१ )। यह सब ज्ञान जो जानते हैं वे शत्रुको ही दान देकर स्वर्गके भागी हुए हैं। ( मं. ३१-३३ )

वशा गौपर देव उपजीवन करते हैं, गौका दूध पीकर मनुष्य भी जीवित रहते हैं। उर्ध्वरुक् सर्व मन्त्रागता है, वहां तकका विश्व मानो वशाका ही रूप है, इतना महान गौका है।

## ब्राह्मणकी गौ

कां. १२, सू. ५

( कविः- अर्षापर्यः । देवता- ब्रह्मणी । )

धमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा विचरें ध्रिता	॥ १ ॥
सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यज्ञसा परीवृता	॥ २ ॥
स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्युटा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम्	॥ ३ ॥
ब्रह्मं पदचार्यं ब्राह्मणोऽधिपतिः	॥ ४ ॥
तामाददानस्य ब्रह्मगर्वी जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य	॥ ५ ॥
अपं क्रामति सूनृता वीर्यं पुण्या लक्ष्मीः	॥ ६ ॥

[ २ ]

ओजश्च तेजश्च सहश्च यज्ञं च वाक्चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च	॥ ७ ॥
ब्रह्मं च धर्मं च राष्ट्रं च विश्वं च त्विषिंश्च यज्ञं च वचंश्च ब्रह्मिणं च	॥ ८ ॥
आयुश्च रूपं च नामं च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च	॥ ९ ॥
पर्यंश्च रसश्चाद्यं चान्नाद्यं चतुं च सत्यं चेतं च पूर्णं च प्रजा च पशवंश्च	॥ १० ॥
तानि सर्वाण्यपं क्रामन्ति ब्रह्मगर्वीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य	॥ ११ ॥

अर्थ— (धमेण तपसा सृष्टा) धम और तपसे उत्पन्न हुई (ब्रह्मणा विष्ठा) जगत्से प्राप्त हुई और (ध्रते ध्रिता) सत्यके साधनपर रह रही है ॥ १ ॥

(सत्येन आवृता) सत्यसे आच्छादित (श्रिया प्रावृता) भीसे भरी हुई और (यज्ञसा परीवृता) यज्ञसे घिरी हुई है ॥ २ ॥

(स्वधया परिहिता) अपनी अपनी घातजगत्से सुरक्षित हुई (श्रद्धया पर्युटा) श्रद्धाभक्तिके गुण (दीक्षया गुप्ता) दीक्षायगत्से सुरक्षित हुई (यज्ञे प्रतिष्ठिता) यज्ञमें प्रतिष्ठित हुई और (लोकोः निधनं) इस लोकमें साधनको प्राप्त हुई है ॥ ३ ॥

जो (ब्रह्म पदचार्य) ज्ञानरूप पदसमूह है उसका (अधिपतिः ब्राह्मणः) स्वामी ब्राह्मण है ॥ ४ ॥

(तां ब्रह्मगर्वीं आददानस्य) उस ब्राह्मणकी गौको लेनेवाले और (ब्राह्मणं जिनतः क्षत्रियस्य) ब्राह्मणका ज्ञान करनेवाले क्षत्रिय की ॥ ५ ॥

(सूनृता वीर्यं पुण्या लक्ष्मीः अपक्रामति) सत्य वीर्यवती पुण्यगवी लक्ष्मी दूर दोगी है ॥ ६ ॥

[ २ ] ओज, तेज (सहः) सहजतामर्ष्यं, बळ, वाणी, इन्द्रियशक्ति, (धर्मः) शोभा, धर्म ॥ ७ ॥

(ब्रह्म) ज्ञान, (क्षत्र्यं) वीर्य, राष्ट्र, (विशः) प्रजा, (त्विषिः) तेज, यज्ञ (वचः) पराक्रम, (ब्रह्मिणं) धन ॥ ८ ॥

आयु, रूप, नाम, कीर्ति, प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र ॥ ९ ॥

(पयः) दूध, रस, अन्न, (अन्नाद्यं) साधन पदार्थ, कठ, सत्व, (इष्टं च पूर्णं च) इष्ट वस्तु, पूर्णता, प्रजा, पशु ॥ १० ॥

(तानि सर्वाणि) ये सब ३४ पदार्थ (ब्रह्मगर्वी आददानस्य ब्राह्मणं जिनतः क्षत्रियस्य अपक्रामन्ति) ब्राह्मणकी गौको लेनेवाले और ब्राह्मणका ज्ञान करनेवाले क्षत्रियसे दूर दोगे हैं ॥ ११ ॥

[ ३ ]

सैषा भीमा ब्रह्मगुण्यं षड्विधा साक्षात्कृत्या कृत्स्नमावृता	॥ १२ ॥
सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः	॥ १३ ॥
सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः	॥ १४ ॥
सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगुण्याद्विचराना मृत्योः पङ्क्तिं आ वंति	॥ १५ ॥
मेनिः श्रुतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा	॥ १६ ॥
तस्माद्दे ब्राह्मणानां मोक्षुराधर्षा विजानता	॥ १७ ॥
वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्धीता	॥ १८ ॥
हेतिः शफानुत्तिदन्ती महादेवोऽपेक्षमाणा	॥ १९ ॥
धुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति	॥ २० ॥
मृत्युर्द्विरुकृत्स्नपुत्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती	॥ २१ ॥
सर्वज्यानिः कर्णा वरीर्जयन्ती राजवक्ष्मो मेहन्ती	॥ २२ ॥

अर्थ— [ ३ ] ( सा एषा ब्रह्मगौ भीमा ) यह यह ब्राह्मणकी गौ सफलक है, यह ( अघ-विषा, राक्षसा-  
एत्याः ) विषैकी और साधारण गाय करनेवाली ( कृत्स्नं आवृता ) विनाशक वशमेंले ब्याह है ॥ १२ ॥

( अस्यां सर्वाणि घोराणि ) इसमें सब भयंकरता है ( सर्वे च मृत्यवः ) इसमें सब मृत्यु हैं ॥ १३ ॥

( अस्यां सर्वाणि क्रूराणि ) इसमें सब क्रूरा है ( सर्वे पुरुषवधाः ) सब पुरुषोंके बध है ॥ १४ ॥

( सा ब्रह्मज्यी आर्दायमाना ) यह ब्राह्मणकी गौ पकड़ी जानेपर ( ब्रह्मज्यं देवपीयुं मृत्योः पङ्क्तिं आ वंति )  
महापत्नी देवजन्तुको मृत्युके पारमें बाध देती है ॥ १५ ॥

( सा श्रुतवधा मेनिः ) यह सौका घात करनेवाली हथियार ही है ( सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिः हि ) यह ब्रह्मण-  
कीका विनाश ही है ॥ १६ ॥

( तस्मात् ये विजानता ब्राह्मणानां गौः दुराधर्षा ) इसलिये ही शायीको समझना चाहिये कि ब्राह्मणों की  
धर्षण करनेके लिये कठिन है ॥ १७ ॥

( धावन्ती वज्रः, उद्धीता वैश्वानरः ) यह जब दौड़ती है तब वज्र बनती है, जब उड़ती है तब यह आग जैसी  
होती है ॥ १८ ॥

( उफानु उत्तिदन्ती हेतिः ) शुरुमें भारती हुई यह हथियारके समान है और ( अपेक्षमाणा महादेवः ) देवकी  
हुई महादेवके समान होती है ॥ १९ ॥

( ईक्षमाणा धुरपतिः ) सुरके समान तीक्ष्ण होती है और ( वाश्यमाना अभिस्फूर्जति ) गन्ध करनेपर गर्जना  
करनेके समान बनती है ॥ २० ॥

( द्विरुकृत्स्नपुत्रो देवः ) द्विकार करनेपर मृत्यु होगी है, और ( पुच्छं पर्यस्यन्ती उग्रः देवः ) पूँछ ऊपर करनेवाली  
उग्र देवके समान भयंकर होती है ॥ २१ ॥

( कर्णा वरीर्जयन्ती सर्वज्यानिः ) कान ऊपर करनेपर सबका नाम करनेवाली होती है और ( मेहन्ती राज-  
वक्ष्मः ) मूत्र करनेपर क्षययोग ही बनती है ॥ २२ ॥

मेनिर्दुह्यमाना श्रीर्षक्तिर्दुग्धा	॥ २३ ॥
सेदिरूपविष्टन्ती मिथोयोधः परामृष्टा	॥ २४ ॥
अरुच्यार्थे मुखेऽपिनुदमान् शर्विर्हन्यमाना	॥ २५ ॥
अथर्विषा निपतन्ती वमो निपतिता	॥ २६ ॥
अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगुवी ब्रह्मज्यस्यै	॥ २७ ॥
[ ४ ]	
वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना	॥ २८ ॥
देवहेतिर्हिषमाणा व्यृद्धिर्हृता	॥ २९ ॥
पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना	॥ ३० ॥
विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता	॥ ३१ ॥
अद्यं पच्यमाना दुष्वप्यै पक्वा	॥ ३२ ॥
मूलवर्षी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता	॥ ३३ ॥

अर्थ— ( दुह्यमाना मेनिः ) दुग्धे इत्ता दुग्धी जाते समय शक्यरूप होती है ( शुग्धा श्रीर्षक्तिः ) दुग्धी जानेपर तिरपीटा स्वरूप बनती है ॥ २३ ॥

( उपतिष्ठन्ती सेदिः ) पास रखी होनेपर विनाशक होती है और ( परामृष्टा मिथोयोधः ) स्पृशं होनेपर द्वन्द्वयुद्ध करनेवाले शत्रुके समान होती है ॥ २४ ॥

( मुखे अपिनुदमाने शरुच्यार्थे ) अक्षुभं बांधी जानेपर शत्रुके समान और ( हन्यमाना शर्विः ) तादृक् होनेपर विनाशक होती है ॥ २५ ॥

( निपतन्ती अथर्विषा ) बैठी हुई भवानक विपक्षी और ( निपतिता वमो ) बैठी होनेपर साक्षात् मृत्युरूपी अन्धकारके समान होती है ॥ २६ ॥

( अनुगच्छन्ती ) आशुनकी गौ ( ब्रह्मज्यस्यै प्राणान् उपदासयति ) आशुनवालाकोके प्रणोका नाम करती है ॥ २७ ॥

[ ४ ] ( विहृत्यमाना वैरं ) गौको काट देनेपर वैर करती है और ( विभाज्यमाना पौत्राद्यं ) काटकर विभक्त करनेपर पुत्रादिकोको खानेवादी होती है ॥ २८ ॥

( हिषमाणा देवहेतिः ) के जानेपर देवोंका वध बनती है और ( हृता व्यृद्धिः ) हरण होनेपर विपत्ति बनती है ॥ २९ ॥

( अधिधीयमाना पाप्मा ) पापमें रखनेपर पापसदृश होती है और ( अवधीयमाना पारुष्यै ) तिरस्कृत होनेपर क्रोधरता बनती है ॥ ३० ॥

( प्रयस्यन्ती विषं ) दुःखी होनेपर विष होती है और ( प्रयस्ता तक्मा ) सजानेपर स्वरके समान होती है ॥ ३१ ॥

( पच्यमाना अद्यं ) पकानेपर पार रूप बनती है और ( दुष्वप्यै पक्वा ) पक जानेपर हुए स्वरके समान दुःखदायिनी बनती है ॥ ३२ ॥

( पर्याक्रियमाणा मूलवर्षी ) सुमार्द जानेपर मूलका नाम करनेवादी और ( पर्याकृता क्षितिः ) परोसी जाने पर विनाशक बनती है ॥ ३३ ॥

असंज्ञा गन्धेन शुशुद्धियमाणावीविष उद्धृता	॥ ३४ ॥
अभूतिरुपट्टियमाणा पराभूतिरुपहृता	॥ ३५ ॥
शुधः क्रुद्धः पिश्यमाना विमिदा पिशिता	॥ ३६ ॥
अर्धतिरिश्यमाना निर्कृतिरशिता	॥ ३७ ॥
अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्मात्प्राप्तमुष्माच्च	॥ ३८ ॥

[ ५ ]

तस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं बल्लग ऊर्ध्वधम्	॥ ३९ ॥
अस्वगता परिहृता	॥ ४० ॥
अग्निः क्रव्याद्भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविशति	॥ ४१ ॥
सर्वास्याहृता पर्वा मूलानि वृक्षति	॥ ४२ ॥
छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावपति मातृबन्धु	॥ ४३ ॥
विवाहां श्रावन्सर्वानपि क्षापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य क्षत्रियेषामुपुनर्दीयमाना	॥ ४४ ॥

अर्थ— ( गन्धेन असंज्ञा ) वह गंधसे वेहोना करती है, ( उद्धृतिरुपहृता ) उड़ाई जानेपर शोक पीरा करती है और ( उद्धृता आशीषियः ) उड़ाई गयी सांभके समान होती है ॥ ३४ ॥

( उपट्टियमाणा अभूतिः ) इरे जाने पर विपत्ति बनती है, ( उपहृता परामृतिः ) पाम बांधके रखनेपर परा-भवरूप होती है ॥ ३५ ॥

( पिश्यमाना क्रुद्धः शर्यः ) पीसी जति समय शोधित रखके समान और ( पिशिता विमिदा ) पीसने पर सुसका मास करनेवाली होती है ॥ ३६ ॥

( अर्धयमाना निर्कृतिः ) लारी जाती हुई विवदा होती है और ( अशिता निर्कृतिः ) लई जानेपर गिनाघट बनती है ॥ ३७ ॥

( अशिता ब्रह्मगवी ) खाई हुई ब्राह्मणकी गी ( ब्रह्मज्यं अस्मात् अमुष्मात् य लोपयत् छिनत्ति ) ब्राह्मण-धातकीको इस लोपसे और परलोपसे उखाट देती है ॥ ३८ ॥

[ ५ ] ( तस्याः आहननं कृत्या ) उसका बध घात करनेवाला है ( आशसनं मेनिः ) उसके डुकड़े काना वज्रपालके समान है । और ( ऊर्ध्वं बल्लगः ) उसका पत्र अथ विनाशक होता है ॥ ३९ ॥

पह ( परिहृता अस्वगता ) ही जानेपर भी अपने पास नहीं रहती अर्थात् अपना घात करती है ॥ ४० ॥

( ब्रह्मगवी क्रव्यात् अग्निः भूत्वा ब्रह्मज्यं प्रविशति ) ब्राह्मणकी गी मांसलक्षक भाग बनकर ब्राह्मण-धातकीमें प्रवेश करते उसे खा जाती है ॥ ४१ ॥

( अस्य सर्वा अंगा पर्वा मूलानि वृक्षति ) इसके सब अंगों और मूलोंको काट धाकती है ॥ ४२ ॥

( अस्य पितृबन्धु छिनत्ति ) इसके पिताके बन्धुओंको काकती है और ( मातृबन्धु परामाथयति ) माताके बन्धुओंको परास्त करती है ॥ ४३ ॥

( क्षत्रियेषामुपुनर्दीयमाना ब्रह्मज्यस्य ब्रह्मगवी ) क्षत्रियके द्वारा पुनः वापस न ही गयी ब्राह्मणकी गी ( विवाहां श्रावन्सर्वानपि क्षापयति ) क्षत्रियके सब विवाहों और सब जावनकोंका नाश करती है ॥ ४४ ॥

अवास्तुर्मेनमस्वंगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ॥ ४५ ॥  
य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो मामादत्ते ॥ ४६ ॥

[ ६ ]

क्षिप्रं वै तस्माह्नने गृध्राः कुर्वत पेल्लवम् ॥ ४७ ॥  
क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशिनीराध्नानाः पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैल्लवम् ॥ ४८ ॥  
क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐल्लवम् ॥ ४९ ॥  
क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत्तदासींश्चिद्विदं नु वादिदिति ॥ ५० ॥  
छिन्ध्या चिच्छन्धि म चिच्छन्ध्यापिं क्षापय क्षापयं ॥ ५१ ॥  
आददानमाह्निरसि ब्रह्मज्यमुषं दास्य ॥ ५२ ॥  
वैश्वदेवीं क्षुत्पसें कृत्या कृत्वजं आवृता ॥ ५३ ॥  
ओषन्ती समोषन्ती ब्राह्मणो यज्ञः ॥ ५४ ॥  
क्षुरपविर्भृत्युर्भृत्वा वि धाव स्वम् ॥ ५५ ॥  
आ दंसे जिनुतां यर्चं इष्टं पूर्वं चाग्निषः ॥ ५६ ॥

अर्थ— ( एवं अवास्तुं अस्वंगं अप्रजसं करोति ) इसे घरके विना, आपरपरहित और प्रजारहित करती है, ( अपरापरणः भवति, क्षीयते ) सदायकसे रहित होता है और नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

( यः क्षत्रियः विदुषः ब्राह्मणस्य गां एवं आदत्ते ) जो क्षत्रिय विद्वान्, ब्राह्मणकी गौको इसी तरह छीनता है ॥ ४६ ॥

[ ६ ] ( तस्य आहनने गृध्याः क्षिप्रं वै पेल्लवं कुर्वते ) उस दुष्टके इनन होनेपर गीध शीघ्र ही कोलाहल मचाले हैं ॥ ४७ ॥

( तस्य आदहनं ) उसकी जलती चिताको देखकर ( केशिनीः पाणिना उरसि आध्नानाः पापं पेल्लवं कुर्वाणाः परिनृत्यन्ति ) माल खोदकर हाथोंसे छात्रियोंको पीट पीट कर बुरा शब्द करती हुई क्षिप्रा इतस्ततः नाचती हैं ॥ ४८ ॥

( तस्य वास्तुषु वृकाः पेल्लवं क्षिप्रं कुर्वते ) उसके घरमें भेड़िये शीघ्र ही अपना शब्द करने लगते हैं ॥ ४९ ॥

( क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति ) शीघ्र ही उसके विषयमें पूछते हैं कि ( यात् तत् आसीत् ) कैसा यह था ( इदं नु तत् इति ) क्या यह वही है ॥ ५० ॥

( छिन्ध्या चिच्छन्धि प्रच्छिन्धि ) उसको काटो, काट डालो और टुकड़े करो । ( अपि क्षापय क्षापय ) मार करो, उसका नाश करो ॥ ५१ ॥

हे ( आग्निरसि ) भगवन्सकी शक्ति ! ( आददानं ब्रह्मज्यं उपदास्य ) ब्राह्मणकी गौको छीननेवाले पातकीका नाश करो ॥ ५२ ॥

हे ( वैश्वदेवीं हि कृत्या ) सब देवोंकी विनाशक शक्ति ( कृत्वजं आवृता उच्यसे ) विनाशिनी हे ऐसा कहते हैं ॥ ५३ ॥

( ओषन्ती समोषन्ती ब्राह्मणः यज्ञः ) आपदायक नष्ट करनेवाली यह ब्राह्मणकी यज्ञरूप शक्ति है ॥ ५४ ॥

( त्वं क्षुरपविः मृत्युः सूत्या विधाय ) हे क्षुरके समान तीक्ष्ण बनकर उसका मृत्यु करनेके लिये दौड़ ॥ ५५ ॥

( जिनुतां यर्चः इष्टं पूर्वं चाग्निषः आदत्से ) विनाश करनेवालेके देन इष्टपूर्वता और आगियोंको ह छीनती है ॥ ५६ ॥

आदायं जीतं जीतायं लोकेषुऽमुष्मिन् प्र यच्छसि	॥ ५७ ॥
अभ्ये पदुवीर्मथ ब्राह्मणस्याभिर्शस्त्या	॥ ५८ ॥
मेनिः शरन्व्या भयाघादुपविषा भव	॥ ५९ ॥
अध्वये प्र शिरौ जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरेराधसः	॥ ६० ॥
त्वया प्रमूर्णं मृदितमभिर्देहतु दुश्चितम्	॥ ६१ ॥
[ ७ ]	
वृक्ष प्र वृक्ष सं वृक्ष दह प्र दह सं दह	॥ ६२ ॥
ब्रह्मज्यं देव्यध्वे आ मूलादनुसंदह	॥ ६३ ॥
यथायाधमसादुनात्पापलोकात्परिवतः	॥ ६४ ॥
एवा त्वं देव्यध्वे ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरेराधसः	॥ ६५ ॥
वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन धुरमृदिना	॥ ६६ ॥
प्र रकुन्धान् प्र शिरौ जहि	॥ ६७ ॥
लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचंमस्य वि वेष्टय	॥ ६८ ॥
मांसान्यस्य शतय स्यान्नान्यस्य सं वृह	॥ ६९ ॥
अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निजिहि	॥ ७० ॥
सर्वास्याह्ना पर्वाणि वि श्रेषय	॥ ७१ ॥

अर्थ— ( जीतं आदायं अमुष्मिन् लोके ) जिसक घातकी उरपको पकड़कर परलोकमें ( जीतायं प्रयच्छसि ) उसके घातके लिये हूँ देसी हूँ ॥ ५७ ॥

हे ( अध्वये ) भवपथ गी ! तू ( ब्राह्मणस्य अभिर्शस्त्याः पद्वीः भव ) ब्राह्मणकी भद्रोसाले तपकी प्रतिष्ठा करनेवाली हो ॥ ५८ ॥

तू ( मेनिः शरन्व्या भव ) विनाशक रुद्र षण, ( अघात् अघविषा भव ) शपसे शपस्वी बन ॥ ५९ ॥

हे ( अध्वये ) भवपथ गी ! तू ( ब्रह्मज्यस्य कृतागसः देवपीयोः अराधसः शिरः प्रजहि ) ब्रह्मपाठकी पापी देवनिर्दक मदानी पापीका शिर काट डाल ॥ ६० ॥

( त्वया प्रमूर्णं मृदितं दुश्चितं अग्निः दहतु ) तेरे द्वारा मारे गये और गह गह हुए दुष्टदुष्टि शत्रुको जगि जला दे ॥ ६१ ॥

[ ७ ] ( वृक्ष प्रवृक्ष संवृक्ष ) काट, अधिक काट, अच्छी तरहसे काट, ( दह प्रदह संदह ) जला, अधिक जला, अच्छी तरहसे जला ॥ ६२ ॥

हे ( अध्वये देवि ) अहिंसनीय गी देवि ! ( ब्रह्मज्यं आमूलान् अनुसंदह ) ब्रह्मपाठकी सभूत जन्म डाल ॥ ६३ ॥

( यथा यमसदान्त्स परावतः पापलोकात् अयात् ) जैसा यमसदानसे परले पापी लोकमें प्रति वह जाये ( यथा कृतागसः देवपीयोः अराधसः ब्रह्मज्यस्य ) इस काट पापी देवसभु कृतस ब्रह्मपाठकी मनुष्पका ( शिरः कन्धान् ) शिर और कंध ( शतपर्वणा धुरमृदिना तीक्ष्णेन वज्रेण प्रजहि ) सौ लोकवाले धुरके समान धावाले तीक्ष्ण वज्रसे काट डाल ॥ ६४-६७ ॥

( अस्य लोमानि सं छिन्धि ) इसके लीम काट डाल, ( अस्य त्वचं वि वेष्टय ) इसकी रक्ताको उधेद, ( अस्य मांसानि शतय ) इसके मांसको काट डाल, ( अस्य म्नाजानि संवृह ) इसके स्नायुकी वृध, ( अस्थीनि पीडय ) इसकी हड्डियोंको पीडा दे, ( अस्य मज्जानं निजिहि ) इसकी मज्जाको नाश कर, ( अस्य सर्वा पर्वाणि विश्रेषय ) इसके सब पत्रको अलग कर ॥ ६८-७१ ॥



कोई भी मानसं न धारण करे, दान देनेसे कल्याण और न देनेसे दुःख होगा ही नहीं धर्मन है ।

इन मंत्रोंमें कई स्थानोंपर ' गौ-दान न देकर जो स्वयं अपने लिये ( पचते चन्ना ) गौको पकाता है' ऐसे वाक्य हैं । गिनको वेदकी भाषाका परिचय नहीं है ये इससे ऐसा अनुमान करेंगे कि ' गौको पकावा, अर्थात् गोमूत्रका पकावा ही यहाँ अभीष्ट है ।' ऐसे मतके विरामके लिये यहाँ घोदासा लिखनेकी आवश्यकता है ।

वेदमें लुप्ततद्धित शब्दप्रयोग होता है जिससे ' गौ' शब्द ' गौसे उत्पन्न हुए पदार्थोंका वाचक होता है । अर्थात् ' चर्मा पचति' का अर्थ ' गौसे उत्पन्न दूध, घृत, दही, छाछ' आदि पकावा है, गोदुग्धसे तैयार करता है, ऐसा है । इसी प्रकार ' गौ' या ' ब्रह्मा' के अर्थ जैसे ' दूध, दही, छाछ, घृत' आदि पदार्थ हैं, वैसे ही इस शब्दके अर्थ ' मांस, रक्त, हड्डी, चमड़ा, बाल, गोबर, गोमूत्र,' आदि भी हैं । हमारे विचारसे ' दूध, दही, छाछ, घृत' आदि अर्थ ही यहाँ लेना चाहिये ।

## ब्राह्मणकी भूमि

कां. ५, सू. १८

( अर्थः— भयोन् । देवता— ब्राह्मणी । )

नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अर्चवे । मा ब्राह्मणस्य राजन्यं गां जिघत्सो अनाधाम् ॥ १ ॥  
अक्षद्रुग्धो राजन्यं । पाप आत्मपराजितः । स ब्राह्मणस्य गामधादुय जीवानि मा श्वः ॥ २ ॥  
आर्विष्टितार्चिषा पृदाकूर्वि चर्मणा । सा ब्राह्मणस्य राजन्यं तृष्टैषा गौरनाद्या ॥ ३ ॥

अर्थ— हे नृपते ! ( ते देवाः एतां तुभ्यं अर्चवे न ददुः ) उन देवोंने इस गौको तुम्हारे खानेके लिए नहीं दिया है । हे ( राजन्य ) क्षत्रिय ! ( ब्राह्मणस्य अनाधां गां मा जिघत्सः ) ब्राह्मणकी न खाने योग्य गौको खानेकी इच्छा मत कर ॥ १ ॥

( अक्ष-द्रुग्धः पापः ) लुभावी, पापी ( आत्म-पराजितः राजन्यः ) अपने कारण पराजित हुआ हुआ क्षत्रिय ( ब्राह्मणस्य गां अघात् ) यदि ब्राह्मणकी गौको खाने, तो ( सः अथ जीवानि, मा श्वः ) वह भोजन ही जीव, कल नहीं ॥ २ ॥

हे ( राजन्य ) क्षत्रिय ! ( एषा ब्राह्मणस्य गौः अनाधा ) यह ब्राह्मणकी गौ खाने योग्य नहीं है । क्योंकि ( सा चर्मणा आर्विष्टिता ) यह चर्मसे ढकी हुई ( पृदा पृदाकूः ह्य अघयिषा ) प्यासी साँपिके समान भयंकर विषसे भरी होती है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे क्षत्रिय ! हे राजा ! यह सब उरे ही उपभोगके लिये उरे पास देवेने नहीं दिया है । ब्राह्मणकी भूमि, गाप आदिको कलसे हरण करना तुमसे योग्य नहीं है ॥ १ ॥

जो नृपते हारा हुआ, पापी, दुराचारी और आत्मघातकी क्षत्रिय होगा वही ब्राह्मणकी भूमि और गौ आदिका बलसे हरण करके भोग करेगा, पर यह भोजन ही जीवित रह सकता है कल नहीं, अर्थात् वह जीव ही मर जायगा ॥ २ ॥

हे क्षत्रिय ! ब्राह्मणकी भूमि अथवा गौ उरे उपभोगके लिये नहीं है । चर्मसे ढकी हुई, विषमयी, कोपी साँपिके समान यह गाप उरे लिये नाशक ही सिद्ध होगी ॥ ३ ॥

निर्देष्टुं नयति हन्ति चर्चोऽग्निर्वारंघो वि दुनोति सर्वम् ।  
यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स विपस्यं विवति तैमातर्यं ॥ ४ ॥  
य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीपुर्धनकामो न चित्तात् ।  
सं तस्पेन्द्रो हृदयेऽग्निर्मिन्ध उभे एनं द्विष्टो नमसी चरन्तम् ॥ ५ ॥  
न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिव । सोमो अस्मिन् दायाद् इन्द्रो अस्पाभिप्रस्तिपाः ॥ ६ ॥  
श्रुतापाह्नां नि गिरति तां न शकनोति निःश्रिदन् ।  
अन्नं यो ब्राह्मणां मत्वः स्वाद्भृश्रीति मन्यते ॥ ७ ॥  
जिह्वा ज्या भवति कुर्मलं चाह्नादीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः ।  
तेभिर्भिक्षा विष्यति देवपीपुर्धनैर्धनुर्मिदुवजूतैः ॥ ८ ॥

अर्थ— ( यो ब्राह्मणं अन्नं एव मन्यते ) जो क्षत्रिय ब्राह्मणको अपना भक्ष ही मानता है, ( स तैमातर्यं विपस्यं विवति ) वह सांपका विप ही पीता है । वह भयमानित ब्राह्मण ( अन्नं ये निः नयति ) क्षत्रियको नि शेष करता है, ( चर्चोः हन्ति ) तेजका नाश करता है, ( अरघ्यः अग्निः इव ) मईका हुए अग्निके समान ( सर्वं विदुनोति ) वह सब कुछ नष्ट कर देता है ॥ ४ ॥

( यः देवपीपुः धनकामः ) जो देवतायु धनलोभी ( एनं मृदुं मन्यमानः न चित्तात् हन्ति ) इस ब्राह्मणको कोमल मानता हुआ बिना विचारो मारता है । ( इन्द्रः तस्य हृदये अग्निं सं हन्धे ) इन्द्र उसके हृदयमें अग्नि जला देता है ( उभे नमसी चरन्तं एनं द्विष्टः ) दोनों मूलोक और एलोक विचरते हुए इससे द्वेष करते हैं ॥ ५ ॥

( प्रियतनोः अग्निः इव ) प्रियतनुरूप अग्निके समान ( ब्राह्मणः न हिंसितव्यः ) ब्राह्मणकी हिंसा नहीं करनी चाहिये । ( सोमः हि अस्य दायाद् ) सोम इसका संबंधी है और ( इन्द्रः अस्य अभिप्रस्तिपाः ) इन्द्र इसको चापसे बचानेवाला है ॥ ६ ॥

( यः मत्वः ब्राह्मणां अन्नं ) जो बीच पुरा ' ब्राह्मणोंका भक्ष मैं ( स्वाद् अग्नि इति मन्यते ) स्वादसे खाता हूँ ' ऐसा समझता है वह ( शत-अपाह्नां निगिरति ) सैकड़ों प्रकारकी दुर्गतिको प्राप्त होता है और ( निःश्रिदन् तां न शकनोति ) उसको प्राप्त करने वह सहत नहीं कर सकता ॥ ७ ॥

ब्राह्मणकी ( जिह्वा ज्या भवति ) जीभ धनुषकी ढोरी होजाती है । ( चाह् कुर्मलं ) वाली धनुष्यका इन्द्रा होजाती है ( तपसा अभिदिग्धाः दन्ताः नादीपाः ) तपसे पीला बने हुए दांत बालरूप होजाते हैं और तप ( ब्राह्मण ) ब्राह्मण ( तेभिः देवजूतैः हृदयैः धनुर्मिः ) उन देवसेवित आत्मयत्नके धनुष्योंसे ( देव-पीपुर्धनं विष्यति ) देवके धनुषोंपर आपात करता है ॥ ८ ॥

भार्गवार्थ— जो क्षत्रिय रिश्राद् ब्राह्मणको अपने भोगका विषय मानता है, वह मानते सांपका विप ही पीता है । उस प्रकार भयमानित हुआ ब्राह्मण क्षत्रियका नाश करता है, उसका दैन नष्ट करता है, और अन्धकी भांगेने समान सब राष्ट्रको दिहा देता है ॥ ४ ॥

जो क्षत्रिय धनलोभसे देवोंका सक्षमाय स्वर्यं खाता है और ब्राह्मणको निर्बल मानकर उसको ब्रह्म देता है, उममें हृदयमें अग्नि जलाकर इन्द्र उसका नाश करता है और सब धावायुषिकीके निराधी उसकी निन्दन करते हैं ॥ ५ ॥

अग्निके समान ही ब्राह्मण है, तिसको छेदना उचित नहीं है । क्योंकि सोम उसका संबंधी और इन्द्र उसका रक्षक है ॥ ६ ॥

जो पापी क्षत्रिय ब्राह्मणका घन अपने भोगके लिये है ऐसा मानता है और उसका मैं उग्रम भोग कराया हूँ, ऐसा समझता है, उसपर सैकड़ों आपत्तियां आती हैं और उसका सामर्थ्य ही नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

उस समय ब्राह्मणकी जिह्वा ढोरी, वाली धनुष्य और उसके तपसे मुक्त शीत बाल्य हो जाते हैं । इन धनुष्योंमें वरु ब्राह्मण देवताओंका भक्ष खानेवालेका नाश करता है ॥ ८ ॥

वीक्षणेर्षवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरुष्यांश्च न सा मृषा ।

अनुहाय तर्पसा मन्पुनां चोत दूरादव भिन्दन्त्येवम् ॥ ९ ॥

ये महस्रमराज्ज्वासन्दश्रुता उत । ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतह्वयाः परामवन् ॥ १० ॥

गौरिव तान्हन्यमाना वैतह्वयां अवातिरत् । ये केसरप्रवन्धायाश्चरमाजामर्षेचिरन् ॥ ११ ॥

एकशतं वा जमता या भूमिर्न्यधूनुत । प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभवं परामवन्- ॥ १२ ॥

देवपीगुश्रुति मत्स्येषु गरगीर्णो मयत्यसिंभूयान् ।

यो ब्राह्मणं देवर्षन्धुं हिनस्ति न स पितृपाणमर्षति लोकम् ॥ १३ ॥

अर्थ— (तीक्ष्ण-श्रुतः हेतिमन्तः ब्राह्मणाः) वीक्षण बलवति युक्त, भयति दुक्त ब्राह्मण (यां शरुष्यां अस्यन्ति) मिय बाणप्रवाहको भेकते हैं (न सा मृषा) यह प्रवाह स्वर्धे नहीं होगा । वे प्रवाह (तपसा च उत मन्पुना अनुहाय) तपके शौर शोषके साथ पीजा करते (एनं दूरात् अवभिन्दन्ति) इसको दूरसे ही भेद बाधते हैं ॥ ९ ॥

(ये वैत-ह्वयाः सहस्रं भटाजन्) जो देवोंका ह्वय सानेवाके सहस्रों रामा हो गये थे (ये उत दशशताः आसन्) और जो दस ती थे, (ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा) वे ब्राह्मणकी गौ खाकर (परामवन्) परामवको प्राप्त हुए ॥ १० ॥

(हन्यमाना गौः एव) मारी जाती हुई गौने (तान् वैतह्वयान् अवातिरत्) उन देवताओंका बाण सानेवाओंका ही विनाश किया है । (ये केसरप्रवन्धायाः चरम-अर्णो अपेचिरन्) जो केसोंकी रस्सीसे बांधी हुई मन्तिम अजाको भी पचा जाते हैं, ह्वय कर जाते हैं वे भी विनष्ट हो जाते हैं ॥ ११ ॥

(ताः जमताः एव-शतं) वे जनताके लोग एकही एक थे (याः भूमिः द्यधूनुत) जिन्होंने भूमिको हिला दिया है । (ब्राह्मणीं प्रजां हिंसित्वा) ब्राह्मणकी प्रजाको कष्ट देकर (असंभवं परामवन्) विना संभावनाके ही वे परामवको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥

(देव-पीयुः गर-गर्गिणः मत्स्येषु चरति) देवयशु अहर पीये मनुष्यके समान मनुष्यके पीचसे पूषा है और (अस्थि-भूयान् भवति) यह केवल हड्डी ही हड्डीचाला होता है । (यः देव-धन्तुं ब्राह्मणं हिनस्ति) जो देवोंके मन्पुरप ब्राह्मणको कष्ट देगा है (सः पितृपाणं अपि लोकं न षति) वह पितृपाण लोकको भी नहीं प्राप्त होता ॥ १३ ॥

भाषार्थ— वे ब्राह्मण बड़े वीक्षण गच्छाओंवाले होते हैं, इसलिये उक्त भद्र वे निसपर फेंकते हैं वे स्वर्धे नहीं होते । अपने तप और शोषसे पीजा करके दूरसे ही वे जनता नाश करते हैं ॥ ९ ॥

देवताओंके उदरपसे अलग रखा हुआ भद्र रज्य भोग करनेवाके सहस्रों रामा अगे ब्राह्मणकी भूमि भयवा गौ ह्वय करे, उसका अपने डिये भोग करनेसे परामव होगये ॥ १० ॥

यह कष्टको प्राप्त हुई ब्राह्मणकी गाय ही उन देवताओंकी क्षत्रियोंका नाश करनेके लिये कारण होती है ॥ ११ ॥

सहस्रों क्षत्रिय भूमिपर बदा पराष्टम करनेवाके होते हैं, परन्तु यदि उन्होंने ब्राह्मणोंको कष्ट देना शुरू किया तो वे सदृश हीमें परामव होये ॥ १२ ॥

देवोंका मनुष्य बनकर पृथ्वीपर संचार करनेवाला हुए मनुष्य मिय पीये अतिक्रम मनुष्यके समान निर्बल होता है और जो देवोंके मनुष्य ब्राह्मणकी हिंसा करता है उसको पितृलोक भी नहीं प्राप्त होता ॥ १३ ॥

अधिव नः पदवायः सोमो दायद उच्यते । इन्द्राभिनुस्तेन्द्रस्तथा तद्देधतीं विदुः ॥ १४ ॥  
इपुर्वि दिग्धा जृपते पृदाकृर्वि गोपते । सा ब्राह्मणस्पेषुर्षोरा तथा विभ्यति पीयतः ॥ १५ ॥

अर्थ— (अभिः धे नः पदवायः) यमि ही हमारा मार्गदर्शक है । (सोमः दायदः उच्यते) सोम संबंधी है, ऐसा कहा जाता है । (इन्द्रः अभिशस्ता हन्ता) इन्द्र आप देनेवालेका नाशकर्ता है (तथा वेधसः तत् विदुः) उस प्रकार शानी यह बात जानते हैं ॥ १४ ॥

हे ( जृपते गोपते ) जृपते और गोपते स्वामिन् ! हमन की हुई गाय ( इपुः इव दिग्धा ) बाणके समान तीक्ष्ण और ( पृदाकृः इव ) सांपिनके समान भयंकर होती है । ( ब्राह्मणस्य सा ) ब्राह्मणी वह गाय ( घोरा इपुः ) भयंकर बाणके समान होती है । ( तथा पीयतः विभ्यति ) उससे हिंसक नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥

भावार्थ— सब शानी जानते हैं कि भूमि हमारा मार्गदर्शक, सोम हमारा संबंधी और इन्द्र हमारा रक्षक है ॥ १४ ॥  
अपहरण करनेवालेके लिए गाय भयंकर सांपिनके समान होती है । वह तीक्ष्ण बाणके समान है । जो ब्राह्मणी गायकी हिंसा करता है, वह हिंसक स्वयं ही नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥



## शतौदना गी

कां. १०, सू. ९

( अग्निः- अथर्वा । देवता- शतौदना । )

अघायतामपि नद्या मुखानि सपत्नेषु वर्जमर्षयेत्तम् ।  
इन्द्रेण दुत्ता प्रथमा शतौदना आतृव्यप्ती यजमानस्य गातुः ॥ १ ॥  
वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिलोमानि यानि ते । एषा त्वा रशनाप्रोद् प्राचा त्वेषोऽधिं नृपतु ॥ २ ॥  
बालास्ते प्रोथणीः सन्तु जिह्वा सं मार्ष्ट्रज्ये । शुद्धा त्वं यज्ञिषां मुक्त्वा दिवं प्रेहिं शतौदने ॥ ३ ॥  
यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते । प्रीता अस्विजः सर्वे यन्ति यथापथम् ॥ ४ ॥

अर्थ— (अघायतां मुखानि अपि नद्या) पापी लोगोंके मुख बंद कर । (सपत्नेषु एतं वर्जं अर्षय) शत्रु-भोंपर यह वज्र फेंक । (इन्द्रेण दुत्ता प्रथमा शतौदना) इन्द्रके द्वारा ही हुई पहिली सैकड़ों भोजन देनेवाली (आतृ-व्यप्ती यजमानस्य गातुः) शत्रुका नाश करनेवाली, यजमानका मार्ग दर्शानेवाली गी ही है ॥ १ ॥

(ते चर्म वेदिः भवतु) वेदा चर्म वेदी बने, (यानि ते लोमानि यानिः) जो वेदे रोम हैं वे दर्मे हों (एषा रशना त्या अप्रभित्) जो रस्सी तुझे बांधी है, हे (औपयि) सोमवली ! (एषः प्राचा त्वा अधिमुत्पतु) यह प्राचा वेदे ऊपर मानंदते नाचे, ऐसा रस निकालनेके लिये धनस्पतिपर पथार नाचे ॥ २ ॥

हे (अज्ये) अहिंसनीय गी ! (ते बालाः प्रोथणीः सन्तु) वेदे बाल प्रोथणीं होंवे, (जिह्वा सं मार्ष्ट्रं) वेदी जिह्वा मोथव करे, (त्वं यज्ञिषां शुद्धा भूत्वा) तू पत्थ और शुद्ध होकर, हे शतौदना गी ! (त्वं दिवं प्रेहि) शत्रुकोर्मे आ ॥ ३ ॥

(यः शतौदनां पचति) जो शतौदनाका परिपक्व करता है, (सः कामप्रेण कल्पते) वह संकल्पोंकी पूर्ण करता है । (अस्य सर्वे प्रीताः अस्विजः) इसके सब संतुष्ट हुए अस्विज (यथापथं यन्ति) यथायोग्य मार्गसे वापस आते हैं ॥ ४ ॥

स स्वर्गमा रोहति यत्रादक्षिदिवं दिवः । अपूपनार्भि कृत्वा यो ददाति शतौर्दनाम् ॥ ५ ॥	॥ ५ ॥
स ताल्लोकान्तसर्वाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।	
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौर्दनाम् ॥ ६ ॥	॥ ६ ॥
ये तै देवि शमितारः पुक्तारो ये च ते जनाः ।	
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैश्वर्यो भैषीः शतौदने ॥ ७ ॥	॥ ७ ॥
चसंयस्त्वा दक्षिण्व उच्चरान्मरुतस्त्वा । आदित्याः पश्चाद्गोप्स्यन्ति सामिष्टोममतिं द्रव ॥ ८ ॥	॥ ८ ॥
देवाः पितरो मनुष्याग्न्धर्वाप्सरसश्च ये । ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमतिं द्रव ॥ ९ ॥	॥ ९ ॥
अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान्मरुतो दिशः ।	
लोकान्तस सर्वाप्नोति यो ददाति शतौर्दनाम् ॥ १० ॥	॥ १० ॥
पृतं प्रोक्षन्तीं सुमगां देवीं देवान्गमिष्यति । पुक्तारमज्ये मा हिंसीदिवं प्रेहि शतौदने ॥ ११ ॥	॥ ११ ॥
ये देवा दिविपदां अन्तरिक्षसदक्ष ये ये चोमे भूम्यामधि ।	
तेभ्यस्त्वं धुक्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरयो मधुं ॥ १२ ॥	॥ १२ ॥

अर्थ— ( यः शतौर्दनां अपूपनार्भि कृत्वा ददाति ) जो शतौदनाको मातृपूर्वके रूपमें करके दान देता है ( सः स्वर्गं आरोहति ) यह स्वर्गपर चढ़ता है ( यत्र अदः त्रिदिवं दिवः ) जहापर स्वर्गवास है ॥ ५ ॥

( यः शतौर्दनां हिरण्यज्योतिषं कृत्वा ददाति ) जो शतौदना गौको सुवर्गसे तेजस्वी करके दान देता है ( ये दिव्याः ये च पार्थिवाः ) जो दिव्य और जो पार्थिव लोग हैं उनके और ( तान् लोकान् सः समाप्नोति ) उन सब लोकोंको भी वह प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

( ये शमितारः ये च पुक्तारः जनाः ) जो शमिता और जो पकनेवाले लोग हैं, ( ते सर्वे त्वा गोप्स्यन्ति ) वे सब तेरी रक्षा करेंगे । हे ( शतौदने ) सौ मनुष्योंका मोहन देनेवाली गौ ! ( पन्था मा भैषीः ) इन्से तू मय न कर ॥ ७ ॥

( दक्षिणतः त्वा चसयः ) दक्षिणकी ओरसे वसुदेव, ( उच्चरात् त्वा मरुतः ) उत्तरकी ओरसे मरुत देव, ( आदित्याः पश्चाद् गोप्स्यन्ति ) आदित्य पीछेसे तेरी रक्षा करेंगे, ( सान् न्वं अमिष्टोम अति द्रव ) वह तू अमिष्टोम पत्रके पार जा ॥ ८ ॥

( ये ) जो देव, पितर, मनुष्य और गन्धर्व-अप्सरालोग हैं, ( ते सर्वे त्वा गोप्स्यन्ति ) वे सब तेरी रक्षा करेंगे, ( सा अतिरात्रं अति द्रव ) वह तू अतिरात्र पत्रके पार जा ॥ ९ ॥

( यः शतौर्दनां ददाति ) जो शतौदनाको देता है, ( सः सर्वां लोकान् आप्नोति ) वह सब लोकोंको प्राप्त करता है, ( अन्तरिक्षं दिवं भूमिं आदित्यान् ) जो लोक अन्तरिक्ष, पु, भूमि, आदित्य, मरुत और दिशाओंके नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ १० ॥

( पृतं प्रोक्षन्तीं सुमगां देवीं ) पीला सिंघन करनेवाली भाष्पवाही देवी ( देवान् गमिष्यति ) देवताओंको प्राप्त होगी । हे शतौदने ( अज्ये ) अहिंसनीय गौ ! ( पुक्तारं मा हिंसी ) पकनेवालेकी हिंसा मय न कर, ( दिवं प्रेहि ) स्वर्गको प्राप्त हो ॥ ११ ॥

( ये दिवि-सदः देवाः ) जो सुलोकमें रहनेवाले देव हैं, ( ये च अन्तरिक्ष-सदः ) जो अन्तरिक्षमें रहते हैं, ( ये च इमे भूम्या अधि ) जो भूमिपर रहते हैं, ( तेभ्यः त्वं सर्वदा ) उनके लिये तू सर्वदा ( क्षीरं सर्पिः अयो मधुं धुक्व ) दूध, पी और मधु दे ॥ १२ ॥

यत्ते शिरो यत्ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हन् । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १३ ॥

यौ तु ओष्ठौ ये नासिके ये गृह्णे ये च तेऽक्षिणी ।

आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु

॥ १४ ॥

यत्ते ब्रह्मोमा यद्दृढं पुरीतसहकण्ठिका । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १५ ॥

यत्ते यद्वृधे मत्स्ने यदान्त्रं यात्रं ते गुदाः । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १६ ॥

यत्ते प्लाशियौ वन्तिष्ठुयौ कुक्षी यच्च चर्म ते । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १७ ॥

यत्ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम् । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १८ ॥

यौ ते वाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत् । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १९ ॥

यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृथीर्याश्च पशवः । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २० ॥

यौ त ऊरू अष्टीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भस्त । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २१ ॥

यत्ते पुच्छं ये ते बाला यदधो ये च ते स्तनाः । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २२ ॥

यास्ते जह्या याः कुष्ठिका झञ्जरा ये च ते शफाः ।

आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु

॥ २३ ॥

यत्ते चर्म यतौदने वानि लोमान्यज्ये । आमिशां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४ ॥

श्रोढौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येनाभिधारितौ । तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तारं दिवं यह ॥ २५ ॥

अर्थ— (यत् ते शिरः) जो तेरा सिर है, (यत् ते मुखं) जो तेरा मुख है, (यौ च ते कर्णौ) जो तेरे कान हैं, (ये च ते हन्) जो तेरी ओंठी है, ये सब (दात्रे आमिशां क्षीरं सर्पिः अथो मधु दुहतां) दाताको दही, दूध, घी और मधु देवें ॥ १३ ॥

(यौ ते ओष्ठौ) जो तेरे ओंठ हैं, (श्रीमे अक्षिणी) जो तेरी सन्धि और आंग हैं, (ते ब्रह्मोमा दृढं पुरीतसह कण्ठिका) जो फेरवा, दृढ, मलायक और कण्ठका भाग है, (ते यद्वृधं मत्स्ने यान्त्रं गुदाः) जो तेरा वृण, गुदं, आंठ और गुदा है, (ते प्लाशोः वन्तिष्ठुः, कुक्षी, चर्म) जो तेरी आंठके भाग गुदाभाग, कोल और चर्म हैं, (ते मज्जा, अस्थि, मांसं लोहितं) जो तेरी मज्जा, अस्थि, मांस और लहिर है, (ते वाहू दोषणी अंशौ, ककुत्) जो तेरे बाहु, बाद, कन्धे और कोहनियां हैं, (ते ग्रीवा स्कन्धाः पृथीः पशवः) जो तेरी गर्दन, कन्धे, पीठ और पशु-लिमां हैं, (ते ऊरू अष्टीवन्तौ श्रोणी भस्त) जो तेरी अंगारं, धुदने, कुक्षे और गुदांग हैं, (ते पुच्छं बालाः ऊपः स्तनाः) जो तेरी पूंछ, बाल, दुग्धदायक और स्तन हैं, (ते जघाः कुष्ठिकाः झञ्जराः शफाः) जो तेरी जघारं, रोम, कडाईके भाग और लुर हैं, (ते चर्म लोमानि) जो तेरे चर्म और लोम हैं, हे (शतैदने) गौ ! (दात्रे क्षीरं आमिशां) दाताको दूध, दही, घी और मधु देते रहें ॥ १४-२५ ॥

हे शतैदने गौ ! (ते श्रोढौ) तेरे पार्श्वभाग (अज्येन अभिधारितौ पुरोडाशौ स्तां) घी द्वारा सिंचित पुरो-डाशा हैं । हे देवि ! (तौ पक्षौ कृत्वा) उनके संल बनाकर (सा त्वं पक्तारं दिवं यह) यह दू पकानेवासेको स्वर्गपर ले जा ॥ २५ ॥

उत्सृजे मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः ।

यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममायाप्रिष्टद्वोता सुहृतं कृणोतु

॥ २६ ॥

अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्रुतो गृहणां दस्तेषु प्रपथयसादयामि ।

यस्कांम इदमभिपिञ्चामि वोऽहं तन्मे सर्वं सं पथतां वयं स्याम पतवो रयीणाम्

॥ २७ ॥

अर्थ—(उत्सृजे मुसले) जोखली और मुसल, (चर्मणि शूर्पे च वा यः तण्डुलः कणः) चर्मपर तथा शूर्पमें जो चावलके कण रहते हैं, (यं वा वातो मातरिश्वा पवमानः ममाया) जिसको पवित्र करनेवाले वायुने मया भा, (तत् कृणोतु वासिः सुहृतं कृणोतु) उसे होवा भाति उत्तम जातुरूप बनवै ॥ २६ ॥

(मधुमतीः पूतदच्युताः देवीः आपाः) मधुयुक्त पीको देनेवाली दिव्य जलधारायं (ग्रहणां हस्तेषु प्रपथयसादयामि) प्राणियोंके हाथोंमें अन्न भक्षण देना है। (यत् कामः इदं वा अहं अभिपिञ्चामि) जिसकी इच्छा करना हुआ, मैं यह आपका अभिप्रेक करना हूँ, (तत् मे सर्वं संपथतां) वह मुझे सब प्राप्त हो, (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम सब धनेकि पति बनें ॥ २७ ॥

## शतौदना गौ ।

### गौ ।

गौका यहाँ नाम 'शतौदना' है। सैंकड़ों मनुष्योंका अन्न देनेवाली गौ शतौदना कहलाती है। कल्पना करिये कि प्रतिदिन १० सेर दूध गौ देती है। इस हिसाबसे प्रतिदिन पांच मनुष्योंका पेट भरती है, एक मासमें १५० मनुष्योंका पेट भरती है और छ सात महिनोमें एक सहस्र मनुष्योंका पेट पालन करती है। इस हिसाबसे एक आयुमें गौ दस हजार मनुष्योंका पेट पालन कर सकती है और उसकी संतानसे और अधिक। गौका यह महत्व है। गौका दूध बीमारों और अन्नकोंको तो अमृत जैसा है, पालकोंके लिये तो गौ माताका स्थान धारण करती है। गौके दूधसे बल, मेधा और बुद्धि शक्ति होती है। शतौदना गौका यह महत्व है।

यह गौ स्वर्गाय वस्तु है। कामधेनु कहते हैं। वह भी भावश्यकता पडे तभी दूध देनेवाली गायको 'कामदुधा' कहते हैं। गौ विद्वान् प्राणियोंको दान देनेसे बड़ा लाभ है, यह दान अन्न और सुवर्णके साथ, (अपूप, विरचय)

होना चाहिये। (मं. ७-८) इसके शमिता, अन्नके पाचक, देवोंके वस्तु, मरुत् और भाद्रित्य ये सब गौके संरक्षक हैं। देव, पितर, मनुष्य, गंधर्व और अस्तराण ये सब गौकी रक्षा करनेवाले हैं, क्योंकि गौके दूधसे ही अग्निहोम और अतिरात्र ये यज्ञ होते हैं। (मं. ९)

जो शतौदना गौका दान विद्वान्को करता है, उसको अन्तरिक्ष, सूर्य, दिशा, मरुत् तथा अन्य सब लोकोंमें उत्तम स्थान प्राप्त होता है। (मं. १०) सबकी पवित्रता करती हुई यह गौ देवोंकी यज्ञ दाना प्राप्त करती है। त्रिलोकमें जो देवता हैं वे सब गौके दूधसे गृह होते हैं, दूध, धी इसीसे उनको प्राप्त होता है। (मं. ११-१२)

भाग १३ से २४ तक कहा है कि इसी तरह गौका वर्णन है कि यह गौके अयय और गौ दाताका कल्याण करे और दूध, दही, घृत आदि सब वस्तु उसको पर्याप्त हों और दाता स्वर्गको प्राप्त हो।

भाग २० संरक्षक प्राणियोंको दूध दूध गौ दान करेना वर्णन है।

## गौका विश्वरूप

कां. ९, सू. ७

( अवि - मया । देवता - गी । )

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो अमिल्लोटं पुमः कृकाटम्	॥ १ ॥
सोमो राजा मस्तिष्को घोरुत्तरहनुः पृथिव्याधरहनुः	॥ २ ॥
विद्युजिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिका स्कन्धा घर्मो बहः	॥ ३ ॥
विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेप्यः	॥ ४ ॥
श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्यं बृहस्पतिः ककुद्दृहतीः कीकसाः	॥ ५ ॥
देवानां पत्नीः पृथयं उपसद्ः पश्यावः	॥ ६ ॥
मित्रश्च बरुणश्चासौ त्वष्टा चार्थमा च दोषणी महादेवो बाहू	॥ ७ ॥
इन्द्राणी भसद्वायुः पुच्छं पवमानो बालाः	॥ ८ ॥
मशं च क्षत्रं च श्रेणी बलभूरु	॥ ९ ॥
घाता च सविता चाग्नीवन्ती जह्यां गन्धर्वा अम्बरसुः कुष्ठिका अदितिः शुक्राः	॥ १० ॥
चेतो हृदयं यकृन्मेधा यत् पुरीतत्	॥ ११ ॥

अर्थ— ( प्रजापतिः च परमेष्ठी च शृङ्गे ) प्रजापति और परमेष्ठी के गौके दो सींग हैं, ( इन्द्रः शिरः ) इन्द्र शिर है, ( असिः कृकाटं ) असि शरद है, ( यमः कृकाटं ) यम गलेकी घंटी है ॥ ( सोमः राजा मस्तिष्कः ) राजा सोम मस्तिष्क है, ( घोरुः उत्तरहनुः ) ध्रुवोक्त ऊपरका उबका और ( पृथ्वी अधरहनुः ) पृथ्वी नीचका उबका है ॥ १-२ ॥

( विद्युत् जिह्वा ) बिजली जीभ है, ( मरुतः दन्ताः ) मरुत दात है ( रेवतीः ग्रीवाः, कृत्तिका स्कन्धाः ) रेवती गर्दन और कृत्तिका कंधे हैं । ( घर्मः बहः ) उष्णता देनेवाला सूर्य पर्वतका ककुदके पासका भाग है । ( वायुः विश्वं स्वर्गः लोकः कृष्णद्रं ) वायु सब जगत्तर और स्वर्गलोक कृष्णद्रं है और ( विधरणी निवेप्यः ) धारणशक्ति पृथ्वीका सीमा है ॥ ३-४ ॥

( श्येनः क्रोडः ) श्येन उसकी गोद है, ( अन्तरिक्षं पाजस्यं ) अन्तरिक्ष पेट है, ( बृहस्पतिः ककुद् ) बृहस्पति ककुद् है, ( बृहतीः कीकसाः ) बृहस्पति कोदवीका भाग है ॥ ( देवानां पत्नीः पृथयः ) देवोंकी पत्नियों पीथके भाग है, ( उपसद्ः पश्यावः ) उपसद् इष्टियां पसलियां हैं ॥ ५-६ ॥

( मित्रः च वरुणः च अंसो ) मित्र और वरुण कंधे है, ( त्वष्टा अर्थमा च दोषणी ) त्वष्टा और अर्थमा बाहुभाग है और ( महादेवः बाहू ) महादेव बाहु है । ( इन्द्राणी भसत् ) इन्द्राणी शुक्रभाग है, ( वायुः पुच्छं ) वायु पुच्छ है और ( पवमानः बालाः ) पवमान वायु बाल है ॥ ७-८ ॥

( मशं च क्षत्रं च श्रेणी ) मशान और क्षत्रिय पृष्ठ है, ( शल ऊरु ) बल जंघे है ॥ ( घाता च सविता च अग्नीवन्ती ) घाता और सविता ये दातने हैं, ( गन्धर्वाः जह्याः ) गन्धर्वे गांधे हैं ( अम्बरसुः कुष्ठिकाः ) अम्बरसुं सुरभाग हैं, ( अदितिः शुक्राः ) अदिति सुर है ॥ ( चेतोः हृदयं ) चेतना उतका हृदय है ( मेधा पकृत् ) मेधापकृति पकृत् है, ( यत् पुरीतत् ) यत् उसकी भाति है ॥ ९-११ ॥



शुक्लधिरां वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः	॥ १२ ॥
क्रोधो वृषी मन्युराण्डौ प्रजा श्रेयः	॥ १३ ॥
नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनपित्स्त्रुर्ध्वः	॥ १४ ॥
द्विश्वव्यचाश्रमर्षिघयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम्	॥ १५ ॥
देवजना गुदा मनुष्याः आन्त्राण्यग्रा उदरम्	॥ १६ ॥
रघांसि लोहितमितरज्जना ऊर्ध्वम्	॥ १७ ॥
अन्न पीवो मज्जा निघनम्	॥ १८ ॥
अभिरासीन् उदित्तोऽश्विनो	॥ १९ ॥
इन्द्रः प्राद् तिष्ठन्दक्षिणा तिष्ठन्मः	॥ २० ॥
प्रत्यद् तिष्ठन्धातोद्दृक् तिष्ठन्सचिता	॥ २१ ॥
वृणानि प्राप्तः सोमो राजा	॥ २२ ॥
मित्र ईक्षमाण आवृच आनुन्दः	॥ २३ ॥
युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम्	॥ २४ ॥

अथ— (शुक्ल धिरां) शुभा कोल है, (इरा वनिष्ठु) जब बरो भात है, (पर्वता प्लाशय) पहाड छोटी आवें हैं ॥ (क्रोध वृषी) क्रोध उसके गुणें हैं, (मन्यु आण्डौ) उसका अण्डकोश है, (प्रजा श्रेय) प्रजा मननेत्रिय हैं ॥ १२-१३ ॥

(नदी सूत्री) नदी सूत्रादी है, (वर्षस्य पतय स्तना) वर्षापति मेघ उसके लन हैं, (स्तनपित्स्त्रुर्ध्व) गर्दनेवारा मेघ वृषते पूण लन हैं ॥ (द्विश्वव्यचाश्रमर्षि) सर्वत्र फैला भाकाश चर्म है, (लोपघय लोमानि) औपधियां लोम हैं, (नक्षत्राणि रूपं) नक्षत्र रूप हैं ॥ १४-१५ ॥

(देवजना गुदा) देवजन गुदा है, (मनुष्या आन्त्राणि) मनुष्य भातें हैं, (अग्रा उदरं) मक्षक प्राणी उदर हैं ॥ (रघांसि लोहित) राजस रक्त है (इतरज्जना ऊर्ध्वम्) इतर जब लपधित अर्ध हैं ॥ (अन्न पीवः) मेघ भेदा है (निघन मज्जा) निघन मज्जा है ॥ (अभि आसीन्) अभि भासत है और (अश्विनो उदित्त) अश्विदेव उदित्त है ॥ १६-१९ ॥

(इन्द्र प्राद् तिष्ठन्) इन्द्र प्राणी दिशामे उदरता है, (यम दक्षिणा तिष्ठन्) यम दक्षिणदिशामें अवस्थान है, (प्रत्यद् तिष्ठन् धाता) पश्चिम दिशामें उदरता थाता है और (सचिता उद्दृक् तिष्ठन्) सचिता उदर दिशामें उदरता है ॥ २०-२१ ॥

(सोम राजा वृणानि प्राप्त) जब वृणको प्राप्त होता है, तब वह सोम राजा होता है, (ईक्षमाण मित्र) अण्डकोश करनेवाला सर्व और (आनुन्द आनुन्द) पराण्ड होनेपर वही भाव्य है ॥ (युज्यमान वैश्वदेव) जब जोता जाता है तब वह सब देवोंके संबंधका होता है, (युक्त प्रजापति) अनेकपर प्रजापति और (विमुक्त सर्व) अनेकपर सब कुछ बलता है ॥ २२-२४ ॥

एतद् वै विश्वरूपं सर्वरूपं मोरूपम्

॥ २५ ॥

उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पञ्चर्वसिष्ठमन्त्रि य एवं वेदं

॥ २६ ॥

अर्थ— ( एतद् वै मोरूपं ) यह निःसन्देह मोका रूप है, यही ( विश्वरूपं सर्वरूपं ) मोका विश्वरूप और सर्वरूप है ॥ ( यः एवं वेदं ) जो इस पाठको जानता है ( एतं ) उसके पास ( विश्वरूपाः सर्वरूपाः पञ्चः उपसिष्ठन्ति ) विश्वरूपी और सर्वरूपी सब पशु रहते हैं ॥ २५-२६ ॥

### मौका महात्म्य ।

इस सूत्रमें मौका महात्म्य वर्णन किया है । यहाँ गौ पशुसे गाय और बैलका अलग करना चाहिये यह स्पष्ट है । गायके अंगोंमें सर्पों देवताओंका निवास है और गाय ही सब देवोंका रूप बन जाती है । इतना गायका अधिकार इस सूत्रमें वर्णन किया है । वैदिक धर्ममें गायका इतना महत्व है । गायका दूध, दही, मखन, घी, छाछ आदि सेवन करनेसे देवताओंका सत्त्वं सेवन करनेका श्रेय प्राप्त होता है । इसी प्रकार गौगृह और गोमय सेवन करनेसे शरीर शुद्ध होता है । इस तरह गायका महत्व जानकर वैदिकधर्मों लोग गायकी सेवा करें ।

### बैल

कां. ९, सू. ४

( ऋषिः- ब्रह्मा । देवता- ऋषभा । )

साहस्रत्वेष ऋषभः पयस्वान्विष्ठा रूपाणि वृक्षमासु पिभंत ।

सुद्रे दात्रे यजमानाय शिष्यन्वार्हस्पत्य उस्तिष्ठन्तुमातान्

॥ १ ॥

अपां यो अग्ने प्रतिमा दभूवं प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीं देवी ।

पिता वृत्सानां पतिरुध्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोत

॥ २ ॥

अर्थ— ( साहस्रः त्वेषः ) हजारों शक्तिमेंसे कुछ तेजस्वी, ( पयस्वान् ऋषभः ) दूधवाला बैल ( वृक्ष-मासु विश्वा रूपाणि विश्वत् ) नदी तीरोंपर बहुत स्थानोंको धारण करना हुआ ( वार्हस्पत्यः उस्तिष्ठः ) गृहस्थिकें संरक्षक यह बैल ( दात्रे यजमानाय भद्रं शिष्यन् ) इतने देनेवाले यजमानके लिए भद्रार्थकी शिक्षा देता हुआ ( सन्तु आत्मान् ) उसके धारणको फैलाता है ॥ १ ॥

( यः अग्ने ) जो पहिले ( अपां प्रतिमा दभूवं ) जलोंके देवकी उपासना हुआ वह ( देवी पृथ्वी इय ) पृथिवी देशके समान ( सर्वस्मै प्रभूः ) सब पर प्रभाव चलावेवाला, ( वृत्सानां पिता ) बच्चोंका स्वामी ( उध्यानां पतिः ) गौओंका पति ( नः ) हमें ( साहस्रे पोषे अपि कृणोत ) हजारों प्रकारकी पुष्टिमें करे, रखे ॥ २ ॥

भाषार्थ— बैल हजारों शक्तिमेंसे कुछ है । बैल ही दूधवाला है । नदियोंके तीरोंपर इसके विविध रूप देखते हैं । इसका दान करनेसे हिम होता है और यज्ञका प्रचार होता है ॥ १ ॥

इसको जलदायी भेषोंकी उपासना ही जाती है । पृथ्वी देवीपर यह अधिक प्रभाववाला है, यह बच्चोंका पिता और गौओंका पति है । इससे हमारी हजारों प्रकारकी पुष्टि होती है ॥ २ ॥

पुमानुन्तर्वान्त्स्थविरः पर्यस्थान्वसोः कर्पन्धमृषमो विमर्ति । तमिन्द्राय पथिमिदेवपानैर्हुतमृषिर्वेदो जातवेदाः	॥ ३ ॥
पिता वत्सानां पतिरुष्यपानामथो पिता महतां गर्गराणाम् । वत्सो जरायुं प्रतिधुक्पीयूषं आमिक्षां घृतं तद्वस्पु रेतः	॥ ४ ॥
देवानां भाग उपनाह एषोऽेषां रस ओषधीनां घृतस्य । सोमस्य भक्षमंवृणीत शुक्रो बृहन्नद्रिरभनुषच्छरीरम्	॥ ५ ॥
सोमेन पूर्णं कलशं विमर्षिं त्वष्टां रूपाणां जनिता पशुनाम् । शिवास्ते सन्तु प्रजन्वा इह या इमा न्यृस्मभ्यं स्वधिते यच्छ या अमूः	॥ ६ ॥

अर्थ— (पुमान् अन्तर्वान्) पुरुष तन्त्रिका अपने अन्दर धारण करनेवाला, (स्थविरः पर्यस्थान्) बड़ा वृषवाला (कर्पन्धः कर्पन्धः विमर्ति) बेल धनके शरीरको धारण करता है। (देवपानैः पथिभिः हुतं तं) देवपान मार्गसे समर्पित हुए हुए उसको (जातवेदाः अग्निः इन्द्राय वहतु) जातवेद अग्नि इन्द्रके लिए दे जाये ॥ ३ ॥

(वत्सानां पिता) बघोंका पिता, (उष्यपानां पतिः) गौर्वोंका पति (अथो) और (महतां गर्गराणां पिता) बड़े प्रवाहोंका पाठक, (वत्सः जरायुः) बघा जैसे बाहर भाकर (प्रतिधुक् पीयूषः) प्रतिदिन अमृतका दोहन करता हुआ (आमिक्षा घृतं) दही और घी देता है (तत् उ अस्व रेतः) यह निःसन्देह इसका बीज है ॥ ४ ॥

(एषः देवानां उपनाहः भागः) यह देवोंका समीप स्थित भाग है, (अपां ओषधीनां घृतस्य रसः) जलका औषधियोंका और घीका यह रस है, (सोमस्य भक्षं शक्नो अचूर्णीत) यही सोमका रस दूधने प्राप्त किया, इसका (यद् शरीरं बृहत् अग्निः अभवत्) जो शरीर या बड़ी बघा मेघ बना है ॥ ५ ॥

(सोमेन पूर्णं कलशं विमर्षिं) सोमरससे परिपूर्ण कलशको तू धारण करता है और तू (रूपाणां त्वष्टा) रूपोंका बनायेवाला और (पशुनां जनिता) पशुओंका उत्पादक है, (याः इमाः ते प्रजन्वाः) जो ये तेरी सन्तानें हैं ते (शिवाः सन्तु) हमारे लिए शुभ हों। हे (स्वधिते) शम्भू ! (याः अमूः अस्मभ्य नि यच्छ) जो वहाँ हैं वे हमारे लिए दे ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह पुरुष है, इसके अन्दर शक्ति है, यह सामर्थ्यवाला और वृषवाला है। यह धनको धारण करता है। उस समर्पित हुये जातवेद अग्नि इन्द्रके लिये देवपालके मार्गसे ले जाता है ॥ ३ ॥

बघोंका पिता और गौर्वोंका पति, बड़ी लकड़ासमोंका स्वामी, जन्मले ही अमृतका दोहन करके देता है, तथा दही और घी देता है, मानो यह इसीका बछ है ॥ ४ ॥

यह वृष देवोंका भाग है, यह औषधियोंका रस है, यह सोमरसके साथ मिला जाता है। इसके शरीरको मेघकी ही उपमा है ॥ ५ ॥

सोमरससे भरा हुआ कलश यह धारण करता है, यह गौ भादिका उत्पादकतां, विविध रूपोंका बनायेवाला है, इसकी सन्तानें हमें कल्याणदायी हों, शम्भू इनकी रक्षा करके हमें देवे ॥ ६ ॥

आज्यं विमर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोपुस्तमु यज्ञगाहुः । इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान्देवाः शिव ऐतं दत्तः	॥ ७ ॥
इन्द्रस्यैजो वरुणस्य वाह अश्विनोरंसौ मरुतामियं ककुत् । बृहस्पतिं संमृतमेतमाहुष्यं धीरासः कवयो ये मनीषिणः	॥ ८ ॥
दैवीविश्वः पर्यस्याना वनोपि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः । सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषममाहुहोति	॥ ९ ॥
बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ त्वष्टुर्यापोः पर्यात्मा त आर्मृतः । अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे धावापृथिवी उभे स्ताम्	॥ १० ॥
य इन्द्र इव देवेषु गोभ्येति विवाचदत् । तस्य ऋषमस्याह्नानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया	॥ ११ ॥

अर्थ— ( अस्य घृतं आज्यं ) इसका घी और आज्य ( रेतः विमर्ति ) बीचको धारण करता है । ( साहस्रः पोपः ) जो हजारोंका पोपक है ( तं उ यज्ञं आहुः ) उसको यज्ञ कहते हैं । ( सः दत्तः वृषभः इन्द्रस्य रूपं वसानः ) वह दान दिया हुआ बैल इन्द्रका रूप धारण करता हुआ, है ( देवाः ) देवों ! ( अस्मान् शिवः आ यतु ) हमारे पास शुभ होकर प्राप्त होये ॥ ७ ॥

( ये धीरासः ) जो धैर्यवाले और ( ये मनीषिणः कवयः ) जो मनमशील कवि हैं वे ( एतं संमृतं बृहस्पतिं आहुः ) इस संसारपुत्रको बृहस्पति कहते हैं तथा यह ( इन्द्रस्य आजः ) इन्द्रकी शक्ति, ( वरुणस्य वाहः ) वरुणके बाह, ( अश्विनोः अंसौ ) अश्विनदेवोंके कन्धे, ( मरुतां इयं ककुद् ) मरुतोंकी कोहनी है ऐसा कहते हैं ॥ ८ ॥

त ( पयस्यान् दैवीः विशः आ तर्नापि ) दूधवाला दिव्यपुत्री प्रजाको उपपन्न करता है । ( त्वां इन्द्रं ) तुझे इन्द्र और ( न्यां सरस्वन्तं आहुः ) सावधान कहते हैं ( यः ब्राह्मणः ) जो ब्राह्मण ( ऋषमं आ जुहोति ) बैलका दान करता है ( सः एकमुखाः सहस्रं ददाति ) वह एक स्थानपर मुस करता हुआ हजारोंका दान करता है ॥ ९ ॥

( बृहस्पतिः सविता ) बृहस्पति और सविता ( ते वयो दधौ ) वेही आपुको धारण करते हैं । ( ते आत्मा ) वेही आत्मा ( त्वष्टुः पार्योः परि आस्तुतः ) स्वष्टा और वायुसे परिपूर्ण हैं । ( मनसा न्या अन्तरिक्षे जुहोमि ) मनसे तुझे अन्तरिक्षमें अर्पण करता हूँ, ( उभे धावापृथिवी ते बर्हिः स्ताम् ) दोनों तुलोक और भूलोक वेरे आसन हो ॥ १० ॥

( देवेषु इन्द्रः इव ) देवोंमें इन्द्रके समान ( यः गोषु विवाचदत् पति ) जो गौओंमें चन्द करता हुआ चलता है । ( तस्य ऋषमस्य अंगानि ) उस बैलके अंगोंकी ( भद्रया ब्रह्मा संस्तौतु ) प्रशंसा शुभवाणीसे प्रशंसा करे ॥ ११ ॥

भाष्यार्थ— यह घी और बीच धारण करता है, हजारों प्रकारकी पुष्टि देता है अतः इसको यज्ञ कहते हैं । यह इन्द्रका रूप धारण करके हमारे शिष्य शुभ होये ॥ ७ ॥

जो धैर्ययुक्त कवि और शाली है वे इसको शिवताओंकी शक्तियोंसे पुण मानते हैं, इसमें बृहस्पति, इन्द्र, वरुण, अश्विनो, मरुत् इनकी शक्तियाँ हैं ॥ ८ ॥

यह दूध देनेवाला बैल उत्तम प्रजा उपपन्न करता है, उसको सावधान इन्द्र कहते हैं । जो बैलका समर्पण करता है उसको हजारों दानोंका श्रेय प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

बृहस्पति और सविताने उसकी आपुको धारण किया है । स्वष्टा और वायुका साथ इसमें है । इसका मनसे अन्तरिक्षमें समर्पण करनेसे भूमिपर और आकाशके बीच यह रहता है ॥ १० ॥

देवोंमें इन्द्रके समान यह बैल गौओंमें है । शाली ही इसके अवयवोंके महत्त्वका कथन कर सकता है ॥ ११ ॥

पाशें आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनुवृजौ । अष्टीवन्तावन्नवीन्मित्रो ममैतौ केवलविति ॥ १२ ॥  
 भसदासादादित्यानां श्रेणीं आस्तां वृहस्पतेः । पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः ॥ १३ ॥  
 गुदा आसन्तिस्नीचाल्याः सूर्यायास्त्वर्चगन्धुवन् । उरथातुरंशुवन्पद ऋषुमं यदकल्पयन् ॥ १४ ॥  
 क्रौड आसीज्जामिहंसस्य सोमस्य कलशो धृतः । देवाः संगत्य यत्सर्वं ऋषुमं व्यकल्पयन् ॥ १५ ॥  
 ते कुष्टिकाः सरमाथे कूर्मभ्यो अद्धुः शफान् । ऊर्ध्वमस्य क्रीडेभ्यः श्वतेभ्यो अवारयन् ॥ १६ ॥  
 शृङ्गाभ्यां रक्षं ऋष्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा । शृणोतिं भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरभ्यः ॥ १७ ॥  
 श्रुतपालं स यजते नैनं दुन्द्वन्यग्रयः । जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषुममांशुहोति ॥ १८ ॥

अर्थ— (पाशें अनुमत्या. आस्तां) दोनों पासे अनुमतिके हैं, (अनुवृजौ भगस्य आस्तां) पसलिके दोनों भाग गपके हैं, (मित्रः अन्नवीत्) मित्रने कहा कि (अष्टीवन्तां केवली पती मम इति) दो घुटने केवल मेरे हैं ॥ १२ ॥

(भसदा आदित्यानां आसीत्) पृथ्वेशका अन्तिम भाग आदित्योका है, (श्रेणी वृहस्पतेः आस्तां) वृद्धे वृहस्पतिके हैं, (पुच्छं वातस्य देवस्य) पुच्छ वायु देवका है, (तेन ओषधीः धूनोति) उससे औषधियोंको दिखाता है ॥ १३ ॥

(गुदाः स्नीचाल्याः आसन्) गुदाभाग स्नीचालीके हैं, (त्वर्चं सूर्याया अन्धुवन्) त्वचा सूर्यप्रभाकी है, ऐसा कहते हैं । (पदः उरथातुः अन्धुवन्) पैर उरथाताके हैं ऐसा कहा है, (यत् ऋषुमं अकल्पयन्) इस प्रकार बैलकी कल्पना विद्वानेले की है ॥ १४ ॥

(क्रौडः जामिहंसस्य आसीत्) गोद जामिहंसकी थी, (कलशः सोमस्य धृतः) कलश सोमके द्वारा धारण किया गया है, इस प्रकार (सर्वं देवाः संगत्य) सब देव मिलकर (यत् ऋषुमं व्यकल्पयन्) बैलकी कल्पना करते हैं १५

(कुष्टिकाः सरमाथे ते अद्धुः) कुष्टिकोंको सरमाके लिए उन्धोंने धारण किया और (शफान् कूर्मभ्यः) शुरोंको कछुओंके लिए धारण किया । (अस्य ऊर्ध्वं) इसका भयम अब (श्ववर्तिभ्यः क्रीडेभ्यः आधारयन्) कुत्तेके साथ रहनेवाले कीड़ोंके लिए रख दिया ॥ १६ ॥

(यः शृङ्गाभ्यां रक्षं पतिः) जो गौबोंका हलके अयोग्य पति अर्थात् बैल है, वह (कर्णाभ्यां भद्रं शृणोति) कानोंसे कल्पनाकी बातें सुनता है, (शृङ्गाभ्यां रक्षः ऋषति) सीपोंसे राक्षसोंको हटा देता है और (चक्षुषा अर्वाति हन्ति) आंखसे अनाक्योंको नष्ट करता है ॥ १७ ॥

(यः ब्राह्मणे ऋषमं आंशुहोति) जो ब्राह्मणोंको बैलका समर्पण करता है (तं विश्वे देवाः जिन्वन्ति) उसको सब देव तृप्त करते हैं । (सः श्रुतपालं यजति) वह यैकको गाऊँके द्वारा यज करता है और (एतं अन्नयः न दुन्द्वन्ति) इसको जसि बट नहीं देते ॥ १८ ॥

भावार्थ— इसके अवयवोंमें अनुमति, भग, मित्र, आदित्य, वृहस्पति, वायु आदि देवताओंका अविष्टान है ॥ १२-१३ ॥

स्नीचाली, सूर्यप्रभा, उरथाता, जामिहंस, सोम हल देवताओंके लिए प्रथम गुदा, त्वचा, पैर, गोद, कलश ये इसके अवयव माने गये हैं । इस तरह सब देवोंने इस बैलके विषयमें कल्पना की है ॥ १४-१५ ॥

सरमा, कूर्म, अर्वाति, मिमी आदिके लिए इसके कुष्टिका, सुर और अर्वाति भयनाग रखे गए हैं ॥ १६ ॥

बैल गौका पति है । वह कानोंसे रक्षम शब्द सुनता है, सीपोंसे कछुओंको हटाता है और आंखसे अनाक्योंको नष्ट करता है ॥ १७ ॥

जो ब्राह्मणोंको बैल दान देता है, उसकी सब देव तृप्ति करते हैं । वह सैपयों प्रकारके यज्ञोंके द्वारा यज्ञ करता हुआ अग्निसे भयसे दूर रहता है ॥ १८ ॥

ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः । पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्टेऽर्च पश्यते ॥ १९ ॥

गर्वाः सन्तु प्रजाः सन्त्वर्थो अस्तु तनूबलम् । तत्सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषभदायिभे ॥ २० ॥

अयं पिपातु इन्द्र इद्रयि दधातु चेतनीम् ।

अयं घ्रेतुं सुदुर्घां नित्यवस्तां वशीं दुहां विपथितं पुरो दिवः ॥ २१ ॥

पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुभ्रो विश्वरूपो न आगन् ।

आपूरस्मभ्यं दधत्प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥ २२ ॥

उपेहोर्षवर्चनासिन्गोष्ठ उपं पृश्च नः । उपं ऋषभस्य यदेत उपेन्द्र तव वीर्यम् ॥ २३ ॥

वर्ध— (ब्राह्मणेभ्यः ऋषभं दत्त्वा) ब्राह्मणोंको बैल देकर जो अपना (मनः वरीयः कृणुते) मन भेद बनाता है । (सः स्वे गोष्टे) वह अपनी गोशालामें (अघ्न्यानां पुष्टिं अर्च पश्यते) गौशौकी पुष्टि देखता है ॥ १९ ॥

(गावः सन्तु) गौधें हों, (प्रजा सन्तु) प्रजाए हों (अधो तनूबलं अस्तु) नीचे शारीरिक बल हो । (तत् सर्वं) यह सब (ऋषभदायिभे) बैल देनेवालेके लिये (देवाः अनुमन्यन्तां) देव अपनी अनुमतिके साथ देवे ॥ २० ॥

(अयं पिपातुः इन्द्रः इत्) यह पुष्ट इन्द्र (चेतनीं रयिं दधातु) चेतना देनेवाले धनको धारण करे । तथा (अयं) यह इन्द्र (सुदुर्घां) उत्तम होने योग्य (नित्यवस्तां) बलशुके साथ उपस्थित, (वशीं दुहां) वशमें रहकर देने योग्य, (विपथितं धेनुं) शलघनक धेनुको (पुरः दिवः) अष्ट फुलोकसे परेसे धारण करे ॥ २१ ॥

(पिशंगरूपः) लाल रंगवाला, (नभसः) आकाशसे (ऐन्द्रः शुभ्रः) इन्द्रके संबंधी बल धारण करनेवाला (विश्वरूपः वयोधाः नः अगन्) समस्त रूपसे युक्त अन्नका धारण करनेवाला हमारे पास आया है । वह (आयुः प्रजां च रायः च) आयु, प्रजा और धन (अस्मभ्यं दधत्) हमारे लिए धारण करता हुआ (पोषैः नः अभिसन्तानां) पुष्टियोंसे हमें प्राप्त होवे ॥ २२ ॥

(इह अस्मिन् गोष्टे) यहाँ इस गोशालामें (उप उप पृश्चं) समीप रह और (नः उपपुञ्जं) हमें प्राप्त हो । (ऋषभस्य यत् रेतः) वृषभका जो बीर्य है, हे इन्द्र ! (तव वीर्यं उप) वह तेरा बीर्य हमारे पास आजावे ॥ २३ ॥

भ्रवाथ— जो ब्राह्मणोंको बैल दान करके अपना मन भेद बनाता है, वह अपनी गोशालामें बहुतसी पुष्ट गौधें देखता है ॥ १९ ॥

बैलका दान करनेवालेको देवोंकी अनुमतिके गौधें मिलती हैं, प्रजा उत्पन्न होती है और शरीरका बल भी प्राप्त होता है ॥ २० ॥

यह प्रभु चैतन्ययुक्त गौधयी धन हमें देवे । यह फुलोकके परेसे देसी गौ लावे कि जो उत्तम दूध देनेवाली, विश्व बलशुके साथ रहनेवाली, विना कष्ट दूध देनेवाली और स्वामीको पहचाननेवाली हो ॥ २१ ॥

आकाशसे बैल देता आया है कि जो लाल रंगवाला, फलवान्, अनेक रागसे युक्त, अन्नको देनेवाला है । यह हमें आयु, प्रजा और धन हमारे लिए देवे और हमें पुष्टि देवे ॥ २२ ॥

यह बैल इस गोशालामें रहे, हमारे पास रहे । इस बैलका जो बल है वह इन्द्रकी शक्ति है, वह हमें प्राप्त हो ॥ २३ ॥

एतं चो युवानं प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीधरत यशं अनु ।  
मा नो हासिष्ट जुषुषा सुभागा रायश्च पोषैरमि नः सचष्वम्

॥ २४ ॥

अर्थ— ( एत युवान य. प्रतिदध्मः ) इस युवाको हम भारते छिद्र समर्पित करते हैं, ( अत्र तेन क्रीडन्तीः धरत ) यदा उसके साथ खेलती हुई विष्णो और ( धशानु अनु ) इच्छित स्थानोंके प्रति जाओ । हे ( सुभागा. ) भाग्यदुशत गौत्रो ! ( जुषुषा मा हासिष्ट ) जन्मके साथ हमारा त्याग न करो, ( च पोषैः रायः ) पुष्टियोंके साथ रहनेरहते धर ( न. अभिलक्ष्यं ) हमें दो ॥ २४ ॥

भाष्यार्थ— इन गौत्रोंके पास हम इस बैलको बांधते हैं । इसके साथ ये गौत्रें खेलें, कूदे और विषयें । जहा पादे बहा धूमैः गौत्रें हमारा त्याग न करें, हमारे पास रहें । पुष्ट हों और हम सबको पुष्ट करें ॥ २४ ॥



## बैल

### बैलकी महिमा

इस सूक्तमें बैलकी महिमाका वर्णन है । उत्तमसे उत्तम बैलका धरमें पाठन करनेसे कितने लाभ होते हैं इसका वर्णन इस सूक्तमें पाठक देखें—

साहस्रस्वयेष. ऋषभः पयस्यान् । ( म १ )

“इसमें तेजोसे और बलसे युक्त यह बैल है और यह ( पयस्यान् ) दूध देनेवाला है ।” पाठक यहां आश्चर्य करेंगे कि बैल दूध देनेवाला किस प्रकार हो सकता है । प्रथम और दूसरी मन्त्रमें इस बैलको ( पयस्यान् ) दूधबाला कहा है । अतः इस वर्णनमें कुछ हेतु हैं । जैसा बैल होता है वैसा उसकी गौरव्य सत्त्विकमें दूध न्यूनताधिक होता है । अर्थात् गौमें दूध उत्पन्न करनेकी शक्ति बैलपर निर्भर है । कई जातिके बैल कम दूध देनेवाली सजान पैदा करते हैं और कई जातिके बैल विशेष दूध देनेवाली सजान उत्पन्न करते हैं । अतः यदि अधिक दूध देनेवाली गौमें उत्पन्न करनेकी क्षमता हो, तो अधिक दूध देनेवाली गौओंके साथ उस जातिका बैल रखना चाहिये कि जो अधिक दूध देनेवाली जातिका हो । ऐसी गौमें और ऐसे बंध एक स्थानपर रखने चाहिये । अर्थात् कम दूध देनेवाली जातिके बैल अधिक दूध देनेवाली गौके साथ कदापि नहीं रखना चाहिये क्योंकि इससे उत्पन्न होने वाली गौका दूध बर जायगा । अतः २४ वें मन्त्रमें कहा है—

एतं चो युवान प्रतिदध्म तेम अत्र क्रीडन्तीधरत यशं अनु । ( म २४ )

“इस युवा बैलको गौत्रोंके साथ रखते हैं, इसके साथ ये गौत्रें खेलें और इष्ट प्रदेशमें विचरें ।” अर्थात् यह फलानी जातिका बैल है और ये फलानी जातिका गौत्रें हैं, इन दोनोंका संबन्ध हम करना चाहते हैं । इस संबंधसे विशेष प्रकारकी सजान पैदा होगी । इस प्रकार गौत्रोंमें भी किसी भी गौका किसी भी बैलके साथ संबन्ध होना इष्ट नहीं है । विशेष जातिकी गौके साथ विशेष जातिके बैलका ही संबन्ध होना अभीष्ट है । गौत्रोंमें जातिका सकर होने देना कदापि युक्त नहीं है । यदि मिला जातिके संबन्ध होना है तो उच्च जातिवाले नरके साथ संबन्ध हो और नीच जातिवाले नरके साथ सम्बन्ध न हो । यदि दूध बढ़ानेकी इच्छा हो तो अधिक दूध देनेवाली जातिके बैलके साथ गौका सम्बन्ध हो, यदि बाढ़क शक्तिवाले बैल उत्पन्न करनेकी इच्छा हो तो उत्तम बाढ़क शक्तिवाले बैलके साथ सम्बन्ध हो । गौत्रोंके अन्तर्की वष जातियोंकी भी रक्षा करना योग्य है और अन्तर्गत विशेष जातिकी ही उत्पन्न करनेका पालन होना चाहिये । जातिसकर होनेसे गुणोंकी न्यूनता होती है और जातिकी शुद्धता रहनेसे गुणोंका संवर्धन हो जाता है । इस सूक्तके इस तरह गौत्रोंकी जातियोंकी रक्षा करने अथवा अनुलोम सम्बन्धसे उच्च नरके साथ सम्बन्ध रखने गौत्रोंका संवर्धन करनेका उपदेश है अतः बैलके रक्तमें दूध बढ़ानेका गुण है, यह बात कही है । इसका विचार पाठक करें । अस्तु, यह बैल—

वक्षणासु विश्वा रुपाणि विशन्तु । ( म १ )

“नदीके किनासोंपर यह बैल बाकने विविध स्त्योंको धारण

करता है।" अर्थात् यह नदीके किनारेपर रहकर घास आदि खाकर बधेष्ट पुष्ट होकर विचरता है और गौवोंमें विविध प्रकारके अपने रूपोंका आधान करता है। यदि पशु खा पी कर पुष्ट न बने, तो उत्तम संतान निर्माण करनेमें असमर्थ होगा। इसलिये सारको मज्जा पुष्ट बनाना चाहिये इस प्रकार—

उशियः तन्तुं आतान् । ( म १ )

" अपने प्रजापत्यको पैलाता है।" अर्थात् गौवोंमें गर्भाधान करके उत्तम संतान उत्पन्न करता है। यही रीति है कि जिससे गौवीं और बैलोंका उत्तम निर्माण हो सकता है। ऐसे उत्तम जातिके बैल—

दात्रे भद्रं शिक्षन् । ( म १ )

" दामाके लिये कल्याण देते हैं।" जो मनुष्य ऐसे उत्तम बैल आचार्योंको दान देता है उसका कल्याण होता है। अर्थात् आचार्य, ब्राह्मण आदिके पास बहुत शिष्य होते हैं, मरतः उनके आश्रमोंमें अधिक दूध देनेवाली गौएँ हों, तो यहाके मज्जाचारी दूध पीकर पुष्ट रह सकते हैं। मरतः ऐसे उत्तम बैल और उत्तम गौवोंको ऐसे आचार्योंको देना कल्याणप्रद है। इस सूत्रमें इस प्रकारके दामके लिये प्रेरणा इस तरह की है—

सहस्रं स एकमुखा ददाति

यो ब्राह्मणे ऋषभमाशुहोति । ( म ९ )

जिन्यन्ति विभ्ये तं देया

यो ब्राह्मणे ऋषभमाशुहोति । ( म. १८ )

ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः ॥

( म. १९ )

तत्सर्वमनुमन्यन्तां देया ऋषभदायिने ॥ ( म २० )

" जो ( ब्राह्मणे ) ब्राह्मणको बैल समर्पण करता है वह एक रूपमें हजारों दान करता है। उसको सब देव तृप्त करते हैं जो ( ब्राह्मणे ) ब्राह्मणके घरमें बैलका समर्पण करता है। ब्राह्मणोंको बैल दान देकर मन श्रेष्ठ बनाता है। जो बैलका दान करता है उसके लिये सब देव अनुकूल होते हैं।"

विद्वाद्, ज्ञानी, सदाचारी आचार्योंको उत्तम बैल दान करनेकी प्रेरणा इस सूत्रमें की है। इसका आत्यर्थ पूर्व स्थावरे जैसा बताया है वैसा ही समझना चाहिये। यही विषय महाभारतमें निम्नलिखित रीतिसे स्पष्ट किया है—

दत्त्वा घेतुं सुमत्रां कांस्यदोहां

कल्याणवत्तानपलायिनीं च ।

यावन्ति रोमाणि भवन्ति तस्या-

स्तावद्वर्षाण्यश्नुते स्वर्गलोकम् ॥ ३३ ॥

३८ ( अथर्व. भा. ३. १. दिग्दी )

तथाऽनश्नुवाहं ब्राह्मणेभ्यः प्रदाय

दान्तं धुर्यं बलवन्तं युवानम् ।

कुलानुजीव्यं वीर्यवन्तं बृहन्तं

भुङ्क्ते लोकान्समितान्धेनुदस्य ॥ ३४ ॥

गोपु क्षान्तं गोशरण्यं कृताश्रं

शुचिग्लानं तादृशं पात्रमाहुः ।

घृष्टं ग्लाने संभ्रमे वा महाह्रं

कृण्वर्थं या होम्यहेतोः प्रसृत्याम् ॥ ३५ ॥

गुरवैर्षं वा बालपुष्ट्याभियज्ञां

गां वै दान्तुं देशकालोऽपिशिष्टः ।

( म भा अथुना अ ७१ )

" दान करनेके लिये गौ ऐसी हो कि जो उत्तम स्वभाव-वारी, यद्ये कांस्यके बर्तनमें चितका होइन होता हो, जिसके बगड़े उत्तम होते हो, जो न भगती हो। इसी प्रकार ब्राह्मणोंको दान करनेके लिये योग्य बैल चोखा दोनेवाला, उत्तम कल्याण, युवा, वीर्यवान्, यद्ये शरीरबला हो। ऐसे बैलका दान करनेवालेको स्वर्गदान होता है। गौ ऐसे विद्वान्को देनी चाहिये कि जो गौका मज्जा हो, गोपालक हो, सौते लियमें कृच्छ्र हो, वृत्तिहीन हो। गृहको शिष्य उत्तम गौ दान देवे।" इस रीतिसे महाभारतमें गौदान और दूधन दानका विषय कहा है। हरएक ब्राह्मण गौका दान देनेका अधिकारी नहीं है। इस विषयमें महाभारत और अथर्ववेदके सूत्रोंमें बहुत नियम हैं, उनका विचार पाठक भवदय करें—

असद्वृत्ताय पापाय लुब्धायाऽनुतथादिने ।

हृष्यकण्ठव्यपेताय न देया गोः कर्षचन ॥ १५ ॥

भिक्षये यद्दुपुत्राय श्रेष्ठियायाहिताश्रये ।

दत्त्वा दशगणां दत्ता स्तोत्रान्प्रोत्पनुत्तमात् ॥ १६ ॥

( म भा अथुना अ ६९ )

" दुराचारी, पापी, लोभी, असत्यभाषी, हृष्यकण्ठ न देने वालेको कमी गौ नहीं देनी चाहिये। भिक्षारत जीविका निर्वाह करनेवाले, बहुत पुत्रवाले, वेदज्ञानी, अग्निहोत्रको गोदान करनेसे स्वर्ग प्राप्त होता है।" इस प्रकार महाभारतमें वर्णन है। यह देखनेसे पता लगता है कि विद्वान् सदाचारी आचार्योंको ही गौ दान करना योग्य है। केवल ब्राह्मणवृत्तमें उत्तम होनेसे गौदान लेनेका अधिकारी नहीं हो सकता। तथा अपवैवेदमें बन्धव भी कहा है देखिये—

यो ददाति शतौदनाम् । ( अथर्व. १०।१५, ९, १० )

ब्राह्मणेभ्यो यथां दत्त्वा सर्वान्स्तोकान्समदशुते ।

( म. १०।१।१३ )



आपो देवीर्मधुमतीर्भृतदक्षुतो  
ब्राह्मणां हस्तेषु प्र पृथग्भसादयामि ॥

( अ. १०।१।२० )

‘ शतौदना गौका दान करता है । ब्राह्मणोंको वश गौ दान करनेसे सब श्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति होती है । ब्राह्मणोंके हाथोंपर दानका उदक धृषक् धृषक् घोव्या हूँ अर्थात् दान करता हूँ । ’ इन मंत्रोंसे स्पष्ट बोध होता है कि ब्राह्मणोंको गौदान करना चाहिये । यहाँ विचार करना चाहिये कि कौनसे ब्राह्मणको इस प्रकार गौका दान करना चाहिये । निम्न-लिखित मंत्रोंसे इसका उत्तर मिलता है—

शिशो यज्ञस्य यो विद्यात्स वशां प्रतिगृक्षीयात् ।

य एवं विद्यात्स वशां प्रतिगृक्षीयात् ॥

य एवं विदुषे वशां द्रुवस्ते गतास्त्रिविधं दिवः ॥

सा वशा दुष्पतिप्रहा ॥

( अथर्व. १०।१।०२; २०; ३२; २८ )

‘ जो वृद्धके शिरको अर्थात् मुख्य नागको ठीक प्रकार जानता है वह गौका दान लेवे । जो इस ज्ञानसे युक्त है वह गौका दान लेवे । जो इस प्रकारके ज्ञानीको गौका दान करावे हैं वे स्वर्गको प्राप्त करते हैं । अन्नोंको अर्थात् जो इस ज्ञानसे युक्त नहीं हैं उनको गौका दान नहीं देना चाहिये । ’

इन मंत्रोंमें विशेष ज्ञानी आत्मानिष्ठ ब्राह्मणोंको गौका दान करना योग्य है ऐसा स्पष्ट कहा है । इसलिये ब्राह्मणको गौदान करनेमें कोई पक्षपात नहीं है । जो ब्राह्मण शूद्रके मनुष्योंको ज्ञान देता है और जो धर्मकी मूर्ति है, उसके उत्तम गौश्राका दान करना योग्य है । ब्राह्मण जातिमें उत्पन्न पापी मनुष्योंको कदापि गौश्राका दान करना योग्य नहीं है । गौके और बैलके दानके विषयमें यही समान उप-देश है ।

अपां यो अग्ने प्रतिमा वभूत्

प्रभुः सर्वस्मै पृथिवीय देवी । ( मं. २ )

‘ बैलकी उपमा केवल मेघकी है, यह सबका प्रभु है और देवी पृथ्वीके समान यह सबका उपकारक है । ’ जिस प्रकार जलदान करनेसे मेघ सबको जीवन देता है और भस्त्र देनेके कारण पुष्टिका हेतु होता है, उस प्रकार बैल भी भस्त्र उत्पन्न करता है, कृषिका साधक है और गौके द्वारा अमृत रूपी जीवनदास देता है । इसलिये मेघ और बैल समानतया उपकारक हैं । अतः बैलको वेदमें मेघोंकी उपमा दी है । यह बैल हस्त—

साहृद्ये पोषे अपि नः कृणोत । ( मं. २ )

‘ हजारों प्रकारकी दुष्टिमें रहे । ’ अर्थात् हमारा उत्तम रीतिसे सहायक बने । इनके भागे मंत्र ३ और ४ में बैलके गुणोंका उत्तम वर्णन है यह अति स्पष्ट है । पंचम मंत्रमें ( सोमस्य भक्षः ) सोमका भक्ष बनानेका वर्णन है । सोमरसके साथ दूध मिलानेसे उत्तम पेय होता है, ऐसा अन्यत्र वेदमें कई स्थानोंमें कहा है । उसी सोमके भक्षका यहाँ उल्लेख है । ( भोषघीनां रसः ) भोषघीयोंके रसके साथ गायके दूध पीनेकी यह वैदिक रीति यहाँ देखने योग्य है । बैलके कारण गौमें दूध उत्पन्न होता है, इसलिये इस पेयका हेतु बैल है ऐसा यहाँ कहा है, वह बात दुर्लभयुक्त है । यह बैल—

सोमेन पूर्णं कलशं धिभर्ति । ( मं. ६ )

‘ सोमरससे भरे हुए कलशको धारण करता है । ’ यह अमृत रसका कलश गौका स्थान वा रूप है, जिसमें विपुल दूध रहता है । गायका दूध भी सोमशक्तिसे युक्त होता है, यह सोमशक्ति सोमादि शुद्ध वनस्पतियोंके भक्षणसे गौमें उत्पन्न होती है । इस रीतिसे देखा जाय तो गौ सोमरसका कलश धारण करती है और यह बैल गौके अन्दर इस सोमरसको धारण करता है, यह बात स्पष्ट होजायी है । इस प्रकार यह सोमरसका आधार बैल—

इन्द्रस्य रूपं घसानः । ( मं. ७ )

‘ इन्द्रके रूपको धारण करनेवाला है । ’ यह बैल इन्द्रकी शक्तिको अपने अन्दर धारण करता है, इसीलिये इसको—

आज्यं विभर्ति भृतमस्य रेतः

साहृद्यः पोपस्तनु यज्ञमाहुः । ( मं. ७ )

‘ गौका धारक, शीर्षका स्थान और हजारों प्रकारकी पुष्टियां देनेवाला करते हैं । ’ यदि यह बैल गौमें दूध अधिक उत्पन्न करनेका हेतु है, तो यही वी और शीर्षका वर्षक भी निश्चयसे है, क्योंकि जो दूधका बदनेवाला है वही शीर्षका बनानेवाला होता है । गौके दूधको बैलक प्रयोगमें ( स्रष्टुत् शुक्रकरं स्वादु ) शीघ्र शीर्ष बदनेवाला कहा है । इनको अन्य उपायोंसे जो शरीरका पोषण होता है वह इस अकेले गौके दूधसे हो सकता है । यह सामर्थ्य गायके दूधमें है । गौका और बैलका दूधका महत्त्व होनेसे हरका काव्यमय घर्षण इस दूधमें आगे किया है । इसके दूरयुक्त अवयवमें देवताका अंश है यह बात मं. ८ से मं. १६ तक कही है । प्रत्येक अवयवमें

किस देवदाका भंश है यह वर्णन ऐलनेसे गौका और बैलका  
द्वारि देवतामय है, यह बात स्पष्ट हो जाती है। मानो गौका  
दूध देवताओंका सत्य है। यहां पाठक विचार करें कि वेदने  
गौके दूधका जो इतना माहात्म्य वर्णन किया है वह इसलिये  
कि वैदिकधर्मी लोग गायका ही दूध विधि और गायका ही  
की भाँति सेवन करें। बैलका दूध कभी न विधे।

१० वें मंत्रमें कहा है कि यह बैल सींगोंसे राक्षसोंका  
नाश करता है और आँसूसे अकालका नाश करता है। यद्यपि  
यह आराध्यकारिक वर्णन है, तथापि यह सत्य है। बैलके  
मानव ज्ञातिपर इतने अनंत उपकार हैं कि उनका गणार्थ  
वर्णन करना असंभव है। राक्षस नाशक बैलका वर्णन पात-  
पथ ब्राह्मणमें इस प्रकार आया है—

भनोर्दं वा ऋषभ आस। तस्मिन्सुररुपि सप-  
त्न्यनी याकप्रविष्टास। तस्य हृत्स्वस्थाद्रवथा-  
दसुररुक्षसानि मृधमानानि यन्ति। ते हासुराः  
सम्पूदिरे पापं यत नोऽयमृषभः सचते कथं

न्यिमं दुःभुयामिति० ॥ ( स० भा० १ )

" मनुका एक बैल था, उसमें असुरों और सपत्नोंकी  
नाशक बाली प्रविष्ट हुई थी, अतः उसके घासते असुर और  
राक्षस मर्दित होते हुए नष्ट होजाते थे। वे असुर मिलकर  
विचार करने लगे कि, ' यह बैल बड़ा पापी है, इसका  
किसा नाश करें ' इत्यादि। यह सब वर्णन आराध्यकारिक है।  
इससे यहां इतना ही लेना है कि बैलमें असुरनाशक  
शक्ति है।

१८ वें मंत्रमें ब्राह्मणको बैल दान करनेका महत्त्व पुनः  
कहा है। यह एक दान सेंकड़ों दानोंके समान है यह कथन  
भी विशेष मननीय है। आनेके तीन मंत्रोंमें बैलके दानका  
महत्त्व वर्णन किया है, इस विषयमें इससे पूर्व बहुत लिखा  
गया है। इसी प्रकार अन्तिम तीन मंत्रोंमें बैलकी ऐन्द्री  
शक्तिका वर्णन है, ऐसे बैलोंको गौओंके साथ रखनेका उप-  
देश अन्तिम मंत्रमें किया है। ये सब विचार गौ और बैल  
का महत्त्व वर्णन कर रहे हैं।

## गौशाला

कां. ३, सू. १४

( ऋषि— ऋषा। देवता— नानादेवता गोष्ठेदेवता। )

सं वौ गोष्ठेन सुपदा सं रय्या सं सुधृत्या । अहर्जातस्य चनाम वेनां वः सं संजामसि ॥ १ ॥  
सं वः सुजत्वर्षमा सं पूषा सं बृहस्पतिः । समिन्द्रो यो धनंजयो मयि पुष्यतु यद्रसुं ॥ २ ॥

अर्थ— हे गौशो ! ( वः सुपदा गोष्ठेन सं ) तुमको उत्तम बैठने योग्य गोशालासे युक्त करते हैं, ( रय्या सं )  
उत्तम कलसे युक्त करते हैं और ( सु-भृत्या सं ) उत्तम रहने सहनेसे अथवा उत्तम प्रजननसे युक्त करते हैं। ( यत्  
अहर्जातस्य नाम ) जो दिनमें श्रेष्ठ वस्तु मिल जाय ( तेन वः संसृजामसि ) उससे तुमको सुख करते हैं ॥ १ ॥

( अर्थमा वः संसृजतु ) अर्थमा तुमको उत्तम करे, ( पूषा सं, बृहस्पतिः सं ) पूषा और बृहस्पति भी तुम्हें  
उत्तम करे। ( यः धनंजयः इन्द्रः सं संसृजतु ) जो धन प्राप्त करनेवाला इन्द्र है वह तुमको धनसे समुत्तम करे। ( यत्  
वसु ) जो धन तुम्हारे पास है उसे ( मयि पुष्यत ) तुममें तुम उष्ट करो ॥ २ ॥

भाषार्थ— गौओंके लिये उत्तम प्रयास और स्वच्छ गोशाला बनानी जाय। गौओंके लिये उत्तम ऋतु घनेकी दिया  
जाय, तथा गौओंके उत्तम सुखसुख संतान उत्पन्न करनेकी दृष्टता सदा रखी जाय। गौओंसे इतना प्रेम किया जाय कि  
दिनके समय गौके योग्य उत्तमसे उत्तम पदार्थ प्राप्त कराकर वह उनको दिया जाय ॥ १ ॥

अर्थमा, पूषा, बृहस्पति तथा धन प्राप्त करनेवाला इन्द्र आदि सब देवताएक गौओंकी पुष्टि करें। तथा उष्ट गौओंमें  
को योग्य रस मिल सकता है वह दूध भरी पुष्टिके लिये मुझे मिले ॥ २ ॥

संजग्मना अर्धभ्युषीरस्मिन्गोष्ठे क्रीपिणीः । पित्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ॥ ३ ॥

इहैव गाव एतनेहो शकैव पुष्यत । इहैवोत् प्र जायध्वं मयिं संज्ञानमस्तु वः ॥ ४ ॥

शिवो वीं गोष्ठो भवतु शारिशाकैव पुष्यत । इहैवोत् प्र जायध्वं मया वः सं संज्ञामसि ॥ ५ ॥

मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वीं गोष्ठ इह पोषयिष्युः ।

रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुषं वः सदेम ॥ ६ ॥

अर्थ-- ( अस्मिन् गोष्ठे संजग्मनाः ) इस गोशालामें मिलकर रहती हुई, ( क्रीपिणीः ) गोबरका उत्तम खाद उत्पन्न करनेवाली तथा ( सोम्यं मधु पित्रतीः ) गांव मधुररस-दूध-को धारण करती हुई हे गोवें ! तुम ( अर्धभ्युषीः ) निर्गम होकर ( अन्- अर्धियाः उपेतन ) बीरोग अवस्थामें हमारे पास आओ ॥ ३ ॥

हे ( गायः ) गोभो ! ( इह एव पतन ) यहीं आओ और ( इहो शका इव पुष्यत ) यहां शाकसे समान पुष्ट होओ ( उत इह एव प्रजायध्वं ) और यहींपर बच्चे उत्पन्न करके, बचो । ( यः संज्ञानं मयि अस्तु ) भारका लगन-प्रेम-मुझमें होवे ॥ ४ ॥

( वः गोष्ठः शायः मधुतु ) तुम्हारी गोशाला तुम्हारे लिये हितकारी होवे । ( शारि-शाका इव पुष्यत ) शालिकी शाकसे समान पुष्ट होओ । ( इह एव प्रजायध्वं ) यहींपर प्रजा उत्पन्न करो और बचो । ( मया वः संज्ञामसि ) अपने साथ तुमको भ्रमणके लिये ले जाता हूँ ॥ ५ ॥

हे ( गायः ) गोभो ! ( मया गोपतिना सचध्वं ) मुझ गोपतिके साथ मिली रहो । ( वः पोषयिष्युः अयं गोष्ठः इह ) तुमको पुष्ट करनेवाली यह गोशाला यहां है । ( रायः पोषेण बहुलाः भवन्तीः ) शोभाकी वृद्धिके साथ बहुत बढ़ती हुई और ( जीवन्तीः यः जीवाः उपसदेम ) जीवित रहनेवाली तुमको हम सब प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ-- उत्तम खादरूपी गोबर उत्पन्न करनेवाली, दूध जैसा मधुर रस देनेवाली, बीरोग और निर्गम स्थानपर विचरनेवाली गोवें इस उत्तम गोशालामें आकर निवास करें ॥ ३ ॥

गोवें इस गोशालामें आएं, यहां बहुत पुष्ट हों और यहां बहुत उत्तम संज्ञान उत्पन्न करें और गोभोके स्वामीके ऊपर प्रेम करती हुई आनंदसे रहें ॥ ४ ॥

गोशाला गोभोके लिये कल्याणकारिणी होवे । यहां गोवें पुष्ट होलें और संज्ञान उत्पन्न करके बचें । गोभोका स्वामी स्वयं गोभोकी व्यवस्था देखे ॥ ५ ॥

गोवें स्वामीके साथ आनन्दसे मिलजुल कर रहें । यह गोशाला अत्यन्त उत्तम है इसमें रहकर गोवें पुष्ट हों । अपनी गोमा और पुष्टि बढ़ाती हुई यहां गोवें बहुत बचें । हम सब देखे उत्तम गोभोको प्राप्त करें और पालें ॥ ६ ॥

### गो संवर्धन ।

यद् सूक्त अर्षेद सुगम है, इसलिये इसके अधिक विवरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । इसमें जो बातें कहीं हैं उनका सारांश यह है कि ' गोभोके लिये उत्तम गोशाला बनाई जावे और यहां उनसे रहने सहने, घास, पाना, पानी आदिका सब उत्तम प्रबंध किया जावे । स्वामी गोवेंसे प्रेम करे और गोवें हमारीसे प्रेम करे । गोवें निर्भयतासे रहें उनको अधिक मयभीत न किया जावे, क्योंकि मयभीत गोवेंके दूधपर बुरा परिणाम होता है । सतान उत्पन्न करनेके समय अधिक दूधवाली और अधिक बीरोग संज्ञान उत्पन्न करनेके विषयमें दक्षता रखी जावे । गोवेंकी पुष्टि और बीरोगवाके विषयमें विशेष दक्षता रखी जावे अर्थात् गोभोको पुष्ट किया जाय और उनसे बीरोग संज्ञान उत्पन्न हो ऐसा सुप्रबंध किया जावे । गोशालनका उत्तमसे उत्तम प्रबंध हो, किसी प्रकारकी उनमें भीमारी उत्पन्न न हो । उनके गोबर आदिते उत्तम खाद बना कर, उस खादका उपयोग छाडी बगैर, पावल आदि भान्णोंके लिये किया जावे । '

## गायत्री फलना

कां. ७, सू. ७५

(ऋषि- उपरिब्रह्म । देवता- सव्या ।)

प्रजावतीः सुपर्वसि रुचन्तीः सुद्धा अपः सुप्रपाणे विवन्तीः ।

मा च स्तेन ईक्षत माघशंसुः परि वो रुद्रस्य द्वेतिवृणक्तु ॥ १ ॥

प्रदद्या स्य रमतयः संहिता विश्वनाम्नीः । उप मा देवीद्विविरेत् ।

इमं गोष्ठमिदं सदीं धृतेनास्मान्सप्रुक्षत ॥ २ ॥

अर्थ— (प्रजावतीः) उत्तम ब्रह्मदेवी (सुपर्वसे चरन्तीः) उत्तम पातके लिये विचरती हुई (सु-प्र-पाणे) सुद्धा अपः (विवन्तीः) उत्तम जलस्थानपर सुद्धा जलपान करनेवाणी गौत्रे हैं। हे गौत्रे ! (स्तेनः यः मा ईक्षत) चोर तुमपर नासन न करे। (मा अघशंसुः) पापी भी तुमपर दुकमत न करे। (रुद्रस्य हेतिः यः परि घृणक्तु) रुद्रका सख तुम्हारी रक्षा करे ॥ १ ॥

हे (रमतयः) आत्म्य देवदेवणी गौत्रे ! (प्रदद्याः स्य) अपने निवासस्थानको जलनेवाणी होये। (संहिता विश्वनाम्नीः देवीः) इकट्ठी हुई बहुत नामवाली दिव्य गौत्रों तुम (देवेभिः मा उप पत) दिव्य ब्रह्मेश साथ मेरे पास आओ। (इमं गो-स्थं, इदं मन्दं) इस गोपालको और इस पाको तथा (अस्मान्) हम सखों (धृतेन मं उक्षत) पीसे युक्त करो ॥ २ ॥

भावार्थ— गौत्रे उत्तम पात रखनेवाली और सुद्धा पीनेवाली हो। उनके बहुत बछड़े हैं। कोई चोर और पापी उनको अपने आधीन न करे। महावीरके सख उनकी रक्षा करे ॥ १ ॥

गौत्रे हमें आनंद दे। वे अपने निवासस्थानको पदधामें, मिश्रकर रहें, अनेक नामवाली दिव्य गौत्र अपने ब्रह्मेश साथ हमारे पास आयें। और हमें भरपूर पी दें ॥ २ ॥

हममें भी गोपालके आदेश दिये हैं वे स्मरण करने योग्य हैं।

## गौको समर्थ बनाना

कां. ७, सू. १०४

(ऋषि- मरुता । देवता- आमा ।)

कः पृथिं धेनुं वरुणेन दुक्षामर्षवेण सुदुष्यां नित्यवरसाम् ।

धृदस्वर्तिना सुरुष्यं जुषाणो यथावर्षं तन्युः कल्पपाति ॥ १ ॥

अर्थ— (वरुणेन अर्धवेणे दक्षां) बरुणे द्वारा अर्धया अर्धपरि निब्रह्म गौत्रोंकी ही हुई (सुदुष्यां नित्य-वरसाम्) पृथिं धेनुं) सुदुष्ये दुदवेयोग्य बसनेके साथ रहनेवाली शिशिपु रंगवाली गौत्रे, (धृदस्वर्तिना सव्य जुषाणः) ज्ञानीके साथ मित्रता करवा हुआ (यथावर्षं तन्युः कः = प्रजापतिः कल्पपाति) इच्छाएं अनुसार शरीरके विषयमें प्रताका पालन करनेवाला ही समर्थ करता है ॥ १ ॥

यह एक अभीतक स्पष्ट नहीं हुआ। गौत्रे शरीरका सामर्थ्य बढ़ानेका शिष्य इसमें है। गायकी दूध देनेकी शक्ति तथा सव्य शक्ति बढ़ानेका उपदेश इसमें है। प्रताका पालक ज्ञानीके साथ मित्रता करवा हुआ गायको समर्थ करता है। यह भाषण यदा दीसता है। परंतु सब मंत्र एक प्रकार समझमें नहीं आता है।)

## गौर्वाण्ये चिन्ह

कां. ६, सू. १४१

(कारि-विधामित्रः । देवता-मथितौ ।)

वायुरेनाः समार्कस्वष्टा पोषाय धियताम् । इन्द्र आभ्यो अर्धे ब्रवद्ब्रुवो भूमने चिकित्सतु ॥ १ ॥

लोहेनैव स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि । अर्कवामभिना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥ २ ॥

यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत । एवा सहस्रपोषार्प कृणुतं लक्ष्माभिना ॥ ३ ॥

अर्थ— (वायुः एनाः सं आकरत्) वायु इन गौर्वाण्ये इकट्ठा करे, (त्वष्टा पोषाय धियतां) त्वष्टा पुष्ट करे, (इन्द्रः आभ्यः अधिप्रवत्) इन्द्र इनको पुकारे और (रुद्रः भूमने चिकित्सतु) इन्द्र इनकी वृद्धिके लिये चिकित्सा करे ॥ १ ॥

(लोहेन स्वधितिना) लोहेकी गालकाले (कर्णयोः मिथुनं कृधि) कर्णोंके ऊपर गोबीका चिन्ह कर । (अभियनौ लक्ष्म अर्कतां) मथित्वे चिन्ह करे, (तत् प्रजया बहु अस्तु) यह सन्ततिके साथ बहुत हितकारी हो ॥ २ ॥

(यथा देवासुराः चक्रुः) जिस प्रकार देवों और असुरोंने चिन्ह किये (उत यथा मनुष्याः) और जैसे मनुष्य भी करते हैं, हे मथित्वे ! (एवा सहस्रपोषाय लक्ष्म कृणुतं) इसी प्रकार हजार प्रकारकी पुष्टिके लिये चिन्ह करो ॥ ३ ॥

गौर्वाण्ये इकट्ठा किया जावे। उनको यथोचित जल, घास आदि देकर पुष्ट किया जावे और उनको रोगरहित रखा जावे। लोहेके शकलसे गौर्वाण्ये कर्णोंपर चिन्ह करना योग्य है। पर्यायार्थमें सुविधा होती है। यह चिन्ह कारणर साथ देशोंमें किया जाता है और इससे बहुत लाभ होते हैं। वेदोंमें अन्यत्र भी गौर्वाण्ये कर्णोंपर चिन्ह करनेका उल्लेख आता है।

## गौर्वाण्ये चिन्ह

कां. ६, सू. ७०

(कारि-कृत्वायनः । देवता-अध्या ।)

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने । यथा पुंसो बृण्वन्तु स्त्रियां निहन्त्यते मनः ॥

एषा तै अघ्न्ये मनोऽर्धे वृत्से नि हन्यताम् ॥ १ ॥

अर्थ— (यथा मांसं) जिस प्रकार [मांसभोजिका] मांसमें, (यथा सुरा) जैसे [शराबीका] सुरामें (यथा अधिदेवने अर्थाः) जैसे [जुगारिका] जुगके पांसोंमें और (यथा बृण्वन्तु पुंसः) जैसे बहूपार पुरुषका (मनः स्त्रियां निहन्त्यते) मन स्त्रीमें रत रहता है। हे (अघ्न्ये) गौ ! (एषा ते मनः घत्से अधि नि हन्यतां) इसी प्रकार वे। मन बचनेमें धना रहे ॥ १ ॥

यथा हस्ती हस्तिन्याः पदेन पदमुद्युजे । यथा पुंसो वृषण्युत स्त्रियां निहन्यते मनः ॥

एवा तै अघ्नये मनोऽधि वृत्से नि हन्यताम्

॥ २ ॥

यथा प्रधिर्घोषधिर्घिया नभ्यं प्रधावधि । यथा पुंसो वृषण्युत स्त्रियां निहन्यते मनः ।

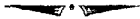
एवा तै अघ्नये मनोऽधि वृत्से नि हन्यताम्

॥ ३ ॥

अर्थ— ( यथा हस्ती पदेन ) जैसे हाथी अपने पांवको ( हस्तिन्याः पदं उद्युजे ) हाथिनोके पांवके साथ जोड़ता है, और जैसा बलवान् पुरुषका मन भी पर रत होता है, इसी प्रकार गौका मन बछड़े पर स्थिर रहे ॥ २ ॥

( यथा प्रधिः ) जैसे ओढ़ेका हल चक्र पर रहता है, ( यथा उपधिः ) जैसे चक्र आरोपर रहता है और ( यथा नभ्यं प्रधौ अधि ) जैसे चक्रनाभि भागोंके बीच होती है, जैसे बलवान् पुरुषका मन भीमें रत रहता है, इसी प्रकार गौका मन उसके बछड़ेमें स्थिर रहे ॥ ३ ॥

जिस प्रकार गवमांस, जूभा, श्रीगणसन आदिमें साधारण मनुष्यका मन रमता है, उसी प्रकार अघ्ने मनुष्यका मन श्रेष्ठ कर्मोंमें रहे । गौका मन अपने बछड़ेमें रहे । गौ नाम इंद्रियोका माना जाय तो हरएक इंद्रियोका बछड़ा उसका कर्म है । उस शुभ कर्मों रसे ।



## गौ-रस

कां. २, सू. २६

( ऋषिः- सविता । देवता- पशवः । )

एह यन्तु पशवो ये परेषुर्वापुषेषां सहचारं जुजोष ।

स्वष्टा येषां रूपधेयानि वेदासिन्वान्गोष्ठे संविता नि यच्छतु

॥ १ ॥

इमं गोष्ठं पशवः संस्रवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन् ।

सिनीवाली नयत्वाग्रमेपामाङ्गमुषो अनुमते नि यच्छ

॥ २ ॥

अर्थ— ( ये परा-पुः ) जो परे चले गये हैं । ( पशवः इह मायन्तु ) पशु यहाँ आयाँ । ( येषां महत्कारं यापुः जुजोष ) उनका साहचर्य वापु करवा है । ( येषां रूपधेयानि स्वष्टा येद् ) उनके रूप स्वष्ट मानना है । ( असिन्वान् गोष्ठे तान् सविता नि यच्छतु ) इस गोतागामें उनको सविता बाँधकर रले ॥ १ ॥

( पशवः इमं गोष्ठं संस्रवन्तु ) पशु इस गोतागामें मिलकर आ जाय । ( बृहस्पतिः प्रजानन् आनयतु ) बृहस्पति जानता हुआ उनको ले आवे । ( सिनीवाली एषां अग्रं आनयतु ) सिनीवाली इनके अग्रभागको ले जाये । ( अनुमते ) अनुमते । ( आ जामुषः नियच्छ ) आनेवालोंको नियममें रले ॥ २ ॥

भाषार्थ— जो पशु हुए उल्लभायुमें भ्रमणके लिये गये हैं वे मिलकर जुनः गोतागामें जायेंगे । इनके पिण्डोंको स्वष्टा जानना है । सविता इनको गोतागामें बाँधकर रले ॥ १ ॥

सब पशु मिलकर गोतागामें जायेंगे, जाननेवाला बृहस्पति उनको ले आवे । सिनीवाली अग्रभागको ले चले और अनु-मति शेष आनेवालोंको नियममें रले ॥ २ ॥

सं सं संवन्तु पशुवः समश्वाः समु पुरुषाः । सं चान्यस्मिन् वा स्फातिः संसाव्येण हविषा जुहोमि ॥३॥

सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समान्येन बलं रसम् ।

संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपती

॥ ४ ॥

आ हरामि गवां क्षीरमाहापि चान्ये रसम् । आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥ ५ ॥

अर्थ— (पशुः शब्दः उ पुरुषाः सं सं सं वन्तु) पशु, घोड़े और मनुष्य भी मिल जुलकर चले। (या चान्यस्य स्फातिः सं) जो चान्यकी बढती है वह भी मिलकर चले। मैं (सं साव्येण हविषा जुहोमि) मिलानेवाले हविसे हुक्म करता हूँ ॥ ३ ॥

(गवां क्षीरं स सिञ्चामि) गौभोंका दूध संचिता हूँ। (बलं रसं आयेन सं) बलवर्षक रसको पीके साथ मिलता हूँ। (अस्माकं वीराः संसिक्ताः) हमारे वीर संचि गये हैं। (मयि गोपती गावः ध्रुवा) शुभ गोपतिमें गौवें स्थिर हो ॥ ४ ॥

(गवां क्षीरं आ हरामि) गौभोंका दूध मैं लाता हूँ। (चान्यं रसं आहापि) चान्य और रस मैं लाता हूँ। (अस्माकं वीरा आहृताः) हमारे वीर लाये गये हैं और (पत्नीः इदं अस्तकं आ) पत्नी भी इस घरमें लगी गई है ॥ ५ ॥

भावार्थ— घोड़े आदि सब पशु तथा मनुष्य भी मिल जुलकर चले और रहें। चान्य भी मिलकर चले। सबको मिलानेवाले हविसे मैं हुक्म करता हूँ ॥ ३ ॥

मैं गौभोंसे दूध लेता हूँ तथा बलवर्षक रसके साथ पीके मिलकर सेवन करता हूँ। हमारे वीरों और बालकोंको यही पेय दिया जाता है। इस कार्यके लिये हमारे घरमें गौवें स्थिर रहें ॥ ४ ॥

मैं गौभोंसे दूध लेता हूँ और बनस्पतिघोंसे रस तथा चान्य लेता हूँ। अपने वीरों और बालकोंको इकट्ठा करता हूँ, घरमें परित्या भी रहि जाती हैं और सब मिलकर उक्त पौष्टिक रसका सेवन करते हैं ॥ ५ ॥

## गो-रस

### पशुपालन

घरमें बहुत पशु अर्थात् गौवें, घोड़े, बैल आदि बहुत पाले जायें। यह एक प्रकारका धन ही है। आज कल रथ-योंको ही धन माना जाता है, परन्तु उपरोक्तकी दृष्टिसे देखा जाय तो गाय आदि पशु ही सच्चा धन है। इनकी पालना योग्य हीतिसे करनेके विषयमें बहुतसे आदेश इस सूत्रमें पहले दो मंत्रोंमें दिये हैं। आजकल प्रायः घरमें गौ आदि पशुभोंकी पालना नहीं होती है, क्योंकि किसीके घरमें एक दो गौएँ होंगी तो बहुत दुःखा, नहीं तो प्रायः कोई भी नागरिक पशु पालता ही नहीं। नगरके योग्य प्रायः दूध आदि मोल ही लेते हैं। रचना विना बचल जानेके कारण इस सूत्रके आदेश स्वयंसे प्रतीत होंगे। परन्तु अदिकालमें अहि-मोगेवि पात इनमें गौर होती थी और वही धरमणमें

अग्न्यान् पशु भी बहुतसे होते थे। ऐसे घरोंके लिये वे आदेश पत्नीभूत हो सकते हैं।

### भ्रमण और वापस आना

गाय आदि पशुभोंको शुद्ध वायुमें भ्रमणके लिये लेजाना आवश्यक है, उनका भ्रमण होनेके लिये न तो उतक स्वास्थ्य हीक रह सकता है और न उतका दूध गुणकारी हो सकता है। इसलिये—

येषां सहचारं धायुः जुजोष । (मं १)

'जिनका सहचर्यं वायु करता है' यह प्रथममंत्रका वाच्य गौभोंके आरोग्यके लिये उनका शुद्ध वायुमें भ्रमण अत्यन्त आवश्यक है वह बात बदा रहा है। तथा—

ये पशवः परा ईयुः ते इह आपन्तु ॥ (मं १) -

' जो पशु भक्षणके लिये बाहर गये हुए हैं वे मिलकर वापस आजायें ।' इस संप्रमाणमें भी वही बात स्पष्टतासे कही है । पशु अपने स्वामिसे मिलकर बाहर जांय और मिलकर वापस आताय । भागे पीठे रहनेसे उनको पुन डूबना पड़ता है । इस कष्टसे बचानेके लिये सब पशु क्रमपूर्वक भाय और सब दृष्टे वापस आतांय देखा जो इस मंत्रमें कहा है वद बहुत उपयोगी भादेना है ।

यहां हजारों पशु होने वदा एक गोपालसे काम मई चल सकता । इस कार्यके लिये अपने अपने कार्योंमें प्रवीण बहुतसे गोपाल होने चाहिये । उनका वर्गीय सविज्ञ भादि शस्त्रोंसे इस सूत्रमें किया है—

- १ त्वष्टा येषां रूपाणि वेद् । ( मं. १ )
- २ सविता अस्मिन् गोष्ठे तान् नियच्छतु । ( मं. १ )
- ३ बृहस्पतिः प्रजान् आनयतु ॥ ( मं. २ )
- ४ सिनीवाली येषां अप्र आनयतु । ( मं. २ )
- ५ अनुमते ' आजम्मुपः नियच्छ । ( मं. २ )

इन मंत्रोंमें देवताओंके नाम अनेक कार्यके लिये सामये हैं । इन मंत्रोंके देवतावाचक अर्थ प्रसिद्ध ही हैं, परंतु इनके मूल भावार्थ भी यहां देखिये—

- १ त्वष्टा—सूक्ष्म करनेवाला, कुशल कारीगर । ( त्वष्ट-तनुकरणे )
- २ सविता—देवक । ( सु-प्रेरणे ) । करनेवाला ।
- ३ बृहस्पतिः—मानस, ( बृहस्प ) बरेका ( पति ) स्वामी । पुरोहित, निरीक्षक ।
- ४ सिनीवाली—( सिनी ) अर्क ( वाली ) बरुने युक्त । अष्टवाली थी ।
- ५ अनु-मतिः—अनुकूल मति रखनेवाली थी ।

इन पाँच देवतावाचक मंत्रोंके ये मूल तात्पर्य हैं और इन भाषोंके साथ ही ये मंत्र यहां प्रयुक्त हुए हैं । ये मूल अर्थ लेकर इन मंत्र भागोंका अर्थ देखिये—

“ १ कुशल कारीगर गाय आदि पशुओंके भाकारोंको जानता है । २ देवक उनको गोपालात्मै क्रमपूर्वक नियममें रखे । ३ उनको जाननेवाला पशुओंको साथे । ४ अष्टवाली थी पशुओंके साथे चले । और ५ अनुकूल कार्य करनेवाली करनेवाले पशुओंके साथ चले ।

' यहाँ पशु पाउनेके भाईस मिलते हैं । इनका विचार यह है—

' ( १ ) पशुओंके वाचक कर्मोंमें एक ऐसा अधिकारी होने, कि जो पशुओंके सब कथन जानता हो ।

( २ ) दूसरा कार्यकर्ता ऐसा हो कि जो निरीक्षण करने देखे कि सब पशु क्या स्थानपर आगये हैं वा नहीं, तथा उनका अन्य भागपालका संबंध रीक हुआ है वा नहीं ।

( ३ ) तीसरा निरीक्षक ऐसा होये कि जो पशुस्वास्थ्य विद्याको अपनी प्रकार जाननेवाला हो, यही पशुओंको लाने के जानेका प्रबंध देखे ।

( ४ ) जब पशु घरमें आतांय तो उनको वाचवान देने-वाली थी जो उससे भागे जाने, उनके साथ पशुओंको देने योग्य सब हो ।

( ५ ) तथा उसके पीठे चलनेवाली पशुओंके अनुकूल कार्य करनेवाली पीठे पीठे चले ।

इस रीतिसे सब पशुओंका योग्य प्रबंध किया जाये । पुरोहितके अनेका विर्यो प्रेम पूर्वक उत्तम प्रबंध कराती हैं इसलिये अतिम दो कार्योंमें विर्योको नियुक्त करनेकी सूचना वेदने ही है वद योग्य ही है ।

यहां रीकको और हजारों गौंसे पाली जाती हो ऐंर स्थानोंमें ऐसा सुयोग्य प्रबंध अत्यंत आवश्यक ही है । आजकल जहां गौंको अभाव सा हो गया है वहां ऐसे चडे प्रबंधकी आवश्यकता नहीं है, वद स्पष्ट ही है । वद भावकलकी प्रायति है जो इनमें दुश्मिसे दूर रखती है । तिन घरमें दस पाँच गौंमें कमसे कम हों उस घरमें अनुकूल गोपाल या पीरर कीते हृष्टपुष्ट होते हैं और तिन घरमें गौं नहीं होती, उस घरके अनुकूल कैते परिवर्तने होते हैं इसका विचार करनेसे गोपालनेके साथ अनुकूलस्तीका संबंध कितना प्रविष्ट है इसका पता लग सकता है । यहाँ तक पहिले दो मंत्रोंका विचार हुआ । तृतीय मंत्रमें सबके मिलतुलकर रहनेमें लाभ होगा वद बात कही है । पशु क्या और अनुकूल क्या सब मिलतुलकर परस्पर उपयोगी होकर अपनी वृद्धि करें, सब मिलकर धान्य प्राप्त करें अर्थात् लेकी करक धान्यको उत्पत्ति करें । इस प्रकार धान्य, बनारविनास और गोपाल विपुल प्रमाणां प्राप्त करके उसके द्वारा अपनी वृद्धिको बढ़ाने हुए अपनी उन्नति करें । ( मं. १ )

**दृष्ट और पोषक रत्न**

दृष्ट, दही, मखन, घी, छाछ आदि सब द्रव्यात् से सब तथा अन्यान्य पोषक रत्न विपुल प्रमाणां प्राप्त करने चाहिये और उनका सेवन भी पर्वत प्रमाणां करना चाहिये, इस विषयमें मंत्र ४ और ५ स्पष्ट चर्चों द्वारा भाईस दे रहे हैं । इन मंत्रोंमें ' दहीराः ' शब्द है, इस शब्दका प्रविष्ट अर्थ दारवीर है, परंतु वेदमें इसका अर्थ, ' पुत्र, बालक, गायन '



भी है। वहाँ इन मंत्रोंमें 'पत्नी' के सादृश्यके कारण यही अर्थ विशेषतः अभीष्ट है।

'मै गौर्मांसं दूधं द्याता ह्यु, वनस्पतियोकां बलवर्षाकं रसं खौर धान्यं द्याता ह्यु, पी भी द्याता है। धरमें धर्म-पत्नियों हैं और बालकको भी इकट्ठे हुए हैं अथवा इष्ट मित्र पीत पुरण भी जमा हुए हैं, इन सबको इच्छाके अनुसार यह सब साद्योपेय दिया जाता है।' (मं. ४-५)

इन दो मंत्रोंका यह भावार्थ है। 'संसिक्ता अरस्माकं गौराः' हमारे पीत या बालककोके ऊपर यह रस सींचा गया, किस प्रकार वृष्टिमें जानेसे मनुष्य भीग जाता है। उसी प्रकार बालककोपर दूध, पी आदि सब रसोंकी वृष्टि की गई है। 'संसिद्ध' घातुका अर्थ उत्तम प्रकारसे सिंचन करना, भिगोना है। बालकसे दूध, दूरी, मक्खन, पी, रस आदिमें पूरे पूरे भीग जाय इतना गौरस धरमें आदिपे। इष्टपुष्टा

तो तब साधकती है। वैदिक धर्म वैदिक धर्मांगोंको यह उपदेश दे रहा है कि अपनी गृहस्थवस्था ऐसी करो कि जिससे परसें इतना विपुल गौरस प्राप्त हो और उसका सेवन करके सब बालक दृष्टपुष्ट हों। आम्कल गाना प्रकारकी घीमारियां बननेका कारण ही यह है कि गौरस न्यून होनेके कारण मनुष्यमें जीववसति ही कम हो गई है। सब अन्य आरोग्य जीववसतिकी वृद्धि होनेसे ही प्राप्त होंगे। गौर-क्षण, गौरर्धन तथा गौरसोपधन करनेकी कितनी आवश्यकता है और राष्ट्रीय किंवा जातीय जीवनकी दृष्टिसे भी इस विषयकी कितनी आवश्यकता है यह विचारणीय है।

वैदिक आदेश व्यवहारमें सानेका विचार जो लोग कर रहे हैं, उनको इस सूक्तका बहुत भयन करना योग्य है, क्योंकि यह आदेश ऐसा है कि इसके व्यवहारमें छात्र ही काम होनेका प्रत्यक्ष अनुभव आवेगा।

## माघ और यज्ञ

कां. ७, सू. ७३

( ऋषि- अथर्वी । देवता- पर्जन्य, अथर्वी । )

समिद्धो अग्निर्वृषणा रथी दिवस्तुतो घृमो दुश्शते वामिपे मधुं ।

यद्यं हि वां पुरुदमांसो अश्विना हवीमहे सधमादिषु कारवः ॥ १ ॥

समिद्धो अग्निरश्विना तुतो वां घृम आ गंतम् ।

दुश्शन्ते नूनं वृषणेह धेनयो दस्रा मर्दन्ति वेधसः ॥ २ ॥

अर्थ— हे ( घृषणो अश्विनी ) दोनों बलवान् अग्निदेवो ! ( दिव्यः रथी अग्निः समिद्धः ) प्रकृताके रथ जैसे अग्नि प्रदीप्त हुआ है। यह ( घर्मः तप्तः ) तपी हुई गर्मी ही है। यह ( वां इपे मधुं दुश्शते ) आप दोनोंके लिये मधु रसका दान करता है। ( यद्यं पुरु-दमांसः कारवः सध-मादिषु वां हवीमहे ) इन सब बहुत घायल और कार्य करनेवाले पुरण माघ साथ मिलकर आनंद करनेके समय तुम दोनोंको बुझाते हैं ॥ १ ॥

हे ( घृषणो अश्विनी ) बलवान् अग्निदेवो ! ( अग्निः समिद्धः ) अग्नि प्रदीप्त हुआ है, ( वां घर्मः तप्तः ) आपके लिये ही यह दूध तप रहा है। इसलिये ( आगते ) आओ। ( नूनं इह धेनयः दुश्शन्ते ) निश्चयसे यहाँ गीबें हुई जाती हैं। हे ( दस्रा ) दार्शनिक देवो ! ( वेधसः मर्दन्ति ) शानी आनंद करते हैं ॥ २ ॥

भाष्यार्थ— इनकी अग्नि प्रदीप्त हो चुकी है, गीका सोदन किया जाता है और इन सब कारित देवताओंको बुझाते हैं ॥ १ ॥

हे देवो ! अग्नि प्रदीप्त हुई है, दूध तप रहा है, हमलिये यहाँ आओ, यह गीबें सोही जाती हैं जिससे शानी आनंदित होते हैं ॥ २ ॥

स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोऽथमसो देवपानः ।

तमु विभे अमृतासो जुपाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति ॥ ३ ॥

यदुसियास्वाहुतं घृतं पयोऽयं स वामश्विना भाग आ रीतम् ।

माध्वी धर्तारा विदयस्य सत्यती तप्तं घर्मं पिबतं रोचने दिवः ॥ ४ ॥

तप्तो वां घर्मो नक्षतु स्वहोता प्र वामध्वर्युश्चरतु पर्यस्वान् ।

मघोर्दुग्धस्पाश्विना तनाया धीतं पातं पर्यस उस्त्रियायाः ॥ ५ ॥

उपं द्रव पर्यसा गोधुगोयमा घर्मे सिञ्च पर्य जुस्त्रियायाः ।

वि नार्कमरुपरसयिता वरेण्योऽनुप्रपाणंमुषसो वि रीजति ॥ ६ ॥

उपं ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दौहदेनाम् ।

श्रेष्ठं सुयं सविता साविपस्रोऽमीक्षो घर्मस्तदु पु प्र वीचतु ॥ ७ ॥

अर्थ— ( यः अश्विनोः देवपानः चमसः यज्ञः ) जो अश्विनोका देव मिलते रखपात करते हैं ऐसा चमसकपी पशु है वह ( देवेषु स्वाहाकृतः शुचिः ) देवोंके लिए स्वाहा किया हुआ है अमृत्पव पवित्र है । ( विश्वे अमृतासः तं उ जुपाणाः ) सब देव उत्तीका सेवन करते हैं और ( तं उ गन्धर्वस्य आस्ना प्रत्यारिहन्ति ) उत्तीकी रीपरके सुखले पूजा भी करते हैं ॥ ३ ॥

हे ( अश्विनो ) अश्विनो ! ( यत् उस्त्रियासु आहुतं घृतं पयः ) जो गोभोगे रखा हुआ घृतमिश्रित दूध है, ( अपं सः वां भागः ) यह वह भागका भाग है, तुम दोनों ( आगतं ) आगो । हे ( माध्वी ) मधुरकायुक ( विदयस्य धर्तारी ) पशुके धारक, ( सत्यती ) उजम पालको ! ( दिवः रोचने तप्तं घर्मं पिबतं ) दुग्धोके प्रकाशमें तथा हुआ यह दूधकपी तेज पीओ ॥ ४ ॥

हे ( अश्विनो ) अश्विनो ! ( तप्तः घर्मः वां नक्षतु ) तथा हुआ तेजकपी यह दूध तुम दोनोंको प्राप्त होये । ( स्वहोता पर्यस्वान् अध्वर्युः वां प्रचरतु ) इवनकरां भीर दूध लिये हुए अध्वर्युं तुम दोनोंकी सेवा करे । ( तनायाः उस्त्रियायाः मयोः दुग्धस्य पर्यसः ) इच्छुष्ट गौके हुये हुए मधुर दूधको ( धीतं पातं ) प्राप्त करो और पीओ ॥ ५ ॥

हे ( गोधुक् ) गायका दोहन करनेवाले ! ( पयसा ओपं उपद्रव ) दूधके साथ अग्निशीघ्र यहाँ आ, ( उस्त्रियायाः पयः घर्मे आस्त्रिञ्च ) गौका दूध ब्यारंमें रख और तथा । ( वरेण्यः सविता नार्कं वि अरुच्यत् ) श्रेष्ठ सविता सुखपूर्ण स्वर्गयानको प्रकाशित करता है और वह ( उपसः अनुप्रपाणं विरजति ) उपकारके समान पश्चात् विशालता है ॥ ६ ॥

( सुहस्तः पतां सुदुघां धेनुं उपह्वये ) बराम हाथवाला मैं इस सुखले दोहनेयोग्य धेनुको कुलाना हूँ । ( उत गोधुक् पतां दौहत् ) और गायका दोहन करनेवाला इसका दोहन करे । ( सविता श्रेष्ठं सुयं नः साविपत् ) श्रेष्ठ सविता यह श्रेष्ठ अन्न हमें देये । ( अमीक्षः घर्मः तत् उ सु प्रयोच्यत् ) प्रयोग्य तेजकपी दूध यह बताये ॥ ७ ॥

भाषार्थ— यह यह ऐसा है कि जिसमें देवतायोग रखवान करते हैं और वे इस पवित्र पशुका सेवन करते हैं और सत्कार करते हैं ॥ ३ ॥

गौके दूधमें देवोंका भाग है, इसलिये इस चर्ममें पधातो गौर इस तपे हुए मधुर गौरसको पीओ ॥ ४ ॥

हे देवो ! यह तथा हुआ रख तुम्हें प्राप्त हो । गौके इस मधुर गौरसका पान करो ॥ ५ ॥

हे गौका दोहन करनेवाले ! दूध लेकर पशुमें आओ । गायका दूध तथाओ । इवन करो, श्रेष्ठ सविताने यह सुखमय स्वर्ग तुम्हारे लिये सुला किया है ॥ ६ ॥

मैं दूध दोहनेमें कुशल हूँ और गायकी दोहनेके लिये कुशल हूँ । दोहनेवाला इसका दोहन करे । सविताने इस श्रेष्ठ रसको दिया है ॥ ७ ॥

हिरुकृष्णती वंसूपत्नी यमूनां वृत्समिच्छन्ती मर्नसा न्यागन् ।

दृहामश्विभ्यां पयो अघ्नयेयं सा वर्धतां महते सौमगाय ॥ ८ ॥

जुष्टो दमूना अतिधिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ॥ ९ ॥

विश्वं अग्ने अभियुजो विहत्यं शश्रूयतामा मरा भोजनानि ॥ ९ ॥

अग्ने शर्धं महते सौमगाय तपं शुक्रान्युत्तमानि सन्तु ।

सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शश्रूयतामि तिष्ठामहांसि ॥ १० ॥

सूयवसाङ्गर्बती हि भूया अर्धा वृषं मगवन्तः स्याम ।

अद्धि तृणमन्नपे विश्वदानिं पिपं शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ ११ ॥

अर्थ— ( हिरुकृष्णती वसूनां वसूपत्नी ) हीं हीं करनेवाली ऐश्वर्यका पालन करनेवाली ( मनसा यत्सं इच्छन्ती नि आगात् ) मनसे यच्छेकी कामना करती हुई समीप आ गई है । ( इयं अघ्नया अश्विभ्यां पयः दुर्हा ) यह नौ दोनों अधिदेवोंके लिये दूध देने और ( सा महते सौमगाय वर्धतां ) वह बड़े सौभाग्यके लिये बड़े ॥ ८ ॥

( दमूना विद्वान् अतिधिः दुरोणे जुष्टः ) दमन किये हुए मनवाला यह शानी अतिधि घरमें सेवित होकर ( न. इमं यज्ञ उपयाहि ) हमारे यज्ञमें आवे । हे अग्ने ! ( विश्वा अभियुजः विहत्य ) सब शत्रुओंका वध करके ( शश्रूयतां भोजनानि आभर ) शत्रुता करनेवालोंके अन्न हमारे पास ला ॥ ९ ॥

हे ( शर्धं अग्ने ) बड़वार अग्ने ! ( तप उत्तमानि शुक्रानि महते सौमगाय सन्तु ) तेरे उत्तम तेज बड़े सौभाग्य बढ़ानेवाले हों । ( जास्पत्यं सुयमं सं कृणुष्व ) क्षीररूप संरथ उत्तम संपन्नपूर्वक होवे । ( शश्रूयतां महांसि अभितिष्ठाम ) शत्रुता करनेवालोंका मुकाबला कर ॥ १० ॥

हे ( अघ्नये ) न मारने योग्य नौ ! तू ( सु-यवस-अद् भगवती हि भूयाः ) उत्तम पास खानेवाली भाग्य शालिनी हो ! ( अया वयं भगवन्तः स्याम ) और हम भाग्यवान् हों । ( विश्वदानिं तृण अद्धि ) सब तृण भक्षण और ( आचरन्ती शुद्धं उदकं पिब ) भक्षण करती हुई शुद्ध जल पी ॥ ११ ॥

भाष्यार्थ— हीं हीं करती हुई शर्धां रक्षागी हुई, मनसे यच्छेकी इच्छा करनेवाली नौ यहाँ आई है । यह अह्नयाय नौ देवोंके लिये दूध देने और बड़े सौभाग्यकी वृद्धि करे ॥ ८ ॥

यह इन्द्रियसंयमी अतिधि विद्वान् हमारे यज्ञमें आवे । हमारे सब शत्रुओंका नाश करके, शत्रुभोज भोग हमारे पास ले आवे ॥ ९ ॥

हे देव ! जो तेरे उत्तम तेज है वह हमारा भाग्य बढ़ावे । क्षीरुररसबधमें उत्तम नियममें रहे, अतिधमसे स्पष्टहस न हो । शत्रुता करनेवालोंका पराभव करो ॥ १० ॥

हे नौ ! तू उत्तम पास ला और भाग्यवत् बन । तुझसे हम भाग्यवत्नी बने । गाय पास लावे और दूधर उधर भक्षण करती हुई शुद्ध पानी पीवे ॥ ११ ॥

### गाय और यज्ञ

#### गौरक्षा

गौरी रक्षा कैसे की जाय इस विषयमें इस सूक्तके आदेश म्यान रखने योग्य हैं । देखिये—

१ सूयवस-अद्— उत्तम पास खानेवाली, अर्धां वृषा पास भयथा वुरे जी न खानेवाली नौ हो । गायके दूधमें खाव हुए पदार्थका साथ आना है, इसलिये यदि गाय

उत्तम पास खानेगी तो दूध भी मीरोग और पुष्टिकारक होगा । इसलिये यह आदेश म्यान रखने योग्य है । साथ ही भनारी रोग प्रायःकाल गायको भ्रमणके लिये ले जाते हैं और उस समय गौको मनुष्यका रीष-विष्टा-भी मिलाने हैं । ऐसे पदार्थ खिलानेकर उत्पन्न हुआ दूध कैसा होगा ! विष्टामें जो बुरे पदार्थ होंगे, जो वृषि होंगे, उन सबका

परिणाम उस दूधपर होगा और वह दूध रोगकारक होगा। अतः वह वेदका सदेव गोपालन करनेवाले लोग भवश्व ध्यानमें प्राण करें। ( म ११ )

२ शुद्धं उदकं पिबन्ती— शुद्ध जल पीनेवाली गौ हो। मशुद्ध, मलिन, गदा, दुर्गन्धयुक्त जल गौ न पीवे। इसका कारण भी ऊपर दिये हुए के समान ही समझना चाहिये। ( म ११ )

३ गायरन्ती— भ्रमण करनेवाली। गौ दूध उधर चण्डी प्रकार भ्रमण करे। गौ केवल घरमें बंधी नहीं रहनी चाहिये। वह सूर्यप्रकाशमें भ्रमण करनेवाली हो। सूर्यप्रकाशमें घूमनेवाली गौका दूध ही पीने योग्य होता है। ( म ११ )

४ विश्वदानां ह्यण अद्धि— गौ सदा दूध-पास-ही खावे। दूसरे दूसरे पदार्थ न खावे। जौक लेकमें भ्रमण करे और जी खावे। इस प्रकारकी गौका दूध उत्तम होता है। ( म ११ )

५ भगवती, भूयाः— बलवती, प्रेममयी, शुभगुणयुक्त गौ हो। गायपर प्रेम करनेसे वह भी घरवालोंपर प्रेम करती है। इस प्रकार प्रेम करनेवाली गौका दूध पीनेसे पीने-वालेका कल्याण होता है। ( म ११ )

ये शब्द गायका पालन कैसे करना चाहिये, इस बातकी सूचना देते हैं।

६ सुदुया— जो बिना आपास हुई जाती है। दोहन करनेके समय जो कष्ट नहीं देती। ( म ७ )

७ सुहस्तः गोभृक् पनां दोहत्— उत्तम हाथवाला मनुष्य ही गौका दोहन करे। अधार्ण दोहन करनेवाला मनुष्य अपने हाथ पहिले स्वच्छ करे, निमैल करे और गौको हुरे। हाथमें कोई कुन्नी जो नहीं है, वह देखकर जैसे उत्तम हाथसे दोहन करे। इस आदेशका अर्थप्र महत्त्व है। जो दूध शारीरिक दृष्टिकरण होगा, वह दूध दूधमें उतरेगा और वह सीधा पीनेवालेके वेष्टमें जलगा। अतः हाथ स्वच्छ रखकर गायका दोहन करना चाहिये। ( म ७ )

८ अन्वया— गाय भवश्व है, अतः उसका ताड़न भी नहीं करना चाहिये। भयभी माताक समान प्रेमसे उसका पालन करना चाहिये। ( म ८ )

९ सा महते स्वीमगाय वार्यतां— ऐसी वाली हुई

गौ बड़े स्वीमगायके साथ बड़े। हाथक घासें ऐसी गोसाला रहे, इसारी भी यही इच्छा है। ( म. ८ )

१० यस्त दूच्छन्ती— गौ बड़बड़ेवाली हो। मूत्रवत्सा न हो। श्लवत्सा गौका दूध पीनेसे पीनेवालेके घासें भी यही बात बन जायगी। क्योंकि यदि गौके दूधके दोषके कारण उसका बछड़ा मरा हो, तो वह दूध पीनेवालेके पीनेमें भी बड़ेगा। अतः बड़बड़ेवाली गाय हो और बछड़ेकी इच्छा करनेवाली होकर वह प्रेमसे घासे भावे। ( म. ८ )

११ गोभृक् पयसा उपद्रव, उन्निपापा. पयः घर्मै सिंच— गायका दोहन करनेवाला मनुष्य दूध लेकर शीघ्र-तासे भावे और वह गायका दूध अग्निपर रखे। इसका मतलब यह है कि बहुत देरतक दूध कच्चा न रखा जावे। चाहे मनुष्य भारोग्ण ही पीवे, निचोदने ही पीवे, परंतु रचना हो तो शीघ्र ही अग्निपर तबाकर रखे। क्योंकि दूधमें नाना प्रकारके जिमी हवासेसे जाकर जम जाते हैं और यही वे बड़े हैं। अतः कभी अस्थानसे दूध बहुत देरतक रक्षना नहीं चाहिये। शीघ्र ही अग्निपर जलाना चाहिये। ( म ९ )

११ मधु दुदाते— गायका दोहन करके जो निचोदा जाता है वह मधु भर्पात् राह्य ही है। क्योंकि वह यही मीठा होता है। ( म १ )

१३ तप्त पिवतं— तपा हुआ दूध पीओ। इसका कारण ऊपर दिया ही है। ( म. ४ )

इसी प्रकारके दूधका देवोंके लिये समर्पण करना चाहिये। विशेषतः अग्निनी देवोंका भाग गायका दूध और घी ही है, यह बात चतुर्थ मंत्रमें कही है। अग्निनी देव स्वयं देवोंके वेष्ट हैं अतः उनको माद्वम है कि कौनसा दूध अच्छा है और कौनसा अच्छा नहीं है। अग्निनी देव दूसरा दूध पीते ही नहीं और दूसरा घी भी नहीं सेवन करते। यह बात हम सबको भ्रमण रखने योग्य है। अतः मनुष्योंको गायर ही दूध और घीका उपयोग करना चाहिये, भैंसका नहीं, यह बात भी इस प्रकार यही सिद्ध हुई। इसी प्रकार बाजारका दूध भी नहीं लेना चाहिये, क्योंकि यह दूध इतनी स्वच्छतासे रखा होगा है इसमें कोई प्रमाण नहीं है। अतः घरपरमे गौ पालनी चाहिये और उसका दूध यज्ञमें समर्पण करना चाहिये और दूतगोप भक्षण करना चाहिये।

## पंचौदन अङ्ग

कां. १, सू. ५

( ऋषि.—भृगु । देवता—पञ्चौदनोऽयः, संज्ञोक्ताः । )

आ नैषैतमा रंभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन् ।  
 तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यभो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ।। १ ।।  
 इन्द्राय भावं परि त्वा नयाम्यस्मिन्त्यज्ञे यजमानाय सूरिम् ।  
 ये वो द्विपन्त्यन्नु तात्रंभस्वानांगसो यजमानस्य वीराः ।। २ ।।  
 प्र पदोऽयं नेनिग्धि दुश्चरितं यच्छचारं शुद्धैः शुफैरा क्रमतां प्रजानन् ।  
 तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्नुना नाकमा क्रमतां तृतीयम् ।। ३ ।।

अर्थ—(पक्ष आनय) इसको यहां का और ऐसे (आरंभस्व) कर्मोंका प्रारंभ कर कि जिससे यह (प्रजानन्) मार्गको जानता हुआ (सुकृतां लोकं अपि गच्छतु) सत्कर्म करनेवालोंके स्थानको प्राप्त होवे । मार्गमें (महान्ति तमांसि बहुधा तीर्त्वा) बड़े अंधकारोंको बहुत प्रकारसे चरके यह (अजः) तृतीयं नाकं आक्रमतां) भक्त्या तीसरे स्वर्गधामको प्राप्त होने ।। १ ।।

(अस्मिन्त्यज्ञे) इस यज्ञमें स्थित (इन्द्राय यजमानाय भावं सूरिं त्वा) इन्द्र और यजमानके द्विप भागनाथ बने हुए ज्ञानियों (परि नयामि) सब ओर लेजाता हूँ । (ये नः द्विपन्ति) जो हमारा द्वेष करते हैं (ताव् अनु-भस्व) उनका नाश करना आरंभ कर और (यजमानस्य वीराः अनागमः) यजमानके पुत्र भयथा वीर पाप-रहित हो ।। २ ।।

(यद् दुःचरितं चचार) जो दुराचार इसने किया हो, वह सब (यद्ः प्र अयं नेनिग्धि) इसके पाँचसे जो पक्ष । इसके पश्चात् यह (शुद्धैः शुफैः प्रजानन् आक्रमतां) शुद्ध पाँचोंसे मार्गको जानता हुआ चले । (विपश्यन् तमांसि बहुधा तीर्त्वा) देखता हुआ अंधकारोंको बहुत प्रकारसे चरके, (अजः) यह भक्त्या (तृतीयं नाकं आक्रमतां) तृतीय स्वर्गधामको प्राप्त करे ।। ३ ।।

भाषार्थ—इसको यहां ले भागो, पुन कर्मोंका प्रारंभ करो, अपना उन्नतिके मार्गको जान को और सत्कर्म करने-वाले जहाँ जाते हैं उस स्थानको प्राप्त करो । मार्गमें जो बड़े अंधकारके स्थान हों उनको रक्षित करने, इस प्रकार यह भक्त्या आत्मा परम उच्च अवस्थाको प्राप्त होता है ।। १ ।।

इस यज्ञमें तुझे सब ओर ले जाता हूँ । तू जानी बनकर प्रभुके द्विप भागसमर्थ कर और पशुकारोंके साथ समभागी बन । जो द्वेष करें उनको दूर कर । इस तरह पशुकारोंके कार्यभाग निष्पाप बने और वे उत्तम कार्य करें ।। २ ।।

एवं समयमें जो दुराचार हुआ हो, उसको धो डाल, भागे शुद्ध पाँचोंसे अपना मार्ग आक्रमण कर । चारों ओर मार्गको देख, सब अंधकारोंको धँस कर जन्ममरणको दूर करने परम उच्च अवस्थाको प्राप्त हो ।। ३ ।।

अनु च्छय इपायेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापूर्वसिना मामि मस्याः ।

मामि द्रुहः पशुः कल्पयेनं तृतीये नाके अधि वि श्रयैन्म् ॥ ४ ॥

श्रुचा कृन्मीमच्ययी श्रयाग्वा सिञ्चोदकःमवं धेद्येन्म् ।

पूर्वाषचाग्निनां शमितारः श्रुतो गच्छतु सूक्तानां पत्रं लोकः ॥ ५ ॥

उत्क्रामातुः परि चेदतस्तस्तुश्चाराधि नाकं तृतीयम् ।

अग्नेर्मिरधि सं बभूविद्य ज्योतिष्मन्तममि लोकं जयैतम् ॥ ६ ॥

अजो अभिरजम् ज्योतिराद्दुरजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः ।

अजस्तमांस्यर्ष हन्ति दूरमस्मिन्ल्लोके श्रुधानेन दत्तः ॥ ७ ॥

अर्थ— हे (विदास्तः) विनेय शासक ! तू (एतां त्वचं यथा पशु) इस स्वप्नाको जोड़के अनुसार (इपायेन असिना अनुच्छय) काके शकसे कट डाल । (मामि मस्याः) अभिमान मत कर, (मामि द्रुहः) दोष मत कर । (पशुः एनं कल्पय) जोड़के अनुसार इसको समर्थ बना और (तृतीये नाके एनं अधि विधय) तीसरे स्वर्गधाममें इसको स्थापित कर ॥ ४ ॥

(श्रुचा कुन्मी अग्नी अधिध्रयाग्नि) मंत्रसे इस यात्रको मैं भगिनर रक्षना हूँ । उसमें तू (उदक आ सिञ्च) जल डाल और (एनं भय धेहि) इसको बर्षा स्थापित कर । हे (शमितारः) शाश्वत करनेवाले ! तुम (अग्निना पर्याघस्त) अग्नि द्वारा श्रांतों भोरते इसका धारण करो । यह (श्रुतः गच्छतु) परियक होकर वहाँ जावे कि (यत्र सूक्तानां लोकः) जहाँ सस्कर्म करनेवालोंका स्थान है ॥ ५ ॥

(अतः ततात् परोः) इस तपे हुए बर्तनसे (अततः) न संलग्न होना हुआ तू (परि उम् काम) उपर चर और (तृतीयं नाकं अधि) तीसरे स्वर्गधामको प्राप्त हो । (अग्नेः अधि) अग्निके उपर (अग्निः नं बभूविद्य) अग्नि प्रकट होती है, मतः (एतं ज्योतिष्मन्तं लोकं अभिजय) इस तेजस्वी लोकको जीत ॥ ६ ॥

(अजः अग्निः) अजन्मा अग्नि है (अजं उ ज्योतिः आहुः) न जन्मनेवाला तेज है ऐसा कहते हैं । (जयैतत्ता अजं ब्रह्मणे देयं आहुः) जीते हुए अनुष्यके द्वारा अपनी अजन्मा आत्मा परमहंसके त्रिपु समर्पण करने योग्य है ऐसा कहते हैं । (अस्मिन् लोके बभूवुधानेन दत्तः) इस लोकमें अब्दा धारण करनेवालेके द्वारा समर्पित की हुई (अजः तमामि दूरे अप हन्ति) अजन्मा आत्मा अन्यकारोंको दूर भगाती है ॥ ७ ॥

आवार्थ— योग शासक जिंदा उदक जोड़के अनुसार तीक्ष्ण शकसे दास्ययोग करे और रोगादि दोषोंको दूर करे । अभिमान न धरे और किसीका दोष भी न करे । प्रत्येक अवसरमें सामर्थ्य उत्पन्न की और धाम उत्पन्न स्थानको प्राप्त करे ॥ ४ ॥

एकलेका बर्तन भगिनर रक्षा जाय, उसमें पानी डाला जाय, श्रांतों भोरते अग्नी प्रकार लेक दिया जावे, एकनेके पश्चात् वहाँ सुकृत करनेवाले बैठे हों वहाँ लेजाकर उनको दिया जावे ॥ ५ ॥

तपे बर्तनसे ऐसा बाहर निकले कि जैसा न तथा हुआ होगा है । और परम उच्च अवस्थाको प्राप्त हो । भगिनर अग्नि अर्थात् आत्मापर परमात्मा विराजमान है । उस तेजोमय लोकको अपने शुभ कर्मसे प्राप्त करो ॥ ६ ॥

अजन्मा आत्मा भी अग्नि कहलाती है, अजन्मा परमात्मा भी तेजोमय है ऐसा ज्ञानी कहते हैं । जीवित देहधारी लोगोंके अन्दर जो अजन्मा जीवात्मा है यह परमात्मा अपनी परमहंसके त्रिपु समर्पण होने योग्य है ऐसा ज्ञानी कहते हैं । इस लोकमें अब्दासे यदि इसका समर्पण किया जाय, तो वह अजन्मा आत्मा मय अन्यकारोंको दूर कर सकती है ॥ ७ ॥

पञ्चोदनः पञ्चधा वि क्रंपताभाक्रुंस्पमानस्त्राणि ज्योतीषि ।	
ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि वि श्रयस्य	॥ ८ ॥
अजा रोह सुकृतां यत्र लोकः शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषा ।	
पञ्चोदनो ब्रह्मणे दीयमानः स दातारं तृप्या तर्पयाति	॥ ९ ॥
अजस्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे नाकस्य पृष्ठे ददिवसं दधाति ।	
पञ्चोदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुष्टास्पेका	॥ १० ॥
एतद्वे ज्योतिः पितरस्तृतीयं पञ्चोदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।	
अजस्तर्मास्यपं हन्ति दूरमस्मिन्लोके अर्धधानेन दत्तः	॥ ११ ॥

अर्थ— ( त्रीणि ज्योतीषि आक्रुंस्पमानः ) तीनो वेजोंपर आक्रमण करनेवाला ( पञ्चोदनः ) पांच भोजनोंवाला अजन्मा ( पञ्चधा विक्रमतां ) पांच प्रकारसे पराक्रम करे । ( ईजानानां सुकृतां मध्यं प्रेहि ) यज्ञकर्ता सरकर्म करनेवाले ६ मध्यमें मात हो । ( तृतीये नाके अधिविश्रयस्य ) तृतीय स्वर्गधाममें प्राप्त हो ॥ ८ ॥

( अज ! आरोह ) हे अजन्मा ! ऊपर चढ़ ( यत्र सुकृतां लोकः ) जहाँ शुभ कर्म करनेवालोंका स्थान है । ( चत्तः शरभः न ) जिसे हुए व्याघ्रसे समान ( दुर्गाणि अति द्युः ) सिकंदरेके परे जा, ( पञ्चोदनः ब्रह्मणे दीयमानः ) तर्पणाका भोजन करनेवाली आत्मा परमसकृति लिये समर्पित होती हुई ( सः ) वह ( दातारं तृप्या तर्पयाति ) दाताको तृप्तिले संतुष्ट करता है ॥ ९ ॥

( अजः ) अजन्मा आत्मा ( ददिवसं ) आत्मसमर्पण करनेवालेको ( त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे ) तीनों सुलोको देनेवाले, तीनों प्रकारोंमें युक्त, तीन पीढ़ों भाषणोंसे युक्त ( नाकस्य पृष्ठे ) स्वर्गधामके स्थानपर ( दधाति ) धारण करती है । ( पञ्चोदनः ब्रह्मणे दीयमानः ) पांच भोजनोंवाला जो परमसकृति समर्पित होता है ऐसा तू स्वयं ( एका विश्वरूपा धेनुः अति ) एक विश्वरूप कामधेनुके समान होता है ॥ १० ॥

दे ( पितरः ) पिताको ! ( यः एतत् तृतीयं ज्योतिः ) भाषणके लिये यह तीसरा देत है जिसे ( पञ्चोदनं अजं प्रायणे ददाति ) पञ्च भोजन करनेवाले अजन्मा आत्मा तर्पाह परमसकृति लिये समर्पण करना है । ( अर्धधानेन दत्तः अजः ) अजानुद्धारा समर्पित हुई अजन्मा आत्मा ( अस्मिन् लोके तर्मासि दूरे अपहन्ति ) इस लोकमें सब अन्धकारोंको दूर करती है ॥ ११ ॥

भाषार्थ— तीन तीनोंको प्राप्त करनेवाली यह आत्मा पांच भोजन प्राप्त करनेवाली है । यह पांच कार्यक्षेत्रोंमें पराक्रम करे । वह करनेवाले शुभकर्म करनेवाले ६ मध्यमें प्रमुखस्थान प्राप्त करे और परम उच्च अवस्थामें विराजमान हो ॥ ८ ॥

हे अजन्मदिव जीवामह ! तब मार्गमें चल और सत्कर्म करनेवाले लोग जहाँ पहुँचते हैं वहाँ तू पहुँच । जिस प्रकार त्रिधा हुआ व्याघ्र होता है, वैसे तू सुरक्षित होकर सब कष्टोंके परे जा । पांच भोजनोंका भोग देनेवाली जीवामा परमात्माके लिये समर्पित होकर समर्पण करनेवालेको संतुष्ट करता है ॥ ९ ॥

अजन्मा आत्मा आत्मसमर्पण करनेवालेको सब प्रकारसे उच्च मोक्ष सुखपूर्ण स्थानोंके लिए योग्य बनाती है । पांच भोजनोंका भोग जीवामा परमात्माके लिए समर्पित होनेपर वह एक कामधेनु जैसा बनती है ॥ १० ॥

जो पांच ब्रह्मोंका भोग जीवामाका परमात्माको समर्पित करना है वह गाने, सब पिताओंके लिये तृतीय ज्योति देनेवाला है । वह समर्पण यदि धन्यसे किए गई तो वह सब अजानान्धकारोंको दूर करता है ॥ ११ ॥

ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन्पञ्चोदयं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।

स ऋषिभिर्मभि लोकं जयैतं त्रिवेदेऽस्मभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु

॥ १२ ॥

अजो ऋषेर्वनिष्ट शोकादिप्रो निप्रैस्य सहसो विपश्चित् ।

दुष्टं पूर्तमभिपूर्तं वषट्कृतं तदेवा ऋतुशः कल्पयन्तु

॥ १३ ॥

अभोतं वासो दद्याद्विरण्यमपि दक्षिणाम् ।

तथा लोकान्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः

॥ १४ ॥

एवास्त्वान्नोपं यन्तु धाराः सोम्या देवीधृतपृष्ठा मधुश्रुतः ।

रतमान पृथिवीमृत धां नाकस्य पृष्ठेऽधि सप्तर्षिमा

॥ १५ ॥

अर्थ— (ईजानानां सुकृतां लोकं ईप्सन्) वलकवांशों और अनुकर्म करनेवालोंके द्वारा मात किए जानेवाले लोककी मासिकी इच्छा करनेवाला जो मनुष्य अपनी (पञ्चोदयं अजं ब्रह्मणे ददाति) पन्च भोजन करनेवाले भगन्मा आत्माको परब्रह्मके लिए समर्पित करता है । (सः ऋषीति एतं लोकं जय) वह ऋषिवाले इस लोकको जीतता है, वह (प्रतिगृहीतः अस्मभ्यं शिवः अस्तु) मात किया लोक कल्याणकारी होवे ॥ १२ ॥

(अजः अजोः शोकात् हि अजनिष्ट) भगन्मा आत्मा अक्षिरूप तेजस्वी परमात्माके धेनुके प्रकट हुई है । (विप्र-ह्य महसः) विरीच ज्ञानी परमात्माकी शक्तिसे (विपश्चित् विप्रः) यह ज्ञानी चेतन प्रकट हुआ है । (दुष्टं पूर्तं) दुष्ट और पूर्त (अभिपूर्तं वषट्कृतं तत्) संपूर्ण वषट्के द्वारा समर्पित इसको (देवाः ऋतुशः तत् कल्पयन्तु) देव भक्तके अनुकूल समर्थ बनाते हैं ॥ १३ ॥

(अभोतं हिरण्यं वासः) साथ बैटकर हुना हुआ सुवर्णमय वस्त्र और (दक्षिणां अपि दद्यात्) दक्षिणा भी दी जावे । (तथा लोकान् समाप्नोति) इससे वे लोक यह प्राप्त करता है, (ये दिव्याः ये च पार्थिवाः) जो पुलोकमें और जो इस पृथ्वीपर हैं ॥ १४ ॥

हे (अज) भगन्मा आत्मा (एताः सोम्याः देवीः) वे सोम संबंधी विष्य (पृतपृष्ठाः मधुश्रुतः) धी और शहदसे युक्त (धाराः स्वा उपयन्तु) रसधारारं गेरे वास मधुचं और ए (सप्तर्षिमा अधि) साथ चिरणोंवाले सूर्यके ऊपर (नाकस्य पृष्ठे धां) सूर्यके पृष्ठभागपर पुलोकको (उत पृथिवीं तस्तमान) और पृथ्वीको स्थिर कर ॥ १५ ॥

भावार्थ— जिस लोकको यह करनेवाले भेद पुरुष प्राप्त करते हैं, वहाँ पन्चभोजनकी जीवत्माका परमात्माके शिवे समर्पण करनेवाला जगत् है । अजः तू इस प्रकारक लोकको प्राप्त हो । यह लोक प्राप्त होनेपर सबके लिये कल्याणकारी होवे ॥ १२ ॥

परमात्माके तेजसे भगन्मा जीवत्मा प्रकट होती है । महान् ज्ञानी परमात्माकी मददमासे यह चेतन जीवत्मा प्रकट होती है । इतने सब प्रकारके भक्तुओंके अनुकूल सब कर्म सब देव मिलकर पूर्ण करते हैं ॥ १३ ॥

सबसे बैटकर हुना हुआ वस्त्र सुवर्ण दक्षिणके साथ दान करना उचित है । इस दानसे भौतिक और अर्भौतिक शक्तियोंकी प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥

ये दिव्य सोमारककी धाराएं धी और मधुके साथ मिलकर प्राप्त हों इनका तेजस करके तू इस भूमिको सूर्यसे भी परे स्वर्गधाममें स्थापित कर ॥ १५ ॥



अञ्जोऽस्पृशं स्मृगोऽसि स्वयां लोकमर्द्धिरसः प्राजानन् । तं लोकं पुण्यं प्र क्षेपम् ॥ १६ ॥  
 येना सहस्रं बहसि येनापि सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो बहु स्वर्दिवेषु गन्तव्ये ॥ १७ ॥  
 अजः पक्वाः स्मृगो लोके दधाति पञ्चैदनो निर्धति वाधमानः ।  
 तेन लोकान्स्वर्षयवतो जयेम् ॥ १८ ॥  
 यं ब्राह्मणे निदुधे यं च विष्णु वा विपुषं ओदुनानामजस्यं ।  
 सचै तदग्ने सुकृतस्यं लोके जानीताग्नेः संगमने पयिनाम् ॥ १९ ॥  
 अजो वा इहमग्ने व्यक्रमत तस्योर इपमभवद् धीः पृष्ठम् ।  
 अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वं समुद्रौ कुक्षी ॥ २० ॥

अर्थ—हे (अज) शक्रमा! (अजः असि) जन्मरहित है, तू (स्वर्गः असि) सुखमय है, (स्वया अंगिरसः लोकं प्रजानन्) तू तैजस् लोकको जाननेवाला है। (तं पुण्यं लोकं प्र क्षेप) उस पुण्यकारक लोकको मैं जानना चाहता हूँ ॥ १६ ॥

हे अग्ने! (येन सहस्रं बहसि) जिससे तू सहस्रलोकों के ज्ञाता है और (येन सर्ववेदसं) जिससे सब ज्ञान तू पहुँचाता है, (तेन) उससे (नः इम यज्ञं) हमारे इस यज्ञको (देवेषु स्वः गमस्ये) देवोंके अन्दर विद्यमान तेजको प्राप्त करनेके लिये (वह) के चल ॥ १७ ॥

(पञ्चैदनः पक्वाः अजः) पक्व भोजनवाली परिपक्व हुई अन्नमा आत्मा (निर्धति वाधमानः) दुखस्वाका भाग करती हुई (स्वर्गं लोके) स्वर्ग लोकमें (दधाति) धारण करती है। (तेन) उससे (स्वर्षयतः लोकान् जयेम) स्वर्षयते लोकोंको जीतकर प्राप्त करें ॥ १८ ॥

(यं ब्राह्मणे निदुधे) जिसको ब्राह्मणमें रखता है, (यं च विष्णु) जिसको प्रजाजनोंमें रखता है और (अजस्य ओदुनानां वाः विपुषः) जो अन्नमा आत्माके भोगोंकी पूर्तिवा है, है अग्ने। (नः सर्वं तद्) हमारा वह सब (सुकृतस्य लोके) शुभ्य लोकमें, (पयिनां संगमने) मार्गोंके संगममें है, ऐसा (जानीताद्) जाने ॥ १९ ॥

(अजः पक्वा इव व्यक्रमत) अन्नमा आत्मा ही पूर्वकालमें इस संसारमें विद्यमान करती रही। (तस्य उरः इव अमपत्) उसकी छाती यद् भूमि बनी और (योः पृष्ठं) एलोक पीठ होगया। (अन्तरिक्षं मध्यं) अन्तरिक्ष मध्यभाग और (दिशः पार्श्वं) दिशाएँ पार्श्वभाग तथा (समुद्रौ कुक्षी) समुद्र कोल बने ॥ २० ॥

भाषार्थ—तू जन्मरहित और सुखपूर्ण है। तू सब तेजस्वी लोकोंको जानता है। उन पुण्यमय लोकोंको मैं भी जानना चाहता हूँ ॥ १६ ॥

हे तेजस्वी देव! तिम शक्तिसे तू सहस्रोंको उक्त अर्थसाधक छेड़ता है, सब ज्ञान सबको पहुँचाता है, उस आदि-वीच शक्तिसे इस भेरे यज्ञको तू सब देवोंके पास पहुँचा, तिमसे मुझे दिव्य तेजस्वी प्राप्ति होने ॥ १७ ॥

पक्वभोजन करनेवाणी अन्नमा आत्मा परिपक्व होती हुई अन्नवि दूर करती है और स्वर्गलोक प्राप्त करती है। हम सब उस परिपक्व आत्माके द्वारा प्रकाशवाले लोक प्राप्त करें ॥ १८ ॥

जो ज्ञानियोरे लिये हम समर्पित करते हैं, जो प्रजाजनोंके लिये अर्पित करते हैं, जो अन्नमा आत्माके भोगोंकी पूर्तिपा है, वे सब पुण्यलोकमें पहुँचानेवाले मार्गोंके सहायक हैं ऐसा जाने ॥ १९ ॥

इस जगत्में जो विद्यमान है वह अन्नमा आत्मा ही है। इस आत्माकी छाती भूमि है, पीठ पुच्छोक है, अन्तरिक्ष मध्यभाग है, दिशाएँ पार्श्व हैं और कोलें समुद्र हैं ॥ २० ॥

सत्यं चतं च चक्षुषी विश्वं सत्यं अद्वा प्राणो विराट् शिरः ।

एष वा अपरिमितो यज्ञो यदुजः पञ्चोदनः

॥ २१ ॥

अपरिमितमेव यज्ञसाधनोत्परिमितं लोकमर्षं रुन्धे ।

योऽज्ञं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति

॥ २२ ॥

नास्थास्थानि मिन्ध्यात् मज्जो निर्धयेत् । सर्वमेतं समादायिदमिदं प्र वैशयेत्

॥ २३ ॥

इदमिदमेवास्यं रूपं भवति तेनैतं सं संगमयति ।

इयं मह ऊर्जमस्मै दहे योऽज्ञं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति

॥ २४ ॥

पञ्चं रुक्मा पञ्च नवानि वत्स पञ्चास्मै धेनवः कामदुघा भवन्ति ।

योऽज्ञं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति

॥ २५ ॥

अर्थ— ( सत्यं च कृतं च चक्षुषी ) सत्य और कृत ये उसकी आँखें, ( विश्वं सत्यं ) सब विश्व भक्तिव, ( अद्वा प्राणः ) अद्वा प्राण और ( विराट् शिरः ) विराट् शिर बना । ( यत् पञ्चोदनः अजः ) जो पञ्च भोग भक्त्या आत्मा है वह ( एषः वै अपरिमितः यज्ञः ) यह सत्ययुक्त अपरिमित यज्ञ है ॥ २१ ॥

( यः पञ्चोदनं ) जो पाच भोगों/वाले और ( दक्षिणाज्योतिषं अज्ञं ददाति ) दक्षिणाके क्षेत्रसे प्रकृतित मज्ज्या आत्माका समर्पण करता है, वह ( अपरिमितं यज्ञं आप्नोति ) अपरिमित यज्ञको प्राप्त करता है, तथा ( अपरिमितं लोकं अवहन्धे ) अपरिमित लोकको अपने आधीन करता है ॥ २२ ॥

( अस्य अस्थानि न मिन्ध्यात् ) इसकी हड्डियोंको न छोड़े, ( मज्जः न मिः घयेत् ) मज्जामेंको न पीये, ( एतं सत्यं समादाय ) इस सबको लेकर ( इदं इदं प्रवेशयेत् ) इसको इसमें प्रविष्ट करे ॥ २३ ॥

( इदं इदं एव अस्य रूपं भवति ) यह यह ही इसका रूप होगा है, ( तेन एतं संगमयति ) उसके साथ इसको मिलाएगा है । ( यः दक्षिणाज्योतिषं पञ्चोदनं अज्ञं ददाति ) जो दक्षिणाके क्षेत्रके साथ पञ्चभोगवाले भक्त्या आत्माका समर्पण करता है । ( अस्मै इयं महः ऊर्जं दहे ) इसके लिए अन्न, तेज और बल मिलता है ॥ २४ ॥

( यः दक्षिणा ) जो दक्षिणाके क्षेत्रके साथ पञ्चभोगवाले भक्त्या आत्माका समर्पण करता है । ( अस्मै ) इसके लिए ( पञ्च रुक्मा ) पाँच भोंदरें, ( पञ्च नवानि वत्सा ) पाँच भवे बछ और ( पञ्च कामदुघा धेनवः ) पाँच इह समझने दूध देनेवाली गीबें ( भवन्ति ) मिलती हैं ॥ २५ ॥

भावार्थ— उसकी आँखें सत्य और कृत हैं, उसका भक्तिव सब विश्व है, उसका प्राण अद्वा और शिर सत्यं चकतेवाले लोक हैं । यह पञ्चभोगवाले भक्त्या आत्मा भक्त्य यज्ञरूप है ॥ २१ ॥

यह पञ्चभोगवाले भक्त्या जो समर्पित करता है उसकी उपा कारण भक्त्य यज्ञ करनेका पल प्राप्त होता है और वह भक्त्य लोकोको प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

इस यज्ञके लिए किसीकी हड्डियोंको तोड़नेकी आवश्यकता नहीं और मज्जामेंको विचोड़नेकी भी आवश्यकता नहीं है । अपना सर्वस्व लेकर मनुष्यको इस विराटमें प्रविष्ट होगा चाहिए ॥ २३ ॥

यही इस यज्ञका रूप है । उक्त विराटके साथ इसका संघ जोड़ता है । जो पञ्चभोगवाले भक्त्या आत्माका समर्पण करता है, इससे इसको अन्न, बल और तेज प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

इस समर्पण करनेवालेको पाँच सुपुत्रों, पाँच नदीय बछ और पाँच कामधेनु प्राप्त होती हैं ॥ २५ ॥

पश्चं हृषमा ज्योतिरिस्मै भवन्ति वसुं वासांसि तन्वे भवन्ति ।

स्वर्गं लोकमश्नुते योश्च जं पश्चोदन् दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २६ ॥

या पूर्वं पतिं विद्याद्यान्यं विन्दतेऽपरम् । पश्चोदन् च तावजं ददातो न वि योषता ॥ २७ ॥

समानलौको भवति पुनर्भवापरं पतिः । योश्च जं पश्चोदन् दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २८ ॥

अनुपूर्ववत्सां धेनुर्मनह्वाहमुपवर्षेणम् । वासो हिरण्यं दुश्वा ते यन्ति दिवमुच्चमाम् ॥ २९ ॥

आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् । जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुर्ष ह्ये ॥ ३० ॥

अर्थ—( यः दक्षिणा० ) जो दक्षिणाके तेजसे साथ पन्चमोतनवाले अग्निमा आत्माका समर्पण करता है ( अस्मै ) हमके लिए ( पन्च हृषमा ) पांच सुवर्ण अमाय ( ज्योतिः भवन्ति ) प्रकाशित होती हैं ।। ( तन्वे ) परीरके लिए ( वसुं वासांसि भवन्ति ) कषणरूपी वस्त्र होते हैं और यह ( स्वर्गं लोकं अश्नुते ) स्वर्ग लोक प्राप्त करता है ॥ २६ ॥

( या पूर्वं पतिं विद्या ) जो पहिले पतिको प्राप्त करके, ( अथ अपरं विन्दते ) पश्चात् दूसरे अग्निको प्राप्त करती है, ( तौ पश्चोदन् अर्जं वदतः ) वे दोनों पन्च भोजनवाले अग्निमा आत्माका समर्पण करके ( न वियोरतः ) विपुत्र नहीं होते ॥ २७ ॥

( यः पन्चोदन् दक्षिणाज्योतिषं अर्जं ददाति ) जो पन्च भोजनवाले दक्षिणाके तेजसे युक्त अग्निमा आत्माका समर्पण करता है वह ( अपरः पतिः ) दूसरा पति ( पुनर्भवा सम्बललौकः भवति ) पुनर्बिवाहित स्त्रीके साथ समान स्थानवाला होता है ॥ २८ ॥

( अनुपूर्ववत्सां धेनुं ) क्रमसे पतिवर्ष बध्ना देनेवाली गीको और ( अनह्वाहं ) घैटको तथा ( उपवर्षेणं धासः हिरण्यं ) भीवनी, वस्त्र और सोना ( दुश्वा ) देकर ( न उतामां दिय यन्ति ) वे उताम् भ्रगलोकको प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥

( आत्मानं पितरं पुत्रं ) अपने मापको, पिताको, पुत्रको, ( यौत्रं पितामहं ) यौत्रको और पितामहको ( जायां जनित्रीं मातरं ) स्त्री और अपनी माताको और ( ये प्रियाः तान् ) जो इष्ट हैं उनको मैं ( उपह्वये ) पाप दुरात्मा हूँ ॥ ३० ॥

भावार्थ— इस समर्पण करनेवालेको साथ सुवर्ण और पांच प्रकारस प्राप्त होकर परीरके लिए करके जैसे वस्त्र प्राप्त होते हैं और स्वर्ग लोक प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

जो पहिले पतिको प्राप्त करके पश्चात् पुनर्बिवाहसे दूसरे पतिको प्राप्त करती है, यह हम पन्चमोतनी अग्निमा समर्पण करके विपुत्र नहीं होती ॥ २७ ॥

जो पन्चमोतनी अग्निमा आत्माका समर्पण करता है वह दूसरा पति पुनर्बिवाहित पतिसे समान ही होता है ॥ २८ ॥ प्रतिवर्ष बध्ना देनेवाली गी, उषम घैट, ओषनेका वस्त्र और सुवर्ण इनका दान करनेसे उताम् स्वर्ग प्राप्त होता है ॥ २९ ॥

भगनी आत्मा, पिता, पितामह, पुत्र, पौत्र, धर्मपत्नी, अग्निदेनेवाली आत्मा और जो हमारे लिए हैं उन सबको मैं पुढाता हूँ और यह बात सुनाया हूँ ॥ ३० ॥

यो वै नैदाघं नामर्तु वेद । एष वै नैदाघो नागर्तुर्षदुजः पञ्चोदनः ।

निरेवाप्रियस्य आर्तृष्यस्य श्रियं दहति भवंत्यात्मना । योऽज्ञं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३१ ॥

यो वै कुर्वन्तं नामर्तु वेद । कुर्वन्तीकुर्वतीमेवाप्रियस्य आर्तृष्यस्य श्रियमा दत्ते ।

एष वै कुर्वन्नामर्तुर्षदुजः पञ्चोदनः । निरेवाप्रियस्य आर्तृष्यस्य श्रियं दहति भवंत्यात्मना

योऽज्ञं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति

॥ ३२ ॥

यो वै संयन्तं नामर्तु वेद । संयन्तीसयतीमेवाप्रियस्य आर्तृष्यस्य श्रियमा दत्ते ।

एष वै संयन्नामर्तुर्षदुजः पञ्चोदनः । निरेवाप्रियस्य आर्तृष्यस्य श्रियं दहति भवंत्यात्मना

योऽज्ञं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति

॥ ३३ ॥

यो वै पिन्वन्तं नामर्तु वेद । पिन्वन्तीपिन्वतीमेवाप्रियस्य आर्तृष्यस्य श्रियमा दत्ते ॥

एष वै पिन्वन्नामर्तुर्षदुजः पञ्चोदनः । निरेवाप्रियस्य आर्तृष्यस्य श्रियं दहति भवंत्यात्मना ।

योऽज्ञं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति

॥ ३४ ॥

यो वा उद्यन्तं नामर्तु वेद । उद्यन्तीमुद्यतीमेवाप्रियस्य आर्तृष्यस्य श्रियमा दत्ते ।

एष वा उद्यन्नामर्तुर्षदुजः पञ्चोदनः । निरेवाप्रियस्य आर्तृष्यस्य श्रियं दहति भवंत्यात्मना

योऽज्ञं पञ्चोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति

॥ ३५ ॥

वार्थ— ( य पञ्चोदन अत्र ) चोपपन्नोत्पत्ती भवते । ( एष वै नैदाघ नाम ऋतु ) यह निब्रपते निदाघ ऋषोः शीघ्र ऋतु है ( य वै नैदाघ नाम ऋतु वेद ) जो इस शीघ्र ऋतुको जानता है और ( य दक्षिणा-ज्योतिष पञ्चोदन अत्र ददाति ) जो दक्षिणाके तेजसे पुत्र पञ्चभोजनी अन्नका समवेग करता है यह ( अप्रियस्य आर्तृष्यस्य श्रियं नि दहति ) अप्रिय शत्रुके धीको सर्वथा नष्ट देता है और यह ( आत्मना भवति ) अपना आत्मनक्षिसे प्रगाथित होता है ॥ ३१ ॥

( एष वै कुर्वन्तं नाम ऋतु यत् अत्र ० ) यह नि सदेह कथ नामक ऋतु है जो अत्र पाचमागती है । ( य वै कुर्वन्तं नाम ऋतु वेद ० ) कथा नामक दूध ऋतुका जानता है और जो दक्षिणाके तेजसे पुत्र इस पञ्चभोजनी अन्नका समवेग करता है, यह ( अप्रियस्य आर्तृष्यस्य ) अप्रिय शत्रुके ( कुर्वन्ती कुर्वन्ती एष श्रियं आदत्ते ) प्रपत्नमयी धीको हर लेता है ॥ ३२ ॥

( एष वै संयन्तं नाम ऋतु यत् अत्र ० ) यह सयन नामक ऋतु है जो पञ्चभोजनी अत्र है । ( य वै संयन्तं नाम ऋतु वेद ० ) जो निब्रपते सयन नामक ऋतुका जानता है और जो दक्षिणाके तेजसे पुत्र पाचमागती अन्नका समवेग करता है, यह ( अप्रियस्य आर्तृष्यस्य ) अप्रिय शत्रुके ( संयन्ती संयन्ती एष श्रियं आदत्ते ) प्रपत्नमये प्राप्त धीको हर लेता है ॥ ३३ ॥

( एष वै पिन्वन्तं नाम ऋतु यत् अत्र ० ) यह पापण नामक ऋतु है जो पञ्चभोजनी अत्र है । ( य वै पिन्वन्तं नाम ऋतु वेद ० ) जो निब्रपते पापक नामक ऋतुका जानता है और दक्षिणाके तेजसे पुत्र पञ्चभोजनी अन्नका समवेग करता है, यह ( अप्रियस्य आर्तृष्यस्य पिन्वन्ती नाम श्रियं आदत्ते ) अप्रिय शत्रुका पौष्टक धीको हर लेता है ॥ ३४ ॥

( एष वै उद्यन्तं नाम ऋतु यत् अत्र ० ) यह नि सदेह उद्यन नामक ऋतु है जो पञ्चभोजनी अत्र है । ( य वै उद्यन्तं नाम ऋतु वेद ० ) जो निब्रपते उद्यनकयी ऋतुको जानता है और दक्षिणाके तेजसे पुत्र पञ्चभोजनी अन्नको देता है, यह ( अप्रियस्य आर्तृष्यस्य ) अप्रिय शत्रुकी ( उद्यन्ती उद्यन्ती एष श्रियं आदत्ते ) उद्यनको प्राप्त होनेवाली धीको हर लेता है ॥ ३५ ॥

यो वा अभिभुवं नामर्तुं वेद । अभिभवन्तीमभिभवन्तीमेवाग्निं यस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।

एष वा अभिभूर्नामर्तुर्पदुज पंचोदनः । निरेवाग्निं यस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं ददति भवन्त्यात्मना ।

योऽज पंचोदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति

॥ ३६ ॥

अजं च पचत पञ्च चोदनान् ।

सर्वा दिशा समनसः सध्रीचीः सान्तर्देशाः प्रति गृह्णन्तु त एतम्

॥ ३७ ॥

वास्तै रक्षन्तु तद्य तुभ्यमेतं ताभ्य आर्ज्यं हविर्दि जुहोमि

॥ ३८ ॥

अथ— ( ए र वै अभिभू नाम ऋतु ) यह ऋि मन्त्रे विजय नामक ऋतु है ( यत् अज पञ्चोदन ) जो पञ्चभोजनी भज है । ( य ये अभिभुय नाम ऋतु वेद ) जो विजय नामक इस ऋतुको जानता है और ( य दक्षिणा ) या दक्षिणाक वेदसे युक्त पञ्चभोजनी अन्नका समर्पण करना है, यह ( अग्निव्यस्य भ्रातृव्यस्य ) अग्निव्य ऋतुके ( अभिभवन्ती अभिभवन्ती एष श्रिय आदत्ते ) पञ्चाक्ष ऋतेवाली गोभाको दूर लेया है । इसक ( अग्निव्यस्य ) अग्निव्य ऋतुकी श्रीको गला देता है और ( आत्मना भवति ) अपनी शक्तिसे रहता है ॥ ३६ ॥

( अज पञ्च ओदनान् च पचत ) इस अन्न-भाको और पाच भोजनको परिपक्व करो । ( तै एत ) तैरे इस अन्नको ( सर्वा दिशा ) सब दिशाएँ ( सान्तर्देशा ) आन्तरिक प्रदेशोंक साथ ( सध्रीची समनस ) सहमत और एक विचारसे युक्त होकर ( प्रतिगृह्णन्तु ) स्वीकार करो ॥ ३७ ॥

( ता ते तुभ्य तद्य एत रक्षन्तु ) ये तैरी तैरे लिए तैरे इस अन्नभाकी रक्षा करें । ( ताभ्य इद आज्य हवि जुहोमि ) उनके लिए इस धी और हवन सामग्रीका हवन करता हूँ ॥ ३८ ॥

भाषार्थ— उष्णता, कर्म, सपन, पुष्टि, उद्यम और विजय ये छ ऋतु हैं । ये छ ऋतु इस पञ्चभोजनी भजका रूप हैं । जो इसका स्वरूप जानता है और इसका समर्पण करता है, यह ऋतुको पालक कहता है और अपने आत्माकी शक्ति बढ़ाता अर्थात् आध्यात्मिक फलसे युक्त होता है ॥ ३६-३६ ॥

इस अन्नको और इसके पाँचों भोजनोंको परिपक्व बनाओ, सब दिशा और उपदिशाएँ इसको अपनाएँ अर्थात् यह सब दिशाओंका घने ॥ ३७ ॥

ये सब आत्माकी रक्षा कर और आभारसासे तैरा उन्नति हो । इसी उद्देश्यसे इस धीकी आहुति मैं देता हूँ, यह एक समर्पणकर उदाहरण है ॥ ३८ ॥



## पञ्चोदन अज ।

इस सूक्त 'पञ्चोदन अज' का स्वर्गोपास केसे प्राप्त होता है इसका वर्णन है । सबसे पहिले यह पञ्चोदन रूप कौन है इस बातका परिचय प्राप्त करना चाहिये । 'पञ्चोदन अज' ( पञ्चोदन अज ) का अर्थ पाच प्रकारक भोजनो पालन अज है । अर्थात् पाच प्रकारक अन्नका भोग करनेवाला यह अज है ।

'अज' शब्दके अर्थ— "अजन्मा, सदासे रहनेवाला, सर्व शक्तिमान परमात्मा, गीव, आत्मा चालक, यकरा, धान्य' ये होते हैं । इनमेंसे बड़ा किसका ग्रहण करना

चाहिये यह एक विचारणीय बात है । 'अज' शब्दसे यहाँ परमात्मा ग्रहण करना अयोग्य है, क्योंकि यह स्वभावसे परम उच्च लोकस सदा विराजमान ही है उसको उच्च लोकमें जानेकी आवश्यकता ही नहीं है । यहाँ इस सूक्तमें जिस अज का वर्णन है उसक विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखिये—

सुहृता लोके गच्छन्तु प्रजानन् ॥ ( म १ )

तीर्थ्या तमासि भजस्तृतीय नाक जाकमताम् ॥

( म १, २ )

तृतीये नाक अधि विध्रयैतम् ॥ ( म ४ )

श्रुतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥ ( म ५ )

द्वितीये नाके अधि विक्षयस्य ॥ ( म ८ )

“ यह मार्ग जानना हुआ पुण्य कर्म करनेवालोंके लोकको प्राप्त करे । सन्धकार दूर करके तृतीय स्वर्गधामको प्राप्त होये । परिपक्व होकर पुण्यधामके लोकको जाये । तृतीय स्वर्गधाममें आश्रय करे । ”

ये सन्धमात्र ऐसे आत्माक सूक्ष्म है कि जिसको पहिले स्वर्ग नहीं प्राप्त हुआ है, ओ उत्तम लोकमें नहीं पहुँचा है, ओ अधम लोकमें है पर स्वर्ग जाना चाहता है अर्थात् यज्ञका अत्र शत्रु परमात्मका वाचक नहीं, अर्थात् ऐसे आत्मका वाचक है, जो उत्तम लोकको अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है । ‘ अत्र ’ शब्दके दूसरे अर्थ ‘ धान्य ’ और ‘ यज्ञ ’ ये हैं । हममें धान्यका स्वर्गधामको प्राप्त होना असंभव है और यज्ञ स्वर्गधामको जा सकता है वा नहीं, इस विषयमें शका ही है । क्योंकि स्वर्ग तो ( सुकृतां लोकः ) सत्कर्म करनेवालोंका लोक है । जो स्वयं सत्कर्म कर सकते हैं, वे ही अपने किये सत्कर्मोंके बलसे स्वर्गधामको जा सकते हैं । अत्र धान्य और यज्ञ स्वयं सत्कर्म करनेमें समर्थ न होनेके कारण सुकृत-लोकको प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं ।

यहाँ कई कहेंगे कि जो यज्ञका यज्ञमें समर्पित किया जाता है, वह समर्पित होनेके कारण स्वर्गका भागी हो सकता है । यहाँ विचारणीय बात यह है कि, जो स्वयं स्वेच्छासे दूसरोंकी भलाईके लिये समर्पित होते हैं, जो परोपकारके लिए जास-समर्पण कर सकते हैं, वे स्वर्गधाम प्राप्त करनेके अधिकारी माने जा सकते हैं । जो लोग बन्देको एकड़ते हैं और उसके मासका हवन करते हैं, वे बन्देको इच्छाका दिवार ही नहीं करते । यदि इस प्रकारकी जबरदस्तीसे स्वर्गधामकी प्राप्ति होनेका संभव हो, तो जो गीवें और बन्दरिया व्याजके जीवनेके लिए समर्पित हो जाते हैं, वे सबकी साथ स्वर्गको बहुचेंगी, इच्छना ही नहीं, अत्र सशुक्र धान्य भी दक्षिणमें आहुति द्वारा समर्पित होनेपर सीधा स्वर्गको जायगा, समिधापु और गी भी यहाँ पहुँचेंगा । यह तो अल्पवस्था है । न्यायमें गीको मारा और खाया, तो इसमें तावका आत्मसमर्पण नहीं है । ह्नु राजा प्रजाको सुदूरक प्रजाकी धन संपत्ति एकट्ठी करके ले लाया है, यज्ञ भी उस परदलित प्रजाको परोपकार, दान या सर्वस्वका मेघ करनेका पुण्य नहीं मिल सकता । फल तप मिलेगा कि जब आत्मसर्वस्वका समर्पण रेच्छासे किया गया हो । पूर्वक ‘ अत्र ’ के अर्थमें ‘ धान्य, यज्ञ ’ ये आत्म-समर्पणकी बात जान ही नहीं सकते, दसलिए आत्मसमर्पण

कर नहीं सकते । और ये स्वर्गधामको प्राप्त नहीं हो सकते । परमात्माके उत्तम लोकमें सदा उपस्थित होनेसे उसके कर्म विशेषसे आत्मसमर्पण द्वारा वह लोक प्राप्त करनेका प्रथम ही नहीं कठना अत्र शेष रहा ‘ जीव आत्मा ’, यही अर्थ यज्ञ अर्थोक्ति है । यह सुकृत करवा हुआ स्वर्गधामको प्राप्त करता है और इसी कारिकाके लिए संपूर्ण धर्मशास्त्र रचे गये हैं ।

इस सूत्र ‘ अत्र ’ शब्दका प्रसिद्ध अर्थ ‘ यज्ञ ’ लेकर कश्यपि बन्देको काटना, पकाना, उसके अन्न सपको देना और उसके स्वर्गको भेजना ऐसे अर्थ किये हैं । वे उक्त कारण युक्तियुक्त नहीं हैं । अस्तु, इस तरह यज्ञ इस सूत्रमें अत्र शब्दका अर्थ जीव, आत्मा किया जीवात्मा है ।

अब देखना है कि इसको ‘ पञ्चोदय ’ क्यों कहा है । यह पांच प्रकारका अन्न खाता है इसीलिए इसको ‘ पञ्च-भोजनी ’ अत्र कहा है । इसके पांच भोजन बीजनेही शब्द, स्वयं, रूप, रस और गन्ध ये पांच विषय इसके पांच भोजन हैं, वे परस्पर भिन्न हैं और ये इसके उपभोगके विषय हैं । इस विषयमें कहा है—

द्वा सुपूर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिप-  
स्वजाते । तपोरन्यः पिप्पलं द्वाहृत्यमक्षत्रयोऽ-  
भिचारुशीति ॥ ( ऋ० ११६४२०, अथर्व १११  
( ११ ) २० )

“ एक ही ( शरीररूपी ) वृक्षपर दो पत्नी ( दो आत्मा-जीवात्मा और परमात्मा ) बैठे हैं । उनमेंसे एक ( जीवात्मा ) हम वृक्षका मीठा फल खाता है और दूसरा न खाता हुआ कटक मकाता है । ”

इस वृक्षमें रूप, स्वयं, रूप, रस और गन्ध ये पांच भोगरूपी फल लयते हैं । इनका भोग यह अन्नमा आत्मा करता है । इसके पञ्च जनेन्द्रियोसे ये पांच फल इसके पास पहुँचते हैं । अनुप्य शान्ति हो अथवा भक्षणी हो, यह हो वा मुक्त हो, तबतक यह आत्मा शरीरमें रहेंगी, तबतक इसके पास ये पांच प्रकारके भोग प्राप्त होते ही रहेंगे । यह स्थितिमें रहनेवाली आत्मा आत्मचित्ते विषय सेवन करेगी और जीवन-मुक्त स्थितिमें रहनेवाली आत्मा आत्मचित्ते छोड़कर उदासीन तसे दर्शन करेगी । दोनोंको कारणसे शब्द, रसपासे स्वयं, नेत्रसे रूप, चिह्नसे रस और नाकसे गन्ध प्राप्त होगा । ये पांच भोजन इसके पास आवेंगे, कोई भोग करेगा और कोई नहीं यह बात दूसरी है । ‘ पञ्चोदय अत्र ’ वा यह सर्व है और यह इष्टक जीवात्मा विषयमें सन्धुधर्म आत्मक है ।

इस 'अत्र' का स्वप्नका निश्रय स्वयं इस मूलने किया है, यह अर्थ देखिये—

अजो अग्नि अजमु ज्योति आहु,  
अज तमाग्नि अपहन्ति ॥ ( म० ७ )  
अग्ने अग्नि स यभूविधि ॥ ( म० ६ )  
अज हि अग्ने शोकात् अजनिष्ट ( म० १३ )  
विप्रस्य महस विपश्चित् विप्र अजनिष्ट ॥ ( म० ३१ )  
एव वा अपरिमितो गृह अजज एञ्चोदन ।  
( म० २१ )

“अग्नि का नाम अज है, ज्योतिका नाम अज है, यह अज अन्धकारको दूर करता है। अग्निसे अग्नि उत्पन्न हुआ है। अग्नि उत्पन्न अज उत्पन्न हुआ है। ज्ञानीको महिमासे जानी विद्वान् जन्मा है। यह एञ्चोदन अज अपरिमित यह है। ये सप्त मंत्र भाग यज्ञ अज सन्मुखसे आत्माका भाव बताते हैं। क्योंकि आत्मा, ज्योति, अग्नि, ज्ञानो, यज्ञ आदि अन्ध जीवार्माके लिए वैदिक पाठमन्त्रमे आते हैं। येही मन्त्रशब्द 'अज' शब्दका अर्थ यज्ञनेके लिए वेदने स्वयं दिये हैं और अज शब्दके अर्थ विप्रमे सम्बेद निवृत्ति को है। अतः यज्ञ अजका अर्थ "बकरा" करना सर्वथा अनुचित है।

यज्ञ उक्त वचनमें कहा है कि इस मूलमें विप्र अजका वर्णन है, यह अग्नि के समान जेतस्वी, ज्योति के समान प्रकाश मय, दीपके समान अन्धकारको दूर करनेवाला है, परमात्मा रूप महात्मा अग्निसे इसकी उत्पत्ति हुई है, जिस प्रकार अग्नि प्रकटित होनेसे उसकी ज्वालासे स्फुटिय चारों ओर उजले हैं, उसी प्रकार परमात्माकी दीपतिसे जो स्फुटिय चारों ओर फैले हैं, वेही अजक जीवार्मा हैं। परमात्मा चेतनस्वरूप है, उससे यह चेतनस्वरूप जीव आत्मा प्रकट हुई है। यही यज्ञ स्वरूप है। इस प्रकारका वर्णन उक्त मन्त्रभागमें है। यह देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञ अज शब्दसे 'जीव आत्मा' का प्रकट करना योग्य है।

“बकरा” अर्थ यज्ञ अज शब्दका अर्थ हून मन्त्रोका सप्रति भी कैसे उक्त सफवी है ? क्या बकरा अग्नि है और ज्योति है, क्या कमी बकरे द्वारा अंधकार दूर हुआ है ? क्या कमी अग्नि प्रकाशसे बकरा प्रकट हुआ है ? अर्थात् अज शब्दका अर्थ बकरा करनेपर पूर्ण मन्त्रोका कोई मूल अर्थ नहीं लग सकता। अज अज शब्दल यज्ञो 'जीव आत्मा' अर्थ लेना चाहिए। अज इसका उक्त अर्थ होनेके विषयमें इस मूलमें क्या कहा है, देखिये—

अजो वा इदमग्ने पयमत् ॥ ( म० २० )  
अज एक स्वयं लोके दधाति, निर्माति वाधमान ॥  
( म० १९ )  
अज य पचत पञ्च चादन्मा ॥ ( म० ३७ )

“यज्ञ (अज) अन्तमा आत्मा जगत्कं प्रारम्भसे परा मत्र कर रहा है। यह सत्त्वा आत्मा परिष्क होनेपर अवनतिको दूर कर स्वयंमें अपने आपकी धारण करता है। अजको और पाय अजोको परिष्क करो।” इस मन्त्रमें जो कुछ भी परात्मा हुए है वे इस आत्माके कारण ही हैं, इस मन्त्रमें जो चल रहा है यह आत्माका शक्ति ही है। शरीरमें जीवार्मा और विश्वमे परमात्मा कार्य कर रहा है। जीवार्मा प्रारम्भमें अपरिष्क अवस्थामें होती है, यह शुभ सत्कर्तों द्वारा परिष्क बनती है और इसकी चित्तवी परिष्कता होती है, उतना यह अपनी ही शक्तिसे अवनतिको दूर करती रहती है। इससे सिद्ध होता है, कि जीवार्माको दो धारणाएँ हैं, कई तो परिष्क स्थितिको प्राप्त होते हैं, जेप जिज्ञे हैं उतने सय अपरिष्क अवस्थामें हैं अथवा परिष्क होनेके मार्गमें होते हैं। इसीको मूल और यज्ञ अवस्था कहे हैं।

यज्ञके 'अज' पञ्च 'ये जगत् देवतेसे 'पकाया हुआ बकरा' ऐसा अर्थ कई लोग करते हैं, परन्तु पकाये हुए बकरेका स्वयंमें जलेका अनुभव तो नहीं है, वह सीधा मांस भक्षणके पेटमें जाता है। परन्तु यज्ञका परिष्क हुआ अज सीधा स्वर्गपाथको जाना है, अतः यज्ञका अज अक्षय है। दूसरी बात यह है कि, 'यज्ञ' शब्द कई अर्थोंमें प्रयुक्त होता है, मनुष्यक विचार परिष्क हुए हैं, उसका ज्ञान एक हुआ है, एक परिष्क हुआ है, इस तरह इसका भाव क्या व्यापक है। यह परिष्क कैसे होगा है इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र भाग देखिए—

नैदाय कुर्वन्त सद्यन्त पितृन्त उद्यन्त  
अभिमुय नाम ऋतु वेद शिष्य आदत्ते  
आत्मनः भवति ॥ ( म० ३१-३६ )

“उजना, कर्तृत्व, सयम, पौषण, उद्यम और शत्रुत्व ये छ आत्माके ऋतु हैं। ये इन ऋतुओंसे काम लेना जानता है यह धर्मों प्राप्त करता है और आत्माकी शक्तिसे पुण होकर है।” ये छ मन्त्र आत्माकी उन्नति करनेवाली शक्ति-योंक मूलक हैं। सयम पहिले मनुष्यमे उजना-गर्मी पादित, इत्येक कार्य करनेकी शक्ति इसीमे होती है, पञ्चाद कर्म करने पादित, क्योंकि शुभ कर्मोंसे ही सुष्ठ लोक प्राप्त होते हैं। शुभ कर्म करनेके लिए सयम पादित। बहुत कर्म करनेके

लिट् पुष्टि होनी चाहिए । सतत उद्यम करना चाहिए और शीघ्र जो विषय चाहे उनको दूर हटानेका बल भी चाहिए । इन छ गुणोंके होने और इनके द्वारा योग्य दिशासे प्रयत्न करनेसे मनुष्यकी उन्नति होती है ।

वस्तुतः यह अजन्मा आत्मा मुल स्वरूप और स्वर्गका अधिकारी है, यह कोई अनधिकारी नहीं है, यह अतिका ही स्फुटिग है, अतः प्रकाशित होनेका अधिकारी है । यह परमात्माका असूक्ष्म है इसलिये कहा है—

अजोऽसि, अज स्वर्गोऽसि । ( म १६ )

“ तू जन्मरहित है, तू स्वयं स्वर्ग है । ” तू अपने भापको पवित्र होने योग्य न मान, जन्मसंशय धारण करने योग्य न समझ । तू वस्तुतः जन्म न धारण करनेवाला है और तू ही स्वर्ग है । फिर यह तू स्व तुम्हारे ऊपर क्यों आता है ? इसका विचार कर, अपने पूर्व कर्म देख और भागे अपनी उन्नतिके लिये उद्यम करके अपनी उन्नतिका साधन कर । इसको उन्नतिके साधनका मार्ग यह है—

यत आ नय, ध्यात्मस्य प्रजानन्द, सुकृता लोक गच्छतु ॥ ( म १ )

“ इसको जतम मारोसे चला शुभ कर्मका प्रारंभ कर उन्नतिके मार्गको जानकर गुणलोकको प्राप्त कर । ” इस उपदेशमें चार भाग हैं और ये महत्वपूर्ण हैं । सबसे पहिला भाग धर्ममार्गसे जानेका है, यह जो किसी उद्यम गुणके माधीन रहकर ही तब किया जा सकता है, अतः पहिले ( यत नय ) यह ध्यान गुरसे कहा कि ‘ हे गुरो ! तू इस सिन्धुको सहारा देकर योग्य मार्गसे ले चला । ’ दूसरा ध्यान ऐसा है कि ( आरामस्य ) शुभ कर्मोंका प्रारंभ कर, जो पाठ गुरसे प्राप्त हुना है उसके अनुसार कर्म करना प्रारंभ कर । यह कर्मोंका प्रारंभ हो जाता है । कर्म करते करते मनुष्यका ज्ञान बढ़ता है और वह ( प्रजानन्द ) ज्ञानी होकर बढ़ता जाता है । और अन्तमें ( सुकृता लोक ) गुण्य कर्म करने वालेके लोकको प्राप्त करता है । सामान्य मनुष्यकी उन्नतिका सीधा मार्ग यही है । इस मार्गसे जानेवालेको अपने भापकी अजन्मा होनेका तथा स्वयं स्वर्गका होनेका मनुष्य अन्तमें आज्ञाता है । इस प्रकार यह मार्गका आरंभण करता हुआ—

अज महान्ति तमासि बहुधा तीर्त्वा । ( म १ )

अज विपश्यन् तमासि बहुधा तीर्त्वा । ( म २ )

अज तमासि दूर अपहन्ति । ( म ७, ११ )

३१ ( नवमे भा १ पृ दिन्दी )

“ यह अजन्मा आत्मा मार्गमें बड़े बड़े मन्धकारोंको ( विपश्यन् ) विशेष रीतिले देखता है और उन सब मन्धकारोंको ( बहुधा ) अनेक रीतियोंसे ( तीर्त्वा ) पैर कर, राय कर, दूर करक पार हो जाता है । ” इस तरह यह अपना मार्ग खुल्ला करता है और भागे बढ़ता है । भागे बड़ते बड़ते—

अज तृतीय नाक आकमतम् ॥ ( म ३, ३ )

सुकृता लोक गच्छतु ॥ ( म १ )

एन तृतीये नाके अधि विशय । ( म ४ )

शूत गच्छतु सुकृता यत्र लोक ! ( म ६ )

अतः परि तृतीय नाक उन्नाम । ( म ५ )

सुपुता मध्य मेहि तृतीय नाके अधि विशयस्य । ( म ८ )

‘ शुभ कर्म करनेवालोंके मार्गमें जा और ये गुण्यलोक महात्मा लोगे नदा जाते हैं, उस तृतीय स्वर्गधामम जाकर विराजमान हो । ’ इस प्रकार इसकी उन्नति होती है । दूसरे स्वर्गधामको प्राप्त करनेकी योग्यताको प्राप्त करनेके पूर्व पहिले और दूसरे स्वर्गकी योग्यता मनुष्यको प्राप्त करनी चाहिए तभी अन्तमें उसको तृतीय स्वर्गधामकी प्राप्ति संभव है । ये तीन स्वर्ग कौनसे हैं, इसका भी यहां विचार करना चाहिए ।

सब जाते हैं कि यह मनुष्यलोक है, जो स्थूल जगत् है इसीको सूक्ष्मलोक कहते हैं, क्योंकि यह परिवर्तनशील है । इससे दूसरा परब्रह्म इतीमें गुण रूपसे स्थित सूक्ष्म लोक है, इस स्थूल जगत्के प्रत्येक पदार्थकी प्रतिकृति इस सूक्ष्म स्थिति रहती है । जागृतिके अन्दर कार्य करनेवाला मन गुण होनेपर अनेक और विविध-वश्य-इससे भी अतिरेकनी दृश्य देखता है । यह सूक्ष्म स्थिति है । इसको कामस्थिति भी कहते हैं । स्थूल जगत्की ही यह प्रतिकृति होनेके कारण जो सुख हुआ स्थूल स्थितिमें होते हैं वैसे ही इसमें होते हैं, तथापि स्थूलके बन्धन और प्रविषय इसमें न होनेसे इसका महत्त्व स्थूलके अधिक है । ये दोनों मनुष्यक लक्ष्य प्रमाण हो जाते हैं और कारण शररधामों जय मनुष्य पदुचकर स्वतंत्रतासे विराजता है, तो उसको स्वर्गधाम प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं । इसमें तीन दर्जे हैं । प्रथम, मध्यम और उत्तम ये तीन अवस्थाएं इस स्वर्गमें हैं जिसके नीचे सुकृत होत है उसको वैसी अवस्था यहां प्राप्त होती है । सुकृते अनुसार प्राप्त होनेवाली यह अवस्था होनेके कारण इसमें प्रत्येकका अनुभव सुखात्मक होनेके कारण निरा गिरा होता है । निरा प्रकार सुपुष्टि समाधि और मुक्ति प्रकल्पता होती है, परन्तु सुप



तिकी दिग्म कोटिघे और मुक्तिकी उच्च कोटिकी होती है, इसी प्रकार यहां सप्तसना उचित है ।

वृत्तीय स्वर्गधाममें पहुंचनेका आशय यह है । यही उत्तम स्थान, परमधाम, स्वर्ग या ओ कुछ धर्मधर्मोंमें धर्मित है यह यही है । सदाचारसे इसकी प्राप्ति होती है । परिषद्वद धारणा होनेपर साधक इसको प्राप्त कर सकता है, इस विषयमें दिग्मलिखित मंत्रभाग देखने योग्य है—

तसात् चरोः अततः ( सन् ) उत्क्राम । ( मं. १ )

' तपे हुए पात्रमें रहता हुआ भी जो वृत्त नहीं होता, वह उत्क्राम होनेका अधिकारी है ।' ये ही विचार मित्र शब्दोंमें इस प्रकार लिखे जा सकते हैं— ' दुःखी घरमें रहना हुआ भी तु जैसे शक्ति रहनेवाला, रोगियोंके स्थानमें रहता हुआ भी नीरोग रहनेवाला, परदन्त्र लोगोंमें विचरता हुआ भी ओ परदन्त्र नहीं रहता, यही संतत प्रदेशमें जानितसे रह सकता है ।' इसीका नाम वपस्था है ।

एक वर्तनमें सिषडी एक रही तो उसमें रहनेवाले सभी चावल और गूणके दाने उबलने लगते हैं, यदि एकएक दाना पैसा ही कम्पा रह जाया है तो वह किसके भी पैसों इजम नहीं होता । इसी प्रकार इस विषयमें वर्तनमें यह सप जगदकी सिषडी एक रही है । इस तपे और उबलते हुए वर्तनमें जो न लवता हुआ और न गलता या न उबलता हुआ रहेगा, यही हमके पात्र चंका जाता है । यही उसकी उत्क्रान्ति है । आगे अथर्ववेद कां० ११ ( ३ ) में ही मझौदनके पकनेका इस शक्तिके विनाश पात्रमें सिषडीके पकनेका मनोरंजक वर्णन अलंकार रूपसे मायेया । वहां सयका पाक हो रहा है ऐसा कहा है । इस तपे पात्रमें जहाँ तककी ही संताप हुआ और कष्ट हो रहे हैं, वहाँ जो मान्य रहेगा उसीको घन्यता प्राप्त हो सकती है । कमलपत्र जैसे पानीमें रहता हुआ भी पानीसे नहीं भीषता, उसी प्रकार परिषद्वदको प्राप्त हुआ मनुष्य इस दुःखी जगदके दुःखों और कष्टोंसे अलिप्त रहता है । यह उदासीपन, वैराग्य, अलिप्तता, असगहनी भाषा अनापत्तिक उच्चतिका श्रेष्ठ साधन है ।

भला जो लोग ' बडोठे मांसको पकनेका भाव ' इन मंत्रोंसे निकालते हैं, वे तपे हुए पात्रसे न तपे हुए पकनेके भावको विष प्रकार उच्चतिका पथ दिखत सकते हैं और तपे हुए पात्रमें कौनसा बडोठका भाग अरुणवताकी रिपतिमें रह सकता है । मस्तुत यह वर्णन ही अल्प स्थितिका है । पात्र शब्दोंका भाव न समझनेके कारण कई लोगोंने इसका विपरीत अर्थ कर लिया है । धीनज्ञगवर्दीणामें जो अर्वांगभाष

और अनापत्तिका उपदेश है वही यहाँ इस मंत्रमें ' तपे पात्रमें न धवते हुए रहना ' इन शब्दोंसे किया है । इस विषयमें आगे आत्मशुद्धिका एक अपूर्व उपाय भी बताया है—

यत् तुश्चरितं चचार, पदः प्र अवनेनिग्धि,  
प्रजानन् शुद्धैः शफैः आक्रमताम् ॥ ( मं. ३ )

यदि दुराचार है और यदि पांव मलिन हुए हैं, तो अपने पांव को ढाल और इस बातको जान ले कि इस प्रकार चलनेसे पांव मलिन हो जाते हैं । अतः शुद्ध पांवोंसे आगे पद । दुराचारसे पांव मलिन होते हैं उनको धोना चाहिये । अपने पांव स्वच्छ रखकर स्वच्छ भूमिपर पांव रखनेसे आगे शुद्ध आचार होनेकी संभावना नहीं है । यहाँ उपलक्षणसे ( दृष्टिपूर्तं न्यसेत् पादं ) इस श्रुतिके बचनका ही आशय कहा है । इस प्रकार आत्मशुद्धिका मार्ग बताया है, अथर्ववेदोंमें पूर्वस्थानपर इसीका वर्णन अल्प शैलितसे किया है—

द्रुषदादिय मुमुक्षानः स्वियत्रः स्नात्वा मलादिय ।  
पूर्तं पवित्रेणेवाज्यं विधेयं शुम्भन्तु भैतसः ॥

अथर्व. १११५॥३

' जिस प्रकार बंधनरतंससे पशु मुक्त होता है और जैसे मनुष्य स्नातके द्वारा मलसे मुक्त होता है अथवा जैसे छाननीसे घी पवित्र होता है, उसी प्रकार मुझे पात्रसे पवित्र करो ।' इसी मंत्रके उपदेशके अनुसार इस श्रुतिके मंत्रमें ( शुद्धैः शफैः आक्रमतां ) अपने पांव निर्मूल करके भाषे पकनेको कहा है । अपना शुद्ध चालचलन रखनेका उपदेश इस भाषणमें है । वेदमें ' चरित्र ' शब्दके ' पांव ' और ' चालचलन ' ऐसे दो अर्थ हैं । अर्थात् पाव ( पाद ) शब्द शब्दोंका अर्थ चालचलन देता हो सकता है । इस प्रकार आचार्य-शुद्धिसे आत्मशुद्धि करनेका उपदेश प्राप्त किया है । इस तरह आत्मशुद्धि होनेके अनंतर इसका परमहृदके लिये समर्पण होना चाहिये, यही इसका आत्मसमर्पण है । देखिये, इस विषयमें यह मंत्र विधाकरण्य है—

जिवाता अर्धं म्रक्षणे देव्यं आहुः । ( मं. ७ )

अर्द्धधानेन दत्तः अजः तर्मांति अपहृन्ति । ( मं. ७ )

' जीवित मनुष्यको उचित है कि वह अपने ( अर्द्ध ) आत्माका समर्पण ( आहुते ) परमहृदके लिये करे । आत्मा परमात्माके लिये समर्पित होवे । इस प्रकार अर्द्धार्थक समर्पित हुआ यह आत्मा आत्मा सब प्रकारके अज्ञानान्धकार दूर करता है ।' समर्पित होनेसे इसकी शक्ति बढ़ती है, समर्पित होनेसे इसका तेज संवर्धित होता है । अथ इसके पारमहृदके लिये देखिये—

पञ्चोदयः पञ्चधा विवक्तव्यः । ( मं. ८ )

' उक्त पञ्चभोग्योऽपि मन्त्रस्या आत्मा पांच प्रकारके कार्य-क्षेत्रमें पराक्रम करे ।' कर्मविद्वय, ज्ञानविद्वय, मन, चित्त और बुद्धि ये इसके पांच कार्यक्षेत्र हैं, इन क्षेत्रोंमें यह जीव आत्मा कार्य करता है । इन क्षेत्रोंमें यह रूप विक्रम करे । क्योंकि इसके विग्रह करनेसे ही इसके उन्नति हो सकती है । विग्रहके बिना किसीकी भी उन्नतिकी संभावना नहीं हो सकती । विग्रह करतेसे मनुष्य ( श्रीणि उप्योर्त्तापि जार्थस्यमानः । मं. ८ ) तीन तैजोंकी प्राप्ति करता है । इसमें एक तेज रूपका है, दूसरा भवका है और तीसरा तेज भासिक है । इन तीनों तेजोंमें उन्नति होती है, अर्थात् इसके ये तेज बढ़ते हैं । परंतु इसमें तैजोंकी बुद्धि उब होती है कि अब इसका परमात्मके लिये समर्पण होता है । ठाकरे यह है कि, आत्माका समर्पण मुख्य है, यही उन्नतिकी मुख्य साधन है । इसके बिना उन्नति असंभव है । यह दर्शनके लिये—

त्वा इन्द्राय भागं परिययामि । ( मं. २ )

पञ्चोदयः ग्रहण्ये दीयमानः । ( मं. ९; १० )

पञ्चोदयं अजं ग्रहण्ये वृदाति । ( मं. ११, १२ )

यं ग्रहण्ये निदधे । ( मं. १९ )

इसमें मंत्रोंमें मन्त्रके लिये अतन्त्रा आत्मके समर्पण करनेका वारंवार उपदेश किया है । जो बात विशेष महत्वपूर्ण होती है, यह वेदमें इस प्रकार वारंवार दुहराई जाती है । अर्थात् वेदमें जो उपदेश वारंवार आता है, यह अधिक महत्वपूर्ण है ऐसा समझना चाहिये ।

अब चतुर्थ और पञ्चम मंत्रमें शमितके कर्मका उल्लेख है । इसमें त्वचाके काटने और जोड़के अनुसार प्यवस्था करनेका तथा पात्रमें भर देनेका उल्लेख है । इस कृपाके करनेसे यह सुझति लोगोंके मध्यमें जाता है ऐसा कहा है । यदि इन मंत्रोंके पद्यके काटनेका ही उद्देश होता, तो भागे ऐसा निर्देश क्यों होता—

नास्यास्थीनि भिन्नाश्च मज्जो निर्धेद्येत् ।

सर्वमनं समादायेदमिदं प्रवेशयेत् ॥ ( मं. २३ )

' इसकी हड्डियां न टूटे, न इसकी मज्जा कोई पीये या चूरे, इस सबको लेकर इसमें श्वेत करावे ।' यह इसके अन्वय न काटनेकी और ज्ञाना है, मज्जा भी नहीं पी जाये अर्थात् इसके काटना नहीं चाहिये । इसकी हड्डियां अलग नहीं करनी चाहिये । इसकी मज्जा निकालनी नहीं चाहिये ।

यह दूसारा स्पष्ट है । इसमें कहा है कि इसके सबके सब भागको लेकर इसमें अर्थात् मूत्र या परमात्ममें समर्पण करो । यही आशय इसके सब भागको उसमें प्रविष्ट करानेका है । अपने भागको परमात्माकी गोदमें सौंप देना, यही भक्तिभावकी अन्तिम सीमा है ।

यदि ऐसा है तो यमितिका त्वचाका काटना और जोड़के अनुसार उसके अवयवोंको समर्थ बनानेका भाव क्या है, यह भंका यहां आसकती है । इस शंकाके उत्तरमें निवेदन यह है कि पूर्वोक्त मंत्रोंमें जो काटना लिखा है, यह उसी अर्थात्तक है कि जिस अर्थात्तमें उसकी हड्डियां अलग न हों, मज्जा बाहर न चूरे और अन्वय अलग न हों, अर्थात् सब अवयव समर्थ हों । ( मा अभिद्रुह्य, पदशः एतं कल्पय । मं. ५ ) इसके द्रोह न करो और प्रत्येक जोड़में इसके समर्थ बनाओ । वध जाना यदि चतुर्थ और पञ्चम मंत्रको अभीष्ट होगा, तो उससे द्रोह न करनेकी आज्ञा। उसमें क्यों आती ? यद्यपि अधिक दूसरा द्रोह और पचा हो सकता है और प्रत्येक अवयवको समर्थ बनाना भी यद्यपे कैसे होगा ? वध न किया जो कदाचित किसी उपायसे उसके सबवयव समर्थ बनाये जा सकते हैं, परंतु वध करनेके पश्चात् तो समर्थ बनाना ही असंभव है । अतः यहां वध अभीष्ट नहीं है, यह निश्चय है ।

इमें ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ चमड़ीके सुराचने और जोड़के प्रमयियोंको शर्मोद्धार उपोचित करनेकी विधि इन मंत्रोंमें लिखी है । जैसे एक प्रकारके संश्रितलसे पीठिय जोड़के सुदृक्के समभाग द्वारा कुछ वनस्पतिरस टाकनेसे नाराज होता है । ये सुदृक्कां तंबिकी, चांदीकी और सोनेकी होती हैं और इसी प्रकारके कुछ पशुविषय भी होते हैं । इनसे चर्मा कुछ अंशमें हटाकर उसमें विशेष औषधियोग करनेसे शरीरके अवयव समर्थ होते होंगे । यह विधि अभी-तक अज्ञात है, परंतु इसका स्वयं इस प्रकारका उक्त है इसमें संदेह नहीं है । अस्तु, यह विषय श्रोतोंके योग्य है ।

यदि कोई मनुष्य यहाँ इन मंत्रोंमें [ अथ ] बंधोके वधका उल्लेख है, ऐसा ही भाव है, जो वध मं. २० और २१ देखे, इनमें ' अतः विधिरूपका वर्णन ' है । समुद्र त्रिककी कोखमें हैं, उर वृष्णो है, सुलोक उसकी पीठ है इत्यादि वर्णन कभी बन्देका नहीं हो सकता । यदि किसीका हो सकता है तो वह ' अतः ' अर्थात् अतन्त्रा परमात्माका हो सकता है । या फिर इस परमात्मके पुत्र जीवात्माका भी यह वर्णन होसकता है । क्योंकि परमात्माके गुणधर्म अत-

स्वयं पुत्रों आते हैं और पुत्रों के विकास होनेपर पुत्रों के भी गुणधर्म वितान समान होने संभव है, अर्थात् जब जीवात्मा उन्नत होता हुआ परमात्मरूप धरता है, उस समय ये ही धर्म उसमें घट सकते हैं। इसका विचार करने पर इस सूत्र ' वाच ' शब्दका अर्थ आत्मा है, इस विषयमें सन्देह नहीं होसकता और जीवात्माका पूर्णतया समर्पण परमात्माके लिए करनेसे ही जब जीवात्मामें परमात्म भाव भाजाय, उस समय इसका भी पृष्ठ भाग सुलोक और अन्तरिक्ष मध्यभाग और पृथ्वी तलका भाग होसकता है। जेसा कि मं २० और २१ में कहा है। और इसीलिए इसको ज्ञाने—

एष या अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चोद्भूतः ॥

[ मं २१ ]

“ यह अपरिमित यज्ञ है जिसका नाम अज अर्थात् अजन्मा आत्मा है। ” जीवात्मा-परमात्मामें ही यह अपरिमितता होसकती है, क्योंकि इस प्रकारकी अपरिमितताको बचपना करना असंभव प्रतीत होता है। जीवात्माकी पत्नी और उन्नति अपरिमित है, इसीलिए—

अपरिमितं यज्ञं आप्नोति। अपरिमितं लोकं अचरन्ते।

[ मं २२ ]

“ आत्माका समर्पण करनेसे अपरिमित यज्ञ होता है और आत्मसमर्पण करनेसे अपरिमित लोक प्राप्त होते हैं। ” अपरिमितक दानसे ही अपरिमित फल प्राप्त हो सकता है। अन्य सब दान परिमित हैं, आत्माका दान ही अपरिमित दान है। इसीलिए अन्य पदार्थक दानसे परिमित लोक प्राप्त होता है और इस आत्माके समर्पण करनेसे अपरिमित लोकको प्राप्ति होपती है।

आत्मसमर्पण सब वस्तु और सुवर्ण दान भी होना चाहिए, इस विषयका विधान मं २५, २६ और २७ में है। क्योंकि सदा दान दक्षिणाके साथ ही हुआ करता है।

दक्षिणाके बिना दान फलहीन हुआ करता है। मं. २० और २६ में “ पुनर्विवाहित पतिपत्नी पञ्चोद्भूत अश्रका दान करेंगे तो विपुक्त नहीं होती ” ऐसा कहा है। एतक यहाँ देखें कि इन मंत्रोंमें ‘ अश्रुणे ’ पद नहीं है। अर्थात् यहाँका आत्मसमर्पण अश्रकें लिए नहीं है। पतिकी पञ्चभोजनी आत्मा पत्नीको समर्पित होने और पत्नीकी आत्मा पतिके लिए समर्पित होने। पुनर्विवाहित पति हो अथवा पत्नी हो, वे पूर्व पत्नी या पतिकी चिन्तन न करें, वे इस पत्नी या पतिकी ही अपना सर्वस्व समर्पें। पूर्वका स्मरण करते रहनेसे परिपामसे सगुहा होसकता है और सत्कारका सुख दूर होता है, इसीलिए कहा है कि, पति पत्नीके लिए आत्मसमर्पण करे और पत्नी पतिके लिए आत्मसमर्पण करे। यहाँ कई पूछेंगे कि प्रथम पतिके पतिपत्नीके विषयमें ऐसा आदेश क्यों नहीं दिया है ? इसका कारण इतना ही है कि, प्रथमपत्नीकी पतिपत्नीको सामने रखनेके लिए दूसरी पत्नी या दूसरा पति नहीं होता, इससे उनको परस्पर भेद करना फलदायक ही है। परंतु पुनर्विवाहित पतिपत्नीको पूर्वसपथका स्मरण होता समय है, इसीलिए उस दोषका निवारण करनेसे लिए यहाँ सूचना दी है। और वह निगान्त योग्य है।

उनसीसरे मन्त्रमें कहा है कि गौ, बछ और सुवर्णका दान करनेसे स्वर्ण प्राप्ति होती है। सत्पात्रमें दान करनेसे बड़ा फल होसकता है। इनके दानका महत्व अन्यान्य दानोंमें भी वर्णित है। तीसरे मंत्रमें अपने सब सबधिर्षा और इष्ट-मित्रोंको पुकार कर कहा है कि, पूर्वात् उपदेशका ये उत्तम प्रकार स्मरण करें और उस रीतिसे अपनी उन्नतिकी प्राप्ति करा लें।

इस प्रकार इस सूत्रमें आभ्योदतिकी विषय कहा है। वि सन्देह इसके कुछ मन्त्रभाग कठिन और लघुगुण हैं, तथापि यहाँ धर्मों की हुई रीतिके अनुसार विचार करनेसे पाठकोंको इसका आशय समझमें आसकता है।

## प्रजापति पुराणि

कां. ७, सू. १९

( ऋषि - ब्रह्मा । देवता - प्रजापति । )

प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः ।

संजानानाः संमनसः सयोनयो मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु

॥ १ ॥

अर्थ— ( प्रजापतिः इमाः प्रजाः जनयति ) प्रजापत्यक परमेश्वर इन सब प्रजाओंको उत्पन्न करता है और ( सुमनस्यमानः धाता दधातु ) वही उसम मनवाला, धारक देव इनको धारण करता है। इससे प्रथम ( संजानानाः ) ज्ञान प्राप्त करके एक स्तले कार्य करनेवाली, ( संमनसः ) एक विचारवाली और ( सयोनयः ) एक उद्देश्यसे यथी रहती है। इन प्रजाओंमें रहनेवाले ( मयि ) मुझे ( पुष्टपतिः पुष्टं दधातु ) पुष्टिको देनेवाला ईश्वर पुष्टि देवे ॥ १ ॥

प्रजाकी पुष्टि कैसे होगी अर्थात् प्रजाकी शक्ति कैसे बढ़ सकती है, इसका उपाय इस सूत्रमें कहा है, इसके नियम निम्नलिखित हैं—

- १ सब प्रजाजन्म एक ईश्वरको माते और उसी एक देवको सबका उत्पादक समझे।
- २ उसी ईश्वरकी शक्तिसे सबकी धारणा होती है ऐसा मानें और उसीको कर्माधर्ता और हर्ता समझे।
- ३ ( संजानानाः ) सब प्रजाजन्म उत्तम ज्ञानसे युक्त हो और एकमतसे मानव कार्य करें।
- ४ ( संमनसः ) उत्तम धुमसंस्कार युक्त मन करके एक विचारसे उन्नतिका कार्य करते जायें।
- ५ ( सयोनयः ) एक उद्देश्यका प्थान करके सबको एक कार्यमें संवर्तित करे। अपने संबध मनावे और संबधे नियमोंके बाहर कोई न आवे।

इस प्रकार संबधना करनेवाले लोगोंको प्रजापत्यक ईश्वर सब प्रकारकी पुष्टि देता है।

## स्तेतीसे अन्न

कां. ७, सू. १८

( ऋषि - भर्षवा । देवता - पृथिवी, परमन्व । )

प्र नमस्व पृथिवी भिन्द्वीवेदं नमः । उद्रो द्विव्यस्य नो घातरीशानो वि प्या दृतिम् ॥ १ ॥

न घेस्तंताप न हिमो जघान प्र नमर्ता पृथिवी जीरदानुः ।

आर्षधिदस्मै घृतमित्क्षरन्ति यत्र सोमः सद्मिसत्रं भुद्रम्

॥ २ ॥

अर्थ— हे पृथिवी ! तू ( प्रनमस्व ) उत्तम प्रकार चूर्ण हो। ते ( घातः ) धारक देव ! तू ( ईशानः ) हमारा ईश्वर है इसलिये ( उद्र द्विव्यस्य नमः भिन्धि ) इस दिव्य देवको छिन्नभिन्न कर और ( द्विव्यस्य उद्रः दृतिं चिप्य ) दिव्य लक्षके भरे घृतनको खेत दे ॥ १ ॥

( घनं न तताप ) उष्णता देनेवाला सूर्य नहीं तपता, ( हिमा न जघान ) हिम भी पीपित नहीं करता। ( जीरदानुः पृथिवी प्र नमर्ता ) अन्न देनेवाली पृथ्वी चूर्ण की जावे। ( आपः चिद्र अस्मै ) वह इसके लिये ( घृतं इत् क्षरन्ति ) की ही बहयें ( यत्र सोमः ) जहाँ सोमावि औषधियां उत्पन्न होती हैं, ( तत्र सद् इत् भद्रं ) वहाँ सदा ही कल्याण होता है ॥ २ ॥

भूमि हल भादि षटाक्षर मन्त्री प्रकार तैयार की जाये । इसके बाद ईश्वरकी प्रार्थना की जाये कि, वह उत्तम प्रकार का वर्षाके हमारी खेती उत्तम होनेमें सहायता देवे । बहुत गर्मी न पड़े, न बहुत पाला पड़े, भूमिको उत्तम प्रकार तैयार किया जाये, खेतीको पानी भी वैसा दिया जाये, भर्षाव न बहुत अधिक और न बहुत कम । इस प्रकार खेती करनेसे बहुत उत्तम वनस्पतिवा उत्पन्न होती है और सब प्राणिपिका कल्याण होता है ।

## अक्षकी कृद्धि

कां. ६, सू. १४२

( ऋषिः- विश्वामित्रः । देवता- वायुः । )

उच्छ्रयस्व बहुर्मव स्वेन महसा यव । मूर्णाहि विश्वा पात्राणि मा त्वा द्विष्याशनिर्वंधीत् ॥ १ ॥  
आश्रयन्तं यवं देवं पत्रे त्वाच्छावदामसि । तदुच्छ्रयस्व धौरिव समुद्र इवैष्यक्षितः ॥ २ ॥  
अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राश्रयः । पृषान्तो अक्षिताः सन्त्वचरः सन्त्वक्षिताः ॥ ३ ॥

अर्थ— हे वायु ! ( स्वेन महसा उच्छ्रयस्व ) अपनी महिमामें उपर उठ और ( बहुः भय ) बहुत हो, ( विश्वा पात्राणि मूर्णाहि ) सब बर्तनोंको भर दे । ( द्विष्या अशनिः त्वा मा यंधीत् ) आकाशकी बिजली तेरा नाश न करे ॥ १ ॥  
( आश्रयन्तं देवं त्वा यवं ) हमारी बात सुननेवाले देवस्वपी तुझ यवकी ( यव अच्छ्रायदामसि ) सदा हम उत्तम प्रशंसा किया करें, वह यव ( धौरि इव तत् उच्छ्रयस्व ) आकाशके समान ऊंचा हो और ( समुद्रः इव अक्षितः पृषि ) समुद्रके समान भक्षण हो ॥ २ ॥

( ते उपसदः अक्षिताः ) तेरे पास बैठनेवाले भक्षण हों, ( ते राश्रयः अक्षिताः सन्तु ) वेरी राश्रियां भक्षण हों, ( पृषान्तः अक्षिताः सन्तु ) गृह करनेवाले भक्षण हों और ( अचरः अक्षिताः सन्तु ) खानेवाले भी भक्षण हों ॥ ३ ॥  
अक्ष भादि साय पदायोंकी बहुत उत्पत्ति होये । धर्ममें धान्य भरनेके पात्र भरे हुए हों और लोग उसको खाकर गृह हों, खानेवाले और शिकनेवाले भी उत्पन्न हों । प्रति वर्ष धान्य विपुल पैदा हो और सब लोग सुखी हों ।

## अक्ष

कां. ६, सू. ७१

( ऋषिः- ब्रह्मा । देवता- अग्निः, वैशानरः, देवाः । )

यदक्षमधि बहुधा विरूपं हिरण्यमधमुत गामजामविम् ।  
यदेव किं च प्रतिजग्राहमग्निद्वौता सुहृतं कृणोतु ॥ १ ॥

अर्थ— ( बहुधा विरूपं यद् अक्षं अग्नि ) बहुत करके विविधरूपवाला जो अक्ष मैं साता हूँ, तथा ( हिरण्यं अर्थं गां अजां उत अग्निं ) सोना, घोडा, गौ, बकरी, भेड़ ( यत् एव किं च अहं प्रति जग्राह ) जो कुछ मैंने प्रार्थन किया है, ( होता अग्निः तद् सुहृतं कृणोतु ) होगा अग्नि उसको उत्तम हवनसे युक्त करे ॥ १ ॥

मायार्थ— मैं जो अनेक प्रकारका अक्ष साता हूँ, और सोना, चाँदी, घोडा, गौ, बकरी आदि पदार्थ स्वीकार करता हूँ, वह ईश्वर प्रार्थना समर्पित हुआ हो ॥ १ ॥

यन्मा द्रुतमहुतगात्रगामं द्रुतं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।

यस्मान्मे मन उर्दिष्व रारंजीत्यपिष्टद्वोता सुहुतं कृणोतु

॥ २ ॥

यद्भ्रमद्रुम्यनृत्नेन देवा दास्यन्नादास्यन्नुत संगुणामि ।

वैश्वानरस्य महतो महिम्ना जिवं मर्त्यं मधुमदुस्त्वन्नम्

॥ ३ ॥

अर्थ— (यत् हुतं अहुतं) जो दिया हुआ था न दिया हुआ (पितृभिः द्रुतं) वितरिते दिया हुआ, (मनुष्यैः अनुमतं) मनुष्योंसे अनुमोदित हुआ (मा आजगाम) मेरे पास आया है, (यस्मात् मे मनः उन् रारंजीति इव) जिससे मेरा मन उत्तम रीतिते प्रसन्न होता है, (होता अग्नि तद् सुहुतं कृणोतु) देवा अग्नि उसे उत्तम रूपसे स्वीकार करे ॥ २ ॥

दे (देवाः) देवो ! (यत् अन्नं अनुतेन अग्नि) जो अन्न मैं अत्यन्त स्प्यहासते खाता हूँ, (दास्यन् अदास्यन् उत संगुणामि) दान करता हुआ, भयवा न दान करता हुआ मिलका मैं संग्रह करता हूँ; यह (अन्नं) अन्न (महत्तः वैश्वानरस्य महिम्ना) बड़े वैश्वानरकी-परमात्माकी-महिमासे (महान् शिवं मधुमदु अस्तु) मेरे लिये अन्त्यावकारी और मीठा होवे ॥ ३ ॥

माधार्थ— यज्ञमें समर्पित भयवा अस्मर्पित, विभूषितामहोसे प्राप्त, मनुष्योंसे मिल्य हुआ, जो भी मेरे पास आया है, जिसके ऊपर मेरा मन लगा हुआ है वह उत्तम रीतिते यज्ञमें समर्पित हुआ हो ॥ २ ॥

जो अन्न या भोग मैं करता हूँ, वे सबसे प्राप्त हों वा अस्तवसे, उनका मैं यज्ञमें दान करता हूँ, वे सब यज्ञमें दिये हों वा न दिये हों, परमात्माकी कृपासे वे सब मुझे मधुरता देनेवाले हों ॥ ३ ॥

## अन्न

### अनेक प्रकारका अन्न

मनुष्य जो अन्न खाता है वह 'वि-रूप' अर्थात् विविध स्वरूपवाला होता है; दाल, धान, रोटी, खीर आदिके रंग भी लाल और सफ़ेद भी लालग दालग होते हैं। इन अन्नोके सिवाय दूसरे उपाभोगके पदार्थ सोना, चाँदी, गन्ध, मोडे, बैल, बकरी, भेड़ आदि बहुत हैं। सोना, चाँदी, बैल आदिके शरीरकी सजावट होती है, मोडे दूर गमनके काम आते हैं, बैल खेतीके काम करते हैं। गन्ध, बकरी दूध देती है। इस प्रकार अनेकानेक पदार्थ मनुष्यके उपाभोगमें आते हैं। ये सब यज्ञमें समर्पित हों, अर्थात् मेरे अडेडेके स्वाधो-पभोगमें ही समाप्त न हों, प्रत्युत सब जनताके कार्यमें समर्पित हों।

### अन्नके चार भाग

मनुष्यके पास जो धन आता है उसके कामसे कम धन भाग होते हैं, इनका विवरण देखिये—

१ पितृभि- दत्तं— मातापितासे प्राप्त। जन्मके संस्कार-से जो आता है।

२ मनुष्यैः अनुमतं— मनुष्यों द्वारा अनुमोदित अर्थात् अपने दंगसे भिन्न अन्य मनुष्योंकी संगतिले प्राप्त हुआ धन।

३ हुतं आजगाम— किसीके द्वारा दानसे प्राप्त हुआ धन।

४ अहुतं आजगाम— किसीके द्वारा दान न देते हुए अन्य रीतिले प्राप्त।

धन प्राप्त होनेके ये चार प्रकार हैं। हममेंसे किसी भी रीतिले प्राप्त हुआ धन हो और उसपर अपना मन भी रख हुआ हो, वह धन यज्ञमें समर्पित होना चाहिये।

जो अन्न खाया जाता है, दान दिया जाता है और संग्रह किया जाता है, वह सब ईश्वरार्थ हो और हमारा अन्ध-कल्याण करनेवाला हो।

## अथर्वशास्त्रम्

कां. ६, सू. ११६

(अपि- जाटिकापन. । देवता- विवस्वार ।)

यद्यामं चक्रुर्निखनेन्तो अग्रे कार्षीषणा अन्नविदो न विधया ।

वैवस्वते राजनि तञ्जुहोम्वथ यन्निर्य मधुमदस्तु नोऽन्नम् ॥ १ ॥

वैवस्वतः कृणवद्भ्रातृषेचं मधुमागो मधुना सं सृजाति ।

मातुर्येदेन इपितं न आगन्वद्वा पितापरद्वा जिहीडे ॥ २ ॥

यदीदं मातुर्येदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राचेतस एन आगन् ।

यार्वन्तो अस्मान्पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्धुः ॥ ३ ॥

अर्थ— (अग्रे कार्षीषणाः निखनन्तः) पहले कृषि करनेवाले लोगोंने भूमिकी खोदते हुए (विद्यया अन्न-विदः न) ज्ञानसे अन्न प्राप्त करनेवालोंके समान (यत् यामं चक्रुः) जो नियम बनाए, (तत् वैवस्वते राजनि जुहोमि) उनके वैवस्वत अर्थात् बसानेवाले राजाकी समर्पित करवा हूँ। (अथ नः यन्निर्य अन्नं मधुमत् अस्तु) अब हमारा पञ्जीय अन्न मधुर होवे ॥ १ ॥

(वैवस्वतः भागधेयं कृणवत्) सबको बसादेवाला राजा सबको अन्नका विभाग करे, (मधुमागो मधुना सं सृजाति) अन्नका मधुर भाग और अधिक मीठके साथ संयुक्त होला है। (मातुः इपितं यत् एनः नः आगन्) मातासे मेरिष्ठ हुआ जो पाए हमारे पास आया है, (यद् वा अपरद्वाः पिता जिहीडे) अथवा जो हमारे अपराधसे पिताके क्रोधसे हुआ है ॥ २ ॥

(यदि मातुः यदि वा पितुः) यदि मातासे और पितासे (भ्रातुः पुत्रात्) भाईसे और पुत्रसे (इदं एनः नः येतसः परि आगन्) यह पाए हमारे चित्तके पास आया है, (यवन्तः पितरः अस्मान् सचन्ते) जिनने पितर हमसे सम्बन्धित हैं, (तेषां सर्वेषां मन्धुः शिवः अस्तु) उन सबका क्रोध हमारे लिये कल्याणकारी होवे ॥ ३ ॥

भाषार्थ— भ्रातृभर्तृ सेही करनेवाले किसानोंने जो नियम बनाये, वेही राजाके पास समत हुए, उनके पालनसे सबको अन्न मीठा लगने लगा और पत्रके लिये भी समर्पित होने लगा ॥ १ ॥

राजाने भूमिसे उत्पन्न हुए अन्नका योग्य भाग बताया, उसके अधिक मधुर मानकर छोटा सेवन करते हैं। उरी प्रकार मातासे और पितासे भी हमारे पास अन्न भरण भठा है, उसका भी हम वैसा ही सेवन किया करें ॥ २ ॥

माता, पिता, भाई, पुत्र इनसे हमारे पास जो अन्न आया है, यदि उसके साथ उनका क्रोध भी हुआ हो, तो वह हमारे कल्याणके लिये ही होने ॥ ३ ॥

## प्रजाकी संमति

सेही करनेवाले सब प्रजाजन स्वसंमतिके मापसके पञ्चवके नियम बनाए, सब प्रजाने एकमतसे बनाये नियम राजा माने और उसके अनुसार राज्यपालन करे। ऐसा करनेसे राजा और प्रजाका उभय कल्याण होगा और सबको अन्नका स्वाद अधिक मिलेगा। राजा अन्नका योग्य भाग करके सबसे छेदे और प्रजामें भी योग्य भाग बँट देवे। जो जिसको प्राप्त हो उसमें वह सन्तुष्ट रहकर उसका भोग आनन्दसे साथ करे और कोई किर्ये दूसरोंके मारकर अन्धकारसे दूरण न करे। माता-पिता आदिवा जो दासभाग भाला है, उसी प्रकार उनका क्रोध भी भाया, तब भी उससे सन्तानका कभी अहित नहीं होगा, क्योंकि उसमें माता पिताका प्रेम रहनेके कारण उससे सन्तानका हित ही होगा।

## धान्यकी सुरक्षा

कां. ६, सू. ५०

( कृषि-सपर्या (अभयकाम.) । देवता-अधिनो । )

इतं तुदं सम्पूङ्कमानुमक्षिना छिन्तं शिरो अपि पृथीः शृणीतम् ।

यवाभेददानपि नक्षतं मुखमथामयं कृणुतं धान्याज्य

॥ १ ॥

तुदं है पतङ्ग है जम्प हा उर्पकस । ब्रह्मेवासंखितं हविरनदन्त इमान्यवानर्हिसन्तो अपोदित ॥२॥

तदापते वषापते तृषजम्भा आ शृणोत मे ।

य आरण्या क्यद्वरा ये के च स्थ व्यद्वरास्तान्स्वोन्जम्भयामसि

॥ ३ ॥

अर्थ— हे ( अधिनो ) अधिदेवो ! ( तुदं स्वमं कं आखुं हतं ) नाम करनेवाले और भूमिमें थिल बनाकर रहनेवाले चूहेको मारो । उसका ( शिरः छिन्तं ) पिर काटे । ( पृथीः अपि शृणीतं ) उसकी पीठ तोड़ो । ये चूहे ( यवान् न ह्य् अदान् ) जोको कभी न खायें, ( मुखं अपि नक्षतं ) उनका मुख बंद करो ( अथ धान्याय अमयं कृणुतं ) और धान्यके लिये निर्भयता करो ॥ १ ॥

( हे तुदं ) हे हिसक ! ( हे पतङ्ग ) हे मछल ! ( हा जम्प, उर्पकस ) हे बम्प और हुट ! ( ब्रह्मा इव अर्हस्यितं हविः ) महा जिस प्रकार अर्हस्युत हविको छोड़ता है, उस प्रकार ( इमान् यवान् अनदन्तः अर्हिसन्तः ) इन जोको न खाते हुए और न नष्ट करते हुए ( अपोदित ) तुम दूर दूर जानो अपरिच इसको छोड़ दो ॥ २ ॥

हे ( तदापते ) महा हिसक ! हे ( वषापते ) मछल ! हे ( तृषजम्भाः ) तीक्ष्ण दंढाराले ! ( मे आशृणोत ) मेरा कदना सुनो । ( ये आरण्याः व्यद्वराः ) जो लंगरी और विशेष खानेवाले हैं और ( ये के च व्यद्वराः स्थ ) जो कोई मछल है ( तान् स्वोन्जम्भयामसि ) उस सबका नाश करते हैं ॥ ३ ॥

### धान्यके नाशक जीव

चूहे, पतङ्गे, शलभ ( टिट्ठी ) आदि जन्तु ऐसे हैं कि जो धान्यका नाश करते हैं, पीधोंको गट करते हैं और शलभ तो ऐसे हैं कि जो करोड़ोंकी संख्यामें इकट्ठे मिलकर आते हैं, धान्यों और शृङ्गोंपर धावा करते हैं और उसका नाश करते हैं । इनसे धान्यबिकार बचाव करना चाहिये । इसलिये चूहों और शलभोंको मारना चाहिये ऐसा प्रथम मंत्रमें कहा है ।

इस सूत्रमें इनके नाश करनेकी विधि बड़ी बतलाई है, केवल नाश करना चाहिये और धान्यका बचाव करना चाहिये इतना ही कहा है । यदि किसी स्थानपर इनके नाश करनेकी विधि मिल जाय, तो किसानोंका बहुत काम होगा । चूहे भी हजारोंकी संख्यामें आकर खेतोंका नाश करते हैं और शलभ तो करोड़ोंकी संख्यामें आते हैं । यदि कोई शोधक इनके नाशका उपाय निकाले, तो अरपुत्रम हो ।





## स्नानपात्र

कां. ७, सू. ७२

( ऋषि - अथवा । देवता - इन्द्र । )

उत्तिष्ठथाव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्विष्यम् । यदि ध्रातं जुहोतेन यथाश्रितं ममर्चनं	॥ १ ॥
ध्रात हविरो धिन्द्र प्र याहि जुगाम सरो अर्ध्वनो वि मर्ष्यम् ।	
परिं त्वासते निषिभिः सखायाः कुलुषा न त्रांजपतिं चरन्तम्	॥ २ ॥
ध्रात मन्य ऊर्धनि ध्रातमपौ सुशृत मन्ये तद्वत् नर्षायः ।	
माष्यन्दिनस्य सर्वनस्य दुभः पियेन्द्र वज्रिन्पुरुकुज्हुपाणः	॥ ३ ॥

अर्थ— ( उत् तिष्ठत ) उठो और ( इन्द्रस्य ऋत्विष्य भाग अर्पय्यत ) प्रभुके ऋतुके अनुकूल भागको देवो । ( यदि ध्रात ) यदि परिपक्व हुआ हो तो ( जुहोतेन ) स्वीकार करो और ( यदि अश्रात ममर्चन ) यदि परिपक्व न हुआ हो तो उसके एकनेत्रक भागद्वारा करो ॥ १ ॥

हे ( इन्द्र ) प्रभो ! ( ध्रात हवि ओ सुप्रयाहि ) हवि सिद्ध हुआ है, उसके प्रति तू उपास प्रकाशसे आ ( सूत अर्चन मर्ष्य वि जुगाम ) सर्व अपने मार्गके मर्ष्यसे गया है । ( कुलुषा त्रांजपतिं चरन्त न ) जैसे कुलपक्षक पुत्र संपत्ति विलाके विश्वसे हुए उसके पास जाते हैं, ( सखाय निषिभि त्वा परि आसते ) समान विचारवाले लोग अपने समाहके साथ ठेरे चारों ओर बैठते हैं ॥ २ ॥

( ऊर्धनि ध्रात मन्ये ) गायके स्तनमें परिपक्व हुआ है ऐसा मैं मानता हूँ । तद्वत् ( अर्धो ध्रात ) अतिपर परिपक्व हुआ है अतः ( तत् श्रुत नवीय सुशृत मन्ये ) यह सखा नवीन हुए उपास प्रकाशसे परिपक्व हुआ है ऐसा मैं मानता हूँ । हे ( पुरुषत्सु वज्रिन्द्र ) बहुत बल करेवाले वज्रधारी प्रभो ! ( जुपाण ) उसका सेवन करता हुआ ( माष्य दिनस्य सर्वनस्य दुभे पिये ) मन्थदिनके सर्वनक दहीका पात्र कर ॥ ३ ॥

भाष्यार्थ— उठा और ईश्वरके द्वारा दिये गए ऋतुके अनुकूल भाग भगलको देवो । आ परिपक्व हुआ हो उसकी ओर और यदि कुछ अन्नभाग परिपक्व न हुआ हो, तो उसके परिपक्व होनेतक भागद्वारा रक्षो ॥ १ ॥

२ प्रभो ! यह अन्नभाग परिपक्व हुआ है, यह सिद्ध है, यहाँ प्राप्त हा, सर्व मर्ष्याइमें अन्न गया है । सब मित्र अपने अपने समाहकी ओर हुए प्राप्त हुए हैं । जैसे पुत्र पिताके पास इकट्ठे होते हैं वैसे हम सब ठेरे पास इकट्ठे हुए हैं ॥ २ ॥

मैं मानता हूँ कि एक ओर गायके स्तनमें दूध परिपक्व होता है, पश्चात् अतिपर परिपक्व होता है । यह अन्न इस प्रकार सिद्ध होता है । हे प्रभो ! मन्थदिनके समय इसका सेवन करो और दही पीओ ॥ ३ ॥

## स्नानपात्र

## भोजनका समय

सर्वक मध्याह्नानाम् आनेपर भोजन करना चाहिये, यह बात इस सूक्त मधीत होती है, देखिये—

सूत अर्चन मर्ष्य विजगाम । ध्रात हवि सुप्रयाहि । ( म २ )

“ सर्व मार्गके मर्ष्यमें पदुंथ सुका है अतः परिपक्व हुए अन्न प्रति भागद्वारा जा । ” यह वाक्य प्रातःकाल समय प्रातःकाल बाद बनेका या उसने किंचित पश्चात्का है, इस

वाक्य स्पष्ट करता है । हवि भाग मर्षका है । यह अन्न परिपक्व हुआ हो । अतः एक तो सर्व ( ऊर्धनि ध्रात ) गायके स्तनमें परिपक्व होता है, जिसको हम दूध कहते हैं, यह दूध हुंर जाके पश्चात् ( अर्धो ध्रात ) अतिपर पकाया जाता है । इसमें एक ता स्वभावात् परिपक्वता होती है पश्चात् अतिपर परिपक्वता होती है, पश्चात् देवताओंको समर्पित करके भोजन करना जाता है । दूधका उपासनेक पश्चात् उसका दही बनाया जाता है । यह दही ( माष्य

न्दिनस्य दूधः पिव ) मध्याह्नके भोजनके समय पीना योग्य है । रात्रिके समय वा सुबेरे दही पीना उचित नहीं, क्योंकि दही शीतवीर्य होता है इस कारण वह दोपहरके उष्ण समयमें ही पीना योग्य है ।

जैसे गादके स्त्रवमें दूध परिवर्त होता है, उसी प्रकार ' गो ' नाम दूधके संस्कार धान्य आदिकी उत्पत्ति होती है । इसको भी परिवर्त दशामें लेना चाहिये, पश्चात् अग्निपर पकाकर या भूनकर उसका सेवन करना चाहिये । यह अन्न दूध हो वा अन्य धान्यादि हो वह ( श्रुतं मवीर्यः ) नया लेना योग्य है । दूध भी ताजा लेना चाहिये और धान्य भी बहुत पुराना लेना योग्य नहीं । अन्न भी पकते ही लेना चाहिये अर्थात् दोषार दिवने वासे पदार्थ लेने योग्य नहीं है । मगवर्हीतमें कहा है कि—

पातयामं गतरसं पृतिपर्युषितं च यत् ।  
उच्छिष्टमपि चामेष्यं भोजनं तामसमिषम् ॥  
भ गी. १०।१०

" जिस अन्नको वैषार होकर तीन घण्टे ज्वरीत हो गा

हो, जो बीरस हो, जो दुर्गन्धयुक्त हो, जो उच्छिष्ट हो और अपवित्र हो वह तामस लोगोंको शिव्य होता है ।" अर्थात् अन्न पकाकर तीन घण्टेके पश्चात् उसका सेवन करना योग्य नहीं; पकनेके तीन घंटे बाद तक उसको ( श्रुतं मवीर्यः ) नया वा ताजा कहते हैं, इसी अवस्थामें उसका सेवन करना चाहिये ।

परमेश्वर ( श्रुतियं श्रुतं ) श्रुतके योग्य अन्न भागको देना है । जिस अन्नमें जो सेवन करने योग्य होता है वह अन्न, दूध, रस आदि देता है । उसको एक भयस्पाते प्राप्त करना चाहिये और पश्चात् उसका सेवन करना चाहिये । यदि कोई बल पकाने न हो तो उसकी प्रतीक्षा आर्यदके साथ करनी चाहिये ।

सद्यः परिवारेके तथा ( सग्राह्यः ) इष्टमित्र अपनी अपनी भाळीमें ( निधिभिः ) अपने अन्न संप्रदायों के और साथ साथ रक्षितमें बैठे, सद्य अपने अन्नभागसे कुछ भाग देवताओंके उद्देश्यसे समर्पण करें । सब इष्टमित्र ऐसा करने की वह ईश्वर अपने बीचमें है अथवा हम उसके चारों ओर हैं और जो भक्त भाग मिले उसका मानदके साथ सेवन करें ।

## औषधिरसका फल

कां. ६, सू. १६

( ऋषिः— श्रौतकः । देवता— चन्द्रमा मन्त्रोक्तवैपलाः । )

आर्षयो अनाद्यो रसंत उग्र आद्यो । आ र्तं कस्मभमंचसि ॥ १ ॥  
विहह्लो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता । स हि न त्वमसि यस्त्वमात्मानावर्षयः ॥ २ ॥  
तौर्विलिकेऽवेलयावायमैलुव ऐलपीत् । च्युश्च च्युकर्णयापेहि निराल ॥ ३ ॥  
अलसालासि पूर्वा सिलाजालास्युचरा । नीलागलसाला ॥ ४ ॥

अर्थ— ( हे आद्यो, आद्यो, अनाद्यो ) कैलनेवाली और न कैलनेवाली औषधि ! ( ते रसः उग्रः ) वेरा रस कम है । ( ते कर्मं वा अलसि ) तेरे रसका हम पेय कराते हैं । १ ॥

( ते पिता विहह्लः ) तेरा पिता विहह्ल है और ( ते माता मदावती नाम ) तेरी माता मदावती है । ( सः हिन त्वं असि ) वही उनसे ही व बनता है । ( यः त्वं आत्मानं वर्षयः ) जो व अपने आत्माकी रक्षा करता है २ ॥

( तौर्विलिके अथ ईलय ) प्रपतिके कार्यमें हमें प्रेरित कर । ( अयं ऐलयः अथ ऐलपीत् ) यह भूमिके संबंधमें कार्य करनेवाला प्रेरणा करता है । हे ( आल ) समर्थ ! ( च्युः च च्युकर्णः च ) मूत्र और भूरे कानवाला ( निः अप इहि ) हमसे दूर रह ॥ ३ ॥

( पूर्वा अलसाला ) पहिले व आलसियोंको रोकनेवाली है, ( उत्तरा सिलाजाला ) दूसरी व अशुभोक्त पशुंके-वाली है । तथा ( नीलागलसाला ) घर घामें उपयोगी है ॥ ४ ॥

## रसपान

इस सूत्रमें " फरंभ " शब्द है। दही और सत्तक का मिलाकर बना उत्तम पेय रस बनता है उसका यह नाम है। यह कञ्जीको हयानेवाग और घडी पुष्टि देनेवाला होता है। इसमें कई औषधियोंने रस मिलानेसे इसके गुण अधिक बढ़ गये हैं।

" विहृहृ " ( विला ) वृक्षका " मदावती " नामक ( भावा ) औषधिपर कलम करनेसे जो औषधि बनती है वह ( शात्मानं भावयन् ) आत्माकी-क्षयनी-रक्षण करनेवाली होती है। यह द्वितीय मन्त्रका कथन है। यह मातापिताके स्थानकी औषधियाँ इस समय अपनाते हैं।

इसी प्रकार इस सूत्रमें भावे अन्त्यान्ध नाम किन दगस्त्रणियेवि हैं, इसका पता नहीं चलता। भावयु, अनाययु, विहृहृ ( विला ), मदावती ( माता ), वीपिलिका, पैलव, बभ्रु, बभ्रुकर्ण, भाग्य, भद्रमाया, ( पूर्वा ) सिलाम्नाला, ( उत्तरा ) नीलगन्धसाला इत्यादि नाम इस सूत्रमें भावे हैं। इनका पता नहीं लगता। इसलिये इनपर अधिक लिखना असंभव है।



## ऋणरहित होना

कां. ६, सू. ११७

( पापि- कौशिक । देवता- भवि । )

अपमित्यमप्रतीक्षं यदस्मि यमस्य येन पतिना चरामि ।

इदं तदमे अनूणो भवामि त्वं पाशान्विचूर्तं वेद्य सर्वान्

॥ १ ॥

इहैव सन्तः प्रति दध एनज्जीवा जिविभ्यो नि हाराम एनत् ।

अपमित्यं धान्यं । यज्जघसाहमिदं तदमे अनूणो भवामि

॥ २ ॥

अर्थ— ( यत् अपमित्यं अप्रतीक्षं अस्मि ) जिस वापस करने योग्य पदार्थको वापस न करनेके कारण मैं कर्णो हो गया हूँ और ( यमस्य येन पतिना चरामि ) नियन्त्राके वरामें जिस कणके कारण पहुँचा हूँ, दे भन्ने ! ( इदं तत् अनूणः भवामि ) धर्म में उस कणको चुकाकर ऋणरहित हो जाऊँ, ( त्वं सर्वान् विचूर्तं पाशान् वेद्य ) तू सब कणके सुने हुए पाशोंकी जानता है ॥ १ ॥

( इहैव सन्तः एनत् प्रति दध ) यहीं रहते हुए इस कणको चुका देते हैं, ( जीवाः जीवेभ्यः एनत् निहाराम ) इसी जीवनमें कल्प जीवके इस कणको हम निःशेष करते हैं। ( यत् धान्यं अपमित्यं अहं जघस ) जो धान्य उधार लेकर खाया है, दे भन्ने ! ( इदं तत् अनूणः भवामि ) यह वह है और इस रीतिसे मैं ऋणरहित होता हूँ ॥ २ ॥

भाषार्थ— ये कर्णो किया होता है उसे समझकर वापस करना चाहिये। यदि वापस न किया तो कण छेनेवाला दोषी होता है। इस दोषसे मुक्त होनेके लिये शीघ्र कणमुक्त होनेका यत्न करना चाहिये। सब अपने पाप छोड़ कर यदिके कणमुक्त होता चाहिये ॥ १ ॥

इस सत्कारमें जीवित रहकर ही अपने कर्णोसे मुक्त होना चाहिये, भर्पात् स्वयं किया हुआ कर्णो अपने पालकको लिये छोड़ना उचित नहीं। धान्यका कर्णो हो अपना धन बाटिका हो उसको शीघ्र वापस करना चाहिये ॥ २ ॥

अनुणा अस्मिन्नुणाः परस्मिन्नुतीर्थं लोके अनुणाः स्याम ।

ये देवयानाः पितृयाणांश्च लोकाः सर्वान्पथो अनुणा आक्षिपेम

॥ ३ ॥

अर्थ— ( अस्मिन् लोके अनुणाः ) इस शोकमें हम ऋणरहित हो जाय, ( परस्मिन् अनुणाः ) परलोकमें ऋणरहित हो जाय और ( तुतीर्थे लोके अनुणाः स्याम ) गृहीतलोकमें भी हम ऋणरहित हो जायें, ( ये देवयानाः पितृयाणाः च लोकाः ) जो देवयान और पितृयानके लोक हैं, ( सर्वान्पथो अनुणा आक्षिपेम ) इन सब मार्गोंमें हम ऋणरहित होकर चलें ॥ ३ ॥

भावार्थ— इस लोकका ऋण दूर करना चाहिये, परलोकमें ऋणसे मुक्त होना चाहिये और अन्य जगत्में भी मुक्त होना चाहिये । देवयान और पितृयानके सब स्थानोंमें ऋणरहित होना योग्य है ॥ ३ ॥

मनुष्यको सब प्रकारके ऋणोंसे मुक्त होना चाहिये । ऋणी रहकर मरना योग्य नहीं है । यह मूल सुबोध है, इसलिये अधिक स्पष्टीकरणकी आवश्यकता नहीं है ।

## ऋणरहित होकर

कां. ६ सू. ११८

( ऋषि - कौशिक । देवता - अग्नि । )

वद्वस्ताभ्यां चकृम किल्बिषाण्युक्षाणां गन्तुमुपलिप्तमानाः ।

॥ १ ॥

उग्रंपश्ये उग्रजितौ तदुद्यात्सुरसावजुं दत्तामृणं नः

उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत्किल्बिषाणि यदुध्वंरुत्तमनु दत्तं न एतत् ।

॥ २ ॥

ऋणाशो नर्णमेत्समानो यमस्य लोके अधिरजुरायत्

अर्थ— ( अक्षाणां गन्तुं उप लिप्तमानाः ) लुप्तके स्थानके प्रति आत्मेकी इच्छा करनेवाले हम ( यत् हस्ताभ्यां किल्बिषाणि चकृम ) जो हाथोंसे कनेक पाप करते हैं । ( तत् यः कर्म अद्य ) वह इगता कर्म आज ( उग्रंपश्ये उग्रजितौ उग्रतासे उग्रजितानी और उग्रतासे जीतनेवाली दोनों अप्सरायें हमसे दिकरें ॥ १ ॥

हे ( उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् ) उग्रतासे देखनेवाली और हे राष्ट्रका भरणोपण करनेवाली ! ( यत् अक्षयुषां ) जो लुपवासीका पाप है और जो ( किल्बिषाणि ) अन्य पाप हैं, ( नः यत्तत् अनु दत्तं ) हमसे यह सब बदला दिया हुआ है । ( ऋणात् ऋणं न पत्समानः ) ऋणोंसे ऋणको वापस न प्राप्त करनेपर ऋण देनेवाला ( अधिरजुः ) यमस्य लोके नः आयत् ) रस्ती लेकर यमके लोकमें हमारे पास आयेगा ॥ २ ॥

भावार्थ— लुप्तके स्थानपर आकर जो पाप किया जाता है और अन्यज जो पाप होता है, वसी प्रकार जो हम ऋण करते हैं, उस सबको दूर करना चाहिये ॥ २ ॥

ऋणका पाप, अन्य पाप और ऋण यदि दूर न किया तो हमें बन्धनमें जाना पड़ेगा ॥ २ ॥

यस्मां क्रुणं यस्थं जायामपैमि यं याचमानो अम्पैमि देवाः ।

ते वाचं वादिपुर्मोत्तरां महैवेपत्नी अप्सरसावधीतम्

॥ ३ ॥

अर्थ—हे (देवा) देवो! (यस्मै क्रुणं) जिसको ऋण वापस करना है, (यस्त्र जायां उपैमि) जिसकी स्त्रीके पास सहाय्य याचनाये जाता है, तथा (यं याचमानः अम्पैमि) जिसके पास याचना करता हुआ पहुँचता है, (ते मत् उत्तरां वाचं मा वादिपुः) वे मुझसे अधिक कठोर भावण न करें। हे (देवपत्नी अप्सरसौ) देवपत्नी अप्सरामो! (अधीतं) स्मरण रखो वह मेरी प्रार्थना ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिससे ऋण लिया है भयवा जिससे कुछ याचना की है वह हमें दुन्दर न बोले, ऐसी व्यवस्था बननी चाहिये ॥ ३ ॥

[ ये मन्त्र कुछ भंशमें संश्रिय हैं, इसलिये इतने विषयमें विशेष स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। क्योंकि इनके कई मन्त्रोंका सम्बन्ध स्पष्टतया मतीत नहीं होगा। ]



## ऋणरहित होना

कां. ६, सू. ११९

( ऋषि.— कौत्सिक । देवता— वैश्वानरोऽग्नि । )

यद्दीव्यवृणमहं कृणोम्यदांस्पन्न उत संगुणामि ।

वैश्वानरो नो अभिषा वसिष्ठ उदिक्षयाति सुकृतस्य लोकम्

॥ १ ॥

वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्युणं संगरो देवतासु ।

स एतान्पाशान्विचृतं वेदु सर्वाण्यं पृक्तेन सह सं मंत्रेम

॥ २ ॥

अर्थ— (यद् अहं अदीव्यन्) जो मैं तुम्हा न खोदता हुआ (ऋणं) ऋण कर्त्त (उत अवास्पन् संगुणामि) और उसरो न सुन्दता हुआ सुकृतेकी प्रतिज्ञा करता आऊँ, हे अग्ने! (वैश्वानरः वसिष्ठः अभिषा) विश्वका नेता सबको यथावेचन अभिषति (सः सुकृतस्य लोकं इत् उदियाति) हमें पुण्यलोकमें जानेके लिये उद्यत करे ॥ १ ॥

(वैश्वानराय यत् ऋणं प्रतिवेदयामि) विश्वके नेताको मैं जो ऋण है वह कहूँगा, तथा (देवतासु यः संगरः) देवताओंमें जो प्रतिज्ञा हुई है, वह भी मैं कहूँगा। (सः एतान् सर्वाण् पाशान् विचृतं वेदु) वह इन सब पाशोंको मोड़नेकी विधि जानता है। (अथ पश्येत् सह संभवेत्) अब हम परिपक्वके साथ मिल जाय ॥ २ ॥

भावार्थ— तुम्हा न खोदता हुआ ऋण कारणसे जो ऋण मैं करता हूँ और उसको समझपर वापस न करता हुआ वापस करदेकी प्रतिज्ञा करता रहता हूँ, उस दोषसे बचारे और ईश्वर मुझे ऊपर उठावे और पुण्यलोकमें पहुँचावे ॥ १ ॥

जो ऋण मैंने किया और उस सम्बन्धमें जो प्रतिज्ञाएँ मैंने कीं उन सबको मैं निवेदन करता हूँ। इस प्रकारके पारोति ईश्वर मेरा बचाव करे, क्योंकि वही इन ऋणोंमें दूर करे हमें ऊपर उठावेके उपाय जानता है। हम परिपक्व हुए शानियोंके साथ रहें, जिससे हमसे दोष नहीं होंगे ॥ २ ॥

प्रेक्षानुरः पवितां मां पुनातु यत्संग्राममिषावांभ्याशाप् ।  
अनाजान्मनसा वाचमानो यत्त्रैनो अप् यत्सुवामि

॥ ३ ॥

अर्थ— ( पविता वैश्वानरः मा पुनातु ) पवित्र करनेवाला विश्वाका नेला मुझे पवित्र करे । ( यत् संग्रामं आशां भूमिधावामि ) जिस प्रतिज्ञाको करता हुआ जिस आशाके पीछे मैं चौकता हूँ, ( अनाजान् मनसा वाचमानः ) न जानता हुआ तथापि मनसे वाचना करता हुआ ( तत्र यत् एनः ) यहाँ जो पाप होता है ( तत् अप् सुवामि ) उसको मैं दूर करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ— ईश्वर सबको पवित्र करनेवाला है, वह मुझे पवित्र करे । जिस आशाके पीछे पढ़कर मैं बारबार प्रतिज्ञा करता हूँ और पापको न जानता हुआ जो बारबार वाचना करता रहता हूँ, वह सब पाप दूर होवे ॥ ३ ॥

इस सूक्तका भाव स्पष्ट है । ऋषि मोषनके ये सब सूक्त यही उपदेश विशेषतया करते हैं कि, कोई मनुष्य कृपा न करे और यज्ञि करे तो उसको ठीक समयपर वापस करे । वृथा भस्मत्य प्रतिज्ञाएँ करते न रहे । इत्यादि बोध इस सूक्तसे सार्थकरूपसे प्राप्त होता है ।

## निष्पाप होनेकी मार्थना

कां. ७, सू. ३४

( मन्त्रि- अथर्वा । देवता- जातवेदाः । )

अग्नें जातान्म प्रणुदा मे सपत्नान्प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्य ।  
अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवोऽनागस्रस्ते चयमदितये स्याम

॥ १ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! ( मे जातान् सपत्नान् प्रणुदा ) मेरे उत्तरक हुए शत्रुओंको दूर कर । हे ( जातवेदः ) शत्रुके उत्पादक देव । ( अजातान् प्रति नुदस्य ) सुखी रूपसे शत्रु न घने हुए परंतु अंदर अंदरसे शत्रुता करनेवाले शत्रुओंको एकदम हटा दो । ( ये पृतन्यवः अधस्पदं कृणुष्व ) जो सेना लेकर हमपर चढ़ाई करते हैं उनको गिरा दे । ( चयं यनागस्रः ) हम सब निष्पाप हों और ( अदितये स्याम ) भग्नीनताके लिये योग्य हों ॥ १ ॥

शत्रु, जानवाता प्रकाशमय देव हमारे सब शत्रुओंको हमसे दूर करे । शत्रु सुखी रीतिसे शत्रुता करनेवाले हों अथवा सुख रीतिसे घात करनेवाले हों, सबके सब शत्रु दूर हों । जो सेना लेकर हमारे ऊपर चढ़ाई करते हैं, वे भी सब अपने स्वानुके गिर जावे । हम निष्पाप हों और दीनता हमसे दूर हो जाय । भग्नीनता, अस्वता तथा स्वर्गपदा हमारे पास रहे ।

## कल्पवृक्ष

कां. ७, सू. २८

( ऋषि- मेधाविधि । देवता- वेद । )

वेदः स्वस्तिर्हृषणः स्वस्तिः परशुवेदिः परशुर्नः स्मृति ।

हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामास्ते देवासो यज्ञभिमं जुषन्ताम्

॥ १ ॥

अर्थ— (वेदः स्वस्ति) ज्ञान कल्याण करनेवाला है। (द्रु-घणः स्वस्ति) लकड़ी काटनेका कुट्टाका कल्याण करनेवाला है। (परशुः) पाशु कल्याण करनेवाला है। (वेदिः) यज्ञकी वेदि कल्याण करती है। (नः परशुः स्वस्ति) हमारा साथ कल्याण करनेवाला है। (हविष्कृतः यज्ञिया यज्ञकामाः) हवि बनानेवाले, यज्ञवीच और मन्त्र करनेवाले इत्यादि करनेवाले (ते देवासः) वे याज्ञिक (हम यज्ञं जुषन्तां) इस यज्ञका प्रेमसे सेवक करें ॥ १ ॥

ज्ञान, सुतारके इधियार, लकड़ी तोड़नेके कुट्टाके, घाम काटनेका हिसिया, समिधा तयार करनेका परसा, वेदी, हवि, हवि तयार करनेवाले योग, यज्ञ करनेवाले, यज्ञकी इच्छा करनेवाले ये सब करवाण करनेवाले हैं। इसलिये इनके विषयमें उचित श्रद्धा धारण करनी चाहिये।

## विपत्तिको हटाना

कां. ७, सू. २३

( ऋषि - यम । देवता- दु स्वप्नराजसम् । )

दोष्वप्यं दीर्जीवित्यं रथो अमृषिराटवृ। दुर्गाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता असन्नाशयामसि ॥ १ ॥

अर्थ— (दीर्जीवित्यं) दुष्ट स्वप्नोंका भाग, (दीर्जीवित्यं) दुःखमय जीवन होना, (रथ) हिंसकोंका उपद्रव, (अ-अयं) अमृषी, दरिद्रता, (अमृष्यः) विपत्तिके कष्ट, (दुर्गाम्नीः) शुरे नामोंका उच्चारण करना, (सर्वाः दुर्वाचः) सब प्रकारके दुष्ट भाषण (ताः असत् नाशयामसि) उन सबको हम अपने स्थानसे नष्ट करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— शुरे स्वप्न, कष्टका जीवन, हिंसकोंका उपद्रव, विपत्ति, दरिद्रता, दुष्ट भाषण, गालियों देना भादि जो जो बुराईया हममें हैं, उनको हम दूर करते हैं ॥ १ ॥

विपत्तियां अनेक प्रकारकी हैं, उनमें कुछ विपत्तियोंकी गणना इत ग्यावर की है। शुरे स्वप्न भाषा तथा दु-स्वप्न और नका अनुभव होना भादि विपत्तियां आरोग्य न रहनेमें होती हैं। आरोग्य उत्तम रीतिले रखनेके लिये व्यायाम, योगासनका अनुष्ठान, यमनियमपालन, प्राणायाम, योग्य आहारविहार भादि उपाय हैं। इनको योग्य रीतिले करनेसे ये दो विपत्तियां दूर होती हैं। हिंसकोंका उपद्रव दूर करनेके लिये अपने भंदर दूरवीरता उत्पन्न करना और उस कार्यके लिये दसका प्रयोग करना चाहिये। इससे राक्षसोंके आक्रमणसे हम अपना बचाव कर सकते हैं। (अ-अयं) अमृषी और अमृष्यः) निर्धनता ये दो आर्थिक आपत्तियां उद्योगवृद्धि करने और बेकारी दूर करनेसे दूर होती हैं। मनुष्य हर एक प्रकार कास्ती न रहे, कुछ न कुछ उत्पादक काम धंधा करे और अपनी धन संकति सुयोग्य उपायसे बढ़ावे। इस प्रकार उद्योगवृद्धि करनेसे ये आर्थिक आपत्तियां दूर हो जाती हैं। गाली देना, शुरे भाषण करना, शुरे शब्द उच्चारण करना भादि जो आपत्तियां हैं, उनको दूर करनेके लिये अपनी बालीकी मुद्रि करना चाहिये। निम्नपूर्वक मन्त्रशुद्धीका उच्चारण न करनेसे कुछ दिनोंके पश्चात् ये शब्द अपनी बालीमें स्थय दूर होते हैं। इस प्रकार आपत्तियोंके दूर करनेका मार्ग हमें खुलने लगाया है।

## भाग्यकी प्राप्ति

कां. ६, सू. १२१

(अपि-अपवाद्विरा । देवता-भग ।)

भगेन मा शांशुपेन साकमिन्द्रेण मेदिना । कृणोमि भुगिन् साप द्रान्त्वरतयः ॥ १ ॥

येन वृक्षो अभ्यभवो भगेन वर्चसा सह । तेन मा भुगिनं कृण्वप द्रान्त्वरतयः ॥ २ ॥

यो अन्धो यः पुनःसरो मगो वृक्षेप्राहितः । तेन मा भुगिनं कृण्वप द्रान्त्वरतयः ॥ ३ ॥

अर्थ— (शांशुपेन भगेन मेदिना इन्द्रेण) शंशुप वृक्षकी शांशुके लगान आनन्द देनेवाले इन्द्रसे (मा भुगिन् कृणोमि) मैं अपने आपको भाग्यशाली करता हूँ । (अरातयः अप द्रान्तु) शत्रु दूर हो ॥ १ ॥

॥ २ ॥ (येन वृक्षान् अभ्यभवः) जिससे वृक्षको पराजित करता है, उस (भगेन वर्चसा सह) भाग्य और तेजस साप (मा भुगिनं कृणु) मुझे अभ्यवान् कर और (अरातयः अप द्रान्तु) शत्रु दूर भाग जाये ॥ २ ॥

(यः अन्धः) जो अन्धमय और (यः पुनःसरो) जो बारबार गतिवाला (भगः वृक्षेषु प्राहितः) भाग्यका भस्म वृक्षोंमें रखा है (तेन मा भुगिनं कृणु) उससे मुझे भाग्यवान् कर, (अरातयः अप द्रान्तु) शत्रु दूर भाग जाय ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार शत्रु वृक्ष सुन्दर दीखता है, वस प्रकार ईश्वरकी कृपासे भाग्यशुभ होकर मेरी सुन्दरता बढ़े । साथ ही साथ मेरे शत्रु दूर भाग जायें ॥ १ ॥

जिस प्रकार यह वृक्ष अन्य वृक्षोंकी अपेक्षा अधिक सुन्दर दीखता है, उस प्रकार भाग्य और तेज प्राप्त होकर मेरी शोभा बढ़े । मेरे शत्रु दूर हो जायें ॥ २ ॥

वृक्षोंमें जो अन्धका भाग और अन्य भाग होता है, उस प्रकार मुझमें पुष्टि और बल आये और मेरे शत्रु दूर हो ॥ ३ ॥ अपने सुन्दर पुष्टि, बल, भाग्य, ऐश्वर्य और सौख्य बढ़े और अपने जो शत्रु हैं वे दूर हो जायें । इस प्रकार इस सूक्तका आशय सरल है ।

## अपकी रक्षा

कां. ७, सू. ३१

(अपि-भृशद्विरा । देवता-इन्द्र ।)

इन्द्रोतिमिर्बहुलाभिर्नो अथ वाचच्छ्रेष्ठाभिर्मिर्भवन्नूर जिन्य ।

यो नो द्वेषधरः सस्पदीष्ट यमुं द्विभस्तमुं प्राणो जहातु ॥ १ ॥

अर्थ— हे इन्द्र ! (यावात्-श्रेष्ठाभि बहुलाभिः उत्तिभिः) अधिकतः विविध प्रकारकी रक्षामाले (अथ नः जिन्य) भाग हमें जीवित रख । हे (अथवात् धरवी) हे धनवात् धरवी ! (यः नः द्वेषि) जो हमसे द्वेष करता है (सः अधरः पदीष्ट) वह नीचे गिर जाये । (य उ द्विभः) जिससे हम द्वेष करते हैं (स उ प्राणो जहातु) उसको प्राण छोड़ देने ॥ १ ॥

भावार्थ— हे धनवात् और धर प्रभो ! तुम्हारी जो अनेक प्रकारकी अधिकतः रक्षाएँ हैं, वे सब हमें प्राप्त हों और उनसे हमारी रक्षा होये और हमारा जीवन उनकी सहायतासे सुखकर होये । जो दुष्ट हमारी विना कारण जिन्ना करता है, वह गिर जाये और जिस दुष्टसे हम सब द्वेष करते हैं उसका जीवन ही समाप्त हो जाये ॥ १ ॥

हम परमेश्वरकी भक्ति करें और उसकी रक्षा प्राप्त करके सुरक्षित और स्वस्थ होकर आत्मार्का उपभोग करें । परन्तु जो दुष्ट भजुन्य हम सबसे द्वेष करता है और उस कारण जिस दुष्टसे हम सब द्वेष करते हैं, उसका नाश हो । दुष्टका और द्वेषका समूह नाश हो ।



## दुष्ट स्वप्न

कां. ६, सू. ४५

(ऋषि - भद्रिना प्रचेता यमम । देवता- दु व्यमनामम् ।)

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि ।

परोहि न त्वां कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः ॥ १ ॥

अवशसां निःशसां यत्पराशसोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः ।

अग्निविश्वान्ययं दृष्टकृतान्यज्ञान्यारे असुदधातु ॥ २ ॥

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि । प्रचेता न आङ्गिरसो दुरितात्पावदंसः ॥ ३ ॥

अर्थ—हे (मनः पाप) मनके पाप । (परः अप इहि) दूर हट जा । (अशस्तानि किं शंससि) तू क्यों बातें क्यों कहता है ? (परा इहि) दूर जा । (त्वा न कामये) तुझको मैं नहीं चाहता । (गृहान् वनानि संचर) गृहों और वनोंमें जाकर संचार कर । (मे मनः गृहेषु गोषु) मेरा मन मेरे घरे और गौवोंमें रहे ॥ १ ॥

(यत् जाग्रता निःशसा पराशसा) जो पाप पासको हिसासे, विदेवताको हिसासे और दूरको हिसासे भयमा (यत् जाग्रतः स्वपन्तः उपारिम) जो जागते हुए और सोते हुए इनमें किवा है (अग्निः विश्वानि अनुष्टानि दुष्टकृतानि) प्रकाशका देव सब अकारणों दुष्टकर्मोंको (असुदधातु आरे अप दधातु) हम सबसे दूर रखे ॥ २ ॥

हे (ब्रह्मणस्पते इन्द्र) ज्ञानी प्रभु ! (यत् अपि मृषा चरामसि) जो भी कुछ पाप भ्रमत्वाचरणसे हम करें, (अंगिरसः प्रचेता) सबसे भगवत्सोंके समान व्यापक विशेष ज्ञानी देव (नः दुरितात् पावदंसः पातु) हमें दुराचारके पापसे बचावे ॥ ३ ॥

## दुष्ट स्वप्न

## पापी विचार

पापी विचारोंको मनसे झटकेका उपदेश इस सूक्तमें कहा है । शुद्धस्थाना मन—

गृहेषु गोषु मे मनः । (मं. १)

“घरमें और अपने गौ भादियों ही रचना चाहिये ।” अन्य बातोंमें और कुविचारोंमें मनके रमनेसे दुष्ट स्वप्न जाते हैं और उससे कष्ट होते हैं । इसलिये मनुष्यको सज्जित है कि वह अपनेको शुभ संस्कारयुक्त बनावे और अपने परिचारके द्वेषमें दक्ष रहे । यदि कुविचार मनमें आवे भी, तो उससे कड़वा चाहिये कि—

मनस्पाप । परः अपेहि, किं अशस्तानि शंससि ?

परोहि, न त्वां कामये । (मं. १)

“हे पापी विचार ! दूर हट, मुझे तू दूरी बातें कहता है, क्या आ, मैं तेरी इच्छा नहीं करता ।”

इस प्रकार उस पापी विचारको कह कर उसको दूर करना चाहिये । पापी विचार बातें मनमें सुनने लगते हैं, परन्तु

उनको सुनने देना उचित नहीं है । अपने अन्दर कौनसा विचार आवे और कौनसा न आवे इसका निश्चय स्वयं अपने भावोंको करता चाहिये और यह शरीर अपना कार्यक्षेत्र है, यह जानकर उस क्षेत्रमें शुभ विचारोंकी परंपरा ही स्वीर रखनी चाहिये । सबको विचार करना चाहिये कि—

यत् जाग्रतः स्वपन्तः उपारिम । (मं. २)

“जो जागते हुए और सोते हुए हम करते हैं” वही स्वप्नमें परिणत होता है, इसलिये शर्मितके हमारे सब व्यवहार उत्तम हुए, तो स्वप्न निःसंदेह ठीक होंगे और किसी प्रकार घुटे स्वप्न नहीं आवेंगे और मनमें कभी अनुभूत संस्कार नहीं पड़ेंगे । इसी प्रकार—

मृषा चरामसि । (मं. ३)

“असत्य व्यवहार करेंगे ।” जो उसका भी शुभ परिणाम होगा । सब सुसंस्कार असत्यके कारण उत्पन्न होते हैं । यदि मनुष्य असत्यको छोड़कर सत्यका आश्रय करेंगे तो वे निःसन्देह मुक्तिसे बच सकते हैं ।

## दुष्ट स्वप्न

कां. ६, सू. ४६

( अग्नि - अहिना यजेता यमश्च । देवता - दुष्पानापालम् । )

यो न जीवोऽसि न मृतो देवानाममृतगर्भोऽसि स्वप्न ।

वृहणानीं तं माता यमः पितारं कूर्वासासि

॥ १ ॥

विद्य तं स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।

अन्वक्रोऽसि मृतपुरंसि । तं त्वां स्वप्न तथा सं विद्य स नः स्वप्न दुष्पन्प्यात्पाहि

॥ २ ॥

यथा कलां यथा शूर्पं यथर्षं संनयन्ति । एवा दुष्पन्प्यं सर्वं त्रिपते सं नयामसि

॥ ३ ॥

अर्थ— हे स्वप्न ! ( यः ) जो तू ( न जीवः असि न मृतः ) न तो जीवित ही है और नहीं मरा हुआ ही है, यह तू ( देवानां अमृतगर्भः असि ) देवोंका अमृत गर्भ है अर्थात् देवोंमें सर्वदा रहनेवाला है । ( ते ) तेरी ( वरुणानीं माता ) वरुणाकी माता है और ( यमः पिता ) यम पिता है । ( अरत् - नाम असि ) तू अरत् नाम रक्ता है ॥ १ ॥

हे स्वप्न ! ( ते जनित्रं विद्य ) तेरी उत्पत्तिको हम जानते हैं । तू ( देवजामीनां पुत्रोऽसि ) देवोंकी पति पौत्रा पुत्र है और ( यमस्य करणः ) यमके काशोक साधक है । तू ( अन्वक्र - असि ) अन्व जाननेवाला है । ( मृतपुरः असि ) मृत नगरवाला है । हे स्वप्न ! ( तथा सं त्वा ) उस प्रकारके विनाशक उस तुझको ( सं विद्य ) हम अच्छी तरह जानते हैं । ( सः ) यह तू स्वप्न ! ( सः दुष्पन्प्यात् ) बुरे स्वप्नसे हमारी ( पाहि ) रक्षा कर ॥ २ ॥

( यथा कलां यथा शूर्पं ) जिस प्रकार कला अर्थात् सोलहवां भाग और जिस प्रकार शूर्प अर्थात् चातस भाग ( यथा ऋणं सं नयन्ति ) ऋणके अनुसार देते हैं ( एवा सर्वं दुष्पन्प्यं ) इस प्रकार सब दुष्ट स्वप्न ( त्रिपते सनयामसि ) समुके प्रति पहुँचाते हैं ॥ ३ ॥

## दुष्ट स्वप्न

### दुष्ट-स्वप्न यमका पुत्र

देवानां— यथा देवानां का अर्थ इन्द्रियोंका है । स्वप्न इन्द्रियोंमें अमृतरूपसे बसा हुआ है । क्योंकि यह जाम्बवस्थामें इन्द्रियोंके मनुमर्भोंसे उत्पन्न वायुनालोंसे उत्पन्न होता है । हमारे अन्दर वासनार्थे स्थामें हैं, अतः स्वप्न उन वासनार्थोंसे उत्पन्न होनेसे अर्पित है । अतएव उसे यहाँ अमृत गर्भसे उत्पन्न कहा गया है ।

अरत्— पीडा देनेवाला । द्विसक 'आ-गतिर्द्विसमयोः' से बना है । वे आ ३२९१४के अनुसार अरत्नामपाला समुत् ।

वरुणानीं— वरुण अर्थात् भयकरकी पत्नी ।

इस प्रकार इस मन्त्रमें यमकी स्वतन्त्रा पिता कहा गया है । अर्थात् स्वप्न यमका पुत्र है । अतएव कईवार स्वप्नसे स्वप्न भी हो जाती है ।

दुष्ट स्वप्नका शुरुआते संबंध है इसलिये पूर्व सूत्रमें कहा है कि दुष्ट स्वप्नसे बचनेके लिये विषमोंकी श्रद्धा करनी पड़िये ।

इस मन्त्रमें स्वप्नको देवपत्नियोंका पुत्र कहा गया है । पूर्व मंत्रकी दिव्यपत्नीमें हमने स्वप्नकी उत्पत्ति दर्शाते हुए यह बताया था कि वैश्व अर्थात् इन्द्रियोंके विषमोंसे उत्पन्न वासनार्थोंसे स्वप्नकी उत्पत्ति होती है । उसी स्थानकी पुष्टि इस मन्त्रमें ' देवजामीनां पुत्रः असि ' से भी गई है । देवों अर्थात् इन्द्रियोंकी पत्नियों इन्द्रियविषयवन्प्य वासनार्थे हैं । उनका स्वप्न पुत्र है । यदा पर विशेष बात कही गई है वह यह कि स्वप्नको यमका वरण बताया गया है । पालिनि मुनिने वरणका लक्षण महाभारतमें किया है कि ' साध-रतमं ' ( अथा ११४१२ ) अर्थात् जो कार्य साधनेमें समीपवत् साधन है वह वरण है । कार्यसाधक सब साधनोंमें जो प्रायशः अधिक आवश्यक है वह वरण कहलाता है । इस लक्षणा-नुसार यमका स्वप्न वरण है, इसका अभिप्राय यह हुआ, कि

यमके मारनेके कार्पमें स्वम सबसे अधिक अत्यव्यक्त साधन है। स्वमके इस विशेषणसे उसकी चर्चकरवाला अनुमान सहज किया जा सकता है।

इसमें मन्त्रके भावको ही नीचे लिखे मन्त्रमें चन्द्रभेदसे कहा गया है—

देवानां पत्नीनां गर्भं यमस्य कर यो भद्रः स्वप्नः ।  
स मम यः पापस्तद्विपत्ते प्र हिष्मः ।

मा दृष्टानामसि कृष्णशकुनेमुंजम् (अथ. १९।५।३)

हे (देवानां पत्नीनां गर्भं) देवोंकी पत्नियोंके गर्भरूप तथा (यमस्य कर) यमके हाथ स्वप्न ! (यो भद्रः) जो कल्याणकारी वेदा भंग है (सः) वह भंग (मम) मेरा होवे (यः पापः) और जो वेदा पापी अनिष्टकारी भंग है (तत्) उस भंगको (द्विपत्ते) द्वेष करनेवालेके प्रति (प्रहिष्मः) इन भेजेते हैं। (तुष्टानां) तुष्टियों—लोभियों प्रत्येक वीषमें तू (कृष्णशकुनेः) काले वर्णके-कौएरे—(मुंजम्) मुंजकी तरह (मा असि) हमारे लिये बाधक मत हो, भर्षात् किन् प्रकार लोभियोंको या प्रत्येक लिष्ट वीषका मुञ्च अनिष्टकारी होता है उस प्रकार तू हमारे लिष्ट अनिष्टकारी मत हो।

विश्व ते स्वप्न जनित्रं प्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । (अथर्व. १६।५।१)

हे स्वप्न ! (ते जनित्रं विश्व) तेरी उत्पत्तिको हम जानते हैं। तू (प्राह्याः पुत्रः असि) प्राणीका पुत्र है और (यमस्य करणः) यमके कार्योंका साधक है।

इस मन्त्रमें स्वप्नको माहीना घेदा कहा है। गण्डिया आदि शरीरिक अकर्मके रोग प्राणी कइराते हैं। उन रोगोंके कारण शरीरमें पीडा बनी रहती है, जिससे निद्रा नहीं आती और यदि आई भी तो स्वप्नहीन अवस्था बनी रहती है। अतएव स्वप्नको प्राणीका पुत्र कहा है। यमस्य करणकी व्याख्या ऊपर कर आये है।

अन्तकोऽसि मृत्युरसि । (अथर्व. १६।५।२, १६।५।३)

हे स्वम तू (अन्तकः असि) प्राणान्त करनेवाला है। तू (मृत्युः असि) मारनेवाला है।

निद्रा बराबर न आनेसे व रोग स्वप्न आनेसे स्वास्थ्य विगडपर अन्तमें मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है, अतएव स्वप्नको यहाँ मन्त्रक व मृत्युके नामसे कहा गया है।

विश्व ते स्वप्न जनित्रं निर्मूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।  
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।

तं त्वा स्वप्न तथा सं विश्व स नः स्वप्न दुःखव्याप्तात् पाहि ॥ (अथर्व. १६।५।४)

मन्त्रका अर्थ हम ऊपर दे आये हैं। यहाँ पर ऐसा ही मंत्र आया है। इस मंत्रमें स्वप्नको निर्मूतिका पुत्र कहा गया है। निर्मूतिले स्वप्नको उत्पत्तिका अभिप्राय यह है कि निर्मूतिले भर्षात् कष्ट, दुःख आदिसे मनुष्यको निद्रा नहीं आती। स्वप्न वह अवस्था है जिस अवस्थामें कि गाढ निद्राका अभाव होता है और कष्टादिको दूरानें मनुष्यको तब निद्रा नहीं आती। इसी अभिप्रायसे स्वप्नको निर्मूतिका पुत्र कहा है।

विश्व ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।  
अन्तकोऽसि ॥ (अथर्व. १६।५।४ यत् अथर्व. १६।५।५)

अर्थ पूर्ववत्। इस मन्त्रमें स्वप्नको अभूतिले भर्षात् अनैधर्म्य-दरिद्र्यका पुत्र कहा है। दरिद्रताके परितापसे भी मनुष्यको निद्रा नहीं आती। इस प्रकार शरीरसे भी स्वप्न (वास्तविक निद्राका न आने) को उत्पत्ति है। शेष व्याख्या पूर्ववत् ही समझनी चाहिये।

विश्व ते स्वप्न जनित्रं निर्मूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।  
अन्तकोऽसि ॥ (अथर्व. १६।५।६)

अर्थ पूर्ववत्। इस मन्त्रमें स्वप्नको निर्मूतिका पुत्र कहा गया है। निर्मूतिका अर्थ है ऐश्वर्य-सम्पत्तिका निकट जाना, नष्ट हो जाना। सम्पत्तिशालीकी सम्पत्ति नष्ट हो जानेसे उसे भी निद्रा नहीं आती। वह सुखकी निद्रासे नहीं सो सकता। इस प्रकार सम्पत्ति विनाशका भी स्वप्न पुत्र है।

विश्व ते स्वप्न जनित्रं परामृत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि ॥ (अथर्व. १६।५।७)

अर्थ पूर्ववत्। इस मन्त्रमें स्वप्नको परामृतिका पुत्र कहा गया है। परामृतिका अर्थ है पराभव भर्षात् हार जाना, तिरस्कारको प्राप्त होना। पराभवसे वा तिरस्कारसे मनुष्यको इतना मानसिक कष्ट होता है कि उसके लिष्ट निद्रा हरान हो जाती है और इस प्रकार परामृतिले स्वप्नको उत्पत्ति होती है।

विश्व ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः । (अथर्व. १६।५।८)

हे स्वप्न तेरी उत्पत्तिको हम जानते हैं तू देवोंकी पति-वोंका पुत्र है और यमके कार्योंका साधक है। इस मन्त्रका भाव हम पूर्व वर्श आये हैं। देवपतिवोंका पुत्र स्वप्न किन् प्रकार है वह यहाँ विगडरूपसे दर्शा आये हैं।

इस प्रकार यह अर्थाविवेक १६ के कारण ५ वा मूत्र मर्यादा यम व स्वप्न विषयक है जो कि हमसे ऊपर दिया है। इस मूत्रसे व इससे दिए गए पहिले मन्त्रोंसे यम व स्वप्नका सम्बन्ध स्पष्ट होता है।

यह अपने पिता यमके कायोंका निरुद्धतम पापक है। इसके अतिरिक्त स्वप्न अर्थात् वास्तविक निद्राका अभाव किन

विन नारणोते होता है तथा उससे क्या दुःखनिवृत्ति होमे है, यमका स्वप्न किस प्रकार है, इत्यादि बातोंका उल्लेख इस मूत्रमें स्पष्ट रूपमें हमें देखनेको मिला है।

यह मूत्र बहुलता दुर्घोष है, तथापि अर्थाविवेक अन्य मूत्रोंके साथ इसका विचार यहाँ करनेसे इसकी दुर्घोषता किंचित् कम हुई है। तथापि यह खोतका विषय है।

## दुष्ट स्वप्न न आम्नेके उपाय

कां. ७, सू. १००

(अपि—यम। देवता—सुरवमनादानम्।)

पर्यावर्ते दुष्स्वप्न्यात्प्रातस्वप्न्यादभूत्याः। मन्त्राहमन्त्रं कृष्वे परा स्वप्नसुराः शुचः ॥ १ ॥

अर्थ—मैं (पापात् दुष्स्वप्न्यात् पर्यावर्ते) पापसे दुष्ट स्वप्नसे पीठे रहता हूँ। (अभूत्याः म्यन्प्यात्) मानसिकरूप स्वप्नसे पीठे रहता हूँ। (अहं मन्त्रं कृष्वे) मैं बीचमें जानरी रखता हूँ। (स्वप्नसुराः शुचः परा) मैं दुःस्वप्न आदि शोकजनक बातोंको दूर करता हूँ ॥ १ ॥

पापसे दुष्ट स्वप्न, शारीरिक अवनति, तथा शोकजन्य स्वभाव बनता है। पाप शारीरिक, इंद्रियविषयक, मानसिक, भाविक, और बौद्धिक मन्त्रोंसे होता है अथवा पापसे इनमें मत्संचय होता है। मन्त्र. पूर्णक प्रकार इन स्थानोंके मत् दूर करने चाहिये, जिससे पापोंके कम होनेसे दुष्ट स्वप्नोंको जाता दूर होगा। शरीरादिकी शुद्धि करनेके उपाय इससे पूर्व कहे गये हैं। अपने और पापके बीचमें (मन्त्र) अर्थात् ज्ञान किंवा परमेश्वरका भजन रखना चाहिये। इसमें निःसंशय पाप दूर होगा। मानसिक शान्ति प्राप्त होकर सुख स्वप्न कदापि नहीं आयेगा।

## दुष्ट स्वप्न न आम्नेके उपाय

कां. ७, सू. १०१

(अपि—यम। देवता—भ्रमनादानम्।)

प्रातस्वप्ने अर्धमशामि न प्रातर्भियाम्पते। सः उदस्तु मे शिषं नृहि तद्दृश्यते दिवा ॥ १ ॥

अर्थ—(यत् स्वप्ने अर्धमशामि) जो स्वप्नमें मैं मत् खाता हूँ वह (प्रातः न अपिगम्यते) मेरे नहीं प्राप्त होता है। (तत् सर्वं मे शिषं अस्तु) वह मत् मेरे लिये शुभ होये। (नत् दिवा नृहि तद्दृश्यते) वह दिनके समय नहीं दीपता ॥ १ ॥

स्वप्नमें ओषधनादि भोग भोगनेका जो उपाय होता है, वह सबसे उल्लेख पाप दिनमें नहीं दिनाई देगा। मत्. वह मत् है। वह वेदक मनकी चिह्नितके कारण दीपता है। मत्. येमे स्वप्न न होने इसलिये उपाय जानकर कल कल चाहिये। जिसका वर्णन इससे पूर्व किया है।

## अञ्जन

कां. ७, सू. ३०

( ऋषि - भृगुऋषिः । देवता - चावापृथिवी, मित्र, ब्रह्मणस्पति, सविता च । )

स्वाक्तं मे चावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अक्रवम् । स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करद ॥ १ ॥

अर्थ— ( चावापृथिवी मे सु-आक्तं ) सुलोक और पृथ्वीलोक मेरी भासोंको उत्तम अञ्जनसे युक्त करें। ( अये मित्र स्वाक्त अक्रः ) यह मित्र सुके अञ्जनसे युक्त करता है। ( ब्रह्मणस्पतिः मे स्वाक्तं ) ज्ञानरति देनेसे सुके उत्तम अञ्जनसे युक्त किया है। ( सविता स्वाक्तं करत् ) सविताने भी मेरी भासोंके लिये उत्तम अञ्जन बनाया है ॥ १ ॥

आंखमें अञ्जन डालकर आंखोंका आरोग्य बढ़ानेकी सूचना इस मंत्रद्वारा मिलती है। सुलोकसे पृथ्वीलोक को जो पृथक्पृथक् सूचीदि पदार्थ है, उनका जो तैलस्वी रूप है, वैसे मेरी आंखें बनें। यह इच्छा इस सूक्तमें स्पष्ट है। यह मन्त्र ज्ञानाञ्जनका भी सूक्त माना जा सकता है। जिससे दृष्टि शुद्ध होती है वह अञ्जन होता है, फिर वह साधारण अञ्जन है, मधवा ज्ञानाञ्जन हो।

## मधुकृष्णा और गोमहिम्ना

कां. ९, सू. १

( ऋषि - भधवा । देवता - मधु, अग्निः । )

दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात्समुद्राद्देवातान्मधुकृष्णा हि ज्वे ।

तां चापिस्वामृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वाः ॥ १ ॥

महत्पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य रशोव रेतं आहुः ।

यत् पेटि मधुकृष्णा रराणा तत्प्राणस्तदुमृतं निविष्टम् ॥ २ ॥

अर्थ— ( दिव अन्तरिक्षात् पृथिव्याः ) सुलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी, ( समुद्रात् अग्नेः वातात् ) समुद्रके जल, अग्नि और वायुसे ( मधुकृष्णा जले ) मधुकृष्णा उत्पन्न होगी है। ( अमृतं वसानां तां चापिस्वा ) अमृतको प्राप्त करनेवाली उस मधुकृष्णाकी सुपानित करने ( सर्वाः प्रजा हृद्भिः प्रतिनन्दन्ति ) सब प्रजाजत जलजने आर्त्तहित होते हैं ॥ १ ॥

( अस्याः पयः ) इसका दूध ( महत् विश्वरूपं ) बड़ा विश्वरूप ही है। ( उत त्वा समुद्रस्य रेतः आहुः ) और तुम समुद्रका दूध कहते हैं। ( यत् मधुकृष्णा रराणा पति ) अर्थात् यह मधुकृष्णा समुद्र करती हुई जाती है, ( तत् प्राणः ) वह प्राण है, ( तत् निविष्टं अमृतं ) यह सर्वत्र प्रविष्ट अमृत है ॥ २ ॥

भावार्थ— पृथ्वी, आग, जल, वायु, आकाश और प्रकाशसे मधुर दूध देनेवाली गौ माता उत्पन्न हुई है, इस अमृत रूपी दूध देनेवाली गोमाताकी पूजा करनेसे सब प्राणों हृदयसे आनन्दित होती हैं ॥ १ ॥

इस गोमाताका दूध मानो सपूर्ण विश्वकी बढी शक्ति है। भधवा मानो, यह सपूर्ण अन्तःस्थका धार है। जो यह समुद्र करती हुई गौ है, वह सबका प्राण है और उसका दूध प्रत्यक्ष अमृत है ॥ २ ॥

पदपन्त्यस्याश्चितं पृथिव्या पृथङ्गनरो बहुधा मीमांसमानाः ।

॥ ३ ॥

अग्नेर्वातांन्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुप्रा नप्तिः

मातादित्यानां दुहित्वा वसन्तां प्राणः प्रजानाममृतस्य नामिः ।

॥ ४ ॥

हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताचीं महान्मर्गेश्वरति मर्त्येषु

मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद्विभ्वरूपः ।

॥ ५ ॥

तं जातं तरुणं पिपतिं माता स जातो विश्वा भुवना वि चंटे

कस्तं प्र वैदु फ लु तं चिकेत यो अस्या इदः कलशः सोमधानो अक्षितः ।

॥ ६ ॥

महा सुमेधा सो अस्मिन्मदेत

स तौ प्र वैदु स ल तौ चिकेत यावस्याः स्तनौ सहस्रपारावक्षितौ । ऊर्जं दुहाते जनपस्फुरन्तौ ॥ ७ ॥

अर्थ— ( बहुधा पृथक् मीमांसमानाः नरः ) बहुत प्रकारसे पृथक् पृथक् विचार करनेवाले लोग ( पृथिव्याः ) इस पृथ्वीपर ( अस्याः श्रितं पदयन्ति ) इसके शरितका अवलोकन करते हैं । ( मधुकशा अग्नेः घातान् जने ) यह मधुकशा अग्नि और वायुसे उत्पन्न हुई है । यह ( मरुतां उप्रा नप्तिः ) मरुतोंकी उग्र माति है ॥ ३ ॥

( आदित्यानां माता ) यह आदित्योंकी माता, ( यसूतां दुहिता ) यमुओंकी दुहिता, ( प्रजानां प्राणः ) प्रजाओंका प्राण और ( अमृतस्य नामिः ) अमृतका केन्द्र है, ( हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताचीं ) सुशोभित समान वर्णवाली यह मधुकशा पुष्पका विषय करनेवाली है, यह ( मर्त्येषु महान् मर्गः श्वरति ) मर्त्योंमें महान् मार्ग ही संघार करती है ॥ ४ ॥

( देवाः मधोः कशां अजनयन्त ) इस मधुकी कशाको देखने बनाया है, ( तस्याः विभ्वरूपः गर्भः अभवत् ) उसका यह विश्वरूप गर्भ हुआ है । ( तं तरुणं जातं माता पिपतिं ) उग्र जन्मे हुए लालको यही माता पालती है, ( सः जातः विश्वा भुवना विचंटे ) यह होने ही सब भुवनोंका निरीक्षण करता है ॥ ५ ॥

( तं कः प्रवेदु ) उसे कौन जानता है ( तं कः ल चिकेत ) उसका कौन विचार करता है । ( अस्याः इदः ) इसके इदयके पास ( यः सोमधानः कलशः अक्षितः ) जो सोमरससे भरकर पूरे कला विद्यमान है, ( अस्मिन् ) हममें ( सः सुमेधाः महा ) यह उत्तम मेधाशाला महा ( मदेत ) मानेद करे ॥ ६ ॥

( सः तौ प्रवेदु ) यह उनको जानता है, ( सः ल तौ चिकेत ) यह उनका विचार करता है, ( यो अस्या सहस्रपारो अक्षितो स्तनौ ) जो इसके सहस्रपातालुक्त भक्षय स्तन है वे ( जनपस्फुरन्तौ ऊर्जं दुहाते ) शरितजिन होते हुए कलशान् रसका दोहन करते हैं ॥ ७ ॥

भाषार्थ— विचार करनेवाले मनुष्य इस पृथ्वीपर इस गौका शरित देखते हैं । यह मधुर रस देनेवाली गौ अग्नि और वायुसे उत्पन्न हुई है, अतः इसको मरुतों-वायुओंकी प्रभारालिनी माति करते हैं ॥ ३ ॥

यह गौ आदित्योंकी माता, यमुओंकी पुत्री, प्रजाओंका प्राण है और यही अमृतका केन्द्र है । यह उत्तम मेधाशाली, पूष देनेवाली और मधुर रसका निर्माण करनेवाली गौ सब मर्त्योंमें एक बड़े तेजकी मूर्ति ही है ॥ ४ ॥

देखने इस गौका निर्माण किया है, इसको सब प्रकारके रंगरूपका गर्भ होता है, बच्चा होनेके बाद यह उसका प्रेमाने पालन करती है, यह बच्चा होकर सब स्थानको देखती है ॥ ५ ॥

इस गौके भरकर सोमरससे परिपूर्ण कला महावरूपसे रखा हुआ है, उस कलशको कौन जानता है और कौन भगा उसका विचार करता है । इसीके दुष्टरूपी रससे भरनी मेधाका वृद्धि करनेवाला महा मानेदिन होता है ॥ ६ ॥

जो इस गौके दो स्तन हममें पातामोंसे सदा सहराय देते हैं उनका महाद्व कौन जानता है और कौन उनमें मरुतका विचार करता है । ॥ ७ ॥

द्विहृकरिक्करी वृहती वयोधा उच्चैर्घोषाम्भेति या प्रथम् ।

शान्धर्मन्निभि वाग्शाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः

॥ ८ ॥

याभापीनामुपसीदन्त्यापः शाकररा वृषभा ये स्वर्गाज ।

ते वर्पन्ति ते वर्पयन्ति तद्विदे काममूर्जमार्पः

॥ ९ ॥

स्तनयित्सुस्ते नावश्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि ।

अश्रेर्वातान्मधुक्रुशा हि जज्ञे मरुतामुप्रा नसिः

॥ १० ॥

यथा सोमः प्रातःसवने अभिनोर्भवति प्रियः । एवा मे अभिना वर्चं आत्मनि धियताम् ॥ ११ ॥

यथा सोमो द्वितीये सवने इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः । एवा मे इन्द्राग्नी वर्चं आत्मनि धियताम् ॥ १२ ॥

यथा सोमस्तृतीये सवने ऋभुणां भवति प्रियः । एवा मे ऋभवो वर्चं आत्मनि धियताम् ॥ १३ ॥

अर्थ— (या द्विहृकरिक्करी) जो हिकार करनेवाली (घणे-घा उच्चैर्घोषा) अथ देनेवाली उच्च स्वरसे हुकारनेवाली (प्रथम् अम्भेति) प्रथम स्वरको प्राप्त होती है। (घीन् घर्मान् आभि वाग्शाना) वीधो यज्ञोको यज्ञमें रखनेवाली (मायु मिमाति) मृचका मापन करती है और (पयोभिः पयते) दूधकी धारामेंसे दूध देती है ॥ ८ ॥

(ये वृषभाः) जो वृषांसि भानेवाले बैल (स्वराजः शाकरराः आपः) ठेकरेरी रक्षिणादी बल (या भापीना उपसीदन्ति) जिस बल करनेवालोंके पास बहुचते हैं (तद्विदे कामं मूर्जं) सरशरीको यथेच्छ बल देनेवाले अथवा (ते वर्पन्ती) वे वृष्टि करते हैं, (ते वर्पयन्ति) वे वृष्टि कराते हैं ॥ ९ ॥

हे (प्रजापते) प्रजापालक ! (ते वाक् स्तनयित्सुः) तेरी बानी सर्वता करनेवाला मेघ है, तू (वृषा) पशुवाद होकर (भूम्या अधि शुष्मं क्षिपसि) भूमिपर बलको फेंकता है। (असो वातात् मधुक्रुशा हि जज्ञे) भूमि और वायुसे मधुक्रुशा उत्पन्न हुई है, यह (मरुतां उप्रा नसि) सररोकी उम नाकिन है ॥ १० ॥

(यथा सोम प्रातःसवने) जैसे सोमरस प्रातः सवने यज्ञमें (अभिनो- प्रिय- भवति) अभिनीदेवोंके प्रिय होता है, हे अग्निदेवो ! (एवा मे आत्मनि) इसी प्रकार मेरी आत्मानमें (वर्चः धियतां) तेज धारण कराओ ॥ ११ ॥

(यथा सोम द्वितीये सवने) जैसे सोमरस द्वितीयसवने-माध्यदितसवने-यज्ञमें (इन्द्राग्न्योः प्रियः भवति) इन्द्र और अग्निको प्रिय होता है, हे इन्द्र और अग्नि ! इसी प्रकार मेरी आत्मानमें तेज धारण कराओ ॥ १२ ॥

जैसे सोम (तृतीये सवने) तृतीयसवने-सायसवने-यज्ञमें (ऋभुणां प्रियः भवति) ऋभुओंके प्रिय होता है, हे ऋभुदेवो ! इस प्रकार मेरी आत्मानमें तेज धारण कराओ ॥ १३ ॥

भाष्यार्थ— अत्र देनेवाली, उच्च स्वरसे हुँकार करनेवाली यह गौ यज्ञभूमिमें विचरती है, वीधो यज्ञोका पालन करती हुई यज्ञके द्वारा कलका मापन करती है और यज्ञसे लिए अपना दूध देती है ॥ ८ ॥

जो बैल अपने तेज और बलसे पुष्ट गौभोक समीप होते हैं, वे उत्पन्नानोंको यथेच्छ बल देनेवाले अथवा वृष्टि करते और कराते हैं ॥ ९ ॥

हे प्रजापालक देव ! मेघयज्ञवा तेरी वाग्ना है, उससे तू भूमिपर ऊपर अपना बल फेंकता है, वही वायु और बैलके रूपमें भूमि और वायुका सर्वांग लेकर उत्पन्न हुआ है ॥ १० ॥

जिस प्रकार सोम प्रातः सवने अभिनीदेवोंके प्रिय होता है, उसी प्रकार मेरे अन्दर तेज प्रिय होकर बड़े ॥ ११ ॥

जैसे सोम माध्यदितसवने इन्द्र और अग्निको प्रिय होता है, जैसे ही मेरे अन्दर तेज प्रिय होकर बड़े ॥ १२ ॥

जिस तरह सोम सायसवने ऋभुओंको प्रिय होता है, उसी तरह मेरे अन्दर तेज प्रिय होकर बड़े ॥ १३ ॥

मधुं जनिषीय मधुं वैशिषीय । पर्यस्वानम आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ १४ ॥  
 सं मितिं वर्चसा सृज सं प्रजया समाधुषा । विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह प्राणिभिः ॥ १५ ॥  
 यथा मधुं मधुकृतः संमरन्ति मधावधिं । एवा मे अश्विना वर्चं आत्मानं ध्रियताम् ॥ १६ ॥  
 यथा मधा इदं मधुं न्यञ्जन्ति मधावधिं । एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजस्य ध्रियताम् ॥ १७ ॥  
 महिरिषु पर्वतेषु गोश्वश्वेषु यन्मधुं । सुराणां सिष्यमानायां यत्तत्र मधु तन्मयि ॥ १८ ॥  
 अश्विना सारधेणे मा मधुनाहूक्तं शुभस्पती । यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनां अहुं ॥ १९ ॥

। अर्थ— (मधु जनिषीय) निवास उपवन कर, (मधु वैशिषीय) निवास प्राप्त कर । हे मते ! (पर्यस्यान् आगमं) दूध लेकर मैं आगमा हूँ, (तं मा सं सृज वर्चसा) उस गुणको तेजसे संयुक्त कर ॥ १४ ॥

हे मते ! (मा वर्चसा) मुझे तेजसे (प्रजया आयुषा) प्रजासे और आयुसे (सं सं सं सृज) संयुक्त कर । (अस्य मे देवाः विद्युः) इस मुझे सब देव जानें, (प्राणिभिः सह इन्द्रः विद्यात्) ऋषियोंके साथ इन्द्र भी मुझे जानें ॥ १५ ॥

(यथा मधुकृतः) जैसे मधुमक्षिकायां (मधो अधि) अपने मधुमें (मधु संमरन्ति) मधु संघित करती हैं, दे भूमिदेवो ! (एवा मे) इस प्रकार मेरा (वर्चः तेजः बलं ओजः च) ज्ञान, तेज, बल और वीर्य (ध्रियतां) संघित हो, बदवा जाय ॥ १६ ॥

(यथा मधाः) जैसे मधुमक्षिकाय (इदं मधु) इस मधुको (मधो अधि न्यञ्जन्ति) अपने पूर्वसंघित मधुमें संमरीत करती हैं, इस प्रकार दे भूमिदेवो ! मेरा ज्ञान, तेज, बल और वीर्य संघित हो, बडे ॥ १७ ॥

(यथा गिरिषु पर्वतेषु) जैसे पहाड़ों और पर्वतोंपर और (गोषु अश्वेषु यत् मधु) गोशों और अश्वोंमें जो निवास है, (सिष्यमानायां सुराणां) (सिंघित होनेवाले ऋषिजन्ममें (तत्र मत् मधु) जो मधु है । (यत् माहि) बद गुणमें हो ॥ १८ ॥

दे (शुभस्पती अश्विनो) शुभके पालक भूमिदेवो ! (सारधेणे मधुना मा सं सं सं) मधुमक्षिकोंके मधुमें मुझे युक्त करो । (यथा) जिससे (जानान् वर्चस्वतीं वाच) लोगोंके प्रति देखनी भारण (अनु आनदानि) मैं बोले ॥ १९ ॥

। अर्थ— मधुना उपवन करण हूँ, मधुना संवादन करता हूँ, हे देव ! मैं दूध समान करके ते जिसे भाषा हूँ, मते मुझे इस तेजसे युक्त कर ॥ १४ ॥

। हे देव ! मुझे तेज, प्रजा और वीर्य आयुसे युक्त कर । देव इस मेरे भूमिदेवको जानें और ऋषि भी समझें ॥ १५ ॥

जिस प्रकार मधुमक्षिका अपने मधुस्थानमें स्वान स्थानसे मधु इकट्ठा करके भर देती हैं, उस प्रकार मेरे अश्वर ज्ञान, तेज, बल और वीर्य संघित हो जावे ॥ १६ ॥

जैसे मधुमक्षिका अपने मधुस्थानमें स्वान स्थानसे मधु इकट्ठा करके भर देती हैं, उस प्रकार मेरे अश्वर ज्ञान, तेज, बल और वीर्य भरवा रहे ॥ १७ ॥

जैसे पहाड़ों और पर्वतों, गोशों और अश्वों और ऋषि जन्ममें मधुना है, वही मधुना मेरे अश्वर हो जावे ॥ १८ ॥

हे देवो ! मुझे उस मधुमक्षिकाके मधुमें संयुक्त कीजिये । जिससे मैं यदि निवासका सदेव संयुक्त होनेके पाप पहुँचाऊँ ॥ १९ ॥



स्तनपित्तुस्ते वाप्रजापते वृषा शुभ्रं क्षिपसि भूम्यां दिवि ।  
तां पशव उर्ष जीवन्ति सर्वे तेनो सेपमूर्जे पिपतिं ॥ २० ॥  
पृथिवी दुण्डोदन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत्प्रकृशो हिरण्यवो बिन्दुः ॥ २१ ॥  
यो वै कशायाः सप्त मधुनि वेदु मधुमान्भवति ।  
ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चानहर्षांश्च ब्रीहिक्ष यषश्च मधु सप्तमम् ॥ २२ ॥  
मधुमान्भवति मधुमदस्याहार्यं भवति । मधुमतो लोकान्जयति य एवं वेद ॥ २३ ॥  
यद्भीधे स्तनपति प्रजापतिरेष तत्प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति ।  
तस्मात्प्राचीनोपचीतरिष्ठे प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति ।  
अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद ॥ २४ ॥

अर्थ— हे (प्रजापते) प्रजापालक ! तू (वृषा) बलवान् है और (ते वाक् स्तनपित्तुः) तेरी वाणी मेघगर्तना है, तू (भूम्यां दिवि) भूमिपर और गुण्डोके (शुभ्रं क्षिपसि) बलकी वर्षा करता है, (तां सर्वे पशवः उप-  
र्षयन्ति) उसपर सब पशुओंकी जीविका होती है और (तेन उ सा इयं उर्जं पिपतिं) उससे वह अन्न और बलवर्धक  
रसकी पूर्णता करता है ॥ २० ॥

(पृथिवी दुण्डः) पृथिवी दुण्ड है, (अन्तरिक्षं गर्भः) अन्तरिक्ष मध्यभाग है, (द्यौः कशा) गुण्डोके तन्तु हैं,  
(विद्युत् प्रकृशः) बिजली उसके धागे हैं और (हिरण्यवः बिन्दुः) सुवर्णमय बिन्दु हैं ॥ २१ ॥

(यो वै कशायाः सप्त मधुनि वेदु) जो इस कशाके सात मधु जानता है, वह (मधुमान् भवति) मधुगाला  
होता है । (ब्राह्मणः च राजा च) ब्राह्मण और राजा, (धेनु च अनहर्षाश्च) गाय और बैल, (ब्रीहिः च यषः  
च) चावल और जौ तथा (मधु सप्तमं) सातवां मधु है ॥ २२ ॥

(यो एवं वेद) जो यह जानता है वह (मधुमान् भवति) मधुगाला होता है, (अस्य आहार्यं मधुमात्  
भवति) उसका सब संग्रह मधुयुक्त होता है और (मधुमतः लोकान् जयति) मीठे लोकोंको प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

(यत् भीधे स्तनपति) जो आकाशमें गर्जना होती है, (प्रजापतिः पशु तत्) प्रजापति ही वह (प्रजाभ्यः  
प्रादुर्भवति) प्रजाओंके लिये, मानो, प्रकट होता है । (तस्मात् प्राचीनोपचीतः तिष्ठे) इसलिये दायें भागमें बस कर  
पड़ा होता हूँ, हे (प्रजापते) प्रजापालक ईश्वर ! (मा अनु बुध्यस्व) मेरा स्मरण रको । (यः एवं वेद) जो यह  
जानता है, (अन्वे प्रजाः अनु) इसके अनुकूल प्रजाएं होती हैं तथा इसको (प्रजापतिः अनुबुध्यते) प्रजापति अनुकूल-  
तापूर्वक स्मरणमें रखता है ॥ २४ ॥

भावार्थ— हे प्रजापालक देव ! तू बलवान् है और मेघगर्तना तेरी वाणी है । तू ही गुण्डोके गूँडोकेतक बलकी वृष्टि  
करता है, सब जीव उसपर जीवित रहते हैं । यह अन्न और बल हम सबको प्राप्त हो ॥ २० ॥

भूमि दुण्ड, अन्तरिक्ष मध्यभाग, गुण्डोके बड़े बाल और बिजली सूक्ष्म बाल हैं और उसपर सुवर्णका बिन्दु मध्यके  
सरत है । यह गौका विषयरूप है ॥ २१ ॥

जो इस गौके सात मीठे रूप जानता है, वह मधुर बनता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, गाय, बैल, चावल और जौ और शहद  
सातवां है । गौके ये सात मीठे रूप हैं ॥ २२ ॥

जो इस बातको जानता है, वह मधुर होता है, मधुगाला होता है और मीठे स्थान प्राप्त करता है ॥ २३ ॥  
जो आकाशमें गर्जना होती है, मानो वह परमेश्वर संपूर्ण प्रजाओंके लिये प्रकट होकर उपदेश करता है । उस समय  
होगा ऐसी प्रार्थना करें कि 'हे देव ! हे प्रजापालक ! मेरा स्मरण रको, मुझे न नुक़ जा ।' जो इस प्रकार प्रार्थना करता  
जाता है, प्रजाजन उसके अनुकूल होते हैं और प्रजापालक परमेश्वर भी उसका भला करता है ॥ २४ ॥

## मधुविद्या और गोमहिमा

### सात मधु

इस सूक्तमें विशेष कर गौकी महिमा वर्णित है। इस सूक्तका भाषार्थ विचारपूर्वक पढ़नेसे पाठक स्वयं इस सूक्तमें कही गोमहिमा मान सकते हैं। वेदकी दृष्टिसे गौका महत्व कितना है, यह बात इस सूक्तके प्रत्येक श्लोकमें सुबोध रीतिसे वर्तनी है।

यह गौ संपूर्ण जगत्का सार है, यह पृथ्वी, वायु, तेज, जल, आकाश और महावाका सार है। इस गौमें असूत रस है जिसका पान करनेसे सब प्रजाजन्त आनंदित और हृष्टपुष्ट होते हैं। इसका दूध मानो संपूर्ण जगत्के पदार्थोंका बीज ही है, यही सबका प्राण और यही अद्भुत अदृश्य है। विशेष मनोरमिष्ठ मनुष्य ही इस गौके महत्त्वको जानते हैं और अनुभव कर सकते हैं। यह गौ देवोंकी माता है और यही सब प्रजाजनोंका प्राण है, क्योंकि इसमें असूतका मधुर रस भरा है। जो इसका दूध पीते हैं वे माने अपने भंदर अमृत रस छेते हैं और इस कारण वे दीर्घायुषी होते हैं। संपूर्ण अमृत रसका केन्द्र सोत्र इस गौके भंदर है।

### अमृतका कलश

यह गौ संपूर्ण देवोंने अपनी दिग्ग्य शक्तियोंसे उत्पन्न की है। उन्होंने इसके दुग्धाशयमें अमृतका प्रवाह रखा है। जो अपनी मेधाशुद्धि बढ़ाना चाहते हैं, वे इस दूधरूपी अमृतको

अवश्य पीयें। इस गौके स्तनोंसे जो दुग्धरूपी इस निकलता है, वह मानो अद्भुत बल देनेवाला रस है।

यह अक्षरस देवी है, यज्ञ करती है, मत धारण करती है और अपने दूधसे पुत्र करता है। पैल भी इस दूधकी अनंत प्रकारके पुत्र देता है। जिस प्रकार सोमरस देवोंको द्रिय होता है, उस प्रकार गावका दूध मनुष्योंको द्रिय होने और उससे मनुष्योंका उत्पन्न घटे। जिस प्रकार मधुमन्त्रिपर्यां घोड़ा घोड़ा मधु दूधका करती है और अपने मधुस्थानमें उसका संग्रह करती है, इसी प्रकार मनुष्योंको उचित है कि वे इन मधुमन्त्रियोंका अनुकरण करें और अपने अन्दर ज्ञान, तेज, बल, दीर्घ और पराक्रम बढ़ावें। सन्निः सन्निः प्रवृत्त करनेपर मनुष्य इन बातोंको अपने अन्दर बसा सकता है।

पदाओं परतों और संपूर्ण जगत्में सर्वत्र मधु भरा है, वह मधुरता मेरे अन्दर आवे। इस गौके रूपसे परमेस्वरकी अद्भुत शक्ति ही पृथ्वीपर मनुष्योंकी उन्नतिके लिए मापी है। यह बात स्मरणमें अक्षर्य रखिये।

इस मधुरताके सात रूप इस पृथ्वीपर हैं, एक मधुरता प्राणियोंमें ज्ञान रूपसे है, दूसरी मधुरता धर्मियोंमें पराक्रमके रूपसे विद्यमान है, इसी प्रकार गौ, पैल, जानल, जी और पाहदमें भी मधुरता है। अतः जो मनुष्य यह बात जानता है वह इन सात पदार्थोंसे अपनी उन्नति करता है।

## अतिथि सत्कार

कां. ९, सू. ६

(अति- प्रश्ना । देवता- अतिथि, विष्णु ।)

यो विद्याह्वं प्रत्यक्षं पर्यपि यस्य संभारा क्रचो यस्यानूक्यम् ॥ १ ॥

॥ १ ॥

सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिदृविः ॥ २ ॥

॥ २ ॥

अर्थ— (यः प्रत्यक्षं प्रत्य विद्यात्) जो प्रत्यक्ष महत्को जानता है, (यस्य पर्यपि संभाराः) उसके अक्षर पञ्चसामग्री है, (यस्य अनुक्यं क्रचः) उसकी तीव्र आत्मा है ॥ (यस्य लोमानि सामानि) उसके बाल साम हैं और उसका (हृदयं यजुः उच्यते) हृदय यजु है ऐसा कहा जाता है। तथा उसका (परिस्तरणं इत् हविः) मोत-नेका रस हवि है ॥ १-२ ॥

गदा अतिधिपतिरतिधीन्प्रतिपदपति देवयजनं प्रेषते	॥ १ ॥
यदाभिवदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचैत्पयः प्र णयति	॥ ४ ॥
या एव यज्ञ आर्षः प्रणीयन्ते ता एव ताः	॥ ५ ॥
यत्तर्पणमाहरन्ति य एवामीषोमीयाः पशुर्वृष्यते स एव सः	॥ ६ ॥
यदावसुधान्कल्पयन्ति सदाहविर्धानान्येव तत्कल्पयन्ति	॥ ७ ॥
यदुपस्तृणन्ति बुद्धिरैव तत्	॥ ८ ॥
यदुपरिश्रयनमाहरन्ति स्पर्शमेव तेन लोकमव रुन्दे	॥ ९ ॥
यत्केशिपूषवर्हणमाहरन्ति परिषय एव ते	॥ १० ॥
यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्तवाज्यमेव तत्	॥ ११ ॥
यत्पुरा परिवेपात्सदामाहरन्ति पुरोडाशमेव तौ	॥ १२ ॥
यदशनुकृतं हवन्ति हविष्कृतमेव तद् ध्वयन्ति	॥ १३ ॥
ये ग्रीहयो यवा निरूप्यन्तेऽशुर्व एव ते	॥ १४ ॥
यान्पुत्रसलमुसलानि श्रावाण एव ते	॥ १५ ॥

अर्थ—( यत् वै अतिधिपति ) जो गुरुका ( अतिधीन् प्रतिपदपति ) भतिवियोंकी ओर देखा है, मानो यह ( देव यजन प्रेषते ) देवपशुको ही बुलवा है ॥ ( यत् अभिवदति दीक्षा उपैति ) जो भतिवियोंसे-याव करवा है वह पशुदीक्षा केनेक समान है ॥ ( यत् उदकं याचति ) जो यह जब मागता है और ( आय प्र णयति ) बल उससे मागे भर वेता है ॥ वह मानो ( या एव यज्ञे आय प्रणीयन्ते ) जो यज्ञमें बल ल गते है ( ता एव ता ) वही बल है ॥ १-५ ॥

( यत् तर्पण आहरन्ति ) जो पशुअं भतिवियोंकी वृत्ति करनेके लिए ले जाते हैं, ( य एव अमीषोमीया एव यद्यते स एव स ) यह मानो भति और सोमके लिये पशु बाधा जाता है, वही यह है ॥ ( यत् आवसुधान्कल्प यन्ति ) जो भतिवियोंके लिए स्थानका प्रबंध करत है ( सदाहविर्धानानि एव तत् कल्पयन्ति ) वह मानो यज्ञमें सव और हविर्धानकी रचना करना ही है ॥ ( यत् उपस्तृणन्ति ) जो बिजाया जाता है, ( यद् हिविष्कृतमेव तद् ध्वयन्ति ) वह मानो पशुकी कृता मास ही है ॥ ( यत् उपरिश्रयन आहरन्ति ) जो उसपर शिडोना खाते हैं ( तेन स्पर्श लोक अवरन्दे ) उससे स्वग लोक ही मानो समीप जात है ॥ ६-९ ॥

( यत् परिषात्पुत्रसलमुसलानि ) जो, 'पुत्रसल' और 'मुसल' अतिधीनो लिपि के 'अति' है, यह मानो 'पुत्रसल' ( ते परिषय एव ) परिधि है ॥ ( यत् आञ्जनाभ्यञ्जन आहरन्ति ) जो भतिवियोंके लिए अञ्जन और शरीरके मरुनेके लिए ली राते हैं, यह मानो ( तत् आज्य एव ) यह पूत ही है ॥ १०-११ ॥

( यत् पुरा परिवेपात्सदा पुरा ) जो भोजन परोसनेके पूर्व भतिवियोंके लिये ( खाद आहरन्ति ) खानेके हेतुसे एते हैं, यह मानो ( तौ पुरोडाशौ एव ) श्रेयसा है ॥ ( यत् पुरोडाशमेव तौ ) जो भोजन पदनिवालेको बुलाते हैं, यह मानो ( हविष्कृतमेव तद् ध्वयन्ति ) हविष्की सिद्धा करनेवालेको बुलाता है ॥ १२-१३ ॥

( ये ग्रीहयो यवा निरूप्यन्ते ) जो बारूक और नौ देवे जात हैं ( ते अशुर्व एव ) ये सोमलगाके खरुव ही हैं ॥ ( यान्पुत्रसलमुसलानि ) जो सोमलगा और मुसल भतिवियोंके लिए धान्य घृतेके काम जाते हैं, मानो ( ते श्रावाण एव ) ये सोमलगा बिराहनेके पदार्थ ही हैं ॥ १४-१५ ॥

दर्षि पवित्रं तुषा ऋजीपाभिपर्वणीरायः	॥ १६ ॥
सुन्देर्विभेक्षणमायवनें द्रोणकलशाः फुम्भ्यो वासुष्यानि पात्राणीवमेव कृष्णाजिनम्	॥ १७ ॥
[ २ ]	
वज्रमानद्वाक्षणं वा एतदतिथिपतिः कुरुते यदाहार्याणि प्रेषेत इदं भूयाश्च इदाश्मिति	॥ १८ ॥
यदाहं भूय उद्धरेति प्राणमेव तेन वर्षीयासं कुरुते	॥ १९ ॥
उर्ष हरति हवीष्या सादयति	॥ २० ॥
तेषामासन्नानामतिथिरात्मजुहोति	॥ २१ ॥
सुखा हस्तेन प्राणे यूषे सुककारेण वपटकारेण	॥ २२ ॥
एते वै प्रियाधाम्रियाश्चत्विजः स्वर्गं लोके गमयन्ति यदतिथयः	॥ २३ ॥
स.य एवं विद्वान् द्विपन्नश्रीवाञ्च द्विपुण्ड्रमक्षीयाञ्च मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य	॥ २४ ॥

अर्थ—(शूर्पे पवित्रं) अतिथिके लिए जो छात्र बर्ता जाता है वह यज्ञमे वही जानेवले पवित्रके समान है, इसी प्रकार (तुषा ऋजीपा) धामके तुष सोमरस छाननेके बाद भरशिष्ट रहनेवाले सोमरसमेंसे समान है। (अभिपवर्णीः आपः) अतिथिनोहनके लिए प्रयुक्त होनेवाला तल यज्ञके अणके समान है ॥ (दर्षीं सुरु) कट्टी सुचाके समान है, (आययने ईक्षणं) पकते समय अन्नका शिलाका यज्ञके ईक्षण कर्मके समान है, (फुम्भ्यः द्रोणकलशाः) पकानेके देगची आदि पात्र यज्ञके द्रोणकलशके समान हैं, (पात्राणी वाय = उपानि) अतिथिके लिए जो अन्य पात्र लाये जाते हैं वे यज्ञके वापस्य पात्र ही हैं और (इयं एव कृष्णाजिनं) यही कृष्णाजिन है ॥ १६-१७ ॥

[ २ ] (इदं भूयाः इदं इति) यह अधिक या यह ठीक है ऐसा जो (आहार्याणि प्रेषते) अतिथिको देने योग्य पदार्थोंका निरीक्षण करता है, वह (अतिथिपतिः) अतिथिका पालन करनेवाला यज्ञमान (एतत्) इससे माने (यज्ञमानद्वाक्षणं वै कुरुते) यज्ञमानके द्वाक्षणके समान कार्य करता है ॥ १८ ॥

(यत् आह) जो कहता है कि (भूयः उद्धर इति) अधिक परसे कर अतिथिको दो, वो (तेन) इससे वह (प्राणं वर्षीयासं एव कुरुते) अपने प्राणको चित्वायो बनाता है ॥ जो उसके पास अन्नादि (उपहरति) ले जाता है, वह माने (हवीषि वासादयति) हविके पदार्थें लाता है ॥ १९-२० ॥

(तेषां आसन्नानां) उन लाये पदार्थोंमेंसे कुछ पदार्थोंका (अतिथिः आयाम् जुहोति) अतिथि अपने अन्नपर हवन करता है, वह भोजन स्वीकारता है ॥ (हस्तेन सुखा) हाथरूपी सुचाके, (प्राणे यूषे) प्राणरूपी यूर्पे (सुखा-रेण वपटकारेण) मोहन खानेके 'सुक सुक' ऐसे शब्दरूपी वपटकारसे वह अन्नमेंसे एक एक आहुति चारता है ॥ (यत् अतिथयः) जो वे अतिथि हैं वे (प्रियाः अम्रियाः च) प्रिय हैं अथवा अम्रिय हो, वे (अत्यिजः) अतिथिय यज्ञके कतिपय यज्ञमानको (स्वर्गं लोके गमयन्ति) स्वर्गलोकको पहुँचाते हैं ॥ २१-२३ ॥

(यः एवं विद्वान्) इस कृत्वको जानना हुआ (सः द्विपन्न भक्षीयात्) यह किसीका द्वेष करता हुआ न भोजन करे। (द्विपतः अन्नं न भक्षीयात्) द्वेष करनेवाले भोजन न खावे (न मीमांसितस्य) संनयित भाषणवाले स्तुत्यका भोजन न खावे और (न मीमांसमानस्य) न संदेह करनेवालेका अन्न अतिथि खावे ॥ २४ ॥

भावार्थ—अतिथि घरमें जानेपर उसके लिये जो जो पदार्थ दिये जाते हैं, वे मानो यज्ञके अन्नपर प्रयुक्त होनेवाले पदार्थोंके समान ही हैं। अर्थात् अतिथिका उत्कार करना एक यज्ञ करनेके समान ही है ॥ १-१७ ॥

सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यार्धमश्रान्ति	॥ २५ ॥
सर्वो वा एषोऽजग्धपाप्मा यस्यार्धं नाश्रान्ति	॥ २६ ॥
सर्वेदा वा एष युक्तमार्द्रपवित्रो वितंताभ्यर् आहृतपङ्क्तुर्ष उंपहरति	॥ २७ ॥
प्रजापत्यो वा एतस्य यज्ञो वितंतो च उंपहरति	॥ २८ ॥
प्रजापतेर्षा एष विक्रमानंनविक्रमते य उंपहरति	॥ २९ ॥
योऽर्धधीनां स आहवनीयो यो वेदमनि स गार्हपत्यो यस्मिन्पचन्ति स दक्षिणामिः	॥ ३० ॥

[ ३ ]

दुष्टं च वा एष पृतं च गृहाणामश्राति यः पूर्वोऽर्धधेरश्राति	॥ ३१ ॥
पर्यश्र वा एष रसं च गृहाणामश्राति यः पूर्वोऽर्धधेरश्राति	॥ ३२ ॥
उर्जा च वा एष स्फाति च गृहाणामश्राति यः पूर्वोऽर्धधेरश्राति	॥ ३३ ॥
प्रजां च वा एष पशूंश्च गृहाणामश्राति यः पूर्वोऽर्धधेरश्राति	॥ ३४ ॥
कीर्तिं च वा एष यज्ञश्च गृहाणामश्राति यः पूर्वोऽर्धधेरश्राति	॥ ३५ ॥
धियं च वा एष संविदं च गृहाणामश्राति यः पूर्वोऽर्धधेरश्राति	॥ ३६ ॥

अर्थ—(यस्य अर्धं अश्रान्ति) जिसका अर्ध अतिथि लोग खाते हैं, (सर्वो वै एष जग्धपाप्मा) उसके सब पाप जग जाते हैं। तथा (यस्य अर्धं न अश्रान्ति) जिसका अर्ध अतिथि नहीं खाते (सर्वो वै एष अजग्धपाप्मा) उसके सब पाप कैसेके कैसे रहते हैं ॥ २५-२६ ॥

(यः उपहरति) जो गृहस्थ अतिथिकी सेवाके निरूप भावदक सामग्री उसके पास ले जाता है, वह मानो (सर्वेदा वै एषः युक्तमार्द्रः) वह सदासर्वेदा सोमरस निकालनेके पत्थरसे रस निकालता ही रहता है, वह सर्वेदा (मार्द्र पवित्रः) रस छानता रहता है, जिसकी छाननी सदा गीली रहती है, वह (वितंत-आभ्यर्) सदा यज्ञ करता है, वह सदा (आहृत, यज्ञ प्रतुः) यज्ञ समाप्त करनेके समान रहता है ॥ २७ ॥

(यः उपहरति) जो अतिथिको सम्पन्न करता है, वह मानो (एतस्य प्रजापत्यः वै यज्ञः वितंतः) उसके प्राजापत्य पशुका पैलाय हुआ है ॥ (यः उपहरति) जो अतिथिको दान देता है वह मानो (प्रजापतेः विक्रमान् अनु-विक्रमते) प्रजापतिके विक्रमोंका अनुकरण करता है ॥ २८-२९ ॥

(यः अर्धधीनां) जो अतिथिको शरीरमें पाचक अग्नि है (सः गार्हपत्यः) वह आहवनीय अग्नि है, (यः वेदमनि सः गार्हपत्यः) जो घरमें अग्नि होती है वह गार्हपत्य अग्नि है, (यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणामिः) जिसपर अन्न पकाने हैं वह दक्षिणामि है ॥ ३० ॥

[ ३ ] (यः अर्धधेरः पूर्व अश्राति) जो अतिथिके पूर्व स्त्रय भोजन करता है (एष) वह (ग्रहणां दुष्टं च वै पूर्णं न अश्राति) अपने घरके दूध और पूर्णको ही खाता है ॥ जो अतिथिके भोजन करनेके पूर्व भोजन करता है, वह मानो परके (पया च रसं च) दूध और रसको, (उर्जा च स्फाति च) अन्न और सफुदिको, (प्रजां च पशून् च) प्रजा और पशुको, (कीर्तिं च यदा च) कीर्ति और यदाको, (धियं च संविदं च) धी और संज्ञानको (अश्राति) खाता है ॥ ३१-३६ ॥

भाषार्थ— अतिथिका योग्य भावर-सत्कार करना मानो बड़े बड़े यज्ञ करनेके समान है ॥ १८-३० ॥

एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात्पूर्वां नार्शीपात् ॥ ३७ ॥  
 अशितावृत्त्यतिथारशीपाद्यज्ञस्य सात्स्न्यार्थं यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम् ॥ ३८ ॥  
 एतद्वा उ स्वदीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदुव नार्शीपात् ॥ ३९ ॥

[ ४ ]

स य एवं विद्वान्क्षीरमुपसिच्योपहरति । पार्वदमिष्टोमेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे तार्वदेनेनार्व रुन्धे ॥ ४० ॥  
 स य एवं विद्वान्त्सर्पिकृषसिच्योपहरति । पार्वदतिरात्रेणेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे तार्वदेनेनार्व रुन्धे ॥ ४१ ॥  
 स य एवं विद्वान्मधुपसिच्योपहरति । पार्वत्सत्सर्षेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे तार्वदेनेनार्व रुन्धे ॥ ४२ ॥  
 स य एवं विद्वान्मांसमुपसिच्योपहरति । पार्वद् द्रावशाहेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे तार्वदेनेनार्व रुन्धे ॥ ४३ ॥  
 स य एवं विद्वानुदुकमुपसिच्योपहरति ।

प्रजानां प्रजननाय गच्छति प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति य एवं विद्वानुदुकमुपसिच्योपहरति ॥ ४४ ॥

अर्थ— (एष वै अतिथिः यत् श्रोत्रियः) वह अतिथि विश्रवसे श्रोत्रिय है (तस्मात् पूर्वः न अर्शीपात्) इसलिए उससे पूर्व स्वयं भोजन करना उचित नहीं है ॥ ३७ ॥

(अतिथौ अशितायति अर्शीपात्) अतिथिके भोजन करनेक प्रभार गृहस्थ स्वयं भोजन करे। (यस्यस्य सात्स्न्यार्थं) यज्ञकी पूर्णताके लिए (यस्यस्य अविच्छेदाय) यज्ञका भंग न होनेके लिये (तत् व्रतं) वह व्रत पालन करना गृहस्थीको योग्य है ॥ ३८ ॥

(एतत् वै उ स्वदीयः) वह जो स्वादयुक्त है (यत् अधिगवं क्षीरं वा मांसं वा) जो गौसे प्राप्त होनेवाले दूध वा अन्य मांसदि पदार्थ है (तत् एष न अर्शीपात्) उससेवे कोई पदार्थ अतिथिके पूर्व भी न लाने ॥ ३९ ॥

[ ४ ] (यः एवं विद्वान्) जो इस बातको जानता हुआ अतिथिके लिए (क्षीरं उपसिच्य उपहरति) दूध अच्छे पात्रमें रखकर ले जाता है, उसको (यावत् सुसमृद्धेन अमिष्टोमेन इष्ट्वा अवरुन्धे) जितना उचित समुद्र क्षीरको पत्रका पत्रन करनेसे फल मिलता है, (तावत् एतेन अवरुन्धे) उतना इससे मिलता है ॥ ४० ॥

(यः एवं विद्वान्) जो इस बातको जानता हुआ अतिथिके लिए (सर्पिः उपसिच्य उपहरति) धी बर्तनमें रख कर ले जाता है, उसको उतना फल मिलता है कि जितना किसीको उचम (सुसमृद्धेन अतिरात्रेण) समुद्र अतिरात्र नामक पत्र करनेसे प्राप्त हो सकता है ॥ ४१ ॥

जो इस बातको जानता हुआ मधुपसिच्य अतिथिके देनेके लिए (मधु उपसिच्य उपहरति) मधु अर्थात् शहद उचम पात्रमें रखकर अतिथिके पास ले जाता है, उसको उतना फल मिलता है कि जितना किसीको (सुसमृद्धेन सत्सर्षेण इष्ट्वा) उचम समुद्र सत्सर्षण नामक पत्रके करनेसे मिलता है ॥ ४२ ॥

जो इस बातको जानता हुआ (मांसं उपसिच्य) मांसको पात्रमें डालकर अतिथिके पास ले जाता है, उसको उतना फल मिलता है जितना उचम समुद्र (द्रावशाहेन इष्ट्वा) द्रावशाह पत्रके करनेसे किसीको प्राप्त हो सकता है ॥ ४३ ॥

जो इस बातको जानता हुआ (उदुकं उपसिच्य) जड़ उचम पात्रमें डालकर अतिथिके पास ले जाता है, वह (प्रजानां प्रजननाय प्रतिष्ठां गच्छति) प्रजानोंके प्रजनन अर्थात् उपसिच्ये लिए स्थिरताको प्राप्त होता है और (प्रजानां प्रियः भवति) प्रजामेंकि लिए प्रिय होता है ॥ ४४ ॥

भावार्थ— अतिथिका भोजन पढ़िके होवे, प्रभार जो अवगिष्ट बचा हो वह घरके मनुष्य खावे। कभी किसी मनुष्यमें अतिथिके भोजन करनेके पूर्व घरका कोई मनुष्य भोजन न करे। देना करनेके गृहस्थ-यज्ञकी पूर्णता होती है। प्रत्येक गृहस्थ इस मतका पालन करे ॥ ३७-३९ ॥

जो गृहस्थी उचम भद्राले दुग्धादि पदार्थ उचम रखत पात्रमें रखकर अतिथिके समर्पण करनेकी सुविधि उसके पास ले जाता है, उसको बड़े बड़े पत्र पलाताग करनेका पत्र प्राप्त होता है ॥ ४०-४४ ॥

[ ५ ]

तस्मां उवा हिङ्कृणोति सविता प्र स्तौति ।

गृहस्पतिर्ब्रूयोद्गायति त्वष्टा पुष्टा प्रति हरति विश्वे देवा निधनम् ।

निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद

॥ ४५ ॥

तस्मां उयन्त्यथो हिङ्कृणोति संग्रहः प्र स्तौति ।

मध्यन्दिन उद्गायत्यपराहः प्रति हरत्यस्तुपञ्चिधनम् ।

निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद

॥ ४६ ॥

तस्मां अन्नो भवन्दिङ्कृणोति स्तनयन् प्र स्तौति ।

विद्योतमानः प्रति हरति वर्षस्तुद्गायत्युद्गन् निधनम् ।

निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ।

अतिधीन्प्रति पश्यति हिङ्कृणोत्यभि वंदति प्र स्तौत्युदकं याचत्युद्गायति

॥ ४७ ॥

उप हरति प्रति हरत्युच्छिष्टं निधनम् । निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥ ४८ ॥

अर्थ— [ ५ ] (य. एवं वेद) जो इस मतिविसरकारके मन्त्रको जानता है (तस्मिं) उस मनुष्यके लिये (उवा हिङ्कृणोति) उवा आनन्द-सन्देश देता है, (सविता प्र स्तौति) सूर्य विशेष प्रशंसा करता है, (गृहस्पतिः ऊर्जया उद्गायति) गृहस्पति बहक साथ उसके गुणोंका गान करता है, (त्वष्टा पुष्टा प्रतिहरति) त्वष्टा उसके पुष्टि प्रदान करता है, (विभ्येदेवा निधनं) सब अन्य देव उसको आश्रय प्रदान करते हैं। अथ वह (भूत्याः प्रजाया पशूनां निधनं भवति) सपत्ति, प्रजा और पशुओंका आश्रयस्थान बनता है ॥ ४५ ॥

जो इस मतिविषयकारके मन्त्रको जानता है, (तस्मिं उद्यन् सूर्यः हिङ्कृणोति) उसके लिये उदय होता हुआ सूर्य आनन्दका सन्देश देता है, (सग्नयः प्र स्तौति) प्रभात समय प्रशंसा करता है, (मध्यन्दिनः उद्गायति) मध्यदिन उसका गुण गान करता है, (अपराह प्रति हरति) अपराह समय पुष्टि देता है, (अस्त यत् निधनं) अस्त गता हुआ सूर्य आश्रय देता है। इस प्रकार सपत्ति, प्रजा और पशुओंका आश्रयस्थान होता है ॥ ४६ ॥

जो इस मतिविसरकारके मन्त्रको जानता है, (तस्मिं अन्नं भयन् हिङ्कृणोति) उसके लिये उत्पन्न होनेवाला मेघ आनन्द सन्देश देता है, (स्तनयन् प्रस्तौति) गर्भित करनेवाला मेघ प्रशंसा करता है, (विद्योतमानः प्रतिहरति) प्रकाशनेवाला पुष्टि देता है, (उपयन् उद्गायति) पुष्टि करता हुआ मेघ इसका गुणगान करता है (उध्गृहन् निधनं) ऊपर होनेवाला आश्रय देता है। इस प्रकार यह सपत्ति, प्रजा और पशुओंका आश्रयस्थान होता है ॥ ४७ ॥

जो इस मतिविसरकारके मन्त्रको जानता है वह जब (अतिधीन् पश्यति) अतिविषयका दर्शन करता है तो मानो वह (हिङ्कृणोति) आनन्दका गान करता है, अथ वह मतिविषयको (अभिवदति) समस्कार करता है, तो वह कृप्य चक्रके (प्रस्तौति) प्रशंसा करनेके समान होगा है। अथ वह (उदकं याचति) उदक माँगता है तो मानो वह (उद्गायति) बर्षके उद्गायका कार्य करता है। (उपहरति प्रतिहरति) जब वह पदार्थ मतिविके पास लाता है, तो वह बर्षके प्रतिदर्शका कार्य करता है। (उच्छिष्टं निधनं) जो भौतिक मतिविके भोजन करनेके पश्चात् अवशिष्ट रहता है उसको यज्ञका अन्तिम भण्ड समझो। इस प्रकार मतिविसरकार करनेवाला सपत्ति, प्रजा और पशुओंका आश्रयस्थान बनता है ॥ ४८ ॥

भाष्यार्थ— हिंकार, प्रधान, उद्गान, प्रतिहार और निधन ये पांच अंग साम्य हैं। मतिविसरकार करनेवालेको ये पांचों इस प्रकार सिद्ध होते हैं। अर्थात् मतिविसरकार एक अथ पशुका पूरा साम है। मतिविसरकार ही गृहस्पतिक परम पवित्र और मेघ कर्म है ॥ ४५-४८ ॥

[ ६ ]

यत्क्षत्तार ह्ययत्या भ्रावयत्येव तत्	॥ ४९ ॥
यत्प्रतिश्रुणोति प्रत्याभ्रावयत्येव तत्	॥ ५० ॥
यत्परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वं चापरं च प्रपद्यन्ते चमसाध्वर्षेव एव ते	॥ ५१ ॥
तेषां न कश्चनाहोता	॥ ५२ ॥
यद्वा अतिथिपतिरतिथीन्परिविष्यं गृहानुपोदैत्यभृथमेव तदुपायैति	॥ ५३ ॥
यत्संभागायति दक्षिणाः सभागायति यदनुतिष्ठत उदवस्यत्येव तत्	॥ ५४ ॥
स उपहृतः पृथिव्यां भक्षयत्युपहृतस्तस्मिन्पयस्यथिव्या विश्वरूपम्	॥ ५५ ॥
स उपहृतोऽन्तरिक्षे भक्षयत्युपहृतस्तस्मिन्पयस्यदन्तरिक्षे विश्वरूपम्	॥ ५६ ॥
स उपहृतो दिवि भक्षयत्युपहृतस्तस्मिन्पयसि विश्वरूपम्	॥ ५७ ॥
स उपहृतो देवेषु भक्षयत्युपहृतस्तस्मिन्पयस्येवेषु विश्वरूपम्	॥ ५८ ॥
स उपहृतो लोकेषु भक्षयत्युपहृतस्तस्मिन्पयस्येवल्लोकेषु विश्वरूपम्	॥ ५९ ॥
स उपहृत उपहृतः	॥ ६० ॥
आमोतीमं लोकमाप्तुम्यम्	॥ ६१ ॥
ज्योतिष्मतो लोकान्जयति य एव वेदं	॥ ६२ ॥

अर्थ— [ ६ ] ( यत् क्षत्तार ह्ययति ) जब वह द्वापरात्मको बुलाता है, मानो ( तत् आभ्रावयति एव ) वह भूमिभ्रमण करता है । ( यत् प्रतिश्रुणोति ) जब वह सुनता है, मानो ( तत् प्रत्याभ्रावयति एव ) वह प्रत्याभ्रमण ही है । जब अतिथिके लिए ( पूर्वं च अपरे च परिवेष्टार पात्रहस्ता प्रपद्यन्ते ) पहिले और बाद में परासनेवाले सेकक पात्र द्वाराओं लेकर उसका पास आते हैं, मानो ( ते चमसाध्वर्षेव एव ) पत्रके चमसाधुर्षु हैं ॥ ( तेषां न कश्चन अहोता ) उनमें कोई भी अपरात्म नहीं होता है ॥ ४९-५२ ॥

( यत् वै अतिथिपति अतिथीन् परिविष्य ) जो गृहस्थी अतिथियोंको भोजन देकर ( गृहान् उप उदति ) अपने घरके प्रति वाणा है, मानो ( तत् अपभृथ एव उप अयति ) वह अवभृथ स्नानके लिये ही जाता है । ( यत् सभागायति ) जो भेट करता है, मानो वह ( दक्षिणा सभागायति ) दक्षिणां प्रदान करता है । ( यत् अनुतिष्ठते ) जो उसके लिये अनुष्ठान करता है मानो ( तत् उदवस्यति एव ) वह पशु बधसाग करता है ॥ ५३-५४ ॥

( स. पृथिव्या उपहृत ) वह इस पृथ्वीपर किसी देवमें आदरसे बुलाये अतिथि ( यत् पृथिव्या विश्वरूप ) जो कुछ इस पृथ्वीपर अनेक स्वरूपवाला अन्न है ( तस्मिन् उपहृत भक्षयति ) उसको वदा निमज्जित होकर खाता है । वह आदरसे बुलाया हुआ अतिथि ( अन्तरिक्षे ) अन्तरिक्षमें, ( दिवि ) सुरलोकमें, ( देवेषु ) देवताओंमें और ( लोकेषु ) सब लोकोंमें जो ( विश्वरूप ) अनेक स्वरूपवाला अन्न होता है, उसको वहा भेटा हुआ ( भक्षयति ) भक्षण करता है ॥ ५५-५९ ॥

( स उपहृत ) वह आदरसे निमज्जित किया हुआ अतिथि बहुत लाभ देता है ॥ अतिथिको आदरने साथ बुलाये वाणा गृहस्थी ( इमं लोकं आमोति ) इस लोकको प्राप्त करता है और ( अमुं आमोति ) उस लोकको भी प्राप्त करता है । ( य एव वेदं ) जो इस अतिथिसत्कारक प्रसक्तो जानता है वह ( ज्योतिष्मत लोकान् जयति ) ताराकी लोकोंका माह करता है ॥ ६०-६२ ॥



## अतिथिका आदर

अतिथिका आदरस्वकार धेयके साथ करनेका उपदेश करनेके लिये वे ६९ मंत्र इस सूक्तक छ पर्यायमें दिये हैं। ये मंत्र सरल होनेसे हृदयी ध्यातव्य विशेष करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अतिथिस्वकारसे विविध प्रकारक यज्ञ तथा सत्र करनेका शक्त प्राप्त होता है अर्थात् जो अतिथिस्वकार उद्योग धर्याते करेगा, उसको धन्याय्य यज्ञयाग करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। गृहस्थ-धर्मका यह प्रधान भाग अतिथिस्वकार है।

इस मंत्रोंमें 'मास' शब्द आया है। इस मास शब्दके अन्य अर्थ भी होते होंगे, परंतु यहाँ 'मास' अर्थ अपेक्षित है ऐसा हमारा मत है और यह केनेवर भी कोई शकति नहीं है। क्योंकि सरसभोजी मनुष्यक घरमें कोई अतिथि आवे, तो अतिथिके पूर्व यह मास भी न खाये, इत्यादि भाव यहाँ देना योग्य है। धेयमें ऐसे निमांसभोजी मनुष्योंका वर्णन है जैसे ही मासभोजियोंका भी वर्णन है।

## ब्राह्मणको कष्ट

कां ५, सू. १९

( ऋषि - मणोवृ । देवता - ब्रह्मणी । )

अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिग्मस्पृशन् । भूर्गो हिंसित्वा सृज्जया वैतहृत्पाः पराभवन् ॥ १ ॥  
 ये बृहत्सामानमाङ्गिरसमार्यन्ब्राह्मणं जनाः । पेटवस्तेषामुभयादुमर्विस्तोकान्प्राणयत् ॥ २ ॥  
 ये ब्राह्मणं प्रत्यष्टीवन्थे चास्मिन्नुत्कर्मिषिरे । अस्नस्ते मर्ष्ये कुल्यायाः केशान्खादन्त आसते ॥ ३ ॥  
 ब्रह्मणी पच्यमाना यावत्तामि विजज्ञहे । तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ॥ ४ ॥

अर्थ— ( सृज्जया ) हमला करनेके उप प्राप्त करनेवाले वीर ( अतिमान अवर्धन्त ) अत्यन्त बढ़े, ( न दिव इव उत्स्पृशन् ) इतने कि मुल्लेकके स्पर्श करने लगे। परंतु वे ( वैत-हृत्पा ) देहोंका मज तब भोगने लगे तब ( मृगु हिंसित्वा ) अशुभकी हिंसा कर ( पराभवन् ) पराभूत होगे ॥ १ ॥

( ये जना बृहत्सामान ) जो लोग बड़े सामगायक ( आगिरस ब्राह्मण आर्यन् ) आगिरस ब्राह्मणकी सहाये रहे, ( तेषां तांकांनि ) उनकी सत्कारोंको ( पेटव अथि ) हिंसक ( उभयात् आणयत् ) दोनों दालोंक बीचमें रगटा रहा ॥ २ ॥

( ये ब्राह्मणं प्रत्यष्टीवन् ) जो ब्राह्मणका अपमान करते हैं, ( मे वा अस्मिन् शुल्क ईषिरे ) जमरा जो हमसे धन छीनना चाहते हैं, ( ते अस्म कुल्याया मर्ष्ये ) वे रघिरीकी नदीक बीचमें ( केशान् खादन्त आसते ) कर्णोंको खाते हुए बैठते हैं ॥ ३ ॥

( सा पच्यमाना ब्राह्मणी ) यह इन्ध की गई ब्राह्मणकी गो ( यावत्तामि विजज्ञहे ) तिम कारण लपटा रहती है, उस कारण उस ( राष्ट्रस्य तेज निर्हन्ति ) राष्ट्रका तेज मारा जाता है और यद्वा ( वृषा वीर न जायते ) यत्नान् वीर भी उत्पन्न नहीं होता ॥ ४ ॥

भावार्थ— विरयो क्षत्रिय बहुत बढ़ गये थे, परंतु जब व ब्राह्मणोंकी सहाये लगे और देवोंक लिये दिया रूप इन्ध भोगने लगे, सब शान्तभूत होगये ॥ १ ॥

विद्वेने सामगायक आगिरस ब्राह्मणकी सहाया था, उनक बाल्यछेकें हिंसक पशुमाने दंतोंस पीला था ॥ २ ॥

जो ब्राह्मणका अपमान करते हैं और उससे धन छीनते हैं, वे रघिरीकी नदीमें बालोंको खाते रहते हैं ॥ ३ ॥

जो ब्राह्मणकी साथ इन्ध करता है, उस क्षत्रियके राष्ट्रका तेज नष्ट होता है और जयमें बलवान् वीर नहीं उत्पन्न होते ॥ ४ ॥

क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं विंशितमस्यते । धीरं यदस्याः पीयते तद्वै पितृषु किंविपम् ॥ ५ ॥  
 उग्रो राज्ञा गन्यमानो ब्राह्मण यो विपंरसति । परा तर्तितव्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥ ६ ॥  
 अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः । द्वयास्या द्विजिह्वा भूत्या सा राष्ट्रमव धृतुते ब्रह्मज्यस्य ॥ ७ ॥  
 तद्वै राष्ट्रमा संवति नावं भिन्नाभिवोदकम् । ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद्द्रष्टुं हन्ति दुच्छुना ॥ ८ ॥  
 तं वृक्षा अपं सेधन्ति छायां नो सोपमा इति । यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभिनास्तु मर्षते ॥ ९ ॥  
 विपमेतद्देवकृतं राज्ञा वरुणोऽब्रवीत् । न ब्राह्मणस्य गां जाध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन ॥ १० ॥  
 नैव ता नेवतयो या भूमिर्ष्यधृतुन । प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभवं पराभवत् ॥ ११ ॥

अर्थ— ( अस्या आशसनं कृत् ) इसके कष्ट देना बड़ा क्रूरताका कार्य है, ( विंशितं तृष्टं अस्यते ) माल तो चुपा चवानेगला होनेके कारण ढँकने योग्य है। ( यत् अस्याः धीरं पीयते ) जो इस ब्राह्मणकी गौका दूध पीया जाता है ( तत् वे पितृषु किंविपं ) वह नि सदेह पितरोंमें पाप कहा जाता है ॥ ५ ॥

( य. राजा उग्र गन्यमान ) जो राजा अपने कार्यको उग्र मानता हुआ ( ब्राह्मण जिघत्सति ) ब्राह्मणको सजता है और ( यत्र ब्राह्मण जीयते ) उदा ब्राह्मणको कष्ट पहुंचता है ( तत् राष्ट्रं परातितव्यते ) वह राष्ट्र बहुत गिर जाता है ॥ ६ ॥

( अष्टापदी चतुरक्षी ) आठ पाँचवाली, चार भाँखवाली, ( चतुःश्रोत्रा चतुर्हनु ) चार कानोवाली और चार हनुवाली ( द्वयास्या द्विजिह्वा भूत्या ) दो मुलवाली और दो जिह्वावाली होकर ( ब्रह्मज्यस्य राष्ट्रं सा अयधृतुते ) ब्राह्मणको सजानेवाले राजाके राष्ट्रको वह दिला देती है ॥ ७ ॥

( यत्र ब्राह्मण हिंसन्ति ) जहाँ ब्राह्मणको कष्ट पहुंचते हैं ( तत् राष्ट्रं दुच्छुना हन्ति ) वह राष्ट्र विपत्तिले मरता है और ( तत् वे राष्ट्रं ) वह राष्ट्रको उसी प्रकार ( आ रूपति ) गिरा देता है, ( उदक भिन्नां नाव इष ) जैसे जल टूटी हुई नौकाको बड़ा देगा है ॥ ८ ॥

( न छायां मा उपमा इति ) हमारी छायामें वह न आवे, इस दृष्टिको ( तं वृक्षा अपसेधन्ति ) उसको वृक्ष कट्टा देते हैं। ' दे नारद ' ( य ब्राह्मणस्य धन सत् अभिमन्यते ) जो ब्राह्मणका धन बन्धने अपना मानता है ॥ ९ ॥

( या नव नयतय ) जो निम्नानवे प्रकारकी प्रचार्य है ( ता भूमि पव वि अधृतुत ) उनको भूमिले ही ददा दिया है। वे ( कत्याणी ब्राह्मणीं प्रजा हिंसित्वा ) कत्याण करनेवाली ब्राह्मण मतको कष्ट देकर ( अलभज्य पराभवत् ) असम्भवसीध रीतिसे पराष्ट हुए ॥ ११ ॥

( राजा वरुण अब्रवीत् ) वरुण रामाने कहा है कि ( एतत् देवकृत विप ) यह देवोंका बनाया विप है। ( ब्राह्मणस्य गां जाध्वा ) ब्राह्मणकी गायको हृष्य कर ( फलन राष्ट्रं न जागार ) कोई भी राष्ट्रम नहीं जापता ॥ १० ॥

भाषार्थ— गायको कष्ट देना बड़ी क्रूरताका कार्य है। दूसरोंकी गायका दूध पीना भी विपके समान ही है ॥ ५ ॥

अपने कार्यको बलवाद् मानता हुआ जो राजा ब्राह्मणको सजता है, उसका राष्ट्र गिर जाता है ॥ ६ ॥

ब्राह्मणको पाप हुआ होनेपर द्विगुणित मात्रक सींग भादिले युक्त होकर उसके राष्ट्रका नाश करती है ॥ ७ ॥

जहाँ ब्राह्मण सजाया जाता है वह राष्ट्र विपत्तिले गिरता है। टूटी नौकाके समान वह बीचमें ही इष जाता है ॥ ८ ॥

जो ब्राह्मणका धन छीनता है उसको वृक्ष भी अपनी छायामें भाने नहीं देते ॥ ९ ॥

राम वरुणने कहा है कि ब्राह्मणको गौको हृष्य करना विप पीनेके समान हानिनाक है, उसको हरीकार करनेके कार्य

में भीहित नहीं रह सकता ॥ १० ॥

निम्नानवे वीर जिन्होंने सब भूमिपर विजय प्राप्त की थी वे अब ब्राह्मणोंको सजाने छोड़ कर वे वरुण हो गये ॥ ११ ॥

यां मृतायां अनुब्रूयन्ति कुर्यां पदयोपनीम् । तद्वै ब्रह्मज्य ते देवा उवस्तरणमब्रुवन् ॥ १२ ॥  
 अश्रुणि कृपमाणस्य यानि जीवस्य वावुतुः । तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥ १३ ॥  
 येन मृतं स्तुपयन्ति इमश्रुणि येनोन्दते । तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥ १४ ॥  
 न येष मंत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति । नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नपते वर्षम् ॥ १५ ॥

अर्थ— ( यां पदयोपनीं कुर्यां ) जिस पदविन्दको हटानेवाली पांटेवाली साइको ( मृताय अनुब्रूयन्ति ) मृतके साथ बांधते हैं, है ( ब्रह्म-ज्य ) माहणको सतानेवाले । ( देवाः तत् ते उपस्तरणमब्रुवन् ) देवोंने कहा है कि यह तेरा स्थिर है ॥ १२ ॥

है ( ब्रह्म-ज्य ) माहणको सतानेवाले । ( यानि अश्रुणि ) जो आम् ( कृपमाणस्य जीतस्य वावुतुः ) विरल और जीते गये मनुष्यके बहते हैं । ( देवाः तं वै ते अपां भागं आधारयन् ) देवोंने उसको ही तेरा जलका भाग निश्चय किया है ॥ १३ ॥

है ( ब्रह्मज्य ) माहणको सतानेवाले । ( येन मृतं स्तुपयन्ति ) जिससे प्रेतको स्नान कराते हैं, ( येन इमश्रुणि च उन्दते ) जिस पानीसे मृत दाबोंके बाहू भिगोये जाते हैं, ( तं वै देवाः ते अपां भागं आधारयन् ) उसको ही देवोंने तेरा जलभाग निश्चय किया है ॥ १४ ॥

( मंत्रावरुणं वर्षं ) मित्रावरुणसे प्राप्त होनेवाली वृष्टि ( ब्रह्मज्यं न अभिवर्षति ) माहणको कष्ट देनेवालेके ऊपर नहीं गिरती और ( अस्मै समितिः न कल्पते ) इसको सभा सहमति नहीं देती ( न मित्रं वर्षं नपते ) और न मित्र इससे वर्षमें रहते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ— कलिकी झाहू जो सजावकी साइलेके काममें जाती है, उसपर यह मनुष्य सोता है कि जो माहणकी सताना है ॥ १२ ॥

विरल होनेके कारण पराजित हुए मनुष्यकी आंखमें जो आँसू आते हैं, उन आँसूकोका जल उसकी पीनेके लिये दिया जाता है, जो माहणको सताना है ॥ १३ ॥

जिस जलसे मृतके स्नान कराते हैं और जो जल हंगमत करनेके समय दाबी मृत भिगोवेंके काम जाता है, वह जल उसको मिलता है, कि जो माहणको कष्ट देता है ॥ १४ ॥

माहणको कष्ट देनेवालेके राष्ट्र मन्त्री वृष्टि नहीं होती, राष्ट्रसभा बैठते रागके लिये अनुकूल नहीं होती और जैसे सन्निवृत्त कोई मित्र नहीं रहता ॥ १५ ॥

## ब्राह्मणकी कष्ट

### शान्तीका कष्ट

शान्ती मनुष्यको दिया हुआ कष्ट राज्यका नाश करता है । जिस राज्य शासनमें शान्ती सजनोंके कष्ट भोगने पड़ते हैं वह राज्यशासन नष्ट हो जाता है । जिस राज्यशासनमें शान्ती लोगोंमें पालीपर रोक लगाया जाता है, उनको उक्त उप-देग देनेसे रोकना जाता है, अर्थात् सुविश शान्ती पुरवोंकी धन संपत्ति सुरक्षित नहीं होती, अर्थात् अन्ध प्रकारसे शान्ती सज-सोंको कष्ट पड़वते हैं, वह राष्ट्र अयोग्यिको प्राप्त होता है ।

यह भावय इत सूचका है । राष्ट्रमें शान्ती और शान्ती की पूजा होती रहे । क्योंकि शान्तिपदैसरे ही राष्ट्रका सच्चा कल्याण ही सञ्जा है । इसलिये हाएव राष्ट्रके लोग शान्तीका संस्कार करें और अपनी उन्नतिके शान्ती करें ।

### अन्त्येष्टिकी कुछ बातें

इस सूचका विचारकरनेसे कुछ बातोंका पता लगता है, देखिये—

( १ ) मृत मनुष्यके शवको स्नान कराते हैं ।

( २ ) मृताय पदयोपनीं कुर्यां अनुब्रूयन्ति— मृतके पांवका चिह्न मिटानेवाली साइसे कपचा किसी जगह पीनसे बांधते हैं । ( इसमें ' कुर्यां ' का अर्थ ठीक प्रकार समझमें नहीं आता है । यह सोचना विषय है । )

### हजामत

( ३ ) इमश्रुणि उन्दते—हजामत बनवाने समय जल भिगोये जाते हैं ।

इस सूचके हुए कथनोंका ठीक ठीक भाग समझमें नहीं आता है, इस कारण यह सूचक निरुद्धमा प्रतीत होता है । उन मंत्रोंका अधिक विचार पाठक करें ।

## पशुको क्लीब कान्हा

कां. ६, सू. १३८

( कृषि - अर्थात् । देवता - मनस्वति । )

स्वं वीरुषां श्रेष्ठतमाभिधुतास्योपधे । इमं मे अद्य पूरुं क्लीवमौपक्षिर्न कृषि ॥ १ ॥

क्लीवं कृष्योपक्षिन्मर्थो कुरीरिणं कृषि । अथास्येन्द्रो ग्रारंभ्यामुभे भिनन्वाध्वी ॥ २ ॥

क्लीवं क्लीवं र्वाकरं वध्रे वधिं त्वाकरमरंसारसं त्वाकरम् ।

कुरीरंसस्य क्षीरिणि कुर्म्यं चाधिनिदध्मसि ॥ ३ ॥

ये तं नाडवैः देवकृते ययोस्तिष्ठति वृष्णम् । ते तं भिनन्ति शम्पयामुप्या अधि मुष्कयोः ॥ ४ ॥

यथा नडं कश्चिपुने स्त्रियो भिन्दन्त्वधर्माना । एवा भिनन्ति ते शेषोऽमुष्यः अधि मुष्कयोः ॥ ५ ॥

अर्थ— हे भोएधे ! ( स्वं वीरुषां श्रेष्ठतमा अभिधुता ) वृ औपक्षिपोते सबसे अधिक भेद सर्वत्र प्रसिद्ध है । ( अद्य इमं मे पूरुं ) आज इस मेरे पुहारपशुको ( कुरीरं औपक्षिर्न कृषि ) वहीव और खोसटा कर ॥ १ ॥

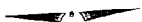
( क्लीवं औपक्षिर्न कृषि ) वहीव और खोसटा कर । ( अथो कुरीरिण कृषि ) और सिरपर बाल रखनेवाला कर । ( अथ इन्द्रः प्रावभ्यां ) और इन्द्र दो परसोसे ( अस्य उभे भाण्डयो भिनन्तु ) इसके दोनो भाण्डकोप छिनमिन्न कर ॥ २ ॥

हे वहीव ! ( त्वा क्लीवं अकरं ) तुझे वहीव बना दिया है । हे ( वध्रे ) निबंठ ! ( त्वा वधिं अकरं ) तुझे निबंठ बना दिया है । हे ( अरस ) रसहीन ! ( त्वा अरसं अकर ) तुझे रसहीन बना दिया है । ( अस्य क्षीरिणि कुरीरं ) इसके सिरपर बाल और उनसे ( कुर्म्यं च अधिनिदध्मसि ) आभुषण भी कर देते है ॥ ३ ॥

( ये ते देवकृते नाडयो ) जो तेरी देवो द्वारा बनाई नाडियां है, ( ययोः वृष्णं तिष्ठति ) जिनमें वीरुं रहता है, ( ते ते अधिमुष्कयोः अधि ) ये तेरे दोनो भाण्डकोषोको ( अमुष्यः शम्पया भिनन्ति ) इस दण्डसे तोड देता है ॥ ४ ॥

( यथा स्त्रियः कश्चिपुने नडं अधमना भिन्दन्ति ) जिन प्रकार स्त्रियो चडाई बनानेके लिये नरपुत्रको ( पास ) धापरसे कटती है । ( एवा नमुष्य ते शेषः ) इसी प्रकार तेरी इद्रिय ( ते मुष्कयोः अधि भिनन्ति ) तेरे भाण्डकोषोके उपर कटता है ॥ ५ ॥

बैठ पोडा भादि पुरप वडुभोको पुररत्नसे हीन बनानेके लिये वीरुंकी नाडियोको तोडना, धंसेको कटना, नरुंमक बनाना आदिकी निधि इससे लिखी है । किसी औपक्षिका प्रयोग भी कहा है, परतु उस औपक्षिरे नामका पता नहीं मिलता है । वीरुं नाडियां काटना, भाण्डकोषोको तोडना, इत्यादि बाते मात्र भी प्रसिद्ध है ।







## अथर्ववेदका सुबोध अनुवाद

‘ गृह स्था श्रम ’

# सुभाषित

दम्पती—१स्वधूके कर्तव्य ( कां. ६; सू. १२२ )

१. दम्पती ! अनु शारभेधां, अनु संरभेधां तस्य गुप्तये धयेधाम् ( ३ )—हे स्त्रीपुंसो ! अनुकूलतासे अनुभार्यका प्रारंभ करो, अनुकूलतासे बचत करो और बचे हुए पनकी रक्षा करनेके लिए एक दूसरेका सहाय लो ।

### कन्यादान

२. इमाः यशियाः शुद्धाः पूताः योपितः प्रसूणां हस्तेषु प्रपृष्यत् सादयामि ( ५ )— इत पून्य और पवित्र कियोंको शानियेके हाथमें पृष्य पृष्य रूपसे देता हूँ ।

( कां. १; सू. १४ )

१. शुद्धान् अधिभ्रजं ह्य वश्याः भर्गं यथंः आदिपि ( १ )— जिस प्रकार शुद्धसे माका बनानेके लिए फूल तोड़ते हैं, वसी प्रकार इस कन्यासे भाग्य और तेज में प्राप्त कराता हूँ ।

२. आ शीर्ष्णः समोप्यात् पितृषु ज्योषः आस्थानम् ( १ )— सिर सताने सर्पात् विवाहके समयतक कन्या माका पिशाके धर चिरकालतक रहे ।

( कां. २; सू. ३३ )

१. अस्यै पत्या सौभाग्यं धस्तु ( १ )— उसको पतिके साथ सौभाग्य प्राप्त हो ।

२. धरेषु जुष्टा समनेषु यन्तु ( १ )— वह वृजजनेमें मिय और वषम मनवालेमें मनेरम हो ।

३. इयं नारी पतिं विरेष्ट ( १ )— वह स्त्री पतिके प्राप्त करे ।

४. सोमः राजा सुभगां कृणोति ( १ )— सोमराज उसे सौभाग्यवाली करे ।

५. पुवान् सुवाना मतिर्था भयाति ( १ )— पुनोंको वरपत्र कर वह पारकी रानी होगी ।

६. सुभागा पतिं गत्वा विराजन्तु ( ३ )— सौभाग्य स्त्री होकर पतिके पास जाकर विराते ।

७. पत्या अविराधयन्ती भगस्य जुष्टा इयं नारी संप्रिया अस्तु ( ४ )— पतिके विरोध न करती हुई वह भाग्यवाली स्त्री पतिको मिय हो ।

८. मगस्य मायं आनेह तथा उप प्रताम्य, यः यतः प्रतिकाम्यः ( ५ )— देवर्षेरूपी राव पर वह और अपने लापक पतिके पास जा ।

( कां. ६; सू. ६० )

१. धाता अस्यै अपुष्यै प्रतिकाम्यं पतिं दधानु ( ३ )— सबको माथा देवेनाथ देव इस कन्याके लिए इष्टता करनेवाला पति देवे ।

( कां. १४; सू. १ )

१. सविता मनसा र्सिन्तीं सूर्यां परे अर्दान् ( ९ )— सवितासे जातेसे भी मिय भवनी कन्या पतिको दे ।

२. इतः यन्धनात् प्रमुंघामि न अमुगः ( १० )— इतः प्रमुंघामि न अमुगः मुपदां कतम् ( १० )— पिता के पतने मुझे मुक्त करता हूँ, पर पतिके कुलमें देवी मन्धनी से बांधता हूँ कि तू वरति कन्यां छूट न सके ।

३. प्रताम्य योनीं सुदृतस्य लोके स्थोनम् ( ११ )— सबके और उपपत्तिपौके स्थानमें जो मुक्त प्राप्त हो सकता है, वह उसे पतिपुत्रमें प्राप्त हो ।

४. गृहान् गच्छ, गृहपत्नीं ययारतां पतिनीं स्वं ( १० )— पतिके घरमें वह नववधू जाकर वहाँ सबको पतने करनेवाली होकर रहे ।

५. धध जिदिः विदुषी आपशानि ( २१ )— इस प्रकार अनेक वर्ष पतन्य कीरिन इकर गृहस्थाश्रम पतन्यके बाद अपने अनुभव दृग्गोत्रों उपदेनाके प्रयत्न है ।

६ इह ते प्रजायै प्रियै समृद्धयतां (२३)- इत परमे तेरो सम्पत्तिरे लिप् प्रिय पदार्थोंकी समृद्धि हो ।

७ अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहिह (२३)- इस परमे गृहस्थाश्रमके पालनके लिप् जागृत रहो ।

८ एना पत्या सन्धे संस्पृशस्य (२३)- इस पतिके करीबसे अपने घरीरका स्पर्श कर ।

९ इह एव स्नं, मा वि यौष्टं (२३)- वहाँ रहो, कभी भी एक दूसरेसे अलग मत होओ ।

१० पुत्रैः नपुत्रभिः क्रीडन्तौ, मोदमानौ स्वस्नभौ विप्र्यं आयुः व्यश्नुतं (२०)- तुम दोनों पुत्रों और नापियोंके साथ खेलते हुए, खुश होते हुए तथा घरदारसे मुक्त होने हुए सम्पूर्ण आयुका उपभोग करो ।

११, शामुस्य पत्न देहि (२५)- उत्तम वस्त्रोंका दान करो ।

१२, ब्रह्मभ्यः वसु विभज (२५)- ब्राह्मणोंको धनका दान कर ।

१३, सुयं कन-उद्येयु क्कते चदन्तौ (३१)- तुम दोनों पतिपत्नी सब व्यवहार करो और साथ बोलो ।

१४ ससुन्दं भर्गं सं भरतं (३१)- समृद्धि युक्त भाग्य सुन्दर प्राप्त हो ।

१५ संभलः पतां चारु वाचं यदनु (३१)- पति परीसे सुन्दर और मधुरताये बोलो ।

१६ पर्यायानः अनृक्षराः क्रजयः सन्तु (३४)- मार्ग कांटे रक्षित और सरल व सीधे हों ।

१७, धावा भगेन वचसा सं वृजानु (३४)- परमेश्वर इस शीको भाग्य और वेजसे युक्त करे ।

१८, वचसा हमां अयतं (३५)- वेजसे इस को की रक्षा करो ।

१९, भद्रः रोधनः तं उच्यामि (३६)- जो कष्टवाचक और तजस्वी है उसे मैं अपने पास लाता हूँ ।

२०, अवीरघ्नी आपा उदजन्तु (३९)- पुत्रोंका मातृ म करनेवाले नष्ट उसे मिलते रहे ।

२१, हिरण्यं शं आपा शं सन्तु (४०)- सुवर्ण वस्त्रा कल्याण करनेवाला हो और नष्ट भी मुक्तदायक हों ।

२२, सीमन्तं प्रजां सीमात्म्यं रायिं आशासाना पत्युः भानुमताः भूत्या अमृताय कं सं नहस्य (४२)- उत्तम मन, सतति, सीमाभाग्य और धनकी इच्छा करनेवाले पतिके अनुकूल भावचरन करनेवाली होकर अमृतत्वकी प्राप्तिके लिप् तैय्यार हो ।

२३, त्वं पत्युः अस्तं परस्य साम्राज्ञी एधि (४३)- तू पतिके घर जाकर वहाँ साम्राज्ञी होकर रह ।

२४, श्वशुरेषु देवेषु ननान्दुः उत श्वश्रवाः साम्राज्ञी एधि (४४)- ससुर, देवर, नन्द और सास इन सभी साम्राज्ञी होकर रह ।

२५, याः देवीः अठन्तन् याः च अयपन् या च तन्निरे या च श्रन्तान् श्रभितः अददन्त, ताः त्वा जरसे सं व्ययन्तु, आयुष्मतींदां चासः परिधत्स्य (४५)- निय देवीने स्वयं गृह काता है, जिसने दुःख है, तिमने ताने जाने वाले हैं, जिसने किनारे बीक लिप् है, वे सब तुझे वृद्धावस्थाक वस्त्र मिलते रहे, इसलिप् पुत्रों रहे, अपनी आयुको दीर्घ करते हुए तू इन वस्त्रोंको पहन ।

२६, सविता ते आयुः दीर्घं कृणोतु (४०)- सविता तेरी आयु दीर्घ करे ।

२७, ते हस्तं वृद्धामि, मा व्यधिष्टाः मया सह प्रजया धनेन च (४६)- तेरा हाथ मैं पकड़ता हूँ, तू दुःखी मत हो, मेरे साथ प्रजा और धनसे युक्त होकर रह ।

२८, सोमः राजा सुप्रजसं कृणोतु (४९)- सोम राजा तुझे उत्तम सम्पत्तियसे युक्त करे ।

२९, जातवेदाः अग्निः पत्ये सुभगां पत्नीं जरदाष्टि कृणोतु (४९)- जातवेद अग्नि पतिके लिप् इस शीको वृद्धावस्थाक जीवित रखे ।

३०, ते हस्तं सौभाग्याय वृद्धामि (५०)- तेरा हाथ सौभाग्यके लिप् पकड़ता हूँ ।

३१, मया पत्या जरदष्टिः जसः (५०)- मुझ पतिके साथ तू वृद्धावस्थाक जीवित रह ।

३२, त्वा महो गार्हपत्याय अयुः (५०)- तू मुझे वृद्धावस्थाक पालनके लिप् दी गई है ।

३३, त्वे धर्मिणा परन्ती अस्ति (५१)- तू धर्मके मेरी पत्नी हो गई है ।

३४, अहं तव गृहपतिः (५१)- मैं तेरे घरका स्वामी हूँ ।

३५, इयं मम पोष्या अस्तु (५१)- यह मेरे द्वारा पोषणके योग्य है ।

३६, गृहस्पतिः त्वा महो अदात् (५२)- गृहस्थाने तुझे मेरे लिप् दिया है ।

३७, हे प्रजापति ! मया पत्या शरत्ः शतं संजाय (५२)- हे प्रजापति ! मेरी पत्नी के साथ मैं वर्ष-तक तू अर्पितकर दीवित रह ।

३८. इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ( ५४ )- इस छोटी प्रजाति बनाओ ।

३९. इमां नारीं पत्ये संशोभयामसि ( ५५ )- इस छोटी इम पति के लिए अच्छे तरह सुसंभित करते हैं ।

४०. अस्याः रूपे मयि ( ५६ )- इसका रूप केवल मेरे लिए ही है ।

४१. न स्तेपे भ्रात्रि ( ५७ )- मैं चोरिका अतः नहीं लगता ।

४२. स्वयं परधानं श्रध्नालः मनसा उद्भूयन्ते ( ५८ )- मैं स्वयं कथन तोड़कर मनसे मुक्त होना हूँ ।

४३. अथ उरुं लोकं सुगं पंधां कुणोमि ( ५९ )- परां विस्तृत कार्यश्रेय और अच्छी तरह जानेके वाक्य मार्ग केन्यार करता हूँ ।

४४. उद्यच्छास्त्रं रक्षः अपहृताथ ( ५९ )- शास्त्रोंको रक्ष करवाकर शास्त्रोंको मारो ।

४५. इमां नारीं सुकृते दृष्ट्वात् ( ५९ )- इस छोटी सुवचनोंके लिए स्वीकार करो ।

४६. सा नः सुमंगली अस्तु ( ६० )- वह हमारा कल्याण करनेवाली हो ।

४७. सुकिंशुर्कं विम्बरूपं हिरण्यवर्णं सुवर्तं सुचक्रं पदतुं आरोह ( ६१ )- उत्तम सुन्दर फूलोंसे सजाए गए, सोनेके समान चमकनेवाले, उत्तम कण्डोसे सजाए गए वैभवाके तथा उत्तम पहिणोंवाले रथमें बैठ ।

४८. अध्रातृष्णीं अपतिष्णीं अपशुष्णीं पुत्रिणीं अस्मभ्यं वह ( ६२ )- भार्गवोंका, पत्निका और पशुओंका नाश न करनेवाली तथा पुत्रोंकी जन्मदेनेवाली श्री हमें प्राप्त हो ।

४९. देव्याः शालायाः द्वारं यधूपयं स्योनं कृण्व ( ६३ )- पूज्यवती देवताके द्वारपर यधुका मार्ग सुवचन करवा हूँ ।

५०. पत्निलोके शिवा स्योना विराज ( ६४ )- अपने पतिके घर कल्याण और सुख देनेवाली होकर रह ।

( कां. १४; सू. २ )

१. सा नः पतिभ्याः प्रजया सह जायां दाः ( १ ) यह तू हम सबको प्रजाके साथ बनिषीं मिलें देसा कर ।

२. आयुषा वर्धसा पत्नीं अग्निः अदात् ( २ ) जीवन और तेजसे मुक्त पत्नी अग्निने दी है ।

३. अस्याः पतिर्दीर्घायुः शरदः शते जीवति ( ३ )- इसका पति दीर्घायुवाला होकर सौ वर्ष तक जीवित रहे ।

३६ ( अथर्व. भा. ३ पु. द्विती )

४. सा मन्दसाना शिवेन मनसा सर्ववीरं पदम्यं राषिं घेहि ( ६ )- मानन्दसे रहनेवाली वह छोटी सुभाषितकार मुक्त मनसे तब भी पुत्रोंके साथ रहती है । वह हमे प्रसन्ननीच घन देते ।

५. पथिष्ठां स्थाणुं दुर्मतिं हतं ( ६ )- मार्गमें रहनेवाले और विघ्नकारी दुष्टोंको मार ।

६. प्रजावर्तिं त्वा पत्ये रक्षसः रक्षन्तु ( ७ )- संतान उत्पन्न करनेवाली तुम छोटी पतिके लिए सधसतेले सुरक्षित रहो ।

७. इमं सुगं स्वस्तिवादानं पंधां वारुधाम ( ८ )- इस सुगम और कल्याण करनेवाले रास्ते पर हम चलें ।

८. यस्मिन् वीरः न रिष्यति अन्धेषां वसु विन्दते ( ८ )- जिसमें पुत्र मरना नहीं और दूसरोंकी अपेक्षा धन अधिक मिलता है ।

९. सुगेन दुर्गे अर्जनां ( ११ )- भासावैले संकटोंको मार कर जा ।

१०. अरातयः अथ द्रान्तु ( ११ )- शत्रु वृत्त भागजायें ।

११. सपिता पतिभ्याः स्योनं कृणोतु ( १२ )- ईश्वर पतिके लिए सुखदायी करे ।

१२. भगवत्य सुवती अरत् ( १५ )- भाग्यदेवकी सम्मतिमें रहे ।

१३. अशुतं मा आरतां ( १६ )- अशुभकी ओर हम न जायें ।

१४. गृहेभ्यः अघोरचक्षुः अपतिष्नीं स्योना, शग्मा, सुशोभा, सुयमा, वीरता, देवुकामा, सुमनस्यमना स्वया दधिपीमाहि ( १७ )- यह छोटी पतिके घर भाकर आत्मदस्ते रहे, प्रीति न करे, पत्निका द्विष्ट करनेवाली हो, धर्म निवृत्तका पालन करे, सबको सुख देवे, अपनी सन्तानको वीरता की शिक्षा देवे, देवोंको सन्तुष्ट रखे, भ्रष्ट कारणमें उत्तम भावनायें रखे और ऐसी स्त्रीके कारण हमारा घर सुसम्पन्न हो ।

१५. अवेष्टुष्नीं, अपतिष्नीं, पशुभ्यः शिवा सुयमा सुवर्चाः प्रजावती वीरताः देवुकामा स्योना इमं गार्ह पत्ये क्षामिं सपयं ( १८ )- देवोंका भाग न करनेवाली, पत्निका घात न करनेवाली, पशुओंका सवावैष्य पालन करनेवाली, उत्तम निमेषोंमें चलनेवाली, तेजस्वी, वीरपुत्रोंवाली देवोंके सुखकी इच्छा करनेवाली ऐसी सुवचनवाली तू गार्हपत्य धर्मकी पूजा कर ।

१६. अस्यै नार्यं उपस्तरे पतत् शर्म यमं ( २१ )- इस छोटी कोचने एवं विद्याने करते सुख और मंत्रधन देनेवाले हैं ।



१७. भगव्य सुमती असत् ( २१ )- परमेश्वरी सम्प्रतिमे र्हें ।

१८. एषा देवः सर्व रक्षांसि हन्ति ( २४ )- यह देव सब राक्षसोंका नाश करता है ।

१९. सुमंगली सपत्नी इमं आसि उपसीद् ( २५ )- उत्तम मंगल कामना करनेवाली और उत्तम पतिके साथ यह स्त्री शान्तिकी उपासना करे ।

२०. सुमंगली गृहाणां प्रतरणां पत्ये सुशोवा श्वशुराय शशुः श्वश्रुये स्योना इमान् गृहान् प्रविश ( २६ )- उत्तम और मंगल धामूपण धारण करनेवाली, घरके दु ख दूर करनेवाली पतिकी शक्ती प्रकारसे सेवा करनेवाली ससुर को मुख देनेवाली, सासको मानन्द देनेवाली स्त्री इस घरमें प्रवेश करे ।

२१. श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः स्योना अश्व्यै सर्वस्यै विशे स्योना एषां पुष्टाय भव ( २७ )- ससुर, पति और कुटुम्बमें सबका शिव करनेवाली, सब प्रजाओंको सुख देनेवाली होकर इन सबकी दुष्टि कर ।

२२. ह्यं सुमंगली यद्यः दौर्भाग्यै विपरेतन ( २८ )- इस मंगलवृक्ष बच्चेके दुष्ट भाग्यको दूर करके तुम वास्तव जाओ ।

२३. सर्वां सावित्रीं बृहते सौभाग्याय आरोहत् ( ३० )- सर्वां सावित्रीं महात् सौभाग्यके लिये उन्नत हुई है ।

२४. ज्योतिः अग्राः उपसः बुध्यमाना ( ३१ )- सूर्यकी ज्योतिसे पूर्व जानेवाली उपाके जानेसे पहले ही स्त्री उद गोषे ।

२५. ययं राया सुमनसः स्याम ( ३६ )- हम धनके साथ उत्तम मनसे युक्त हो ।

२६. सविता वा दीर्घ आयुः कृणोतु ( ३१ )- सविता तुम दोनोंकी आयु लम्बी करे ।

२७ न द्विपुत्रे चतुष्पदे क्षे भव ( ४० )- हमारे कुटुम्बमें, तीकरदर्श और जानवरोंके लिये कल्याणकारक हो ।

२८. यत् पत्नीभिः उतै वारः तत् नः स्योनिं उप-  
स्पृशात् ( ५१ )- जो वरुण हमारी पतिवर्ति बुना है, वे हमें सुख स्पर्श देनेवाले हैं ।

२९. मे मतिः दीर्घायुः अस्तु शरदः श्रत ज्ञायाति ( ६३ )- मेरा पति दीर्घायु हो और सौ वर्षक जीवे ।

३०. शीर्षं च मलं अप गप लिखात् ( ६८ )- सिरके मलकी दूर करो ।

३१. अरिष्टासु बृहते वाजसातये सचेवाहि ( ७२ )- प्राण जब तक हैं, तबतक हम दोनों महात् शक्ती प्राप्तिके लिये साथ-साथ रहें ।

( कां. २; सू. ३० )

१. मां कामिनी असः यथा मत् अप-गाः न असः ( १ )- पत्नी पतिकी इच्छा करनेवाली हो, उससे यह स्त्री दूर न जावे ।

२. यत् अन्तरं तत् वाहं, यत् बाह्यं तत् अन्तरम् ( ४ )- जो बाहर हो, वही अन्दर हो और जो अन्दर हो वही बाहर हो ऐसा सरल व्यवहार दोनोंका होना चाहिये ।

३. विध्वरूपाणां कन्यानां मनः शृणाय ( ४ )- विध्वरूपोंवाली कन्याओंके मन इस प्रकार आकर्षित करें ।

( कां. ६; सू. ८ )

१. यथा वृक्षं लिपुजा समस्तं परिपस्वजे, एवा मां परिप्यजस, यथा मां कामिनी असः यथा मन्नापमानः असः ( १ )- जिस प्रकार बेल वृक्षसे लिपटी रहती है, हे स्त्री! उसी प्रकार तू मेरे भाग्यसे रह, मेरी इच्छा करनेवाली हो और तू मुझसे दूर जानेवाली न हो ।

२. यथा इमे घावापृथिवीं सूर्यः सचः पर्येति ( १ )- जिस प्रकार सूर्यका प्रकाश धुलोक और पृथ्वीलोकमें फैला है ।

( कां. ७; सू. ३६ )

१. हृदि मां अन्तः कृणुष्व मनः सह अमति ( १ )- पतिरत्नीके मन एक दूसरेसे इस प्रकार मिल जाने चाहिये, कि मानों एक ही मन दोनोंमें कार्य रह रहा हो ।

( कां. ६; सू. ८९ )

१. ते सध्व्यह मनः मां एव अन्वेतु ( २ )- मेरा मन मेरे अनुकूल हो कर रहे ।

( कां. १०; सू. ३ )

१. देवाः धरणेन असुराणां अम्याषाट् अघारयन्त ( २ )- देवोंने धरणमणिकी सहायतासे राक्षसोंकी पीडा दूर की ।

२. एषा मे धरणोमणिः तेजसा समुक्षतु यदासा सा समनफतु ( २५ )- इस प्रकार वह धरणमणि मुझे कीर्ति और तेज देवे ।

( कां. ७; सू. ३७ )

१ यथा केवलः मम असः अन्यासां न चन क्षीर्याः ( १ )- तूकेवल मेरा ही पति होकर रह दूसरी स्त्रीका नाम भी तू न ले ।

२. मम मनुजातेन वाससा त्वा जभि दधामि ( १ )- अपने विचारोंके साथ जुने हुए बच्चेमें मैं तुझे बाँध देती हूँ ।

( कां. १; सू. १८ )

१. या भद्रा तानि नः प्रजायै ( १ )- जो सुन्दर लक्षण है, वे सब हमारी सन्तानोंको प्राप्त हो।

२. सर्वं तद्वाचाप हृमो वर्ये ( २ )- वे सब कुल-क्षण वाणीसे हम दूर करते हैं।

३. देवस्तया सविता सुदयतु ( १ )- सविता तुम्हें सुलक्षणी करे।

( कां. ६; सू. १२९ )

१. समानं हृदयं कृधि ( १ )- हमारे मन एक समान हों।

( कां. ७; सू. १६ )

१. विभ्येदेवाः पत्नं अनुभवन्तु ( १ )- सब देवता वषट्का समर्थन करें।

( कां. ६; सू. १३३ )

१. देवीं देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योपधे। तां त्वा नितति केरोभ्यो दंष्ट्रणाय खनामति ( १ )- देवी अधि। दू दिव्य गुणोंसे युक्त होकर पृथ्वीपर उगती है, हे जमीनपर रैलनेवासी अधोपधे। बालोंको बलवान् और सुदृढ करनेके लिए मैं तुम्हें प्रोदता हूँ।

( कां. ६; सू. १३७ )

१. केशाः नडाः इव वर्धस्तां शीर्ष्णाः ते असिता परि ( २-३ )- वेरे सिरपर पाल धालके समान बँधें, वे कभी सकेद न हो, हमेशा काले ही रहें।

( कां. ६; सू. ५१ )

१. प्रथमं शर्म यच्छ ( १ )- पहले सुख दे।

( कां. ६; सू. ७८ )

१. राष्ट्रेण अभिवर्धता सहस्रध्वजसा रथ्या पयसा अभिवर्धतां ( २ )- ये दोनों दम्पतीराष्ट्रकी शक्तिसे बँधें, व हमारा तेज, ऐश्वर्य और वृष आदिसे भी समग्र हों।

( कां. ७; सू. ३५ )

१. इदं राष्ट्रं सोमगाय विष्णुहि ( १ )- हम राष्ट्रको तुष, समृद्धि और ऐश्वर्य इनसे भर दे।

२. प्रजा मा अभिभूत् ( २ )- सन्तान मातापिताका कभी विररकार न करे।

( कां. ४; सू. ३८ )

१. स्यांस्य रदमीन् अनु याः संघन्ति मरीचिर्वा

या अनुसंघन्ति ( ५ )- सूर्यकिरणोंसे-वज्रान और मरीचि- अतुच्छलतासे घुमते फिरें।

२. कर्त्तुं वस्तां इह रक्ष वाजिन् ( ६ )- कर्त्तव्य-शक्तिसे युक्त पुत्रीकी दू इस जगत्में रक्षा कर।

( कां. ५; सू. १७ )

१. प्राहाणस्य अपनीता जाया भीमा ( ६ )-प्राहण की भगाई गई स्त्री बड़ी भयकर होती है।

( कां. ९; सू. २ )

१. सपत्नहमं श्रपमं कामं ह्यपिपि दिशामि ( १ )- शत्रुका शान करनेके कामको मैं यज्ञ द्वारा निश्चित करता हूँ।

२. दुरितं अप्रजस्तां अश्रमतां अवर्ति सुघ ( २ )- पाप, सन्तान न होना, निर्धनता और विपत्ति इनको दूर कर।

३. सा धेनुः दुहिता उच्यते या कथयो वाथ धादुः ( ५ )- गाय कन्याके समान है, वसका शानी वर्णन करते हैं।

४. सर्वे देवाः मम इयं ह्ये जायन्तु ( ७ )- सब देव मेरे हवनमें यार्थें।

५. उग्रः वाजी कामः मम अश्वत् मह्यं अश-पत्नः ह्योतु ( ७ )- प्रतापी बलवान् काम मेरा अश्वश है, यह मुझे शत्रुबँधे शुक करे।

६. मह्यं अशपत्नं एव ह्यश्वन्तः ( ८ )- गुणै शत्रु रहित को।

७. अवर्धात् कामो मम ये सपत्नाः। उरुं लोकम-करन् महामेघतु। मह्यं नमस्तां प्रदिशाश्चतयो, मह्यं पदुर्वीर्णतमा वहन्तु ( ११ )- सकल्प शत्रुओंका नाश करता है, सकल्प बुद्धि करनेके लिए कार्यक्षेप है सकल्पक कारण चात्रो दिशाएँ मनुष्यके भारते छुटती हैं और सकल्प के कारण ही सब ओरसे शत्रु आदि उपभोगसे पदार्थ मिलते हैं।

८. यत्ते काम शर्म त्रिवरुषे उद्भु महाशर्मं वितत अनतिव्याधये कृतम् ( १६ )- हे सकल्प ! जो तेरा वीनो ओरसे रक्षक उपहृष्ट शक्तिवाला, कैला हुआ शानका कवच, शस्त्रोंसे न वेधने योग्य और सुखदायक स्थान है, उसमें हमें स्थापित कर।

९. कामो जसे प्रथमो नैनं देवाः आयु पितरपे न मर्याः, ततः त्वानति ज्यायान् विभ्यहा महान्,

( १९ )- सवसे पहले काम उत्पन्न हुआ इसलिये उसे देव, पितर और मनुष्य वा नहीं सके। इसलिये काम सपको अपेक्षा श्रेष्ठ और समर्थ है।

१०. यान्ते शिवास्तन्वः काम भद्राः यामिः सत्यं भवति, यद्द्यूणीये तामिद्वयसौ अभि संविशे स्वान्यत्र पार्ष्णीरपयेशाश धियः ( १५ )- कामसे शुभ और कल्याण-कारक भाग है, जिनके कारण सब सत्यही सिद्धि होती है, वह शुभ भाग मुझे प्राप्त हो और पापका भाग दूर हो।

( कां. ३; सू. २१ )

१. ये देवो विभ्यात् यं उ कामं आहुः ( ४ )- जो भक्ति सब जगत्को जलानेवाला है और जिसको ' काम ' के नामसे पहचाना जाया है।

२. दान्ते अग्निः कन्याद् शान्तः, सुर्यरेयणः अधो यो विभ्यदाव्यस्ते मरुयादमशीशामम् ( ९ )- यह मांसभक्षक कामरूप अग्नि शान्त हो गया है। यह मनुष्यका नाश करनेवाला कामरूप अग्नि शान्त हो गया है। यह सबको जलानेवाला अग्नि है, उसे मैंने शान्त किया है।

( कां. ३; सू. २२ )

१. मृशु। निमन्युः केवली प्रिययादिनी अनुमता अन्तुं शिचं उपायसि कर्तौ शसः ( ४१ )- धर्मकी शान्त, क्रोध न करनेवाली, पतिवला, मीठा बोलनेवाली, पतिकी सहायका करनेवाली, उसके विरुद्ध कुछ भी न करने वाली और पतिसे ही सब हत्याएँ रखनेवाली हो।

( कां. ३; सू. २३ )

१. आ वीरो जायतां पुनस्ते दशमास्यः ( २ )- तेरा पुत्र दसवें मासमें जन्मे और वीर हो।

२. विन्दस्व पुषं नारि यः तुभ्यं शी अस्तु शं उ तस्मै त्व भव ( ५ )- हे स्त्री ! इस प्रकार तू पुत्रोंको प्राप्त कर। यह पुत्र तुझे सुखदायक हो और तू भी उस पुत्रको सुख दे।

( कां. ८; सू. ६ )

१. सूर्यः तान् ( रोगवीजामि ) अनीतशम् ( ८ )- जो रोगफात है, उनका नाश सूर्य करता है।

२. ये सूर्यं न तितिक्षन्ते ( तान् ) नाशयामसि ( १२ )- जो सूर्य प्रकाश सहन नहीं कर सकते, उनका मैं नाश करता हूँ।

३. तं पिपः हृदयाविधं रुणोत्तु ( १८ )- उधका विपणवर्गे सूर्य हृदयमें विध करे।

( कां. ६; सू. ११ )

१. शार्गा अभ्यथ आरुहः तत्र सुंलवत् कृतम्। तद् वै पुत्रस्य वेदनम् ( १ )- समीक्षकर लड़ा पीरक उगता है, वही पुत्रप्राप्तिकी भीषणी होती है, पुत्रप्राप्तिवा यह उचम साधन है।

२. सौप्यमन्यत्र दधत् पुनांसं उ दधत् हह ( ३ )- कन्या उत्पन्न होनेका कार्य दूसरेके घरमें हो, वही इस घरमें पुत्रका ही जन्म हो।

( कां. ६; सू. ११० )

१. ( अग्ने ) विभ्या दुरितानि एमं अति नेषत् ( २ )- हे अग्ने ! तू सब दुःखसे बसकी ( मेरी ) रक्षा कर।

२. नक्षत्र-जा जायमानः सुवीरः स वर्धमातः पितरं मा वर्धात्, जनिर्थां मातरं च मा प्रमिनीत् ( ३ )- उत्तम नक्षत्रमें जन्मा हुआ यह बालक उत्तम वीर हो और मातापिताको दुःख न दे, न मारे।

( कां. ७; सू. ८१ )

१. एतौ शिशू वीहन्तौ मायया पूर्वापरं चरतः अर्णवे परियातः अन्यः विभ्या भुवनानि विचष्टे, अन्यः क्षप्नु विन्दत् नयः जायसे ( १ )- ये दो बालक ( सूर्य और चन्द्र ) खेलते खेलते अपनी शक्तिके समुद्र-वक पहुँचते हैं, उनमें एक सब सुबनोंको प्रकाशित करता है और दूसरा कर्तुओंका निगमन करते हुए रोज नया होता है।

२. जायमानः नयः नयः भवति ( २ )- प्रकट होते हुए तू हमेशा नया ही प्रतीत होता है।

३. अर्णो क्रेतुः उपसां अग्रं एपि ( ३ )- दिवके सूचक सूर्यके आगमनकी सूचना देनेवाली उषाके भी पहले तू आता है।

४. चन्द्रमः दीर्घं आयुः प्रतिरसे ( ३ )- चन्द्रमा आयु दीर्घ करता है।

५. मा प्रगया घनेन च अनूतं एपि ( ३ )- मुझे प्रया और धक्के परिपूर्ण कर।

६. योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विप्यः तस्य आनेष आप्यायस्य ( ५ )- जो तुझे हमसे द्वेष करते हैं और जिससे हम द्वेष करते हैं, उनके प्राणसे तू रहस्य हो।

७. देवाः अंशुं आप्यायन्ति धक्षितः अक्षितं भक्षयन्ति ( ६ )- देव सोमको रह करते हैं फिर उनको साकर भगा बनते हैं।

( कां. ६; सू. १३३ )

१. यस्य प्रथिता चरामः, स पात्रं दृच्छात् सः नः विभुं धात् ( १ )- सित गुरक शारीर्वाद्मे इम कर्त्तुं कथे है, यह इम दुःख और बंधनसे मुक्त करे ।

२. वीरपत्नी भय मेखले ( २ )- हे मेखले ! तू तनु भोंको माननेवाली हो ।

३. अहं मूल्योः प्रह्लाचारी आस्मि ( ३ )- मैं सतयुक्तो समर्पित हुआ हुआ मरुधारी हूँ ।

४. भूतान् यमाय पुत्रयं निर्धापयत् ( ४ )- जन्तुओंसे सपुत्रके लिए एक पुत्रपत्नी बाचनी करवा हूँ ।

५. मेखलाया प्रह्लाथा तपसा भ्रमेण ( ५ )- मेखला सोचनेसे भ्रान्त, तप अर्थात् शीतोष्ण सहन करनेकी शक्ति परीक्षण करनेके लिए बल मिलता है और दीर्घायु भी मिली है ।

६. यां त्वा पूर्वं भुक्तकृतः क्षुपयः परिवेधिये । सा त्व परिष्वजस्व मां दीर्घायुश्चाय मेखले ( ६ )- हे मेखले ! तुझे प्राचीन कालमें पराक्रम करनेवाले ऋषियोंने बांधी थी । इसलिये मुझे दीर्घायुवाला करनेके लिए मेरे शरीरसे विपदी बह ।

( कां. ६; सू. १२० )

१. ययं गार्हपत्यः अग्निः तस्मात् इत् सुकृतस्य लोकं उपप्रयाति ( १ )- यह हमारा गार्हपत्य घरमें सुर-सिद्ध भवित हमें इस प्राणसे मुक्त करने पुण्यलोकमें पहुंचाना है ।

( कां. ७; सू. १७ )

१. ईशानः जगताः पतिः नः रथिं दधातु ( १ )- जगत्का स्वामी ईश्वर हमे धन देवे ।

२. तस्यै अमृतं संव्ययन्तु ( २ )- उत्तरे लिए अमृत-का प्रधान करो ।

( कां. १; सू. १२ )

१. महते सौभगाय उच्छ्रयस्य ( २ )- महान् क्षुधनगर्भकी प्राप्तिके लिए यह घर छोडा हो ।

२. घेनवः आ स्पन्दमाना साय आ ( ३ )- संध्या काक रामें जाग्रती हुई आवे ।

३. इमां शालां सयिता चायुग्मिद्रो मृदुस्पतिः निमि मोतु प्रजान् । उक्षन्द्वा मरतो घृतेन भगो उ राजा नि क्षुपिं तनोतु ( ४ )- सूर्य, वायु, इन्द्र मृदुस्पति इस कर्म महद्-करे, मरन् नामका मानमून पानीसे सहा-पणा करे और भगवान् सेतीके काममें सहायता करे ।

४. अस्मभ्यं सहर्षादेः रथिं वाः ( ५ )- हमे वीरता पुक्त मन दो ।

५. शरणा स्थेना देयी ( शाला ) देयेभिर्मिमिता अग्नि अग्रे तृण वसना सुमनाः ( ५ )- भद्र शरण लेने योग्य सुवदायक धामपुत्रके शरण, पर उत्तम विचारोंसे युक्त दिग्घ घर प्रारम्भमें देयोंने तैरपार किया ।

६. ( शाला ) मानस्य पत्नी ( ५ )- गृहस्थियोंके लिए अथवा सम्मालका कारण होता है ।

७. शतं जीवेम शरद्. सर्ववीरा. ( ६ )- सप्त प्रकारके वीर धर्मकी रक्षा करनेके लिए तैरपार रहनेवाले वीर होकर सौ धर्मलक जीवें ।

८. पूर्णं नारि प्रभर कुम्भमेतं घृतस्य धाराममू-तेन संभृताम् । इमान् पातृन् अमृतेना समद् धीष्टा-पूर्तमभि रक्षाल्येनाम् ( ८ )- गृहपत्नी अतिशिवोंको पालनेके लिए पीबक घटा लावे, भरपूर मधुरासने भाग हुआ तथा लोहे और पीनेवालोंको धरनेका विलासे, इन प्रकार अन्नदानसे घरका संरक्षण शोका है ।

९. अयश्मना यश्मनाशनाः भायः ( ९ )- भिलेगी और रोग दूर करनेवाले पानोंमें भरे हुए घडे घरमें रखे जायें ।

१०. गृहान् उप प्रसीदामि ( १० ) मैं परिश्रम करके घरको प्रगत और समर्थत्व स्थान बनाऊंगा ।

( कां. ९; सू. ३ )

१. शाले देवि ! त्वं देवानां सदाः अग्नि ( १ )- हे गृहस्त्री देवते ! तू देवताओंका स्थान है ।

२. मानस्य पत्नी उज्जिता ( शाला ) नः तन्त्रे रिषा भय ( ६ )- माणसे सोचा गया डंका घर हमारे शरीरके लिए सुखदायक हो ।

३. यः एता प्रतिगृह्णाति येन त्वं मिना अंसि ता जग्दृष्टी जीवताम् ( ९ )- घरमें रहनेवाले और उस धरको माणसे बांधनेवाले दोनों पुद्धारस्थाक जीवित रहे ।

४. परमेष्ठी प्रजापतिः एता प्रजायि चक्रे ( ११ )- परमेष्ठी प्रजापतिने तुझे प्रजाके लिए बनाया है ।

५. अग्निः ह्यन्तरापध्वरस्य प्रथमा द्वाः ( १२ )- घरमें अग्नि और जल अद्यय रहें, क्योंकि उल्ले हर तरफें बना होते हैं ।

६. अयश्मनाः यश्मनाशनाः भायः प्रभरामि । गृहान् उप प्रसीदामि ( १२ )- मैं घरमें देला जल भरना हूँ, कि जो स्वयं रोग उत्पन्न करनेवाले न होकर रोगोंका विना-शन करनेवाले हैं । इसप्रकार मैं घरकी प्रसक्तता बनाता हूँ ।

( कां. ६; सू. १०६ )

१. आयमे पराशये पुष्पिर्णाः दूयाः रोहन्तु ( १ )- घरके भागे पीठे आंगनमें घृतके समझे घृतें और घात बनें ।

२. तत्र या उरसः जलतां वा पुण्डरीकयान् हृदाः  
( १ )- यों पानीकी एक टंकी और बिले हुए कमरोंमें  
युक्त एक छोटा सा तालाब हो।

३. मुखो पराधीना कृषि ( २ )- घरमें पुरातने  
परस्पर विन्द दिशामें हो।

( कां. ७; सू. ६० )

१. अद्यत्वेण मित्रियेण चक्षुषा सुमनाः चन्द्रमानः  
युहान् ऐमि ( १ )- शान्त और मित्रकी दृष्टिसे और उत्तम  
मनसे युक्त होकर धेड़ पुरुषोंको तमस्कार कर मैं घरमें प्रवेश  
करता हूँ।

२. मयोभुवः ऊर्वस्वन्तः पयस्वन्तः घामेन पूर्णाः  
तिष्ठन्तः ते नः आयतः जानन्तु ( १ )- मुखदायक,  
बलदायक, धान्य और दूधसे युक्त मुखसे यह घर भरपूर  
है, ऐसा भातेवालोंको प्रतीत हो।

( कां. ७; सू. ८२ )

१. अस्मान्मु भद्रां श्रुचिणानि धत्त ( १ )- हम  
सबमें वन्याणकारक धनोंको स्थापित कर।

२. नः इमं देवता नयत ( १ )- हमारा यह पक्ष  
देवताओंको पड़ुथा।

३. अग्ने मयि क्षत्रेण वर्षमा सह अग्निं वृणहामि  
( २ )- प्रथम मैं अपनेमें धान्य, वर्षसू-जालसे तेज और  
बलसे युक्त अग्निको धारण करता हूँ।

४. उपसस्ताः अनिष्टतः वर्धतां ( १ )- तेने सेवक  
अहितक होकर चूड़िकी प्रात हो।

( कां. ४; सू. ६१ )

१. गावः भद्रं धनम् ( १ ) गावः भद्रं गृहं वृणुय  
( १ )- गाव धरकी कल्याणका स्वाग बनाये।

२. गावः अस्मे रणायन् ( १ )- गाव हमें रमणीय  
बनाये।

३. तस्य यजन्तः मर्त्यस्य उरगायं अर्धयं ताः गावः  
अनु विचरन्ति ( ४ )- गाव अनुप्यकी प्रशसनीय  
निर्मयतासे गाये घूमती हैं।

४. ता गावः संस्तुतर्षं न अभि उपयन्ति ( ४ )-  
वे गावे मात्र संस्कार करनेवालेके पास कर्मा नहीं जाती।

५. इमा याः गावः स इन्द्रः ( ५ )- जो गावें हैं,  
वही इन्द्र है।

६. गावः यूयं कुर्यां वित् मेदयथ, अधीरं वित्  
सुप्रतीकं वृणुय ( १ )- निवेदोंको वे गावें वृष्ट कराती  
हैं, निवेदोंको लेखी बनाती हैं।

७. गावः सूयवसे गजान्तीः सुप्रधाने शुद्धाः अपः  
पिपस्ति ( ७ )- गावें उत्तम प्रात खाएँ और उत्तम जल-  
स्नानमें सुद्ध पानी पिये। इससे गावोंका उत्तम पावन  
होता है।

( कां. ११; सू. ४ )

१. ददामि इति दूयात् ( १ )- मैं दान देता हूँ,  
ऐसा यजमान कहें।

२. तत् प्रजायत् अपत्यवत् ( १ )- यह दान मजा  
और सन्तान देनेवाला है।

३. जायमाना वशा स प्राहणान् देवान् अभि जायते  
( १० )- उत्पन्न होनेके साथ ही गाव प्राहणों और देवोंकी  
से आती हैं।

४. अधीनां देवाः अयुचन्नेव ह विवुषो घरा ( २२ )-  
गावका दान केवल विद्वान् नाक्षत्रको ही दिया जाए, ऐसा  
देवोंने कहा है।

५. वशा राजन्यस्य माता ( ३३ )- गाव क्षत्रियोंकी  
माता है।

( कां. ५; सू. १८ )

१. ते देवाः एतां तुभ्यं अक्षये न अददुः ( १ )-  
देवोंने यह गाव तुझे स्थायिके लिए नहीं दी है।

२. प्राहणस्य शताद्यां गां मा विपरसः ( १ )-  
प्राहणकी गाव छाने योग्य नहीं है।

( कां. १०; सू. ९ )

१. दात्रे आमिदां क्षीरं सर्पिः अथो मधु दुहतां  
( १३ )- दाताको यहीं दही, दूध, घी और गाद देवे।

२. होता अग्निः सुहुते कृणोतु ( २६ )- होता  
अग्निमें उत्तम माहुविर्षा काले।

३. वयं रयीणां पतयः स्वाम ( २० )- हम सब धन  
के स्वामी हैं।

( कां. ९; सू. ४ )

१. साहस्रस्त्रेयः क्रुपमः पयस्वान् ( १ )- हजारों  
कल्पियोंसे युक्त ऐसा यह बैल देवेवाला है।

२. वक्षणासु विथ्या रूपानि विभ्रत् ( १ )- नदी  
क निनीते यह बैल करने विविध रूप धारण करता है।

३. उखिया तन्तुं आतान् ( १ )- अपने प्रजा तन्तुओं  
को फैलाता है।

४. दात्रे भद्रं शिक्षन् ( १ )- दाताका कल्याण  
करता है।

५. अर्षां यो अग्ने प्रतिमा यभूयः प्रभुः सर्वस्यै  
पृथिवीय देवी ( २ )- सैउकी रचना नेपके साथ है।

वह सबका प्रभु है और पृथ्वी देवीके समान सबका उपकारक है।

६. साहस्ये पोषे अपि नः कृणोतु (२)- हजारों प्रकारकी दुष्टि वह हमें देवे।

७ सोमेन पूर्ण कलशं विभर्षि (१)- सोमरससे भरा हुआ कलश वह धारण करता है।

८ इन्द्रस्य रूपं वसानः (०)- इन्द्रके रूपको धारण करनेवाला है।

९. धान्यं विभर्षि पृतमस्य रेतः साहस्यः पोषः तमु यशमाहुः (०)- धी धारण करनेवाला, धीरवका स्थान और हजारों तरहकी दुष्टि देनेवाला, कहा जाता है।

१०. साहस्य स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाहुहोति (१)- जो ब्राह्मणको बैल देता है वह एकके रूपसे हजारों दान करता है।

११. त्रिपन्थि विश्वे तं देवाः यो ब्राह्मण ऋषभमानुहोति (१८)- जो ब्राह्मणको बैलका दान देता है, उससे सब देव सन्तुष्ट होते हैं।

१२. ब्राह्मणेष्वभ्यः ऋषभं दत्त्वा धरीयः कृणुते मनः (१९)- ब्राह्मणको बैल दान करनेवालेका, मन श्रेष्ठ होता है।

१३. तत्सचं अनुमन्वन्तां देवा ऋषभदायिमे (२०)- जो बैलका दान कराए है, उसके सब अनुकूल होते हैं।

( कां. ३; सू. १४ )

१. यत्-अर्हजातस्य नाम तेन यः ससृजामासि (१)- दिनभरमें जो श्रेष्ठवस्तु प्राप्त होती है, उसे तुम्हारे लिए सब छोड़ता है।

( कां. ७, सू. ७५ )

१. स्तेनः यः मा ईशत मा अयशंसः (१)- चोर तुम्हारे ऊपर अधिकार न करताए, कोई पापी भी तुम्हारे शासन न करे।

( कां. ७; सू. १०४ )

१. यथावशं तन्वः काः प्रजापति कल्पयाति (१)- हनुमानुसार शरीरके विषयमें प्रजाका बालन करने-वाला समर्थ हो।

( कां. ६; सू. १४१ )

१. स्वप्ना पोषाय श्रियतां (१)- स्वप्न दुष्टि करे।  
२. रुद्रः भूम्ने चिकित्सतु (१)- रुद्र दुष्टिके लिए चिकित्सा करे।

३. प्रया सहस्रपोषाय नक्षमः कृणुते (२)- इत प्रकार हजारों तरहकी दुष्टि लिए विश्व करो।

( कां. ६; सू. ७० )

१. यथा वृषण्यत पुंसाः मनः क्रियां निहन्पते (१)- निग प्रकार बलवान् पुरुषका मन खीन करता है।

( कां. ९; सू. २६ )

१. योगे सहचारं यायुः जुजोष (१)- वायु जिसके संग्राममें रहता है।

२. ये पदाद्यः परा ईयुः ते इह आपन्तु (१)- जो पशु चार चिरे गये हों, वे परा वापस लौट पायें।

३. स्वप्ना पूर्णं रूपधेयानि वेद् (१)- कुशल कारीगर पशुभोका आहार जानता है।

४. श्रियतां अस्मिन् गोष्ठे माम् नियच्छतु (१)- प्रेरणा करनेवाला उन्हें गोशालामें नियमसे रखे।

५. बृहस्पतिः प्रजान् भ्रानयतु (२)- सब पशुभोंकी वहचालनेवाला उन्हें बाधेमें डकटा करे।

६. सिर्नवाली एषां भयं आनयतु (२)- उन पशुभोंको दानपात्री देनेवाली स्त्री उनके भयमें चले।

७. अनुमते आरुमुपः तिपच्छ (२)- अनुकूल कार्य करनेवाली स्त्री उनके साथ चले।

८. पशवः भयाः उ पूरुषाः सं स्यन्तु (२)- पशु, घोड़े, गनुष्य सब मिल मिलकर रहें।

९. ससिता. अस्माकं घीराः (४)- अपने बच्चोंको हम उनके दूधसे पालते हैं।

( कां. ७; सू. ७३ )

१. ततो धर्मं पितरं (४)- गावका दूध गर्भ करके पिने।

२. तनायाः उक्रियायाः मघो दुग्धस्य पयसः घीतं पात (५)- दूधदुध गावका मधुर दूध मल करी और पिने।

३. सुहस्तः गोधुक्पूर्णां दोहन् (७)- मच्छे हाथों-वाला बाला गावको दुधे।

४. गोधुक् पयसा उपद्रव, उक्रियायाः पयः घर्मं सिव (१)- गावको दुध कर बाला शीघ्र भाते और उस दूधको मधि पर गर्भ करे।

५. सा महते संभगाय वर्धतां (८)- पाली हुई गाव अपने स्वामीका सौभाग्य बढ़ावे।

६. विश्वदानां तृणं भक्षि (११)- गाव हमेशा घान ही खाती है।

( कां. ९; सू. ५ )

१. सुकृतां लोकं गच्छतु प्रजानन् ( १ )- यह मार्ग जानकर पुण्यशालियोंके लोकको प्राप्त कर ।

२. तीर्थां समांसि अजः तृतीयं नाम्नां आक्रमताम् ( १, ३ )- अजन्मा अन्वकारको दूर करके तिसरे स्वर्ग-भागको प्राप्त हो ।

३. एतं आनय, आरभस्व, प्रजानन् सुकृतां लोकं गच्छतु ( १ )- उसको उत्तम मार्गसे चलाओ, शुभ कार्य-का शारंग करो, उल्लसिका मार्ग जानकर पुण्यलोक प्राप्त करो ।

४. एवा इन्द्राय भागं परिन्वयामि ( २ )- मैं तुम्हें इन्द्रका भाग समझकर अर्पण करता हूँ ।

५. अज विपश्यन् समांसि बहुधा तीर्थां ( ३ )- अजन्मा उस अन्वकारको अनेक प्रकारसे पार कर जाता है ।

६. यत् दुर्ध्वारितं चचार, पदः प्र अघनेनिविध, प्रजानन् शुद्धैः शक्रेः आक्रमताम् ( ३ )- जो दुराचार होगया है और जिससे पैर मलिन होगया है, उन पैरोंको पंकर शुद्ध और पवित्र पैरोंसे भागे जा ।

७. तृतीये नाम्ने अग्नि विध्रयन्ताम् ( ४ )- परिपक्व होकर पुण्यवान् लोकमें जा ।

८. शूतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ( ५ )- परिपक्व होकर सरकर्म करनेवालोंके स्थानमें जा ।

९. तृतीये नाम्ने अग्नि विध्रयस्व ( ८ )- तीसरे स्वर्ग भागका भाषण करे ।

१०. अग्नेः अग्निः नं वभृविध ( ९ )- अग्निसे अग्नि उत्पन्न हुई है ।

११. अजो अग्निः उ ज्योतिः आहुः अजः समांसि अपहन्ति ( ९ )- अग्निका नाम अज है, ज्योतिष्का नाम अज है, यह अज अन्वकारको दूर करता है ।

१२. अजः समांसि अपहन्ति ( ९, ११ )- अजन्मा अन्वकारको दूर करता है ।

१३. जीयता अजे ब्राह्मणे देयं आहुः ( ७ )- जीवित मनुष्य अपना आत्मसमर्पण परमात्माको करना उचित समझता है ।

१४. अहधानेन दत्तः अजः समांसि अपहन्ति ( ७ )- अहदापूर्वक समर्पित हुई हुई आत्मा सरप्रकारसे अहधनेको दूर करती है ।

१५. पंचौदनः पंचधा चित्रमताम् ( ८ )- अजन्मा आत्मा पांच प्रकारके क्षेत्रोंमें पराक्रम करे ।

१६. त्रीणि ज्योतिषि आक्रंस्यमानः ( ८ )- तीन तेजोको प्राप्त करता है ।

१७. पंचौदनः ब्राह्मणे दीपमानः ( ९, १० )- अजन्माको ब्राह्मण ज्ञानोके लिये समर्पण करना उचित है ।

१८. पंचौदनं अजे ब्राह्मणे ददाति ( ११, १२ )- अजन्माको ब्राह्मणके लिये समर्पित किया जाता है ।

१९. अजः हि अग्नेः शाकात् विप्रः अजलिष्ट ( १३ ) अग्निसे तप्तते अज उत्पन्न हुआ । ज्ञानोके महत्संघ से ज्ञानी विद्वान् उत्पन्न होता है ।

२०. अजोऽग्निः अज स्वर्गोऽग्निः ( १६ )- इन्द्र अजन्म-रहित है, इन्द्र स्वर्ग स्वर्ग है ।

२१. अजः पक्वः स्वर्गं लोके दधाति, निष्कृतिं वाधमानः ( १८ )- यह अजन्मा आत्मा परिपक्व होकर अजन्मलिको दूर करके स्वर्ग जाता है ।

२२. पंच ब्राह्मणे निदधे ( १९ )- जो ब्राह्मणको समर्पित करनेके लिये निश्चित किया है ।

२३. अजो वा इदमग्ने व्यस्रमत् ( २० )- यह अजन्मा जलके शारंगसे पराक्रम करता है ।

२४. एष वा अपरिमितो यज्ञः यदजः पंचौदनः ( २१ )- पंचौदन यज्ञ अपरिमित है ।

२५. अपरिमितं यज्ञं आप्नोति अपरिमिते लोकं अवरन्ध्रे ( २२ )- आत्माके समर्पणमें अपरिमित लोक प्राप्त होगा है ।

२६. नैदाद्यं, कुर्वन्तं, संयतं, विधन्तं, उद्यन्तं, अभिभुवं नाम क्रतुं येदध्रियं आदत्ते आत्मना भवति ( २३-२६ )- उन्नता कर्तृत्व, मयस, पोषण, उद्यम और अनुजय ये आत्माके क्रतु हैं । जो इन्द्र क्रतुमूर्ति काम लेना उन्नता है, वह धी प्राप्त करता है और आत्माकी शक्तिसे युक्त होगा है ।

( कां. ७; सू. १९ )

१. प्रजापतिः इमाः प्रजाः जनयति ( १ )- प्रजापालक परमेश्वर सत्य प्रजाओंको उत्पन्न करता है ।

( कां. ७; सू. १८ )

१. दिव्यस्व उद्गः दति विष्य ( १ )- विष्य प्रदत्ते भरे हुए बर्तन सोलकर दत्त ।

२. जीवदानुः पृथिवी प्रजभानां ( २ )- अज देनेवाली उर्मालको उत्पन्नक बनाई जान् ।

( कां. ७; सू. ७२ )

१. सूरः सधनः मध्यं विजगाम भ्रातं हविः सुप्र-  
पाहि ( १ )- सूर्य मध्यान्दमे पहुच गया है, मत अब  
पकड़ सबको खाओ ।

२. माध्यंदिनस्य दध्नः पिय ( १ )- दोपहरके  
योग्यके साथ दही खावें ।

( कां. ६; सू. ११७ )

१. अनुणाः आसिन् अनुणाः परस्मिन् तृतीये लोके  
अनुणाः स्वाम । ये देवयानाः पितृपाणाश्च लोकाः  
सर्वान्यथो अनुणा आश्रियेम ( ६ )- इस लोक और  
परलोकमें हम अनुणा हों, तीसरे लोकमें भी हम लज्जरहित  
हों । जो देवयान और पितृयानमार्ग हैं, उनमें भी हम लज्ज-  
रहित होकर रहें ।

( कां. ७; सू. २३ )

१. दौष्यन्त्यं दीर्घावित्यं रसो अभ्यं अराध्यः  
दुर्गाम्नीः सर्वाः दुर्वाचः ता अस्मभ्याशयामसि ( १ )-  
दुष्ट स्वाम, दुःखमय जीवन सप्तसौका भय, पीडा, उन्नतमें  
रक्षावर्ते निर्धनता, बुरे शब्द बोलनेका स्वभाव ये सब विप-  
त्तियां हमसे दूर हों ।

( कां. ६; सू. १२९ )

१. अरातयः अपद्रान्तु ( १, २, ३ )- दुष्ट भाग जावें ।

( कां. ७; सू. ३१ )

१. यो नो द्रोष्टि अचरः सस्पदीष्ट यं उ द्विष्मः तं  
उ प्राणो जहातु ( १ )- जो भलेका ही हम सबसे द्वेष  
करता है, वह नीचे गिरे, उसी प्रकार जिस मध्येसे हम सभी  
द्वेष करते हैं, उसे उतारके प्राण छोड़कर चले जायें ।

( कां. ६; सू. ४५ )

१. गृहेषु गोषु मनः ( १ )- गृहस्थका मन घरमें और  
गाय आदि पशुओंमें रमना चाहिए ।

२. मनस्याप परा अपेहि कि अशस्तानि शंससि,  
परेहि न त्वा कामये ( १ )- हे पत्नी विचार ! दूर जा, मुझे  
तुझे व दूरी बातें सिखाता है, दूर चला जा, मैं तुझे  
वहीं चाहता ।

३. यत् जाग्रतः स्वपन्तः उपारिम ( २ )- जो  
जाग्रतवस्था या स्वप्नावस्थामें हम करते हैं ।

४. सुषा चयमसि ( ३ )- यदि मत्तलव्यवहार हम  
करेंगे तो उसका परिणाम क्या होगा ।

( कां. ७; सू. १०० )

१. अहं अन्तरे ब्राह्म कृण्वे ( १ )- मैं जानको अपने  
हृदयमें रखता हूँ ।

( कां. ७; सू. १०१ )

१. तत् सर्वं मे शिवं अस्तु ( १ )- वह सब मेरे  
लिए शुभ हो ।

( कां. ९; सू. १ )

१. सर्वाः प्रजाः द्वाष्टिः प्रतिनन्दन्ति ( १ )- सब  
लोग हृदयसे आनन्दित होते हैं ।

२. मस्यैषु महान् भारः चरति ( ४ )- मूलोंमें महान्  
तेज ही संचार करता है ।

३. यो अस्याः सहस्रधातौ अक्षितौ सती अन-  
पस्फुरन्ती ऊर्जं दुहाते ( ७ )- जो उसके सहस्र धार  
पुष्प अक्षयस्तन हैं, वे अविच्छिन्न होकर चलवार रसका  
दोहन करता है ।

४. एषा मे यर्चः तेजः यत्ते ओजः च धियतां  
( १० )- मेरा तेज, ज्ञान, धर और नीचे संभित हो,  
बढ़ता रहे ।

( कां. ५; सू. १८ )

१. यत्र ब्राह्मणं हिंसन्ति, तत् राष्ट्रं बुद्ध्युना हन्ति  
( ८ )- जहाँ ब्राह्मणको दुःख दिया जाता है, वह राष्ट्र  
विपत्तियोंमें संसता है ।

२. ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा कश्चन राष्ट्रे न जागर  
( १० )- ब्राह्मणकी गाय काकर कोई राष्ट्रमें जीवित नहीं  
रह सकता ।

३. यर्षं ब्रह्मण्य न अभिचरति ( १५ )- ब्राह्मणको  
कष्ट देनेवाले पर वृष्टि नहीं होती ।

४. न मिथं सर्वा नयते ( १५ )- मित्र भी उसके  
चरनें नहीं रहते ।

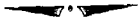


# अथर्ववेद-- [ भाग तीसरा ]

' गृह स्था श्रम '

काण्ड-सूक्त-विषय-मंत्रसंख्या-ऋषि-देवताओंकी

## अनुक्रमणिका



काण्ड	सूक्त	विषय	मंत्रसंख्या	ऋषि	देवता	पृ०
६	१११	१ पवित्र गृहस्थाश्रम	५	भृगुः	विश्वकर्मा	११
१	१४	२ कुलवधु-सूक्त	४	सुमन्त्रिणः	बह्यो यमो वा	१३
६	८१	३ ऋग्यजुः क्रिये वर	३	भगः	इन्द्रः	१७
२	३६	४ विशादका मंगल कार्ये	८	पतिवैदनः	शमीयोमौ	१८
६	६०	५ पिशाह	३	अथर्वी	अथर्वी	२३
१४	१	६ विशाह-प्रकरण	६४	सूर्योवाशिषी	आरमा	२४
१४	२	७ विशाह-प्रकरण	७५	सूर्योवाशिषी	आरमा	३७
२	३०	८ पति और पत्नीका मेम	५	प्रजापतिः	अश्विनी	७५
६	८	९ दम्पतीका परस्पर प्रेम	३	अमरुतिः	कामाख्या	७८
६	९	१० दम्पतीका परस्पर प्रेम	३	अमरुतिः	कामाख्या	७८
७	३६	११ पतिपत्नीका परस्पर प्रेम	१	अथर्वी	अश्वि	७९
७	३८	१२ पतिपत्नीका प्रेमवत	५	अथर्वी	वनस्पतिः	८०
६	७३	१३ एक विशाहके रक्षणा	३	अथर्वी	कामाख्या, नाना देवता	८१
६	८२	१४ परस्पर प्रेम	३	अथर्वी	इन्द्र, मन्त्रोच्यः	८१
६	१०१	१५ परस्पर प्रेम	३	अमरुतिः	अश्विनी	८३
१०	२	१६ अथर्वनाशक रक्षणमणि	१५	अथर्वी	वसवमणि, वनस्पति, चंद्रमा	८३
७	३७	१७ पानी पठिके क्रिये बछ बनावे	१	अथर्वी	वाहः	८७
३	३६	१८ वसतिथी दिवा	६	अथर्वी	अग्नादयः	८७
६	७४	१९ सोमनस्त्र	३	अथर्वी	श्रीमन्वसन्, नानादेवता, त्रिपावा	८८
१	१८	२० श्रीभाग्य-वर्धन-सूक्त	४	इतिगोदाः	वेनाथक श्रीगणेश	८९
६	१२९	२१ श्रीभाग्य-वर्धन	५	अथर्वी	वनस्पतिः	९२
७	१६	२२ श्रीभाग्यके क्रिये बछाओ	१	भृगुः	अश्विनी	९३
४	१४०	२३ दाँतोंको पीटा	३	अथर्वी	मद्गणेशपतिः, इन्द्राः	९३
६	१३३	२४ केसवर्धक औषधि	३	वसिष्ठः	वनस्पतिः	९४
६	१३७	२५ केसवर्धक औषधि	३	श्रीशुक्लः	वनस्पतिः	९५
६	१३	२६ केसवर्धक औषधि	३	अमरुतिः	अग्नादयः	९५
६	५९	२७ अथर्वती औषधि	३	अथर्वी	इन्द्र, मन्त्रोच्यः	९६
६	७२	२८ आग्निहरण	३	अथर्वीहरणः	शेवोमर्क	९७
६	७८	२९ औदुम्बरी रुदि	३	अथर्वी	अग्नादयः, श्वहा	९७

क्र.सं.	सू.सं.	व्य. विषय	मंत्रसंख्या	श्रुति	वेद्यता	पृष्ठ
७	३५	३० शौच-विहित	३	अथर्षा	जातवेदा	१८
४	३८	३१ उषम गृहिणी का	७	वाहरामणि	अपरा, कपमः	१९
५	१७	३२ आदि पातिमत्यकी रक्षा	१८	गणेश	मङ्गलाया	१०४
६	९	३३ धाम	३५	अथर्षा	काव	१०९
७	२१	३४ कामादिषु धामन	१०	वहित	भक्ति	११७
८	२५	३५ कामका भाग	६	सुपु	मिथ्यावर्षा, कामिपु	११४
९	२३	३६ गौर पुत्रकी उरुपी	६	मङ्गा	अन्वया, शोभि, धामाशुविपी	१२८
१०	२५	३७ गमैवारणा	१३	मङ्गा	शोभिर्गमै शूषिष्वाद्गो देवता	१३०
११	१७	३८ गर्भैवारणा	४	अथर्षा	गर्मैद्दहणम्, दृषिवा	१३९
१२	६	३९ गर्भैवार-निवारण	२६	मानुनामा	सौमिका	१३३
१३	११	४० पुत्रदान	१	प्रजापति	रैता, मन्त्रोक्तदेवता	१४२
१४	११	४१ सुख-प्रसूति सूक्त	६	अथर्षा	सुखादयो, मानादेवता	१४३
१५	१७	४२ रक्तप्राव बह करना	४	मङ्गा	शोभित अमन्यथ	१४७
१६	४४	४३ रक्तप्राव बह करनेको औपवि	३	विधासितः	वनस्पति	१४८
१७	११०	४४ नवचात्र वासव	३	अथर्षा	शक्ति	१४९
१८	१११	४५ सतानका सुख	१	मङ्गा	इषम	१५०
१९	८१	४६ पाके दो बालक	६	अथर्षा	सावित्री	१५०
२०	६८	४७ गृहण	६	अथर्षा	मन्त्रोक्ता	१५३
२१	१३३	४८ मेघला कपन	५	अथर्षा	मेघला	१५४
२२	१३०	४९ कामकी वापस मेरो	४	अथर्षा	रमर	१५६
२३	१३१	५० कामकी वापस मेरो	३	अथर्षा	रमर	१५७
२४	१३२	५१ कामकी वापस मेरो	५	अथर्षा	रमर	१५८
२५	८१	५२ कृष्णका धारा	३	अथर्षा	आदित्य, जह	१५९
२६	१२०	५३ मालाविताकी सेवा करो	३	शोभिका	मन्त्रोक्ता	१६०
२७	१७	५४ धन और धन्यु देवी प्रार्थना	४	सुपु	धाता, सविता, मन्त्रोक्ता	१६१
२८	१५	५५ गृहनिर्माण	९	मङ्गा	शान्ता, अशोककृति	१६५
२९	३	५६ गृहनिर्माण	३१	भुवधिरा	शान्ता	१७३
३०	३	५७ घरकी शोभा	३	प्रशोभन	सुकोशाला	१७४
३१	६०	५८ रमणीय घर	७	मङ्गा	सुहा, दास्योपति	१७५
३२	८२	५९ धाम	६	शौनक (उपक्रम)	शक्ति	१७६
३३	३१	६० धाम	७	मङ्गा	धाम	१८१
३४	४	६१ मन्ना धाम	५३	कन्दन	वरा	१८५
३५	१०	६२ वधवर्ती धाम	३४	कन्दन	वरा	१८५
३६	५	६३ मङ्गलकी शो	७३	अथर्षा	मङ्गला	१८५
३७	१८	६४ मङ्गलकी शो	१५	मन्त्रो	मङ्गला	१८५
३८	९	६५ शौचिना शो	१७	अथर्षा	शौचिना	१८५
३९	७	६६ शौचा विशुद्ध	२६	मङ्गा	शो	१८५
४०	४	६७ शौच	२४	मङ्गा	अथम	१८५

क्रां	सू	स विषय	मंत्रसंख्या	शक्ति	देवता	पुष्प
३	१४	६८ गौशाळा	६	महा	शान्तिदेवता, गोष्ठदेवता	२१२
७	७५	६९ गायत्री चालना	२	उपरिब्रह्म	ब्रह्मा	२११
७	१०४	७० गौरी चर्मय बनाना	१	महा	आत्मा	२११
६	१४१	७१ गौरीपर चिन्द	३	विश्वामित्र	अश्विनी	२१६
६	७०	७२ गौ-सुधार	३	आहुतवन	अम्बा	२१६
२	२६	७३ गौ-रस	५	राजिता	पद्म	२२१
७	७१	७४ गाय और महा	११	अथवा	धर्म, अश्विनी	२२६
९	५	७५ चंभोरन अन्न	३८	सुगु	चंभोरनोऽम्बा, चंभोरा	२३०
७	१२	७६ मन्त्रार्थ पुष्टि	१	महा	प्रजापति	२४५
७	१८	७७ शेतोपे अन्न	२	अथवा	शुभिवि, परमेश्वर	२४५
६	१४१	७८ अन्नकी टाटि	३	विश्वामित्र	वायु	२४६
६	७१	७९ अन्न	३	महा	अग्नि, वैश्वानर, देवाः	२४६
६	१६६	८० अन्नमात्र	३	जाटिकावन	विद्वान्	२८८
६	५०	८१ शान्ति की सुखा	३	अथवा (अमरकालः)	अश्विनी	२४९
७	७०	८२ शान्तवन	३	अथवा	ईश	२५०
६	१६	८३ शौचधिरसका पान	४	शौचक	चाम्पा, शशिकदेवता	२५१
६	११७	८४ शान्तिरहित होना	३	शौचिकः	अग्नि	२५०
६	११८	८५ शान्तिरहित होना	३	शौचिकः	अग्नि	२५१
६	११९	८६ शान्तिरहित होना	३	शौचिक	वैश्वानरोऽग्निः	२५४
७	३४	८७ शिवाय हौनिकी प्रार्थना	१	अथवा	आतपेदा	२५५
७	२८	८८ शिवपान	३	मेधातिथिः	शिव	२५६
७	३३	८९ शिवलिकी हटाया	१	यम	शुक्लप्रनाशन	२५६
६	१०९	९० शिवलिकी-प्रति	३	अथवा	भग	२५७
६	३१	९१ अथवा रक्षा	१	सुशक्तिः	ईश	२५७
६	४५	९२ सुष्ठु रक्षण	३	अग्निरा प्रवेत्ताः यमय	शुक्लप्रनाशनम्	२५८
६	४६	९३ सुष्ठु रक्षण	३	शक्तिरा प्रवेत्ता यमय	शुक्लप्रनाशनम्	२५८
७	१००	९४ सुष्ठु रक्षण न आनेक यमय	१	यमः	शुक्लप्रनाशनम्	२६१
७	१०१	९५ सुष्ठु रक्षण न आनेक यमय	१	यम	शुक्लप्रनाशनम्	२६१
७	३०	९६ अन्न	१	सुशक्तिः	शान्तिदेवता, शिव, प्रजापरपति, राजिता अ	२६२
९	१	९७ स्यादेवा और गोमहिवा	२४	अथवा	वायु, अश्विनी	२६२
९	६	९८ अग्नि के घरदार	३९	महा	अग्नि, शिव	२६३
५	११	९९ शान्ति की बट	१५	शशिक	महाशक्ति	२७३
६	११८	१०० शशिकी हौच बनाना	५	अथवा	वन्द्यपतिः	२७३



# अथर्ववेद-- [ भाग तीसरा ]

' गृहस्थाश्रम '

काण्ड-क्रमानुसार सूक्तोंकी

## अनुक्रमणिका

कांड	सूक्त	मंत्र	पृष्ठ	कांड	सूक्त	मंत्र	पृष्ठ
१	११	६	१४३	६	४४	३	१४८
	१४	४	१३		४५	३	१५८
	१७	४	१४७		४६	३	१५९
	१८	४	८९		५०	३	१४९
२	२६	५	२२३	७	५९	३	९६
	२०	५	७५		६०	३	१३३
	२६	८	१८		६८	३	१२९
३	१२	९	१६२	७	७०	३	१४६
	१४	६	२१९		७१	३	१७
	२१	१०	११७		७२	३	८१
	२३	६	१३८		७३	३	८८
	२५	६	१२४		७४	३	९७
	२६	६	८७		७८	३	१५१
४	२१	७	१७७	७	८१	३	१७
	३८	७	९९		८२	३	८२
५	१७	१८	१०४	७	८९	३	८३
	१८	१५	२०९		१०९	३	१७३
	१८	१५	२७४		१०६	३	१४९
	१९	१५	१३०		११०	३	१४८
६	८	३	७८	७	११६	३	१५७
	९	३	७८		११७	३	१५३
	११	३	१४३		११८	३	१५४
	१६	४	२५१		११९	३	१६०
	१७	४	१३३		१२०	३	१६०
	२१	३	९५		१२२	५	११

कांड	सूक्त	मंत्र	पृष्ठ	कांड	सूक्त	मंत्र	पृष्ठ
६	१११	३	१५७	७	६०	०	१७४
	११०	४	१५६		७१	३	१५०
	१११	५	१५७		७३	११	१५६
	११०	५	१५८		७५	२	२०१
	१११	५	१५७		८१	६	१५०
	१११	६	१५७		८१	६	१७१
	११०	६	१५६		१००	१	१६१
	११८	५	१७३		१०१	१	१६१
	१११	५	१७१		१०४	१	१६१
	११०	३	१७३		१११	१	१५०
	१११	३	१७३	८	६	१६	१७३
	१११	३	१७३	९	१	१४	१६३
	१११	१	१७३		३	१५	१०२
	११०	४	१६१		३	३१	१६६
	११८	३	१७५		४	१४	१११
	१११	१	१७५		५	३८	१३०
	१११	१	१५६		६	६१ (६)	१६७
	११८	१	१५६		७	१६	१०१
	११०	१	१६१	१०	३	१५	८१
	१११	१	१५७		१	१७	१०५
	११०	१	१५६		१०	३४	१८१
	१११	३	१७८	११	४	५३	१८१
	१११	१	७१		५	७३ (७)	१६४
	११०	१	८०	१४	१	६४	१४
	११८	५	८०		०	७१	१७

# अथर्ववेद- [ भाग तीसरा ]

‘ गृह स्थि श्रम ’

## वर्णानुक्रम मंत्र-सूची

मंत्र	शुद्ध	मंत्र	शुद्ध	मंत्र	शुद्ध
अथगुरुधो रात्रन्व	१०९	अदेवभूमिगिरी	१०	अग्नि वर्षता पवच्छामि	१७
अक्षितास्त उपसदो	११६	अधि स्कन्द वीरवस्त्र	१३१	अग्नीतुना द्विभ्येन	११०
अक्षुण्णोवर्षा रिततं	१३८	अथ्यशो वाभी मम	११०	अग्नीतुना मेवा	१५
अक्षयौ नौ मधुसंकाशे	७९	अनदुष्कारत्वं	१६	अभूतिद्वयद्विषमाण	१७७
अग्नि कन्वाद् भूत्वा	१९७	अनपसामपगुहं	१८४	अभ्यसैत सुपुतिं	१७५
अग्निमन्तव्रतावमिति	१६९	अनुपलच्छन्तो मणातुप	१९६	अथ पीतो मज्जा	११०
अग्निरासानं वदिवतो	११०	अनु एष्य इवामिन	१३१	अथ दूमी वक्ष्या०	३६
अग्निरेवं कम्पाव्	१००	अनुभित प्रमृशन्त	१३४	अनुर्वना मारुणाद्	११८
अग्निर्वै इन्द्रो वव.	११९	अनु इवामि	१८१	अनुवां वणि वी०	१४७
अग्निर्वै नः पदनामः	१०५	अनुपूर्वकथा धेनुं	१३६	अनीत वासो दद्याद्	१३३
अग्नीषोमा० मां कागाप	१८४	अनुमतेऽतिवदं	१५७	अथोऽहमस्मि वा एव	५०
अग्ने कात न् प्र सुरा	१५५	अनुया अरिमननुया	१५३	अवं ते हस्ता विपता	८४
अग्ने उर्ध्वं महेते	१६८	अनुया अत्राव	३०	अयना बालवैवा	३३
अथविषामिपतन्ति	१९६	अनुया वां च वृषिभ्यो	१६९	अवं पिपान इदं	११५
अथावतामधि तदा	१०५	अनुया वां च वृषिभ्यो	१६९	अथ मथिर्वेदो	८४
अथै र्वक्षुरपतिशो	४०	अनुया वां च वृषिभ्यो	१६९	अवं मे वाप	८५
अथै पचमाना	१९६	अनुया वां च वृषिभ्यो	१६९	अवं मे वरुषो	८३
अथै पदार्थैव	१९९	अनुया वां च वृषिभ्यो	१६९	अथपाम्ना विरे वा	८४
अथै प शिरो जहि	१९९	अनुया वां च वृषिभ्यो	१६९	अरिहोऽहमरेष्ट	८५
अथावताव पचमस्या	४९	अनुया वां च वृषिभ्यो	१६९	अर्धमयी यमावहे	१७
अथै च पचत	१३८	अनुया वां च वृषिभ्यो	१६९	अथश्रामि पूर्वा	१५१
अथ. पच स्वने	१३४	अनुया वां च वृषिभ्यो	१६९	अथपीठ कण्ठो मम	१११
अथक्षिन्ते विदिदे	१३१	अनुया वां च वृषिभ्यो	१६९	अथर्तिवृषाना	१९७
अथ. रोह सुकृता	१३१	अनुया वां च वृषिभ्यो	१६९	अथश्या निःकृता	११८
अथो अग्निमधु	१३१	अनुया वां च वृषिभ्यो	१६९	अथानुद्वैतवस्त्रं	१९८
अथो वा इदमग्नि	१३४	अनुया वां च वृषिभ्यो	१६९	अथिना नोऽपिभ्यो	१९७
अथो शोभेत्विष्ट	१३३	अनुया वां च वृषिभ्यो	१६९	अथिना वाऽपिबी	१७१
अथोऽहमस्मि	१३४	अनुया वां च वृषिभ्यो	१६९	अथपदिवर्धन	१७१
अथिनामवर्धन्त	१७४	अनुया वां च वृषिभ्यो	१६९	अथुकि इदमग्नि	१७१
अथिनाः इवत्त वपनु	१५४	अनुया वां च वृषिभ्यो	१६९	अथं ना तनुमंथि	१७

श्रम	पृष्ठ	श्रम	पृष्ठ	श्रम	पृष्ठ
आश्रितो वारिषेण	१३५	आ वा प्रजा अन्नमद्यु	४५	इयमेतं भारो वति	१२
भद्रावरी चद्रादि	२७५	आरिराजमाने वृष्टौ	१८५	इषु रिव दिग्धा वृग्ते	१०५
असता बन्धनं शुभ्र	१९७	आविष्टिष्ठायविषा वृदाशुः	२०१	इष्टं च वा एष पूर्तं	२७०
असर्वेशोभारतु	११९	आशयनं विद्यासनं	२९	इह शिवः	१८
असितस्त्ये तं ब्रह्मण	१४	आशासाना मौनमर्ध	३९	इदेषाय व परो	३०
असौ मे मरुतातदिति	१५६	आशुष्यन्त वर्ष देवं	१४६	इदेषविन्द सं तुव	४९
अस्याद् पौरुष्याद्	१४८	आस्तस्ते वावा अभवन्	१९३	इदेष पाव एतनेद्यो	२१०
अथैष्वर्य वांजम	१२९	आस्ये ब्रह्मणाः	२१	इदेषामे भधि धारव	१७६
अस्यता परिहृता	१९७	आह सिदामि	८३	इदेष धृवा नि मिशोमि	१६९
अहं वदमि मेरुं	८०	आ हरामि गर्वा	२२४	इदेष धृवां प्रति तिष्ठ	१६२
अहं वि त्वामि माप	३५	आहुतास्यमिदुतः	१५५	इदेष सन्त प्रति दय	२५१
आह म्प्रदव धनवते	१९	हृदय ते वि नृत्तमि	१६९	इदेष स्त मानु पात	१७५
आगच्छत आगतस्य	१७	इदं क्षमामि भेषमं	८०	इदेष स्त भाप वाता	८१
आ वालो आगन्नुत	१७७	इदं तद् रूपं यदवहा	३५	इदेष स्तं मा नि यौष्टे	१८
आपच्छिष्यमैगुणितो	२५	इदं यस्त्वः शिरो	८२	इमानाना सुकृता	२३३
आश्रमि वाश्रम्या	१२५	इदं सु मे नरः शत्रुत	३९	इभ्यांशावयनं जाति	१९१
आश्रमं विभर्ति	२१३	इदं हिरण्यं शुभ्रस्त्वयम्	१९	उक्षाशाय वशाशाय	११८
आश्रमश्च मनुष्यस्य	८३	इदं वदे ह्यन्तं प्रामं	३१	उषांशो राशुशु	१२३
आ से ननु धरिता	१९	इदमाश्रयं पृतनञ्जुवाणाः	१११	उषांशो मन्मथानो	१७५
आ ते वीर्यं गर्भं पशु	१२८	इदमिदमेवास्य रूपं	२३५	उष्टुस्त्व वहुभंग	१४६
आम वन्दुर्वरा	४०	इदं प्रत्य तिष्ठन्	११०	उत यद् वरयो दसा	१०५
आमकानं रिहर्	२३६	इन्द्रस्य कुक्षिरेणे	१५०	उतैनी जेरो नाददात्	१८८
आ दत्ते भिनना	१२८	इन्द्रस्यौजो इरणस्य	२१३	उपक्रामताः परि	१३१
आददानमाश्रितमि	१९८	इन्द्रासौ कामं सरवं	१११	उपिष्टनाव पश्यते	२५०
आश्रयं जितं श्रीताय	१९९	इन्द्रासौ व वापुचिरी	३४	उपिष्टतो विद्यावसो	४३
आश्रीर्वा वामशाया	१३४	इन्द्रयो मषद् वापुः	२०९	उपिष्टेताः किमिच्छन्ती	४१
आ नयेतमा रमरथ	२३०	इन्द्राय भागं परि तथा	२३०	उपुदरसोमुदतुमा	११४
आ नो कामे दुर्मति	१८	इरीतिभिर्बहुला	२५७	उर्वीच्या दिशः श्लाकायाः	१७१
आप्नोति न लोभम्	२७३	इरो दचनेने तुलते	१७३	उदार्थिणं मुनिकरी	१३६
आश्रयो अनाश्रयो	२५१	इमे यावा प्रजया	३०	उद्वेन्दती संजयन्ती	२९
आदने ते पाश्वणे	१७३	इमे गोष्ठं पश्यतः	२२३	उपपश्यन्मप रक्षो	३१
आयमस्य सविता छुरेण	१५३	इमे विमर्षे वरुणं	८५	उद् कर्मिः शम्भा	४०
आ यवानं सं बर्षे	१६७	इसौ शाली सविता	१४०	उन्मादयत मरुतः	१५७
आशुष्य ह्वं च नम्य	१९४	इया आपा म भशामि	१७०, १६३	उप इव पयसा	२१७
आ गीह चर्षेण वीद	४९	इया वासिष्ठस्यः पृथिवीः	९५	उपमितां प्रतिमिता	१६६
आ रोह तरेपं शुष्यनस्य	४३	इया वासो कृत	९८	उदरदुर्णादि वरुणमधि	४१
आ रोहेनपुप धनस्य	४५	इमे पृथा मरुमुष	१७४	उप हाति प्रति	२७१
आ वापगन्मवतिः	१८	इपं नार्थुप मृते	४९	उप हरति इवांश्वः	२६९





श्लोक	पृष्ठ	श्लोक	पृष्ठ	श्लोक	पृष्ठ
तेजस्वरु प्रथमा	१०४	दीव्यर्षी दोग्रविषयं	२५६	मील्लोहिते भवति	१९
ते कुष्ठिष्ठा हराम्ये	२१४	हे ते धके सुर्वे	१७	सुदस्य काम प्र	११०
तेन मूलेन हविषा०	९७	हृष्यास्वात् अगुरक्षान्	१३७	नेत्र मासे म पोत्रिषि	१४४
तेषामाश्रयाना	२६९	अस्त्वसि शाले	१६९	मैता ते देवा अरहुः	२०९
तेषां न कथना०	२७३	घातः श्रेष्ठेन रूपेण	१३१	न्वदितद्या शरीहिष	९१
तोषित्वेन अन्त	२५१	घाता च उचिता च	२०९	एव च दक्ष्णा इत्योतिः	२३६
मिथु पामेत्तु तं	१९०	घाता दद्यात् वाशुदे	१६१	एव च दक्ष्णा एव च	२३५
त्राणि वै मशाजालानि	१८७	घाता इवात्तु नो	१६१	एव चोदनः एव च	२३१
तं वीरया श्रेष्ठतमा०	२७७	घाता वापार वृधिवी	२३	एव च एव समतप	२३१
त्वया प्रसूने मृदितं	१९९	घाता रतिः भवितेद	१६१	एव चोदनः एव च	१८१
त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेण	१३१	घाता भिक्षा तर्प्याः	१६१	एव च एव रक्ष	१९४
त्वष्टा आनामजनवत्	९८	श्रुवाया दिशः	१७१	एव च एव रक्ष	२७०
स्वष्टा वाको अश्वत्थ	३४	न श्रेष्ठवान न द्विषो	२४५	एव चोदनः एव च	१८
द्विषाया दिशः	१७१	न ता अर्वा रेणु	१७७	एव चोदनः एव च	२९
एवामीनेत्र मूवात्	१८१	न ता नश्रित न	१७७	एव चोदनः एव च	१७७
दक्षोऽपि दक्षोऽपि	१५१	नरी सुवीं तर्पण	२१०	एव चोदनः एव च	१७७
दिवस्त्वष्टिवाः	२६२	न मादृशो विवित्तव्यो	२०३	एव चोदनः एव च	२५९
दिवं श्रुष्वी अगु	११८	नमस्तस्मै नमो	१६८	एव चोदनः एव च	१५८
दिष्टोदिशः शानायाः	१७१	नमस्ते अस्तु नमः	१८७	एव चोदनः एव च	१६१
दुरदभैरमा शो	१८३	नमस्ते आयमाना	१८९	एव चोदनः एव च	२६१
दुर्गाया च सुनाया	११३	नमो यन्मनस्य	४४	एव चोदनः एव च	१३०
दुष्कर्म्यं काम दुर्गितं	११०	नवं वधानः सुभिः	४६	एव चोदनः एव च	१२३
दंष्ट्रं मनान् अन्वदा०	९४	न वर्षं मैत्रावरुणं	१७६	एव चोदनः एव च	१३७
इह मूलमार्थं यच्छ	९५	न विष्णुः	१०६	एव चोदनः एव च	२६३
इव क्रमा गुहा	२१०	नयेत् ता न	२७५	एव चोदनः एव च	१९६
देवपशुचरति	२०४	न वै वातश्च	११४	एव चोदनः एव च	२१४
देवते कविता	९३	नवानवो मयधि	२९, १५१	एव चोदनः एव च	१३७
देवदेतिर्दिवयाणा	१९६	मारुते वृष्टिं वि दुहन्ति	१०६	एव चोदनः एव च	२११
देवा भये म्पयच्छ	४३	नास्य क्षमा निष्कलीबः	१०६	एव चोदनः एव च	२१५
देवार्था वारुणः वृक्ष	२०९	नास्य खेपे पुच्छरिषो	१०६	एव चोदनः एव च	१४९
देवर्षी माग सवताह	२१९	नास्य आसा घतवः	१०६	एव चोदनः एव च	३७
देवा घषामयाचन्	१८३, १८४	नास्य श्रेष्ठः कल्याणो	१०७	एव चोदनः एव च	१०६
देवा वशां परंपदन्	१८८	नास्य श्रेष्ठा कुशव०	१०६	एव चोदनः एव च	१०६
देवा वा दत्तरथा	१०५	नास्यव्यानि	२३५	एव चोदनः एव च	११८
देवाः पितरो	२०६	निररणि सविता	८९	एव चोदनः एव च	२११
देवी देवामधि	९४	निररुणं कलायं	८९	एव चोदनः एव च	१८६
देवेर्देवं मगुरा	४५	निर्देष्टुं भवति	२०३	एव चोदनः एव च	१६३
देवैर्देवैः परस्थाना	२३३	नि शीघ्रतो नि वगत	१५७	एव चोदनः एव च	२८, १५०

मंत्र	पृष्ठ	मंत्र	पृष्ठ	मंत्र	पृष्ठ
प्रीयन्ती दम्पाऽन्तरिक्षं	१६६	सुहस्पते उषितः	१३	मा विचिह्नं कुमार्यै	१६
प्रथया स वि क्रीणते	१८१	सप्रगवी पश्य	१७४	मिथ रक्षमाणः	२३०
प्रती य वा एष	१७०	अद्वा च क्षत्रं च राष्ट्रं	१९४	मिन्मथ वरयथ	२०१
प्रथानां प्रथमनाथ	१७९	अद्वा च क्षत्रं च धीर्गो	१०३	सूक्तवर्षी पर्वी-	१९६
प्रथापतिः अनुमतिः	१४९	अद्वाचारी चरति	१०५	सुरगुर्विभूषति	१३५
प्रथापतिर्जनयति	१४५	अद्वाज्यं देव्यध्व्य आ	१९९	गृह्योर्हं सप्रगवी	१५५
प्रथापतिश्च परमेष्ठो	१०९	जयाना शाला निमित्तो	१७०	मेनिः छतयथा	१९५
प्रथापतेर्वा एष	१७०	महा पदवायं	१९४	मेनिः काण्वाः	१९९
प्रथापते धेतुन हृषेन	१३१	महापरं युजयतां	३७	मेनिर्दुष्टनामा	१९६
प्रथापतीः सूयन्धे	१७८, १२१	माहाय एव पतिर्न	१०५	य आयाजमति-	१३१
प्रति तिष्ठ विराडिति	४०	म हृषेभ्य आशयं	१९५	य आये प्राशमरति	१३७
प्रतीचीं एषा प्रतीचीन.	१७०	म हृषेभ्यो वशां	१९२	य आयेभ्यो याचसूयो	१८९
प्रतीचीं सोममति	८०	भयमदवा क्वः	३३	य इन्द्र इव देवेषु	१२३
प्रतीच्या दिशः	१७१	सवस्ततस्त यतुरा	३६	य इन्द्रेण सारथं	११८
प्रानो हि कर्माचपो	१४१	सगरते हरतममदीय	३४	य इवा देवो मेखलाम्	१५४
प्रथमिदवशा	१७६	सगस्वेतो मयतु	१८	य शोते विदुमि	४६
प्रसक्तं त्रिभुव धाता	११०	सत्यं नाथना	१९	य एनामवशासाह	१८७
प्र एषा सुप्रथामि	१७, १५	सथेन मा शीतयेन	१५७	क एने क्विन्ति मुष्टु	१०३
प्र लभस्व पुंभवो	१४५	सप्तदासीकदिलाला	११४	स एनां विदिवामति	१८७
प्र पदोऽन्य निमिषिथ	२३०	सुमिर्वाशादितिनो	१६०	य एवं विदुषे अररवा	१८३
प्र सुप्रसक्त सुप्रथा	५१	सपु जमिषीव	१६५	य एवं विदुषो प्राण-	१९८
प्रथीयथाना चरति	१८६	सपुमान् सवति	१६६	य एवं विधात् स	१९९
प्र वृद्धभात् प्र शिरो	१९९	सथोः कशामजनयन्त	१६३	यं विधि देवाः एत-	१५८
प्रचरा दिशः शालाया	१७१	सनधा यं कल्पयति	१८५	यः कृषोति गृह्यरणा-	११४
प्रामाण्यो वा एतस्य	१७७	सनी चरया अज	१६	यः कृष्णः देवपुत्रः	१३३
प्रान्याभरुषकमान्	९८	सय एषा कौदलिधिषं	७८	यः कालोदनी पथति	१०५
प्रियं पशुना मथति	१८६	समेयमारु पोथ्या	३४	यः सोमि कल्पयो	११७
प्रेतो सुख मि नापुतः	१७	सथा लोभो योपतिना	१२०	यत्न कर्षो अष्टेपु	३०
प्रियाऽकृष्णीहि य	८४	सत्यमे अमि गृह्यामि	१७५	यत्रमानप्राणम्	१६९
प्रयत्नस्ते प्रोक्षणीः	१०५	सहस्रयो विधुक्ते	१६६	दृष्टममयो दपु	४८
सुहस्पतिः प्रथमा सुधीयाः	३५	सहस्रेषां तपति	१८६	दक्षं यन्ति मरणा	१३
सुहस्पतिः धारिता	११३	सशं एषा मित्राऽक्री	८९	यजन्तीराशीटा	१८९
सुहस्पतिना० । तेजो	४८	प्रीचानपश्य शातय	१९९	यद् कलिपुत्रवर्षी	१६८
सुहस्पतिना० । पयो	४८	सशादिलाला	१६३	यद् सप्रारं सुभला	१७३
सुहस्पतिना० । मयो	४८	सा ना वार्शं प्रति	१७०	यद् स आरमनि तन्वी	१०
सुहस्पतिना० । दधो	४८	साचरय पीनं धारणा	१६३	यद् तर्पणमहरति	१६८
सुहस्पतिना० । एषो	४८	सा विदय परिचिन्वो	३९	यद् ते कर्म कर्म	११०
सुहस्पतिना० । तर्षो	४८	सा चं इतो मोप हृष	१३३	यद् ते कर्षो पनयतिः	११०

श्लोक	पृष्ठ	श्लोक	पृष्ठ	श्लोक	पृष्ठ
यत् ते बलौमा मद्	२०७	संघर्षाद्यमसाद०	१९१	सदावसमान् कथं	२६८
यत् ते चर्म शरीरदे	२०७	संघर्षे बाहो कश्चिना	८३	सदासंघासुरमाने	४२
यत् ते मर्दे विश्वकारे	१६७	संघा वातशामिष	८५	सदाह भुव क-वेद्येति	१६९
यत् ते पुत्रसंये ते बालाः	२०७	सया कालेन पक्षिणा	८५	सौदेन्द्र मद्रावस्फते	१५८
यत् ते प्रभाषा पशुषु	४८	सया कालो सया	१६४	सदि वादि तिरौऋते	८०
यत् ते मज्जा स्पर्शिन	१०७	सया कालो वनरपतीन्	८५	सदि हुतां सदि	१८८
यत् यकृते मतस्ते	२०७	संघा वृक्षं तिलुत्रा	७८	सर्षदं मधुर्वदि	२४८
यत् ते विरो यत् ते	२०७	संघा केवपिर्दितो	१८३	सर्षते केचिन्नो जना	४८
यत् परिभेदाः	१७३	संघा विष्णुर्देवीनां	३६	सर्षत्वं बुद्धिना तव	४८
यत् पुरा परिभेदात्	२६८	संघाश्वितः प्रपयते	९७	सहुवां सदर्शय	१९९
यत् प्रति श्रुणोति	१७३	संघा सुवर्षाः प्रपतन्	७८	संशुपरिषादनमाहरन्ति	१६८
यथा सुदार्यः सुकृतो	१६०	सया सुर्वो कतिमाति	८६	सदुपरवृणुते सदिः	२६८
यत् ला रोम प्रविभर्ति	२४	सया सोमः प्रात-सवने	२६४	सदुक्षिणास्वाहुते	५९७
यत् घमावपति	१७३	सया सोमस्त्वृत्ति	२६४	सद् गिरिपु नर्वतेपु	१६५
यत् सुवर्षाः विरभ्रवो	७५	संघा सोमो द्वितीये	१६४	सद् दुःकृतं यच्छमलं	४९
यत् स्वने अक्षमू	१६१	संघा इक्षी इक्षित्पवाः	१६३	सद्वरता-वां चकृव	१५३
यथा कलां सया शकै	१५९	संघेदे भृग्यां क्वि	७५	सद् भावति त्रियोभर्त	१५७
सयाशरो मयवद्	१९	संघेमे दावापुषिषी	७८	सदासं च्युनि०	१४८
सया अक्षुर्बासुरा	१२३	संघेर्षं पुषिषी महीदा० [ १-४ ]	१३९	सद् वा अतिविपतिः० परि	१७३
सयासं प्रगृहती०	१८३	संघेर्षं पुषिषी मही मू०	१३०	सद् वा अतिविपतिः० प्रति	१६८
सयादिला मनुभिः	८९	सयोददमवदुषी	१३	सद् ब्रं प्रे सतनयति	१६६
सयां देश अन्तुश्व	११३	सदर्शप्रान्त्वृत्तमई	१५४	सद् वेद राजा वदती	१३०
सयां देवेस्वयुर्न	८३	सदनुवीन्द्रमेरा०	१९०	सन्तापि यच्छते	१५९
सया मकृत्वो विचित्रय	७३	सदन्तरे अद्ब्रं	७५	सं स्या होकारं	११८
सया नई कठिपुने	१७७	सदन्तरेते प्रीषिषी०	१६०	सं देश अंशुमा०	१५१
सया पसस्तामारं	९७	सदक्षमर्षी महुवा	१४६	सं देशा समस०	१५८
सया प्रविर्षो	१३३	सदक्षमद्वयवृत्तेन	१४७	सन्मा हुतमहुत मा०	१४७
संघा मया इव मधु	१६५	सदन्ने शतं वापियुः	१८४	सन्मे मन्त्री न विर्ष	१०९
संघा मधु मधुह्लाः	१६६	सदभिरदति दांशां	१८८	सन्मे माता दन्ने	८४
सया मम समारंशो	१५७	सदपत् तं द्रामरपती	१७	सामिधामो समर०	१५८
सया मर्वि सया	१३३	सदशमकृतं ह्वन्ति	१६८	सामिधामो समर०	१५८
सया सतः अयायां	८६	सदक्षिणा पूषमाली	१६	सै वेदिहस्तमक्षिमः	१५९
सया सतः पुषिष्वां	८६	सदस्या गोपती	१८९	सै चक्षुर्न न्यदस्य	४१
सया सतः प्रमावती	८६	सदरंयाः कश्चै किम्	१८१	सै प्राण्ये निदये	१३४
सया सतः अन्तमसि	८६	सदरंयाः पशुलनं	१८१	सै मिश्रावदती	१५८
सया सतः सोमवीये	८६	सदा गार्धवला०	४१	सै के दती मद्रा	४५
सया सती अमिहीये	८६	सदाप्रमताममजर्ष	१६८	सै विषे देवाः	१५८
सया सती यजमाने	८६	सदादीक्षीद्वयमाना	१९०		

मंत्र	पृष्ठ	मंत्र	पृष्ठ	मंत्र	पृष्ठ
पमा वीर्यया वृषिदी	१८१	यारते प्रोवा ये रुद्रया	२०७	येषां पथात् प्रपदाभि	१३५
यत्ते वेतोऽत्रपथो	१८४	यारते अहा याः कुष्ठिकाः	२०७	ये हृदयमाराजसाः	२०४
यत्ते गर्भं प्रति	१९६	यारते शिवारतन्ना	११४	ये सर्वात् परितर्पित	११७
यत्तेऽलङ्करी वसुधानो	१७	युज्यमानो वैश्वदेवो	२१०	ये सर्वं न तितितान्त	१३५
यत्तेऽपानिषो	२०७	युष एकः स्रुषति	१११	येऽर्वा रथ दाशेपावा	८७
यस्या घ्राणे प्रति यष्टयि	१६८	युष मार्गं सं भारी	३०	येऽर्वा रथ प्रुवाभा	८८
यस्या शालि भिमिमाय	१६८	यूर्ध्वं हावो मेदयथा	१७८	येऽस्या स्य प्रतीर्या	८७
यस्या स्वपन्ती स्वरति	१३४	ये आस्यो अप्द्व०	११७	येऽस्या रथ प्रायथा	८७
यस्या रथोरे निषयते	१३४	ये अन्ता यावतीः	४७	येऽर्वा रथोदीर्या	८८
यस्या श्रुणं यक्ष	१५४	ये आस्यो आताम् मारयन्ति	१३६	येऽर्वा रथोर्वाया	८८
या क्रुहन्तश्च०	३२	ये क्रुहन्ताः क्रुहन्ताः	१३५	यो अन्धो यः पुनः प्रः	२५७
या अक्षेपु प्रमोचन्ते	१००	ये गर्भा अक्षयन्ते	१०१	यो अतिर्यो रीरयद्	३०
या एव यज्ञ आपः	२६८	ये शीघ्रति पराणी०	१८८	यो अक्षय रथाद्	१८१
या भोषयवो या	३८	ये ते देवि क्षणितान्	२०६	यो असा ऊषो	१८३
या अमदभिरक्षन्द्	१५	ये ते नाक्षी देवकृते	२१७	यो अथा अचः	१८५
या दुर्हायो सुशयो	४३	येदं पूर्वागन् रथना०	५०	यो अथाः कर्णा	१८१
या शिषया अद्रुषथा	१७०	ये देवा दिविपदो	२०६	योऽतिशीर्षा घ	२७०
यानि वेदन्ताः शिषयानि	१६७	येन देवा अगुणान्	११२	यो देवो विधास्य	११८
यानि मद्राणि बीजानि	१२१	येन महानभ्या	३०	यो न ओवोऽधि	२५१
यान्युत्खलमुत्खलानि	२६८	येन मृतं स्तपयन्ति	२७६	यो ज्ञः अभियुवं	२३८
यां ता पूर्वं भूतकृत्	१५५	येन पृथो अक्षयमवो	२५७	यो ना लघयत् नामर्तु	२३७
या पूर्वं प्रति विरथा०	२२६	येन वेदद् वभूविष	१२८	यो न शुभो हृदयेषु	८१
या पूर्वानं भोषयति	१२५	येन सर्वां क्षाविरी	१७	यो शिवात् मद्रा प्रत्यर्थ	२६७
यामावीनामुद्योद	२६४	येनाभिरथा भूम्या	३३	यो शिवात् सत	१८१
यामादुस्ताकेषा	१०४	येना विचक्र आगुष्टीम्	८०	यो वेदतं गन्मानो	१८६
या मे शियतमा	४७	येनाभवत् सविता	११४	यो वे कक्षायाः पत	२६६
यान् मृतयामाद्	२७६	येना तद्वर्षं षडिति	२३४	यो वे कुर्वन्तं नामर्तु	२३७
यानिः परितुऽस्ति	१००	ये पर्यताः सोमपुष्टाः	१११	यो वे नैदावं नामर्तु	२३७
यजतीः कृत्वा तप०	४७	ये शितरो वधुस्तर्का	५०	यो वै शिष्यन्तं नामर्तु	२३७
यान्ती वावापुधिरी	११३	ये पूर्वं क्षयो यन्ति	१३५	यो वे शिष्यन्तं नामर्तु	२३७
यान्तीर्दिनाः प्रदिशो	११३	ये वृद्धतामानमा०	२७४	योऽस्मान् द्वेष्टि यं	१५१
यान्तीर्दिना अरवः	११३	ये आश्रयं प्रलङ्घी	२७४	योऽत एकः अश्रीर्यो	२०७
यान्तीर्दिना अरवः	११३	ये वाक्शयं षडर्तु	३१	यो त अश्रीं ये नाशिके	२०७
यान्तीर्दिना अरवः	११३	ये मथाया अरनाय	१८८	यो ते हाडुं ये दोषगी	२०७
यान्तीर्दिना अरवः	११३	ये श्रीर्यो यथा	२६८	यो ते मातोऽन्मार्थ	१३३
यान्तीर्दिना अरवः	११३	ये वा लाः परि०	२६३	यो अम्राश्वकरी	१३
यान्तीर्दिना अरवः	११३	येनामभेति प्रपय	१७४		

श्लोक	पृष्ठ	श्लोक	पृष्ठ	श्लोक	पृष्ठ
रक्षां च लोहितं	२१०	विधुस्वनी सुमगा	१६	द्वाराभ्यां रथ क्षयति	११४
रथमिता राधामिते	१५६	विधुस्वनायनी	११०	शोचयामति ते हृदि	८९
राधा सर्व सुमनसः	४४	विषमेतद्वृष्टं	७५	शुनः कोयोगविषं	१०३
रिष्यवसो रूषदरी	९०	विषं प्रवसाम्नी	११६	अज्ञाया दुहितः तपथे	१५५
रुमप्रतरणं वरुं	४३	विष्णुर्देवि कहरावद्	११७	अमेघ तपथा स्रष्टा	१९४
रुदरं मृगमरय०	१४८	विह्वो नाम ते तिता	१५१	धातं मग्म ऊचति	१५०
शेषांतराधुवः	१९६	वृष व वृष सं	११९	धाते हविरो भिन्द	१५०
शैशवीन्दुदेवी	१५	वेदः सरितस्तुषया	१५६	धिवं च वा एष	१४०
शोभाप्रसन्नं च छिन्धि	१९९	वेदाई यत प्रवतः	१८९	धेष्टमासि मेवत्राणां	९५
शोभितेन रवभितिमा	१३१	वेदिष्ठं चर्म भवद्	१०५	सु हृत् तत् रवोर्न हति	३०
सञ्ज्ञेन शरावर्षणा	१५९	वेरं विह्वयामा	१२६	च उपहृत उपहृतः	१३३
सञ्ज्ञो धामन्ती वैशालर	१९५	वैवल्पाः कृणवद्	१४८	स उपहृतोऽन्तरिक्षे	१३३
सञ्ज्ञेन प्रव्यभिता	८७	वेधेदेवी हृद्यन्वये	१९८	स उपहृतः पृथग्भ्यां	१३३
सन्तो वास्तवता	८४	वैशालरः दक्षिता	१५५	स उपहृतो दिति	१३३
संज्ञानां ते नदनालां	१६७	वैशालराय प्रति	१५४	स उपहृतो देवेषु	१३३
सका चरन्ती बहुधा	१८५	व्यष्टी मित्रावहनी	११५	स उपहृतो कोविषु	१३३
सया चौरिकां शुभिकी	१९३	व्यष्टीः शूरव्यनिष्ठ शीरी	१५०	सं वः पृच्छन्ता	८८
सया देवा उपजीवित	१९९	स्यार्थं कथाः कर्तं दोषधाः	१८९	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सया माता राजन्मरय तथा	१८५	सार्थं वा मेवत्राणि	१४८	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सया माता राजन्मरय सया	१९९	सतथासं स वजते	११४	सं वः शोभेन श्रवदा	११९
सयाऽन्वाश्रितम्	१९९	सतस्य धमर्णां	१४७	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सया वरुं सर्व०	१९१	सतस्य धमर्णां	१४७	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सयाया दुर्गं पंथा	१९९	सतस्य धमर्णां	१४७	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सयत् ते पृथक्प्रिय	१४३	सतस्य धमर्णां	१४७	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सयसुखा दक्षिणतः	१०३	सतस्य धमर्णां	१४७	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सयत् मे सन्तं पादौ	७८	सतस्य धमर्णां	१४७	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सयुरेताः समारुह	१११	सतस्य धमर्णां	१४७	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सिन्धुनामिन्द्रिणी	९९	सतस्य धमर्णां	१४७	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सिन्धुनामिन्द्रिणी	१३१	सतस्य धमर्णां	१४७	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सिन्धुनामिन्द्रिणी	४९	सतस्य धमर्णां	१४७	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सिन्धुनामिन्द्रिणी	१४४	सतस्य धमर्णां	१४७	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सिन्धुनामिन्द्रिणी	१५९	सतस्य धमर्णां	१४७	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सिन्धुनामिन्द्रिणी	१८७	सतस्य धमर्णां	१४७	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सिन्धुनामिन्द्रिणी	१८७	सतस्य धमर्णां	१४७	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सिन्धुनामिन्द्रिणी	१८१	सतस्य धमर्णां	१४७	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सिन्धुनामिन्द्रिणी	१९७	सतस्य धमर्णां	१४७	सं वः सुभारवर्षमा	११९
सिन्धुनामिन्द्रिणी	१०३	सतस्य धमर्णां	१४७	सं वः सुभारवर्षमा	११९

मन्त्र	पृष्ठ	मन्त्र	पृष्ठ	मन्त्र	पृष्ठ
एथानकोषो मन्त्रो	२३६	वा ब्रह्मज्ये देवर्षीषु	१९५	सोमो रामा भरितथ्यो	१०९
ममिदो अग्निधिया	२३६	वा मन्वसाना जनधा	३८	सोमो वसुधूरमवद्	२५
अग्निषो अग्निधिया	२३६	आमानि वक्ष्ये त्वेमावि	२६७	एतन्मिन्दुशतेषाम् प्र अग्नि	२६४
स रितराहु दिवसे	४४	साहसरेषु ऋषयः	२११	एतन्मिन्दुशतशक प्र शिधि	२६२
समने मल सादभिरा	४९	शुद्धिस्तु वदद्	३६	एतोमा आसन् प्रतिपद्य	२५
स मग्नि वषेष्वा युक्	२६५	सुवर्णो प्रतरणी	४१	स्वोमाद्येनेरधि	४६
सम श्येधि शशुलेषु	३२	सुमण्डीरिय वधू -	४२	सोमा मध शशुरेभ्य	४९
स म एव विद्वात्तद	२७१	सुशुताभन्नाः सुभगा	१७५	स्योन ध्रुव प्रजायै	६३
स म एव विद्वात् क्षार	२७१	सुषुषसाद् भगवती	१२८	सुतद्विर्देष्टव्याता-	२६९
स म एव विद्वात् न	२६९	सुर्वे एन रिय प्र	२००	सुधा हरतन प्राये	२६९
स म एव विद्वात् ऋ	२७१	सुर्वेस्य रक्षानिनु	१००	सुधया परिद्धिता	१९४
स म एव विद्वात् मधु-	२७१	सुर्वीया वदद् प्राणात्	२६	सुधाकारेण पित्रुभ्यो	१८५
स म एव विद्वात् मौस	१७१	सुर्वादि देवेभ्यो मित्राय	४६	सुवन्न सुप्तान यदि	८४
सर्वभानि सर्वा	१९५	सुधा स्युषोषु दि	१४४	सुमेतद्वन्नायिद	१८३
सर्वदा वा एव युषया-	१९०	सेदियपतिष्ठ ती	१९६	सुक्त मे यावापूषिभ्यो	१६१
सर्वोप्यस्या कुराणि	१९५	शैवा मामा प्रज्ञायी	१२५	सुद्राह्य शुचि	१९७
सर्वोप्यस्यां यासाणि	१९५	शोषस्तु मद्रास्तु	१८	सुद्रा तर्दं धमक इमा-	१४२
सर्वान् कामाद् मम	१८६	शोभमेनामेके दुन्दे	१९२	सुविर्भान्मामास	१६७
सर्वैर्याहा पूर्वा	१२७	शोच्य मन्वते वधि-	२४	सुवितेभ्य माहा	१०४
सर्वैस्वाज्ञां पूर्वादि	१९३	सामस्य भाषा प्रथम	३७	सुविरिकती वृहती	१६४
सर्वे गभादिरेवन्त	१९१	सोमदशोषो सुधां	१११	सुविरुम्बती वसुधुर्वी	२१८
सर्वो वा एष अन्ध-	१७०	सोमेन पूर्णं कलशं	११०	सुविरुत्वा वा वसुधुव	१७३
सर्वो वा एषोऽन्ध-	१७०	सामेनाविस्ता मलिन	६४	सुविरुत्वाणि सविता-	११९
सविद येष्टुन ह्येव	१३१	सोमो दस्य गवर्णीय	३७	सुविरुत्वा मन्त्रे	१८४
सर्वगमा रे ह्येति	१०६	सोमो रामा प्रथमो	१०४	सुविरुत्वा च्यवन्ती	१९५
स ते काम दुःखिता	११०				

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
४७ स्पन्दना गौः स्थाली इव ( ८११३७ )- उल्लभनेवागी गाय त्रिस प्रकार दूधके बतनको उल्लट देती है ।	१३६	५९. नृप्रा पुदाकूः इव अथविषा ( ५११८३ )- प्यासी और भूशी नागिन त्रिस प्रकार विषसे भरी हुई होती है ।	२००
४८. घातः अश्रे इव ( ८१११९ )- वायु वाद- लोंको जैसे बटा ले जाती है ।	१३६	६०. आरच्छः अग्निः इव सर्वं विदुनोति ( ५१ १८४ )- जलाई गई अग्निसे समान सफाया नात करती है ।	२००
४९. स्नुपेय श्वशुरादधि ( ८११२४ )- त्रिस प्रकार बह समुद्रमें दूर रहती है, उसका भादुर करती है ।	१३७	६१. दिग्धा इषुः इव ( ५११८१५ )- विषमें दुष्टे तीरके समान ।	२०१
५०. वृक्षान् सजं इव ( ८११२६ )- वेदसे मुझाये कूड त्रिस प्रकार स्वयं मट्ट जाले है ।	१३७	६२. पृदाकूः इव सः परियतः विध्यति ( ५१ १८१५ )- सांपके समान बह दिवकको बंधिती है ।	२०१
५१. अभातः जामयः हतवर्चसः इव ( ११ १७१ )- त्रिस प्रकार भाईरहित अग्निने निरतेज होती है ।	१३७	६३. इहो शका इव पुष्यत ( ३११४४ )- यशों ज्ञानके समान पुष्ट हो ।	२२०
५२. बृहस्पतिः याथा यले इव ( ९१३२ )- बृहस्पति भयवी वाणीसे त्रिस प्रकार शत्रुसेनाका नाश काला है ।	१६७	६४. श्राति-शाका इव पुष्यत ( ३११४५ )- चावडकी फलडकें समान परिपुष्ट हो	२२०
५३. पुत्र्याये अधि कुत्रायं ( ९१३२० )- पत्नी घातला बगाले हुए त्रिस प्रकार घातका एक ठिनका दूसरे ठिनके पर रखते है ।	१७०	६५. यथा वृषण्यतः पुंसः मनः स्त्रियां निह- न्यने- ( ६१००११ )- त्रिस प्रकार चरवाट, उरुवका मग छिपेनि रमा रहता है ।	२२२
५४. कोशे कोशः ( ९१३२० )- कोशपर कोश सखी तरह रखा जाय ।	१७०	६६. यथा नभ्यं प्रथी अधि ( ६१००३ )- त्रिस प्रकार चक्री नाभि अरोंके मध्यमें रहती है ।	२२३
५५. गर्भः अग्निः इव ( ९१३२१ )- गुप्तत्वानमे रभी हुई अग्निसे समान ।	१७०	६७. यीः इव तत् उच्छ्रयस्य ( ९११५२१२ )- आकाशके समान बह ऊंचा है ।	२४६
५६. यथा निहितः शेषधिः ( १२१७१४ )- त्रिस प्रकार सनाना मुश्किल रखा जाना है ।	१८३	६८. समुद्रः इव अक्षितः पधि ( ६११५२१६ )- समुद्रके समान भक्षण हो ।	२४६
५७. यथा अज्ञये प्रष्टहीते आज्यं मुचः आलुपेत् ( १२१२३५ ) त्रिस प्रकार अग्निसे सम- र्पित किया हुआ भी पनपेसे गिरता है ।	१८६	६९. यथा मधुकृतः मधो अधि मधु संभरन्ति ( ९११११९ )- त्रिस प्रकार मधुमक्खिलगां अपने गह- दके स्थानोंमें गहद इकट्ठा करती है ।	२४६
५८. यथा यमनदनात् परापतः पापलो- पान् अयात् ( १२१५१४ )- त्रिस प्रकार पानीजोग यमनदनेमें से जाय, जाले है ।	१९९	७०. यथा मग्नाः इदं मधु मधी अधि न्यंज- न्ति ( ९११११७ )- त्रिस प्रकार मधुमक्खिलगां पद- केसे इकट्ठे किए गए शहदमें और गहद भरती है ।	२४६
		७१. उदकं मिसां नार्य इव ( ५१११८० )- त्रिस प्रकार पानी टूटी हुई मातकी बहा ले जाता है ।	२७५

